सचित्र

# श्रीमद्वाल्मीकि-रामायण

( हिन्दीभाषानुवाद सहित )

## युद्धकाण्ड उत्तरार्द्ध—८

अनुवादक

चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा

डाक्टर आफ ओरियण्टल कलचर ( काशी )

साहित्य वाचस्पति ( प्रयाग )

प्रकाशक

रामनारायण लाल

प्रकाशक और पुस्तकविक्रेता

इलाहाबाद

सन १९५०

[illegible] १००६ |

मुद्रक—सदलराम जायसवाल,
राम प्रिंटिंग प्रेस, कीटगंज,
इलाहाबाद ।

# युद्धकाण्ड उत्तरार्द्ध

की

## विषयानुक्रमणिका


**अड़सठवाँ सर्ग** ६९७—७०३

युद्ध से भागे हुए राक्षसों द्वारा कुम्भकर्ण के मारे जाने की सूचना रावण को मिलनी। कुम्भकर्ण के मारे जाने पर रावण का विलाप। उस समय रावण को विभीषण की बातों का स्मरण होना।

**उनहत्तरवाँ सर्ग** ७०३—७२७

त्रिशिरा का रावण को आश्वासनप्रदान। त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर, महाकाय आदि की युद्ध-क्षेत्र-यात्रा। वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध। नरान्तक का वानरी सेना को ध्वस्त करना। वानर सैन्य का नाश होते देख, सुग्रीव की अङ्गद के प्रति उक्ति। तदनुसार अङ्गद का युद्ध के लिए आगे बढ़ना। नरान्तक और अङ्गद का युद्ध। नरान्तक का अङ्गद के हाथ से वध।

**सत्तरवाँ सर्ग** ७२८—७४५

देवान्तक, त्रिशिरा, महोदर का अङ्गद के साथ युद्ध। देवान्तक का वध। महोदर का वध। त्रिशिरा का वध। उन्मत्त राक्षस के साथ हरियूथप गवाक्ष का युद्ध। उन्मत्त राक्षस का गवाक्ष द्वारा वध।

**इकहत्तरवाँ सर्ग** ७४५—७७३

भाई, चचा आदि के वध से क्रुद्ध हो, अतिकाय का युद्ध करने के लिए आना। अतिकाय की मार से वानरों

का त्रस्त होना । लक्ष्मण जी और अतिकाय का युद्ध। लक्ष्मण जी की मार से अतिकाय के कटे हुए सिर का भूमि पर गिरना।

बहत्तरवाँ सर्ग ७७३—७७७

अतिकाय का मारा जाना सुन, रावण का उद्विग्न होना। लङ्का की रक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करने की रावण द्वारा आज्ञा।

तिहत्तरवाँ सर्ग ७७८—७९७

पुत्रों और भाइयों के, युद्ध में मारे जाने पर, शोक-विह्वल रावण को, अपने पराक्रम का बखान कर, इन्द्रजीत का धीरज बँधाना। सेना सहित इन्द्रजीत का युद्ध के लिये निकलना। राक्षसों और वानरों का घोर युद्ध। समस्त वानरयूथपतियों को इन्द्रजीत द्वारा घायल देख और लक्ष्मण सहित अपने ऊपर उसको बाणवृष्टि करते देख, श्रीरामचन्द्र जी की लक्ष्मण जी से बातचीत। इन्द्रजीत का लङ्का में प्रवेश।

चौहत्तरवाँ सर्ग ७९७—८१६

विभीषण द्वारा वानरों को सान्त्वना-प्रदान। हाथ में मशाल ले हनुमान और विभीषण का रणक्षेत्र में घूम घूम कर जीवित वानरों को आश्वासन-प्रदान। घायल जाम्बवान से विभीषण की भेंट। जाम्बवान का विभीषण से हनुमान जी का कुशल-प्रश्न। इस प्रश्न से विभीषण का विस्मित होना और जाम्बवान द्वारा विभीषण का समाधान किया जाना। औषधि-पर्वत लाने के लिए जाम्बवान का हनुमान जी को आदेश। हनुमान जी का गमन और

उस पर्वत को लङ्का में उठा लाना। पर्वत पर उगी हुई दवाइयों के सुँघाने से मरे हुए वानरों का जी उठना। उस पर्वत का हनुमान जी द्वारा यथास्थान पहुँचाना।

पचहत्तरवाँ सर्ग ८१६—८३६

सुग्रीव की आज्ञा से वानरों का लङ्का को भस्म करना। इस पर कुपित हो रावण का लड़ने के लिए कुम्भ और निकुम्भ को भेजना। वानरों और राक्षसों का घोर युद्ध।

छिहत्तरवाँ सर्ग ८३७—८५८

वानरों और राक्षसों के युद्ध का वर्णन। कुम्भ का वध।

सतहत्तरवाँ सर्ग ८५८—८६५

भाई कुम्भ का मारा जाना देख, निकुम्भ का उद्विग्न होना। हनुमान जी के साथ निकुम्भ का युद्ध और निकुम्भ का मारा जाना।

अठहत्तरवाँ स र्ग ८६५—८७०

कुम्भ और निकुम्भ के वध का समाचार पा कर, क्रोध और शोक से विकल, रावण का श्रीराघववधार्थ खरपुत्र मकराक्ष को भेजना। मकराक्ष की युद्धयात्रा और मार्ग में अशुभ शकुनों का होना।

उनहत्तरवाँ सर्ग ८७०—८८१

राक्षसों और वानरों का युद्ध। क्रोध में भरे हुए मकराक्ष का भाषण। मकराक्ष द्वारा श्रीरामचन्द्र जी का

अन्वेषण । मकराक्ष और श्रीरामचन्द्र जी की बातचीत । श्रीरामचन्द्र जी और मकराक्ष का युद्ध और मकराक्ष का मारा जाना ।

अस्सीवाँ सर्ग ८८१—८९१

मकराक्ष के मारे जाने का संवाद सुन, अत्यन्त क्रुद्ध रावण का इन्द्रजीत को श्रीराम एवं लक्ष्मण के वध के लिए प्रोत्साहित करना । इन्द्रजीत का हवन करना । "अन्तर्धान हो श्रीराम लक्ष्मण को मार कर मैं वानरहीन मही कर डालूँगा"—इन्द्रजीत की यही प्रतिज्ञा । श्रीरामचन्द्र जी के साथ इन्द्रजीत का युद्ध । इन्द्रजीत को अन्तर्धान देख लक्ष्मण जी का श्रीरामचन्द्र जी से राक्षस मात्र का नाश करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ने की अनुमति माँगना । "एक के पीछे राक्षस मात्र का नाश करना ठीक नहीं"—यह श्रीरामचन्द्र जी का लक्ष्मण जी के प्रति उत्तर ।

इक्यासीवाँ सर्ग ८९२—९००

श्रीरामचन्द्र जी का अभिप्राय जान, इन्द्रजीत का लङ्का में प्रवेश । इन्द्रजीत का बनावटी सीता लाकर उसे मार डालने का उद्योग । यह देख हनुमान जी का उसको धिक्कारना । हनुमान जी को इन्द्रजीत का उत्तर और वानरों के सामने इंद्रजीत का बनावटी (झूठी) की सीता को मारना ।

ब्यासीवाँ सर्ग ९००—९०६

इंद्रजीत के साथ वानरों का युद्ध । सीता की हत्या से खिन्न हनुमान जी का वानरों सहित युद्धभूमि से

लौटना। हवन करने के लिए इंद्रजीत का निकुम्भिला देवी के स्थान पर जाना।

तिरासीवाँ सर्ग ९०६-९१८

हनुमान जी के मुख से सीता के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, श्रीरामचन्द्र का मूर्च्छित होना और मूर्च्छा भङ्ग होने पर विलाप करना। श्रीलक्ष्मण का श्रीराम जी को समझाना।

चौरासीवाँ सर्ग ९१८-९२४

विभीषण का आगमन और यह विश्वास दिलाना कि, सीता को कोई नहीं मार सकता। साथ ही श्रीरामचन्द्र जी से उनका यह भी कहना कि, इंद्रजीत का हवन-विध्वंस करने के लिए लक्ष्मण को मेरे साथ भेजिए।

पचासीवाँ सर्ग ९२४-९३२

श्रीराम जी का विभीषण से यह कहना कि, जो तुमने अभी कहा उसे मैं पुनः सुनना चाहता हूँ। विभीषण की प्रत्युक्ति। उसे सुन श्रीरामचन्द्र जी का कथन। श्रीरामचन्द्र जी का लक्ष्मण को निकुम्भिला के स्थान को भेजना। श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम कर, लक्ष्मण का विभीषण सहित निकुम्भिला के स्थान को गमन।

छियासीवाँ सर्ग ९३३-९४०

निकुम्भिला के स्थान पर बैठे हुए और हवन करते हुए इंद्रजीत पर लक्ष्मण द्वारा बाणवृष्टि। तदनन्तर वानरों और राक्षसों की लड़ाई। अपनी सेना का परास्त होना सुन, हवन छोड़ इंद्रजीत का उठ खड़ा होना। हनुमान के साथ युद्ध करने को इंद्रजीत का आगे बढ़ना।

हनुमान जी को मारने में प्रवृत्त इंद्रजीत को विभीषण का लक्ष्मण जी को दिखाना।

सत्तासीवाँ सर्ग ९४१–९४८

विभीषण को इंद्रजीत का धिक्कारना। विभीषण का उसकी बातों का उत्तर देना।

अट्ठासीवाँ सर्ग ९४८–९५८

इंद्रजीत का गर्जना। लक्ष्मण के साथ इंद्रजीत का संवाद। इंद्रजीत का लक्ष्मण के साथ घोर युद्ध।

नवासीवाँ सर्ग ९५८—९६८

लक्ष्मण का इन्द्रजीत पर बाण छोड़ना। विवर्ण मुख रावणात्मज को देख, लक्ष्मण के प्रति विभीषण की उक्ति। युद्धारम्भ के समय इन्द्रजीत और लक्ष्मण की कहाकही की बातचीत। इन्द्रजीत और लक्ष्मण का युद्ध।

नब्बेवाँ सर्ग ९६८—९८०

रणक्षेत्र में विभीषण की स्थिति। वानरों के प्रति विभीषण का वचन। वानरों का युद्ध। इन्द्रजीत और लक्ष्मण का पुनः घोर युद्ध। इन्द्रजीत के रथ के चारों घोड़ों का मारा जाना। उसके सारथी का मारा जाना। इंद्रजीत का स्वयं रथ हाँकना और युद्ध करना। वानरों का पुनः इंद्रजीत के रथ के घोड़ों को मार डालना और उसके विशाल रथ को चकनाचूर कर डालना।

एक्यानवेवाँ सर्ग ९८०—१००१

दूसरा रथ लाने को इंद्रजीत का लङ्का में जाना। दूसरे रथ में बैठ लड़ने के लिए पुनः इंद्रजीत का समरभूमि

में प्रवेश। इन्द्रजीत और लक्ष्मण का घोर युद्ध। इन्द्रजीत का लक्ष्मण द्वारा शिरच्छेदन। इन्द्रजीत के मारे जाने पर देवताओं का हर्षित होना।

बानबेवाँ सर्ग १००२—१००६

लक्ष्मण का श्रीराम जी के पास जाना और विभीषण द्वारा लक्ष्मण के हाथ से इन्द्रजीत के मारे जाने का समाचार कहा जाना, जिसे सुन श्रीरामचन्द्र जी का प्रसन्न होना। लक्ष्मण के प्रति श्रीरामचन्द्र जी की अभिनन्दनोक्ति। "विभीषण और लक्ष्मण को शीघ्र आरोग्य करो" सुषेण को श्रीरामचन्द्र जी का, यह आज्ञा देना। सुषेण के औषधोपचार से लक्ष्मण, विभीषण तथा अन्य वानरों का चंगा होना।

तिरानबेवाँ सर्ग १००६—१०२५

इन्द्रजीत के मारे जाने का संवाद सुन रावण का विलाप करना। पुत्र के मारे जाने से उत्पन्न क्रोध से रावण का प्रचण्ड रूप धारण करना और राक्षसों के बीच भाषण। क्रोधावेश में भर सीता जी का वध करने का निश्चय कर, रावण का सीता जी के पास जाना। सीता जी का शोकान्वित होना। सुपार्श्व नामक अमात्य का रावण को सीता का वध करने से रोकना।

चौरानबेवाँ सर्ग १०२५—१०३४

दर्बार में बैठ रावण का मरने से बचे राक्षसों को आज्ञा देना कि, सब मिल कर श्रीरामचन्द्र के साथ युद्ध करो। उन सब का लङ्का से निकलना। वानरों के साथ

उनका युद्ध। रणभूमि में श्रीरामचन्द्र जी का आगमन। राक्षसी सेना का नाश।

पञ्चानबेवाँ सर्ग १०३५—१०४५

श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से राक्षसी सेना का वध सुन, बचे हुए राक्षसों और विधवा राक्षसियों का विलाप और रावण की निन्दा किया जाना।

छियानबेवाँ सर्ग १०४५—१०५५

राक्षसियों का विलाप सुन और क्रोध में भर श्रीरामचन्द्र जी का वध करने के लिए रावण द्वारा राक्षसों का उत्साह बढ़ाया जाना। रावण का लड़ने के लिए प्रस्थान। युद्धार्थ जाते हुए रावण का अशकुनों को देखना। राक्षसों और वानरों का युद्ध।

सत्तानबेवाँ सर्ग १०५६—१०६४

सुग्रीव और राक्षसों का युद्ध। विरूपाक्ष राक्षस का युद्ध में पतन।

अट्ठानबेवाँ सर्ग १०६४—१०७२

अपनी सेना का नाश देख रावण का महोदर को भेजना। सुग्रीव और महोदर का युद्ध। महोदर का वध।

निन्नानबेवाँ १०७२—१०७८

महापारव और अंगद का युद्ध। महापार्श्व का वध।

सौवाँ सर्ग १०७९—१०९०

प्रधान प्रधान समस्त राक्षसों का मारा जाना देख, रावण का क्रुद्ध हो कठोर वचन कहना। श्रीराम और लक्ष्मण के साथ रावण का युद्ध।

एक सौपहला सर्ग — १०६०—११०४

श्रीराम और रावण का युद्ध। रावण का विभीषण के ऊपर शक्ति फेंकना। लक्ष्मण का उसे रोक देना। लक्ष्मण के प्रति रावण की उक्ति। रावण का लक्ष्मण के ऊपर दूसरी शक्ति का फेंकना। उस शक्ति के लक्ष्मण के लगने से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना। शक्ति से बिधे हुए लक्ष्मण को देख श्रीरामचन्द्र जी का वीरोचित भाषण श्रीरामचन्द्र जी और रावण का घोर युद्ध।

एकसौ दूसरा सर्ग — ११०४—१११६

लक्ष्मण जी के लिए श्रीरामचन्द्र जी का शोक करना। श्रीरामचन्द्र जी को सुषेण वानर का धीरज बँधाना। सुषेण वानर का औषधि लाने के लिए हनुमान जी को भेजना। हनुमान जी का दवाई लाना। औषधि सुँघाते ही लक्ष्मण जी का सचेत हो उठ बैठना। लक्ष्मण के प्रति श्रीरामचन्द्र जी की उक्ति। लक्ष्मण जी का उत्तर।

एकसौ तीसरा सर्ग — १११६—११२४

श्रीरामचन्द्र जी और रावण का युद्ध। पाँव प्यादे श्रीरामचन्द्र जी को, रथ पर सवार रावण के साथ युद्ध करते देख, देवताओं के कहने से, श्रीराम जी के पास, इंद्र का अपना रथ भेजना। रथों पर सवार दोनों का अद्भुत युद्ध।

एकसौ चौथा सर्ग — ११२४—११३१

श्रीरामचन्द्र जी और रावण का घोर युद्ध।

एकसौ पाँचवाँ सर्ग — ११३२—११३८

रावण को मूर्च्छित देख उसके सारथी का उसे रणभूमि के बाहिर ले जाना।

**एकसौ छठवाँ सर्ग** ११३६—११४५

सारथी के प्रति रावण की क्रोधोक्ति। सारथि का उचित उत्तर।

**एकसौ सातवाँ सर्ग** ११४६—११५४

आदित्यहृदय।

**एकसौ आठवाँ सर्ग** ११५४—११६३

रावण का युद्धभूमि में पुनरागमन। श्रीरामचन्द्र और रावण का फिर घोर युद्ध। उत्पातदर्शन।

**एकसौ नवाँ सर्ग** ११६३—११७०

श्रीरामचन्द्र और रावणका सुक्रूर युद्ध।

**एकसौ दसवाँ सर्ग** ११७०—११७६

श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से रावण का शिरश्छेदन। कटे हुए सिरों की जगह रावण के नये सिरों का निकलना।

**एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग** ११७६–११८७

मातलि के स्मरण कराने पर श्रीरामचन्द्र जी का रावण के ऊपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग। उससे रावण का वध। रावण के मारे जाने पर वानरों और देवताओं का हर्षित होना।

**एकसौ बारहवाँ सर्ग** ११८७–११६५

भाई के मारे जाने पर विभीषण का शोक प्रकट करना। श्रीरामचन्द्र जी द्वारा विभीषण को सान्त्वना-प्रदान और रावण का प्रेतकर्म करने की अनुमति प्रदान।

**एकसौ तेरहवाँ सर्ग** ११६५–१२०१

रावण का वध सुन, राक्षसियों का विलाप करना।

एकसौ चौदहवाँ सर्ग १२०२—१२२८

रावण की स्त्रियों मन्दोदरी आदि का विलाप। रावण का प्रेतकर्म करने के बारे में विभीषण और श्रीरामचन्द्र जी का कथोपकथन। विभीषण द्वारा रावण का अन्त्येष्टिसंस्कार। तदनन्तर विभीषण का श्रीराम जी के समीप आगमन।

एकसौ पन्द्रहवाँ सर्ग १२२८—१२३४

रावण को मरा देख, देवताओं का अपने अपने स्थानों को गमन। मातलि का रथ ले कर स्वर्ग जाना। विभीषण का लङ्का के राजसिंहासन पर अभिषेक। श्रीरामचन्द्र जी द्वारा हनुमान जी का सीता जी के पास रावण-वध का शुभसंवाद सुनाने को भेजा जाना।

एकसौ सोलहवाँ सर्ग १२३५—१२४६

हनुमान जी का सीता जी से समस्त वृत्तान्त कहना। सीता जी का संदेसा लेकर हनुमान जी का श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट आना।

एकसौ सत्रहवाँ सर्ग १२४६—१२५५

श्रीराम जी को हनुमान जी का सीता का संदेसा सुनाना। सीता लाने के लिये श्रीरामचन्द्र जी का विभीषण को भेजना। विभीषण का, पालकी में बैठा कर सीता को लाना। सीता का श्रीरामचन्द्र जी के पास गमन।

एकसौ अठारहवाँ सर्ग १२५५—१२६२

सीता के प्रति श्रीरामचन्द्र जी की उक्ति।

एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग १२६२—१२७०

सीता जी की अग्निपरीक्षा।

एकसौ बीसवाँ सर्ग १२७०—१२७८

समस्त देवताश्रेष्ठों का श्रीरामचन्द्र जी के समीप आगमन। ब्रह्माकृत श्रीरामस्तुति।

एकसौ एक्कीसवाँ सर्ग १२७६—१२८४

गोदी में लेकर अग्निदेव का सीता जी का देना। श्रीरामचन्द्र जी के प्रति अग्निदेव का वचन। श्रीरामचन्द्र जी का उत्तर और उनके द्वारा सीता का ग्रहण।

एकसौ बाइसवाँ सर्ग १२८४—१२६३

श्रीरामचन्द्र जी के प्रति महादेव जी का वचन। लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी का विमानस्थ महाराज दशरथ के दर्शन पाना। दशरथ और श्रीरामचन्द्र जी का संवाद। महाराज दशरथ का स्वर्ग को लौट जाना।

एकसौ तेइसवाँ सर्ग १२६३—१२६८

इन्द्र के वरदान से मरे हुए समस्त वानरों का पुनर्जीवित हो जाना।

एकसौ चौबीसवाँ सर्ग १२६८—१३०५

श्रीरामचन्द्र जी और विभीषण का संवाद। पुष्पकाह्वान।

एकसौ पचीसवाँ सर्ग १३०६-१३१२

श्रीराम जी के कथनानुसार विभीषण द्वारा वानरों का सत्कार। पुष्पकारोहण। विमानस्थ श्रीरामचन्द्र जी का

विभीषण और सुग्रीव से कथन। सब का श्रीअयोध्या जाने की उत्कण्ठा प्रकट करना। सब का पुष्पक विमान में बैठना।

एकसौ छब्बीसवाँ सर्ग १३१२—१३२५

पुष्पक विमान में बैठ युद्धक्षेत्र को देखते हुए श्रीरामचन्द्रादि का श्रीअयोध्या की ओर गमन।

एकसौ सत्ताइसवाँ सर्ग १३२५—१३३१

ठीक चौदह वर्ष पूरे होने पर श्रीरामचन्द्र जी का भरद्वाज जी के आश्रम में पहुँचना। भरद्वाज जी का और श्रीरामचन्द्र जी का परस्पर सम्भाषण।

एकसौ अट्ठाइसवाँ सर्ग १३३१-१३४१

भरत जी के आंतरिक भाव टटोलने के लिए श्रीरामचन्द्र जी का हनुमान जी को उनके पास भेजना। मार्ग में हनुमान जी का गुह को श्रीरामागमन की सूचना देते हुए, श्रीअयोध्या से एक कोस इधर नंदिग्राम में पहुँच, भरत जी का दर्शन करना। भरत जी से हनुमान जी की बातचीत। श्रीरामागमन सुन, भरत जी का अत्यंत हर्षित होना।

एकसौ उन्तीसवाँ सर्ग १३४१-१३५३

हनुमान जी और भरत जी की वार्तालाप।

एकसौ तीसवाँ सर्ग १३५३-१३६७

श्रीरामचन्द्र जी की अगवानी की तैयारी करने के लिये भरत जी का शत्रुघ्न जी को आदेश। श्रीअयोध्या वासियों का श्रीराम जी के दर्शन करने के लिए नंदिग्राम

में आने पर भरत द्वारा श्रीरामचन्द्र जी का पूजन। श्रीरामचन्द्र जी और भरत जी का समागम। भरत जी का सुग्रीवादि से परिचय। भरत जी का अपने हाथों से श्रीरामचन्द्र जी के चरणों में पादुका धारण करवाना और राज्य रूपी धरोहर उनको सौंप देना। भरताश्रम में पहुँच सब का पुष्पक से उतरना। पुष्पकविमान को वरुणालय लौट जाने की श्रीरामचन्द्र जी द्वारा आज्ञा दिया जाना।

## एकसौ इकतीसवाँ सर्ग १३६७-१३६१

श्रीरामचन्द्र जी को भरत द्वारा श्रीअयोध्या का राज्य पुनः दिया जाना। श्रीरामचन्द्रादि का स्नान अलङ्कारादि करण। श्रीरामचन्द्र जी का श्रीअयोध्यागमन। श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक। सुग्रीवादि का सत्कार। सीता जी का हनुमान जी को एक मणिहार प्रदान। वानरों की बिदाई। वानरों सहित सुग्रीव का किष्किंधा में पहुँचना। विभीषण का लङ्का का जाना। भरत का युवराजपद पर अभिषेक, श्रीरामराज्य का वर्णन। श्रीरामायण सुनने का फल।

॥ इति ॥

॥ श्री ॥

# श्रीमद्रामायणपारायणोपक्रमः

[टिप्पणी—सनातनधर्म के अन्तर्गत जिन वैदिकसम्प्रदायों में श्रीमद्रामायण का पारायण होता है, उन्हीं सम्प्रदायों के अनुसार उपक्रम और समापन क्रम प्रत्येक खण्ड के आदि और अन्त में क्रमशः दे दिए गए हैं।]

## श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—❀—

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥ १॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः।
शृण्वन् रामकथानादं को न याति परां गतिम्॥ २॥

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥ ३॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्॥ ४॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम्।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम्॥ ५॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि॥ ६॥

उल्लङ्घ्य सिंधोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥७॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥८॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥९॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना ॥१०॥

तदुपगतसमाससंधियोगं
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ ११ ॥

श्रीराघवं दशरथात्मजमप्रमेयं
सीतापतिं रघुकुलान्वयरत्नदीपम् ।
आजानुबाहुमरविन्ददलायताक्षं
रामं निशाचरविनाशकरं नमामि ॥ १२ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।

अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥ १३ ॥

—:*:—

## माध्वसम्प्रदायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

लक्ष्मीनारायणं वन्दे तद्भक्तप्रवरो हि यः ।
श्रीमदानन्दतीर्थाख्यो गुरुस्तं च नमाम्यहम् ॥ २ ॥

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते ॥ ३

सर्वविघ्नप्रशमनं सर्वसिद्धिकरं परम् ।
सर्वजीवप्रणेतारं वन्दे विजयदं हरिम् ॥ ४ ॥

सर्वाभीष्टप्रदं रामं सर्वारिष्टनिवारकम् ।
जानकीजानिमनिशं वन्दे मद्गुरुवन्दितम् ॥ ५ ॥

अभ्रमं भङ्गरहितमजडं विमलं सदा ।
आनन्दतीर्थमतुलं भजे तापत्रयापहम् ॥ ६ ॥

भवति यदनुभावादेडमूकोऽपि वाग्मी
जडमतिरपि जन्तुर्जायते प्राज्ञमौलिः ।
सकलवचनचेतोदेवता भारती सा
मम वचसि विधत्तां सन्निधिं मानसे च

मिथ्यासिद्धान्तदुर्ध्वान्तविध्वंसनविचक्षणः ।
जयतीर्थाख्यतरणिर्भासतां नो हृदम्बरे ॥ ८ ॥

चित्रैः पदैश्च गम्भीरैर्वाक्यैर्मानैरखण्डितैः ।
गुरुभावं व्यञ्जयन्ती भाति श्रीजयतीर्थवाक् ॥ ९ ॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥ १० ॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥ ११

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥ १२ ॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम्
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥ १३ ॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥ १४ ॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥ १५ ॥

उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ १६ ॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।

पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥ १७ ॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥ १८ ॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥ १९ ॥

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम् ।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम् ॥ २० ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥ २१ ॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्ये पुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥ २२ ॥

वन्दे वन्द्यं विधिभवमहेन्द्रादिवृन्दारकेन्द्रैः
व्यक्तं व्याप्तं स्वगुणगणतो देशतः कालतश्च ।
धूतावद्यं सुखचितिमयैर्मङ्गलैर्युक्तमङ्गैः
सानाथ्यं नो विदधदधिकं ब्रह्म नारायणाख्यम् ॥ २३ ॥

भूषारत्नं भुवनवलयस्याखिलाश्चर्यरत्नं
लीलारत्नं जलधिदुहितुर्देवतामौलिरत्नम् ।

चिन्तारत्नं जगति भजतां सत्सरोजद्युरत्नं
कौसल्याया लसतु मम हृन्मण्डले पुत्ररत्नम् ॥२४॥

महाव्याकरणाम्भोधिमन्थमानसमन्दरम् ।
कवयन्तं रामकीर्त्या हनुमन्तमुपास्महे ॥ २५ ॥

मुख्यप्राणाय भीमाय नमो यस्य भुजान्तरम् ।
नानावीरसुवर्णानां निकषाश्मायितं बभौ ॥ २६ ॥

स्वान्तस्थानन्तशय्याय पूर्णज्ञानमहार्णसे ।
उत्तुङ्गवाक्तरङ्गाय मध्वदुग्धाब्धये नमः ॥ २७ ॥

वाल्मीकेर्गौः पुनीयान्नो महीधरपदाश्रया
यद्दुग्धमुपजीवन्ति कवयस्तर्णका इव ॥ २८ ॥

सूक्तिरत्नाकरे रम्ये मूलरामायणार्णवे ।
विहरन्तो महीयांसः प्रीयन्तां गुरवो मम ॥ २९ ॥

हयग्रीव हयग्रीव हयग्रीवेति यो वदेत् ।
तस्य निःसरते वाणी जह्नुकन्याप्रवाहवत् ॥३०॥

—●—

## स्मार्तसम्प्रदायः

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्याः स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥ २ ॥

दोर्भिर्युक्ता चतुर्भिः स्फटिकमणिमयीमक्षमालां दधाना
हस्तेनैकेन पद्मं सितमपि च शुकं पुस्तकं चापरेण ।

भासा कुन्देन्दुशङ्खस्फटिकमणिनिभा भासमानासमाना
सा मे वाग्देवतेयं निवसतु वदने सर्वदा सुप्रसन्ना ॥३॥

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम् ।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम् ॥४॥

वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिणः ।
शृण्वन्रामकथानादं को न याति परां गतिम् ॥५॥

यः पिबन्सततं रामचरितामृतसागरम् ।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम् ॥६॥

गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृतराक्षसम् ।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम् ॥७॥

अञ्जनानन्दनं वीरं जानकीशोकनाशनम् ।
कपीशमक्षहन्तारं वन्दे लङ्काभयङ्करम् ॥८॥

उल्लंघ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं
यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां
नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥९॥

आञ्जनेयमतिपाटलाननं
काञ्चनाद्रिकमनीयविग्रहम् ।
पारिजाततरुमूलवासिनं
भावयामि पवमाननन्दनम् ॥१०॥

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम् ।

बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम् ॥११॥

मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं
श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥१२॥

यः कर्णाञ्जलिसम्पुटैरहरहः सम्यक्पिबत्यादरात्
वाल्मीकेर्वदनारविन्दगलितं रामायणाख्यं मधु ।
जन्मव्याधिजराविपत्तिमरणैरत्यन्तसोपद्रवं
संसारं स विहाय गच्छति पुमान्विष्णोः पदं शाश्वतम् ॥१३॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं
सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं
दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥१४॥

वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामसागरगामिनी ।
पुनातु भुवनं पुण्या रामायणमहानदी ॥१५॥

श्लोकसारसमाकीर्णं सर्गकल्लोलसंकुलम् ।
काण्डग्राहमहामीनं वन्दे रामायणार्णवम् ॥१६॥

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे ।
वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मना ॥१७॥

वैदेहीसहितं सुरद्रुमतले हैमे महामण्डपे
मध्येपुष्पकमासने मणिमये वीरासने सुस्थितम् ।
अग्रे वाचयति प्रभञ्जनसुते तत्त्वं मुनिभ्यः परं
व्याख्यान्तं भरतादिभिः परिवृतं रामं भजे श्यामलम् ॥१८॥

वामे भूमिसुता पुरश्च हनुमान्पश्चात्सुमित्रासुतः
शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान्
मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम् ॥१६॥

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः ॥२०॥

# श्रीमद्वाल्मीकिरामायणम्

—❀—

## युद्धकाण्डः

### उत्तरार्द्धम्

—❀—

### अष्टषष्टितमः सर्गः

—❀—

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥१॥

महाबली श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से कुम्भकर्ण को मरा हुआ देख, ( बचे हुए ) राक्षसों ने यह वृत्तान्त जा कर, राक्षसराज रावण से कहा ॥१॥

राजन् स कालसङ्काशः संयुक्तः [1]कालकर्मणा ।
विद्राव्य वानरीं सेनां भक्षयित्वा च वानरान् ॥२॥

वे बोले—हे राजन् ! काल के समान, आपका भाई कुम्भकर्ण वानरों का भक्षण कर, तथा वानरी सेना को तितर बितर कर, मारा गया ॥२॥

---

१ कालकर्मणा—मृत्युना संयुक्तोभवत् । ( शि० )

प्रतपित्वा मुहूर्तं च प्रशान्तो रामतेजसा ।
कायेनार्धप्रविष्टेन समुद्रं भीमदर्शनम् ॥३॥

उसने कुछ देर तक तो वानरी सेना को अपने पराक्रम से तंग कर दिया था। अन्त में वह श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से मारा गया। उसका आधा शरीर भयङ्कर समुद्र में जा गिरा ॥३॥

निकृत्तकण्ठोरुभुजो विक्षरन् रुधिरं बहु ।
रुद्ध्वा द्वारं [1]शरीरेण लङ्कायाः पर्वतोपमः ॥४॥

उसकी भुजाओं और गरदन के कट जाने से उसके शरीर से बहुत सा रुधिर निकला था। उसका पर्वत के समान मस्तक लङ्का के द्वार को रोके हुए अब भी पड़ा है ॥४॥

कुम्भकर्णस्तव भ्राता काकुत्स्थशरपीडितः ।
[2]लगण्डभूतो विकृतो दावदग्ध इव द्रुमः ॥५॥

हे राजन्! तुम्हारे भाई कुम्भकर्ण की, श्रीरामचन्द्र जी बाणों से पीड़ित और पिण्डाकार (हाथ पैर सिर रहित) होने कारण, सूरत शक्ल भयङ्कर हो गई थी। वन की आग से हुए वृक्ष की जैसी दशा होती है, वैसी ही दशा उसकी हो थी ॥५॥

तं श्रुत्वा निहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ॥६॥

युद्ध में इस प्रकार महाबली कुम्भकर्ण के मारे जाने वृत्तान्त सुन, ॥६॥

रावणः शोकसन्तप्तो मुमोह च पपात च ।
पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ॥७॥

---

१ शरीरेण—उत्तमाङ्गेन। (गो०) २ लगण्डभूतः—पिण्डीभूत.। (गो०

रावण शोकसन्तप्त हो मूर्छित हो गया और भूमि पर गिर पड़ा। अपने चाचा कुम्भकर्ण के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, देवान्तक और नरान्तक ॥७॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः।
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥८॥

त्रिशिरा और अतिकाय शोक से पीड़ित हो रोने लगे। अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्रजी द्वारा अपने भाई कुम्भकर्ण का मारा जाना सुन, ॥८॥

महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः।
ततः कृच्छ्रात् समासाद्य संज्ञां राक्षसपुङ्गवः ॥९॥

महोदर और महापार्श्व भी अत्यन्त शोकसन्तप्त हुए। तदनन्तर बड़ी कठिनाई से सचेत हो राक्षसश्रेष्ठ ॥९॥

कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललाप स रावणः।
हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ॥१०॥

रावण, कुम्भकर्ण के मारे जाने से उदास हो, विलाप करने लगा। (वह रो रो कर कहने लगा) हे वीर! हे शत्रुओं के दर्प को नाश करने वाले महाबली कुम्भकर्ण! ॥१०॥

त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम्।
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ॥११॥

हे महाबली! तुम मुझको छोड़ और मेरा तथा अपने भाई बंदों का काँटा निकाले बिना ही अचानक यमालय को चल दिए ॥११॥

शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां सन्त्यज्य गच्छसि।
इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे दक्षिणो भुजः ॥१२॥

तुम शत्रुसैन्य को पीड़ित कर और मुझे छोड़ कहाँ जाते हो ! हे वीर ! निश्चय ही मैं इस समय नहीं सा हो गया। क्योंकि मेरी वह दहिनी भुजा ॥१२॥

पतितो यं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात्।
कथमेवंविधो वीरो देवदानवदर्पहा ॥१३॥

काट कर गिरा दी गई, जिसके बल के भरोसे मैं देवता और दैत्यों से तिल भर भी नहीं डरता था। हा ! ऐसे वीर और देव दानवों के दर्प को नष्ट करने वाले, ॥१३॥

कालाग्निरुद्रप्रतिमो रणे रामेण वै हतः।
यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ॥१४॥

तथा कालाग्नि की तरह भयङ्कर मेरे भाई को राम ने युद्ध में मार डाला। अरे भाई ! वज्र के प्रहार को तो तुम कुछ समझते ही न थे। ( अर्थात् वज्र के प्रहार से तुमको ज़रा भी पीड़ा नहीं होती थी ) ॥१४॥

स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले।
एते देवगणाः सार्धमृषिभिर्गगने स्थिताः ॥१५॥
निहतं त्वां रणे दृष्ट्वा निनदन्ति प्रहर्षिताः।
ध्रुवमद्यैव संहृष्टा [1]लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥१६॥

सो आश्चर्य है कि, तुम राम के बाण से पीड़ित हो, भूमि पर पड़े सो रहे हो ! देखो, आकाश में खड़े हुए ये देवता और महर्षि

---

१ लब्धलक्षाः—लब्धावसराः। ( गो० )

तुमको मरा देख, अत्यन्त हर्षित हो कैसा हर्षनाद कर रहे हैं। निश्चय ही वानरों के आनन्द की सीमा नहीं है ॥१५॥१६॥

आरोक्ष्यन्ति हि दुर्गाणि लङ्काद्वाराणि सर्वशः ।
राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ॥१७॥

और वे सब अवसर पा कर निश्चय ही आज लङ्का के द्वारों और दुर्गों पर चारों ओर से चढ़ाई करेंगे। अब मुझे राज्य से कुछ भी प्रयोजन नहीं। मैं अब सीता ही को लेकर क्या करूँगा ? ॥१७॥

कुम्भकर्णविहीनस्य जीविते नास्ति मे रतिः ।
यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ॥१८॥

कुम्भकर्ण के बिना जीवित रहने में मुझे ज़रा भी आनन्द नहीं। यदि मैं अपने भाई के मारने वाले उस राम को संग्राम में नहीं मार सकता ॥१८॥

ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ।
अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ॥१९॥

तो निश्चय ही मेरा जीना व्यर्थ है। अतः अब मुझे मर जाना ही उचित है और मैं आज उसी स्थान को जाऊँगा ; जहाँ मेरा छोटा भाई कुम्भकर्ण गया है ॥१९॥

न हि भ्रातॄन् समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ।
देवा हि मा हसिष्यन्ति दृष्ट्वा पूर्वापकारिणम् ॥२०॥

क्योंकि भाई का साथ छोड़, मैं जीना नहीं चाहता। जिन देवताओं के साथ पहिले मैं अपकार कर चुका हूँ, वे अब मुझे देख, मेरी हँसी करेंगे ॥२०॥

कथमिन्द्रं जयिष्यामि कुम्भकर्ण हते त्वयि ।
तदिदं मामनुप्राप्तं विभीषणवचः शुभम् ॥२१॥

हे कुम्भकर्ण ! तेरे मारे जाने पर अब मैं इन्द्र को कैसे जीत सकूँगा। विभीषण ने उस समय बड़ी अच्छी सम्मति दी थी ॥२१॥

यदज्ञानात् मया तस्य न गृहीतं महात्मनः ।
विभीषणवचो यावत् कुम्भकर्णप्रहस्तयोः ।
विनाशोऽयं समुत्पन्नो मां व्रीडयति दारुणः ॥२२॥

किन्तु मैंने अज्ञानवश उस महात्मा का कहना उस समय न माना। जब से कुम्भकर्ण और प्रहस्त के मारे जाने का संवाद सुना है तब से विभीषण की बातों को स्मरण कर, मुझको अब बड़ी लज्जा जान पड़ती है ॥२२॥

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यत् मया धार्मिकः श्रीमान् स निरस्तो विभीषणः ॥२३॥

हा ! ( मैंने जो धर्मात्मा विभीषण का कहना नहीं माना और उसे अपमानपूर्वक निकाल दिया सो ) आज उसी दारुण (पाप) कर्म का फल-स्वरूप यह शोकप्रद परिणाम मेरे सामने आया है अथवा मुझे देखना पड़ा है ॥२३॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा
कृपणमतीव विलप्य कुम्भकर्णम् ।
न्यपतदथ दशाननो भृशार्तः
तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा ॥२॥

इति अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

इस प्रकार अति विकल हो और कुम्भकर्ण के लिए बहुत सा विलाप कर, तथा इन्द्रशत्रु अपने छोटे भाई को मरा जान शोक से पीड़ित हो रावण पुनः मूर्छित हो, पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२४॥

युद्धकाण्ड का अड़सठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

## एकोनसप्ततितमः सर्गः

—*—

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः।
श्रुत्वा शोकाभितप्तस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

इस दुरात्मा और शोकसन्तप्त रावण का इस प्रकार का विलाप सुन त्रिशिरा बोला ॥१॥

एवमेव महावीर्यो हतो नस्तातमध्यमः।
न तु सत्पुरुषा राजन् विलपन्ति यथा भवान् ॥२॥

हा ! इस प्रकार मेरे महाबलवान मझले चचा के मारे जाने का (मुझे भी बड़ा शोक है) किन्तु हे राजन् ! शूर लोग इस प्रकार विलाप नहीं करते जिस प्रकर आप कर रहे हैं ॥२॥

नूनं त्रिभुवनस्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो।
स कस्मात्प्राकृत इव शोचस्यात्मानमीदृशम् ॥३॥

हे प्रभो ! तुममें इतनी शक्ति है कि, यदि चाहो तो तीनों लोकों को भी नष्ट कर सकते हो। तब तुम क्यों एक साधारण जन की तरह अपने आप ही इस प्रकार शोक से सन्तप्त हो रहे हो ॥३॥

ब्रह्मदत्तास्ति ते शक्तिः कवचः सायको धनुः ।
सहस्रखरसंयुक्तो रथो मेघस्वनो महान् ॥४॥

तुम्हारे पास ब्रह्मा की दी हुई शक्ति, कवच, बाण, धनुष और क सहस्र खच्चरों से जोता जाने वाला वह रथ है, जिसके चलते मय मेघ की तरह शब्द होता है ॥४॥

त्वयाऽसकृद्विशस्त्रेण[१] विशस्ता देवदानवाः ।
स सर्वायुधसम्पन्नो राघवं शास्तुमर्हसि ॥५॥

तुम जब खाली हाथों ही ( अस्त्र न ले कर ) कितनी ही बार वताओं और दानवों को हरा चुके हो, तब समस्त आयुधों से ज्जित हो युद्ध करने पर तुम रामचन्द्र को ( अवश्य ही ) परास्त र सकते हो ॥५॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्हं रणम् ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गरुडः पन्नगानिव ॥६॥

अथवा हे महाराज ! तुम अभी सुखपूर्वक यहीं रहो, मैं समर में जाऊँगा और तुम्हारे शत्रुओं को उसी प्रकार नष्ट करूँगा स प्रकार गरुड़ सर्पों का नाश करते हैं ॥६॥

शम्बरो देवराजेन नरको विष्णुना यथा ।
तथाद्य शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥७॥

जैसे इन्द्र ने शम्बरासुर को और विष्णु ने नरकासुर को मार भूमि पर डाल दिआ था वैसे ही मैं भी राम को समर में पृथिवी पर गिरा दूँगा ॥७॥

---

१ विशस्त्रेण—निरायुधेन । ( गो० )

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते कालचोदितः ॥८॥

राक्षसराज रावण ने त्रिशिरा के ऐसे ( उत्साहवर्द्धक ) वचन सुन, अपना पुनर्जन्म हुआ माना। क्योंकि उसके सिर पर तो काल खेल रहा था ॥८॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥९॥

त्रिशिरा के इन वचनों को सुन, देवान्तक, नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय भी युद्ध के लिए हर्ष प्रकट करने लगे ॥९॥

ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।
रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥१०॥

रावण के वे इन्द्र के समान पराक्रमशाली और वीर राक्षस-श्रेष्ठ पुत्र, "आगे हम" "आगे हम" ( लड़ने जाँयगे ) कह कर, गजने लगे ॥१०॥

अन्तरिक्षगताः सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ।
सर्वे त्रिदशदर्पघ्नाः सर्वे च रणदुर्जयाः ॥११॥

वे सब के सब आकाशचारी, मायावी, रण में दुर्जेय और देवताओं का दर्प चूर करने वाले थे ॥ ११ ॥

सर्वे सुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य न श्रूयन्ते पराजिताः ।
देवैरपि सगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥१२॥

उन सब के पास बड़ी बड़ी सेनाएँ थीं, सब बड़े कीर्तिवान् थे, देवताओं, गन्धर्वों, किन्नरों और महोरगों से किसी भी युद्ध में उनका पराजित होना कभी नहीं सुना गया था ॥१२॥

सर्वेऽस्त्रविदुषो वीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।
सर्वे [1]प्रवरविज्ञाना सर्वे लब्धवरास्तथा ॥१३॥

क्योंकि वे सब वीर सब प्रकार के अस्त्र चलाने की विद्या में निपुण और युद्धविशारद थे । वे सब उत्कृष्ट शास्त्रज्ञ थे और वरदान पाए हुए थे ॥१३॥

स तैस्तदा भास्करतुल्यवर्चसैः
सुतैर्वृतः शत्रुबलप्रमर्दनैः ।
रराज राजामघवान् यथामरैः
र्वृतो महादानवदर्पनाशनैः ॥१४॥

उस समय सूर्य के समान कान्तिमान्, शत्रुसैन्य को नष्ट करने वाले और दानवों के दर्प को खर्व करने वाले अपने पुत्रों से घिरा हुआ रावण, ऐसा शोभायमान जान पड़ता था जैसे देवताओं से घिरे हुए इन्द्र ॥१४॥

स पुत्रान् संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास संयुगे ॥१५॥

रावण ने अपने उन पुत्रों को छाती से लगा और आभूषणों से भूषित कर तथा बड़े बड़े आशीर्वाद दे, उनको संग्रामभूमि में भेजा ॥१५॥

---

१ प्रवरविज्ञानाः—उत्कृष्टशास्त्रज्ञानाः । ( गो० )

१युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥१६॥

उन कुमारों की रक्षा के लिए रावण ने महोदर और महापार्श्व नामक अपने दो भाइयों को भी उनके साथ समरभूमि में भेजा ॥१६॥

तेऽभिवाद्य महात्मानं रावणं रिपुरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥१७॥

शत्रु को रुलाने वाले महाबलवान् रावण को प्रणाम कर तथा उनकी परिक्रमा कर, वे महाबलवान् विशालकाय राक्षस, समरक्षेत्र की ओर प्रस्थानित हुए ॥१७॥

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकाङ्क्षिणः ॥१८॥

ये छःओ राक्षसश्रेष्ठ घाव भरने वाली जड़ी बूटियों सहित सुगन्धित द्रव्यों को शरीर में लगा और इस प्रकार बल प्राप्त कर, युद्ध में विजय प्राप्त करने की कामना से चले ॥१८॥

त्रिशिराश्चातिकायश्च देवान्तकनरान्तकौ ।
महोदरमहापार्श्वौ निर्जग्मुः कालचोदिताः ॥१९॥

त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक, महोदर और महापार्श्व ये छः राक्षस लड़ने के लिए चले। क्योंकि इनके सिर पर काल खेल रहा था ॥ १९ ॥

---

१ युद्धोन्मत्तं च मत्तं—महोदरमहापार्श्वपर्यायनामानौ रावणभ्रातरौ । (गो०)

ततः सुदर्शनं नाम नीलजीमूतसन्निभम् ।
ऐरावतकुले जातमारुरोह महोदरः ॥२०॥

काले मेघ के समान, ऐरावत हाथी की नस्ल के सुदर्शन नामक हाथी पर महोदर सवार हुआ ॥२०॥

सर्वायुधसमायुक्तं तूर्णीभिश्च स्वलङ्कृतम् ।
रराज गजमास्थाय सवितेवास्तमूर्धनि ॥२१॥

सारे आयुधों को धारण किए और तरकसों से भूषित महोदर हाथी की पीठ पर बैठा हुआ ऐसा शोभित जान पड़ता था, मानों अस्ताचल पर सूर्य विराजमान हों ॥२१॥

हयोत्तमसमायुक्तं सर्वायुधसमाकुलम् ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं त्रिशिरा रावणात्मजः ॥२२॥

सब प्रकार आयुधों से भरे हुए और उत्तम घोड़ों से जुते हुये एक उत्तम रथ पर रावण का बेटा त्रिशिरा सवार हुआ ॥२२॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।
सविद्युदुल्कः शैलाग्रे सेन्द्रचाप इवाम्बुदः ॥२३॥

हाथ में धनुष लिये हुये उस समय त्रिशिरा ऐसा शोभायुक्त जान पड़ता था, मानों बिजलीसहित उल्कापिण्ड पर्वतशिखर पर हो अथवा इन्द्रधनुष सहित बादल हो ॥२३॥

त्रिभिः किरीटैः शुशुभे त्रिशिराः स रथोत्तमे ।
हिमवानिव शैलेन्द्रस्त्रिभिः काञ्चनपर्वतैः ॥२४॥

उस समय उत्तम रथ पर बैठा हुआ और तीन मुकुट लगाए त्रिशिरा की ऐसी शोभा हुई, जैसी सुवर्णमय तीन शिखरों से हिमालय की होती है ॥२४॥

अतिकायोऽपि तेजस्वी राक्षसेन्द्रसुतस्तदा ।
आरुरोह रथश्रेष्ठं श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥२५॥

समस्त धनुषधारियों में श्रेष्ठ एवं राक्षसराज का पुत्र तेजस्वी अतिकाय भी एक उत्तम रथ पर सवार हुआ ॥२५॥

सुचक्राक्षं [1]सुसंयुक्तं [2]स्वनुकर्षं सुकूबरम् ।
तूणीबाणासनैर्दीप्तं प्रासासिपरिघाकुलम् ॥२६॥

इस रथ के धुरे और पहिए बड़े मजबूत थे। इसमें अनुकर्ष और कूबर दो विशेष अंग थे। इसमें चमचमाते पैने तीरों से भरे तरकस, तलवारें प्रास, परिघ आदि आयुध रखे हुए थे। ॥२६॥

स काञ्चनविचित्रेण मुकुटेन विराजता ।
भूषणैश्च बभौ मेरुः किरणैरिव *भास्वतः ॥२७॥

अतिकाय के सीस पर सोने का बड़ा सुन्दर मुकुट लगा हुआ था। वह अनेक प्रकार के आभूषणों से भूषित था। जैसे सुमेरु-पर्वत अपनी प्रभा से प्रकाशित रहता है; वैसे ही अतिकाय भी अपनी कान्ति से कान्तिसम्पन्न देख पड़ता था ॥२७॥

स रराज रथे तस्मिन् राजसूनुर्महाबलः ।
वृतो नैर्ऋतशार्दूलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥२८॥

वह महाबली राजकुमार उस रथ में जब बैठा और जब राक्षस-श्रेष्ठ उसे चारों ओर से घेर कर चले; तब ऐसा देख पड़ा; मानों देवताओं से घिरे हुए इन्द्र चले जाते हों ॥२८॥

---

१ सुसंयुक्तम्—सुदृढ । ( गो० ) २ " अनुकर्षो दार्वधस्स्थ" । ( अमरको० ) रथ के नीचे रहने वाली वह लकड़ी जिसके सहारे पहिये रहते हैं ।

* पाठान्तरे—" भासयन् ।"

हयमुच्चैःश्रवःप्रख्यं श्वेतं कनकभूषणम् ।
मनोजवं महाकायमारुरोह नरान्तकः ॥२६॥

उच्चैःश्रवा की तरह सफेद भूषणों से भूषित, मन की तरह शीघ्रगामी और बड़े ऊँचे डीलडौल के घोड़े पर नरान्तक सवार हुआ ॥२६॥

गृहीत्वा प्रासमुल्काभं विरराज नरान्तकः ।
शक्तिमासाद्य तेजस्वी गुहः शिखिगतो यथा ॥३०॥

उल्कापिण्ड की तरह चमचमाता प्रास हाथ में ले नरान्तक ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे हाथ में शक्ति लिये हुए और मोर पर सवार स्वामिकार्तिक सुशोभित होते हैं ॥३०॥

देवान्तकः समादाय परिघं वज्रभूषणम् ।
परिगृह्य गिरिं दोर्भ्यां वपुर्विष्णोर्विडम्बयन् ॥३१॥

हीरों से जड़े हुए परिघ को हाथ में ले, देवान्तक समुद्रमंथन के समय दोनों हाथों से मन्दराचल को थामे हुए विष्णु की विडंबना करता हुआ सा देख पड़ता था ॥३१॥

महापार्श्वो महाकायो गदामादाय वीर्यवान् ।
विरराज गदापाणिः कुबेर इव संयुगे ॥३२॥

विशाल शरीरधारी बलवान् महापार्श्व हाथ में गदा लिए हुए ऐसा शोभायमान हो रहा था जैसे युद्ध में हाथ में गदा लिये हुए कुबेर देख पड़ते हैं ॥ ३२ ॥

प्रतस्थिरे महात्मानो बलैरप्रतिमैर्वृताः ।
सुरा इवामरावत्या बलैरप्रतिमैर्वृताः ॥३३॥

वे महाबलवान् राक्षस अतुलित सेना को साथ ले, वैसे ही लङ्का से चले जैसे अतुलित देवसैन्य से घिरे हुए देवता अमरावती से युद्धयात्रा करते हैं ॥३३॥

तान् गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिस्वनैः ।
अनुजग्मुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥३४॥

उन वीर योद्धा राक्षसों के पीछे पीछे अनेक हाथी घोड़े एवं बादलों की तरह गड़गड़ाते रथों पर सवार हो और अच्छे अच्छे आयुधों को लिए हुए महाबली राक्षस चले ॥३४॥

ते विरेजुर्महात्मानः कुमाराः सूर्यवर्चसः ।
किरीटिनः श्रिया जुष्टा ग्रहा दीप्ता इवाम्बरे ॥३५॥

सूर्य के समान कान्तिमान् एवं महाबली राजकुमार किरीट धारण किये हुए शोभा से ऐसे दमक रहे थे, जैसे आकाश में तारागण दमकते हैं ॥३५॥

प्रगृहीता बभौ तेषां *छत्राणामावलिः सिता ।
शारदाभ्रप्रतीकाशा हंसावलिरिवाम्बरे ॥३६॥

उनके ऊपर तने हुए सफेद छत्रों की पंक्ति ऐसी सुन्दर जान पड़ती थी जैसी आकाश में शरत्कालीन मेघों की सी सफेद हंसों की पंक्ति सुन्दर जान पड़ती हैं ॥३६॥

मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ।
इति कृत्वा मतिं वीरा निर्जग्मुः संयुगार्थिनः ॥३७॥

या तो शत्रु के हाथ से मारे ही जाँयगे अथवा शत्रु को परास्त करेंगे—अपने अपने मनों में यह निश्चय कर, वे वीर युद्ध करने के लिये चले ॥३७॥

---

* पाठान्तरे—"शस्त्राणामावलिः ।", अथवा "वस्त्राणामावलिः"

[1]जगर्जुश्च [2]प्रणेदुश्च [3]चिक्षिपुश्चापि सायकान् ।
जगृहुश्चापि ते वीरा निर्यान्तो युद्धदुर्मदाः ॥३८॥

वे युद्धदुर्मद वीर मेघ की तरह गर्जते, सिंहनाद करते तथा मार मार कह कर, बाणों को तरकसों से निकालते हुए चले ॥३८॥

क्ष्वेलितास्फोटनिनदैश्चचाल च वसुन्धरा ।
रक्षसां सिंहनादैश्च पुस्फोटेव तदाम्बरम् ॥३९॥

उनकी इस मेघगर्जना एवं सिंहनाद से मानों पृथिवी काँप उठती थी। राक्षसों के सिंहनाद से तो ऐसा जान पड़ता था, मानों आकाश फटा जाता हो ॥३९॥

तेऽभिनिष्क्रम्य मुदिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ।
ददृशुर्वानरानीकं समुद्यतशिलानगम् ॥४०॥

वे महाबली राक्षसश्रेष्ठ प्रसन्न होते हुए लङ्का के बाहिर निकले और उन्होंने वानरी सेना को हाथों में शिलाएँ और पेड़ लिये हुए लड़ने के लिए तैयार पाया ॥४०॥

हरयोऽपि महात्मानो ददृशुर्नैर्ऋतं बलम् ।
हस्त्यश्वरथसम्बाधं किङ्किणीशतनादितम् ॥४१॥

वानरों ने भी राक्षसों की सेना को देखा कि, उसमें बहुत से हाथी, घोड़े और रथ हैं : जिनके चलने पर सैकड़ों घंटियों के बजने का शब्द सुनाई पड़ता है ॥४१॥

---

१ जगर्जुः—मेघध्वनिंचक्रुः। (गो०) २ प्रणेदुः—सिंहनादंचक्रुः। (गो०) ३ चिक्षिपुः—क्षेपवचनान्यूचुः (गो०)

नीलजीमूतसङ्काशं समुद्यतमहायुधम् ।
दीप्तानलरविप्रख्यैः सर्वतो नैर्ऋतैर्वृतम् ।
तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं लब्धलक्षाः प्लवङ्गमाः ॥४२॥

राक्षसी सेना काले मेघ के समान जान पड़ती थी और सैनिकों के हाथों में अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र थे। जलती हुई आग और सूर्य के समान तेजस्वी असंख्य राक्षस उसमें थे ॥४२॥

समुद्यतमहाशैलाः संप्रणेदुर्महाबलाः ।
अमृष्यमाणा रक्षांसि प्रतिनर्दन्ति वानराः ॥४३॥

राक्षसी सेना को आते देख, वानरों ने अवसर पा, बड़ी बड़ी शिलाएँ हाथों में ले ली और वे महाबली वानर सिंहनाद करने लगे। क्योंकि वानरगण राक्षसों की गर्जना सह नहीं सकते थे ॥४३॥

ततः समुद्घुष्टरवं निशम्य
रक्षोगणा वानरयूथपानाम् ।
अमृष्यमाणः परहर्षमुग्रं
महाबला भीमतरं विनेदुः ॥४४॥

वानरों की सिंहगर्जना को सुन, महाबली राक्षस लोग उस सिंहगर्जना को न सह कर और भी अधिक भयङ्कर गर्जना करने लगे ॥४४॥

ते राक्षसबलं घोरं प्रविश्य हरयूथपाः ।
विचेरुरुद्यतैः शैलैर्नगाः शिखरिणो यथा ॥४५॥

उस भयङ्कर राक्षसी सेना में घुस, वानरयूथपति हाथों में शिलाएँ लिये और घूमते हुए, ऐसे जान पड़ते थे, मानों शिखरधारी पर्वत घूमते फिरते हों ॥४५॥

केचिदाकाशमाविश्य केचिदुर्व्यां प्लवङ्गमाः ।
रक्षःसैन्येषु संक्रुद्धाश्चेरुर्द्रुमशिलायुधाः ॥४६॥

उन वानरों में से कितने ही तो उछल कर आकाश में चले गए और बहुत से पृथिवी पर ही रह कर और अत्यन्त क्रुद्ध हो राक्षसी सेना पर पेड़ों और शिलाओं से आक्रमण करने लगे ॥४६॥

द्रुमांश्च विपुलस्कन्धान् गृह्य वानरपुङ्गवाः ।
तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसङ्कुलम् ॥४७॥

वानरश्रेष्ठ बड़े बड़े गुद्दों वाले वृक्षों को ले राक्षसों से भिड़ गए। राक्षसों और वानरों का घमासान युद्ध आरम्भ हुआ ॥४७॥

ते पादपशिलाशैलैश्चक्रुर्वृष्टिमनूपमाम् ।
बाणौघैर्वार्यमाणाश्च हरयो भीमविक्रमाः ॥४८॥

जब वानरों ने राक्षसों के ऊपर पेड़ों, पहाड़ों और शिलाओं की अनुपम वृष्टि की, तब भीमपराक्रमी राक्षसों ने वानरों पर बाणों की वर्षा की और बाणों ही से वानरों के वार बचाए ॥४८॥

सिंहनादान् विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ।
शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यातुधानान् प्लवङ्गमाः ॥४९॥

वानर और राक्षस लड़ते जाते थे और सिंहनाद करते जाते वानरों ने शिलाओं की वर्षा कर, राक्षसों की बहुत सी सेना पीस डाली ॥४९॥

निजघ्नुः संयुगे क्रुद्धाः कवचाभरणावृतान् ।
केचिद्रथगतान् वीरान् गजवाजिगतानपि ॥५०॥

कवच धारण किए और भूषणों से भूषित तथा रथों, घोड़ों एवं हाथियों पर सवार राक्षसों को क्रुद्ध वानरों ने उस युद्ध में मार डाला ॥५०॥

निजघ्नुः सहसाप्लुत्य यातुधानान् प्लवङ्गमाः ।
शैलशृङ्गाचिताङ्गाश्च मुष्टिभिर्वान्तलोचनाः ॥५१॥

अचानक उछल उछल कर वानरों ने राक्षसों को मूकों और पर्वतशृङ्गों से ऐसा मारा कि, राक्षसों की आँखें निकल पड़ीं ॥५१॥

चेलुः पेतुश्च नेदुश्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः ।
राक्षसाश्च शरैस्तीक्ष्णैर्बिभिदुः कपिकुञ्जरान् ॥५२॥

समरभूमि में राक्षसश्रेष्ठ चलायमान हो गए, गिर पड़े और व्यथा से चिल्लाने लगे। उधर राक्षस भी पैने पैने बाण मार कपिश्रेष्ठों को वेध रहे थे ॥५२॥

शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः ।
अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥५३॥

एक दूसरे को जीत लेने की इच्छा से, दोनों दलों वाले शूल, मुगदर, खड्ग, प्रास और शक्ति चला, एक दूसरे को मार मार कर गिरा रहे थे ॥५३॥

रिपुशोणितदिग्धाङ्गास्तत्र वानरराक्षसाः ।
ततः शैलैश्च खड्गैश्च विसृष्टैर्हरिराक्षसैः ॥५४॥

और क्या वानर और क्या राक्षस—सभी शत्रुओं के रक्त से अपने शरीरों को लाल लाल कर रहे थे। वानर और राक्षसों के चलाए पत्थरों और खड्गों से ॥५४॥

मुहूर्तेनावृता भूमिरभवच्छोणिताप्लुता ।
विकीर्णपर्वताकारै रक्षोभिररिमर्दनैः ॥५५॥
आसीद्वसुमती पूर्णा तदा युद्धमदान्वितैः ।
आक्षिप्ताः क्षिप्यमाणाश्च भग्नशैलाश्च वानरैः ॥५६॥

मुहूर्त्त भर में समरभूमि ढक गई और वहाँ लोहू की कीच हो गई। युद्ध में मतवाले वानरों द्वारा मारे हुए बड़े बड़े पर्वताकार शरीरधारी राक्षसों से रणभूमि परिपूर्ण हो गई। जब मरते मरते और चलते चलते वानरों के पर्वत वृक्षादि टूट गए ॥५५॥५६॥

पुनरङ्गैस्तथा चक्रुरासन्ना युद्धमद्भुतम् ।
वानरान् वानरैरेव जघ्नुस्ते रजनीचराः ॥५७॥
राक्षसान् राक्षसैरेव जघ्नुस्ते वानरा अपि ।
आक्षिप्य च शिलास्तेषां निजघ्नू राक्षसा हरीन् ॥५८॥

तब वानर लोग घूँसों और लातों से अद्भुत युद्ध करने लगे। राक्षस, वानरों को वानरों के ऊपर और वानर, राक्षसों को राक्षसों के ऊपर पटक पटक कर मार रहे थे। राक्षस लोग वानरों के हाथों से पत्थरों और वृक्षों को छीन छीन कर उन्हींसे उनको मार रहे थे ॥५७॥५८॥

तेषां चाच्छिद्य शस्त्राणि जघ्नू रक्षांसि वानराः ।
निजघ्नुः शैलशूलास्त्रैर्बिभिदुश्च परस्परम् ॥५९॥

वानर भी राक्षसों के हाथों से शस्त्र छीन कर उनसे राक्षसों का नाश करने लगे। इस प्रकार वानर और राक्षस एक दूसरे पर शिलाओं और शूलों से वार कर, एक दूसरे को नष्ट करने लगे ॥५९॥

सिंहनादान् विनेदुश्च रणे वानरराक्षसाः ।
[1]छिन्नवर्मतनुत्राणा राक्षसा वानरैर्हताः ॥६०॥

रणभूमि में वानर और राक्षस सिंहनाद कर रहे थे। वानरों ने उन राक्षसों को मार डाला जिनके शरीररक्षक कवच, लड़ते लड़ते टूट फूट गए ॥६०॥

रुधिरं प्रस्रुतास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ।
रथेन च रथं चापि वारणेनैव वारणम् ॥६१॥

जिस प्रकार वृक्षों से गोंद बहता है, वैसे ही राक्षसों के शरीर से रुधिर बह रहा था। वानर रथ उठा कर रथ के ऊपर दे मारते थे और हाथी को उठा कर हाथी के ऊपर दे मारते थे ॥६१॥

हयेन च हयं केचिन्निजघ्नुर्वानरा रणे ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे *प्रगृहीतमहाशिलाः ॥६२॥

कोई कोई वानर इस युद्ध में घोड़ों को उठा घोड़ों के ऊपर पटक मार डालते थे । सब वानर बड़े प्रसन्न थे और हाथों में बड़ी बड़ी शिलाएँ लिए हुए थे ॥६२॥

हरयो राक्षसाञ्जघ्नुर्द्रुमैश्च बहुशाखिभिः ।
तद्युद्धमभवद्घोरं रक्षोवानरसङ्कुलम् ॥६३॥

वानर लोग राक्षसों को बहुत सी डालियों वाले पेड़ों के प्रहार से मार रहे थे। यह वानरों और राक्षसों की लड़ाई बड़ी विकट हो रही थी ॥६३॥

---

१ छिन्नवर्मतनुत्राणाः—छिन्नवर्मरूपतनुत्राणाः । ( गो० ) * पाठान्तरे—“ प्रगृहीतमनःशिलाः ”

क्षुरप्रैरर्धचन्द्रैश्च भल्लैश्च निशितैः शरैः ।
राक्षसा वानरेन्द्राणां चिच्छिदुः पादपाञ्छिलाः ॥६४॥

वानर जो शिलाएँ और वृक्ष राक्षसों के ऊपर फैंकते थे, उनको राक्षस छुरे के आकार के अर्द्धचन्द्र आकार के तेज बाणों तथा भालों से काट डालते थे ॥६४॥

विकीर्णैः पर्वताग्रैश्च द्रुमैश्छिन्नैश्च संयुगे ।
हतैश्च कपिरक्षोभिर्दुर्गमा वसुधाऽभवत् ॥६५॥

टूटे हुए शैलशृङ्गों तथा कटे हुए वृक्षों एवं मरे हुए वानरों और राक्षसों की लोथें रणक्षेत्र में इतनी पड़ी थीं कि, वहाँ की भूमि दुर्गम हो गई थी ॥६५॥

ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः
संग्राममासाद्य भयं विमुच्य ।
युद्धं तु सर्वे सह राक्षसैस्तैः
नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्वाः ॥६६॥

वे वानर, जो गर्वित और हर्षित हो रहे थे, संग्राम में निर्भय हो अनेक प्रकार के आयुधों को राक्षसों से छीन छीन कर, उनसे उन राक्षसों से लड़ रहे थे ॥६६॥

तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे[१]
प्रहृष्यमाणेषु वलीमुखेषु ।
निपात्यमानेषु च राक्षसेषु
महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥६७॥

---

१ विमर्दे—युद्धे । ( गो० )

उस तुमुल युद्ध में जहाँ वानरगण अत्यन्त हर्षित हो राक्षसों को मार मार कर गिरा रहे थे, वहाँ पर (उस घोर युद्ध का तमाशा देख देख) महर्षि और देवतागण हर्षनाद कर रहे थे ।६७॥

ततो हयं मारुततुल्यवेगम्
आरुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य ।
नरान्तको वानरराजसैन्यं
महार्णवं मीन इवाविवेश ॥६८॥

वायु समान शीघ्रगामी घोड़े पर सवार हो और हाथ में पैना भाला ले, नरान्तक वानरी सेना में वैसे ही घुस गया ; जैसे मच्छ महासागर में घुस जाता है ॥६८॥

स वानरान् सप्तसतानि वीरः
प्रासेन दीप्तेन विनिर्बिभेद ।
एकक्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा
जघान सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ॥६९॥

नरान्तक ने अपने चमचमाते प्रास से देखते देखते क्षण भर में सात सौ वानरों को मार डाला। तदनन्तर वह महाबली इन्द्रशत्रु नरान्तक वानरश्रेष्ठों की सेना के अन्य वीरों को मारने लगा ॥६९॥

ददृशुश्च महात्मानं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ।
चरन्तं हरिसैन्येषु विद्याधरमहर्षयः ॥७०॥

विद्याधरों और महर्षियों ने महाबली नरान्तक को घोड़े पर सवार ; वानरी सेना में घूमते हुए देखा ॥७०॥

स तस्य दृदृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः ।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥७१॥

जिस ओर से वह निकल जाता उस ओर का मार्ग पर्वताकार वानरों की लोथों और उनके रुधिर माँस के कांदे के कारण चलने फिरने योग्य फिर नहीं रह जाता था ॥७१॥

यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुङ्गवाः ।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥७२॥

नरान्तक ऐसी फुर्ती से युद्ध कर रहा था कि, बड़े बड़े वीर वानर उस पर वार करने की जब तक इच्छा ही करते थे, तब तक वह उन्हें मार कर गिरा देता था ॥७२॥

[ ततो यतः सुसंक्रुद्धः प्रासपाणिर्नरान्तकः
ततस्ततस्ते मन्यन्ते कालोऽयमिति वानराः ] ॥७३॥

हाथ में पैना भाला लिये अत्यन्त क्रोध में भरा नरान्तक जिधर जा पहुँचता था, उधर के वानर समझते कि, यह हमारा काल आ पहुँचा ॥७३॥

ज्वलन्तं प्रासमुद्यम्य संग्रामाग्रे नरान्तकः ।
ददाह हरिसैन्यानि वनानीव विभावसुः ॥७४॥

चमचमाता भाला (प्रास) लिये नरान्तक रणभूमि में वानरों की सेना को मार कर, उसी प्रकार नष्ट कर रहा था; जिस प्रकार वन को जला कर आग नष्ट कर डालती है ॥७४॥

यावदुत्पाटयामासुर्वृक्षाञ्शैलान् वनौकसः ।
तावत् प्रासहताः पेतुर्वज्रकृत्ता इवाचलाः ॥७५॥

जब तक वानर लोग पेड़ों और पहाड़ों को उखाड़ें ही उखाड़ें; तब तक नरान्तक उनको भाले से छेद कर वैसे ही भूमि पर गिरा देता था, जैसे वज्र के प्रहार से टूटा हुआ पर्वत भूमि पर गिर पड़ता है ॥७५॥

**दिक्षु सर्वासु बलवान् विचचार नरान्तकः ।**
**प्रमृद्नन् सर्वतो युद्धे प्रावृट्काले यथाऽनिलः ॥७६॥**

इस प्रकार बलवान् नरान्तक रणभूमि में चारों ओर वर्षाकाल के पवन की तरह व्याप्त हो, वानरों का मर्दन कर रहा था ॥७६॥

**न शेकुर्धावितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं भयात् ।**
**उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान् विव्याध वीर्यवान् ॥७७॥**

वानर योद्धा न तो भाग कर ही बच पाते थे और न उसका सामना ही कर सकते थे। उनका कलेजा मारे भय के धक धक कर रहा था। क्योंकि वह बलवान् नरान्तक तो उन सब वानरों को, जो उछल कर भागना चाहते थे और जो खड़े हो उसका सामना करते थे एवं जो रण छोड़ चले जाते थे, अपने भाले से बेध डालता था ॥७७॥

**एकेनान्तककल्पेन प्रासेनादित्यतेजसा ।**
**भिन्नानि हरिसैन्यानि निपेतुर्धरणीतले ॥७८॥**

उस अकेले मृत्यु के समान नरान्तक के सूर्य के समान चमचमाते भाले से क्षतविक्षत हो, बहुत सी वानरी सेना धराशायिनी हो गई ॥७८॥

**वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ।**
**न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥७९॥**

वज्रप्रहार के समान उस भाले का प्रहार वानरों से न सहा गया अतः वे बड़े ज़ोर से आर्तनाद करने लगे ॥७९॥

पततां हरिवीराणां रूपाणि प्रचकाशिरे ।
वज्रभिन्नाग्रकूटानां शैलानां पततामिव ॥८०॥

भाले के प्रहार से गिरे हुए ( पर्वताकार ) वानरों की लोथें ऐसी जान पड़ती थीं. मानों वज्रप्रहार से टूटे हुए शिखर वाले पर्वत पड़े हों ॥८०॥

ये तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पातिताः ।
ते स्वस्था वानरश्रेष्ठाः सुग्रीवमुपतस्थिरे ॥८१॥

जिन महाबली वानरों को पहिले कुम्भकर्ण ने मार कर मूर्छित कर दिया था, वे नल नीलादि वानरश्रेष्ठ अब स्वस्थ हो कर, सुग्रीव के पास गए ॥८१॥

विप्रेक्षमाणः सुग्रीवो ददर्श हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीमितस्ततः ॥८२॥

वानरी सेना की दशा देखते हुए सुग्रीव ने देखा कि, वह नरान्तक के भय से त्रस्त हो इधर उधर भाग रही है ॥८२॥

विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठे प्रतिष्ठितम् ॥८३॥

भागती हुई वानरी सेना को देखते हुए सुग्रीव ने नरान्तक को भी देखा। वह घोड़े की पीठ पर चढ़ा हुआ और हाथ में भाला लिये आ रहा था ॥८३॥

अथोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमङ्गदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥८४॥

तब महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव ने इन्द्र-समान पराक्रमी वीर राजकुमार अङ्गद से कहा ॥८४॥

गच्छ त्वं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः ।
क्षोभयन्तं हरिबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥८५॥

हे युवराज ! तुम जाकर घोड़े पर चढ़े हुए उस वीर राक्षस का शीघ्र वध करो, जो वानरी सेना को क्षुब्ध कर रहा है ॥८५॥

स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपाताङ्गदस्ततः ।
अनीकान् मेघसङ्काशान् मेघानीकानिवांशुमान् ॥८६॥

वानरराज के ये वचन सुन, अङ्गद अपनी मेघमाला जैसी सेना से वैसे ही निकल कर चले ; जैसे सूर्य मेघघटाओं से निकल कर बाहिर आता है ॥८६॥

१शैलसङ्घातसङ्काशो हरीणामुत्तमोऽङ्गदः ।
रराजाङ्गदसन्नद्धः सधातुरिव पर्वतः ॥८७॥

निबिड़ कृष्ण पर्वत की तरह आकार वाले वानरश्रेष्ठ अङ्गद भुजाओं पर बाजूबन्द बाँधे हुए, धातुमय पर्वत की तरह शोभायमान होने लगे ॥८७॥

निरायुधो महातेजाः केवलं नखदंष्ट्रवान् ।
नरान्तकमभिक्रम्य वालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ॥८८॥

---

१ संघातः——निबिडसंवेशः । ( गो० )

उस समय उनके हाथ में कोई आयुध न था। उनको केवल अपने दाँतों और नखों ही का सहारा था। वे नरान्तक के पास जा उससे बोले ॥ ८८ ॥

तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिप ममोरसि ॥८९॥

खड़ा रह ! इन तुच्छ वानरों के साथ युद्ध करने से तुझे क्या लाभ होगा। वज्रप्रहार के समान प्रहार करने वाले अपने भाले की चोट मेरी छाती पर कर ॥८९॥

अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ।
संदश्य दशनैरोष्ठं विनिःश्वस्य भुजङ्गवत् ।
अभिगम्याङ्गदं क्रुद्धो वालिपुत्रं नरान्तकः ॥९०॥

अङ्गद के वचन सुन, नरान्तक बहुत क्रुद्ध हुआ और मारे क्रोध के दाँतों से अपने ओंठ चबाता हुआ साँप की तरह फुँसकारने लगा। नरान्तक क्रुद्ध हो अङ्गद के पास गया ॥९०॥

प्रासं समाविध्य तदाऽङ्गदाय
समुज्ज्वलन्तं सहसोत्ससर्ज ।
स वालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे
बभूव भग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥९१॥

फिर उसने अपना चमचमाता भाला उठा कर, अङ्गद के ऊपर चलाया ; किन्तु वह भाला अङ्गद की वज्र समान छाती में लग और टुकड़े टुकड़े हो, भूमि पर गिर पड़ा ॥९१॥

तं प्रासमालोक्य तदा विभग्नं
सुपर्णकृत्तोरगभोगकल्पम् ।
तलं समुद्यम्य स वालिपुत्रः
तुरङ्गमं तस्य जघान मूर्ध्नि ॥६२॥

गरुड़ जी जैसे बड़े बड़े साँपों के टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं, वैसे ही नरान्तक के प्रास के टुकड़े टुकड़े हुए देख, अङ्गद ने कूद कर उसके घोड़े के सिर में एक लात मारी ॥६२॥

निमग्नतालुः स्फुटिताक्षिताधरो
निष्क्रान्तजिह्वोऽचलसन्निकाशः ।
स तस्य वाजी निपपात भूमौ
तलप्रहारेण विशीर्णमूर्धा ॥६३॥

उस दारुण प्रहार से उस पर्वताकार घोड़े का तालू फट गया, उसकी आँखें निकल पड़ीं, ओंठ लटक पड़े, जीभ निकल आई और उसका सिर फट गया। वह ( मर गया और ) भूमि पर गिर पड़ा ॥६३॥

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम
हतं तुरङ्गं पतितं निरीक्ष्य ।
स मुष्टिमुद्यम्य महाप्रभावो
जघान शीर्षे युधि वालिपुत्रम् ॥६४॥

अपने घोड़े को इस प्रकार मर कर भूमि पर गिरा हुआ देख, नरान्तक क्रुद्ध हुआ और उस महाबली ने घूँसा तान कर, वालिपुत्र अङ्गद के सिर पर मारा ॥६४॥

अथाङ्गदो मुष्टिविभिन्नमूर्धा
सुस्राव तीव्रं रुधिरं भृशोष्णम् ।
मुहुर्विजज्वाल मुमोह चापि
संज्ञां समासाद्य विसिष्मिये च ॥९५॥

उस मूँके के लगने से अङ्गद के सिर में घाव हो गया और उस घाव से गर्म गर्म बहुत सा रुधिर निकल कर, बहने लगा कुछ समय के लिए वे अचेत से हो गए। तदनन्तर जब वे सचेत हुए तब वे ( नरान्तक के बल को देख ) विस्मित हुए ॥९५॥

अथाङ्गदो वज्रसमानवेगं
संवर्त्य मुष्टिं गिरिशृङ्गकल्पम् ।
निपातयामास तदा महात्मा
नरान्तकस्योरसि बालिपुत्रः ॥९६॥

बालिपुत्र अङ्गद ने भी वज्र-समान वेग से, शैलशृङ्ग के समान एक मूँका तान कर, महाबली नरान्तक की छाती में ॥९६॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नवक्षा
ज्वालावमच्छोणितदिग्धगात्रः ।
नरान्तको भूमितले पपात
यथाऽचलो वज्रनिपातभग्नः ॥

मारा। उस मुष्टिप्रहार से नरान्तक का कलेजा फट गया। मुख से रुधिर निकलने से उसका सारा शरीर रक्त से तर हो गया। नरान्तक मुख से ज्वाला फेंकता भूमि पर वैसे ही गिर पड़ा जैसे वज्र के प्रहार से पहाड़ टूट कर पृथिवी पर गिर पड़ता है ॥९७॥

अथान्तरिक्षे त्रिदशोत्तमानां
वनौकसां चैव महाप्रणादः ।
बभूव तस्मिन्निहतेऽग्र्यवीरे
नरान्तके बालिसुतेन संख्ये ॥६८॥

युद्ध में बालितनय अङ्गद द्वारा वीराग्रणी नरान्तक का मारा जाना देख, आकाशस्थित देवतागण और ( सुग्रीव की सेना के ) वानरगण हर्षनाद करने लगे ॥६८॥

अथाङ्गदो राममनः प्रहर्षणं
सुदुष्करं तत्कृतवान्हि विक्रमम् ।
विसिस्मिये सोऽप्यतिवीर्यविक्रमः
पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः ॥६९॥

इति एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥

अङ्गद के इस अति दुष्कर वीरकृत्य को देख, श्रीरामचन्द्र जी ने विस्मित हो प्रसन्नता प्रकट की । इससे अति बलवान् और पराक्रमी अङ्गद हर्षित हो, पुनः युद्ध करने लगे ॥६९॥

युद्धकाण्ड का उनहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

# सप्ततितमः सर्गः

—❀—

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा [1]चुक्रुशुर्नैर्ऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च[2] महोदरः ॥१॥

नरान्तक को मरा हुआ देख, राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक, पुलस्त्यवंश त्रिशिरा और महोदर रो पड़े ॥१॥

आरूढो मेघसङ्काशं वारणेन्द्रं महोदरः ।
बालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वीर्यवान् ॥२॥

मेघ के समान एक बड़े ऊँचे हाथी पर चढ़ा हुआ वीर्यवान् महोदर, महापराक्रमी अङ्गद पर दौड़ा ॥२॥

भ्रातृव्यसनसन्तप्तस्तथा देवान्तको बली ।
आदाय परिघं दीप्तमङ्गदं समभिद्रवत् ॥३॥

भाई के मर जाने के दुःख से दुःखी बलवान् देवान्तक भी एक चमचमाता परिघ लिए हुए अङ्गद पर झपटा ॥ ३॥

रथमादित्यसङ्काशं युक्तं परमवाजिभिः ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो बालिपुत्रमथाभ्ययात् ॥४॥

उत्तम घोड़ों से युक्त सूर्य के समान चमचमाते रथ पर बैठे हुए, वीर त्रिशिरा ने भी अङ्गद के ऊपर आक्रमण किया ॥४॥

---

१ चुक्रुशुः—रुरुदुः । ( शि० ) २ पौलस्त्यइतित्रिमूर्धविशेषणं न तु महोदरस्य । ( गो० )

स त्रिभिर्देवदर्पघ्नैर्नैर्ऋतेन्द्रैरभिद्रुतः ।
वृक्षमुत्पाटयामास महाविटपमङ्गदः ॥५॥

देवताओं के दर्प को नष्ट करने वाले इन तीन राक्षसश्रेष्ठों द्वारा आक्रमण किए जाने पर ( भी ), अङ्गद ( न घबड़ाए ) ने एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़ लिया ॥५॥

देवान्तकाय तं वीरश्चिक्षेप सहसाङ्गदः ।
महावृक्षं महाशाखं शक्रो दीप्तमिवाशनिम् ॥६॥

देवराज इन्द्र जैसे वज्र चलाते हैं, वैसे ही अङ्गद ने देवान्तक को लक्ष्य कर बड़ी बड़ी डालियों से युक्त वृक्ष उसके ऊपर फैंका ॥६॥

त्रिशिरास्तं प्रचिच्छेद शरैराशीविषोपमैः ।
स वृक्षं कृत्तमालोक्य उत्पपात तदाऽङ्गदः ॥७॥

किन्तु त्रिशिरा ने विषधर सर्प के समान तेज बाणों से उस वृक्ष को काट गिराया । वृक्ष को कटा हुआ देख, अङ्गद उछले ॥७॥

स ववर्ष ततो वृक्षाञ्शैलांश्च कपिकुञ्जरः ।
तान् प्रचिच्छेद संक्रुद्धस्त्रिशिरा निशितैः शरैः ॥८॥

और आकाश में जा अङ्गद ने त्रिशिरा पर पेड़ों और शिलाओं की वर्षा की । किन्तु क्रोध में भरे हुए त्रिशिरा ने उन सब को पैने बाणों से काट डाला ॥८॥

परिघाग्रेण तान् वृक्षान् बभञ्ज च सुरान्तकः ।
त्रिशिराश्चाङ्गदं वीरमभिदुद्राव सायकैः ॥९॥

महोदर ने भी अपने परिघ से अङ्गद के फेंके हुए बहुत से वृक्षों के टुकड़े टुकड़े कर डाले। इतने में त्रिशिरा अङ्गद के ऊपर बाण बरसाता हुआ उनके ऊपर दौड़ा ॥९॥

गजेन समभिद्रुत्य बालिपुत्रं महोदरः ।
जघानोरसि संक्रुद्धस्तोमरैर्वज्रसन्निभैः ॥१०॥

हाथी पर सवार महोदर भी अङ्गद पर दौड़ा और अत्यन्त क्रुद्ध हो, अङ्गद की छाती में वज्र के समान तोमर का प्रहार किया ॥१०॥

देवान्तकश्च संक्रुद्धः परिघेण तदाऽङ्गदम् ।
उपगम्याभिहत्याशु व्यपचंक्राम वेगवान् ॥११॥

क्रुद्ध हो देवान्तक भी अङ्गद की ओर बड़े वेग से झपटा और अङ्गद की छाती में परिघ मार कर भागा ॥११॥

स त्रिभिर्नैर्ऋतश्रेष्ठैर्युगपत् समभिद्रुतः ।
न विव्यथे महातेजा बालिपुत्रः प्रतापवान् ॥१२॥

यद्यपि इन तीनों राक्षसश्रेष्ठों ने मिल कर, एक साथ आक्रमण कर अङ्गद पर प्रहार किये, तथापि महातेजस्वी एवं प्रतापी अङ्गद तिल भर भी व्यथित न हुए ॥१२॥

स वेगवान् महावेगं कृत्वा परमदुर्जयः ।
तलेन भृशमुत्पत्य जघानास्य महागजम् ॥१३॥

तदनन्तर परम दुर्जेय वानरश्रेष्ठ अङ्गद ने बड़ी फुर्ती से उछलकर, उस महागज के मस्तक पर एक लात जमाई, जिस पर महोदर सवार था ॥१३॥

तस्य तेन प्रहारेण नागराजस्य संयुगे ।
पेततुर्लोचने तस्य विननाद स वारणः ॥१४॥

उस युद्ध में अङ्गद की लात के प्रहार से उस गजराज की आँखें निकल पड़ीं और वह हाथी बड़े ज़ोर से चिंघारने लगा ॥१४॥

विषाणं चास्य निष्कृष्य बालिपुत्रो महाबलः ।
देवान्तकमभिप्लुत्य ताडयामास संयुगे ॥१५॥

इतने में अङ्गद ने उस गजराज के दोनों दाँत उखाड़ लिये और दौड़ कर उन दाँतों से देवान्तक को मारा ॥१५॥

स विह्वलितसर्वाङ्गो वातोद्धूत इव द्रुमः ।
लाक्षारससवर्णं च सुस्राव रुधिरं मुखात् ॥१६॥

उस प्रहार से देवान्तक हवा के झकोरे हुए पेड़ की तरह हिल उठा। उसके शरीर के समस्त अङ्ग शिथिल पड़ गये। उसके मुख से लाख के रंग जैसा बहुत सा रुधिर निकल गया ॥१६॥

अथाश्वास्य महातेजाः कृच्छ्राद्देवान्तको बली।
आविध्य परिघं घोरमाजघान तदाऽङ्गदम् ॥१७॥

तदनन्तर महातेजस्वी वीर देवान्तक ने अति कष्ट से सचेत हो, भयङ्कर परिघ के प्रहार से अङ्गद को घायल किया ॥१७॥

परिघाभिहतश्चापि वानरेन्द्रात्मजस्तदा ।
जानुभ्यां पतितो भूमौ पुनरेवोत्पपात ह ॥१८॥

उस परिघ के प्रहार से बालितनय अङ्गद घुटुओं के बल ज़मीन पर गिर पड़े ; किन्तु कुछ ही क्षणों बाद सावधान हो, वे उठ बैठे ॥१८॥

तमुत्पतन्तं त्रिशिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्मगैः ।
घोरैर्हरिपतेः पुत्रं ललाटेऽभिजघान ह ॥१६॥

अङ्गद को उठते देख, त्रिशिरा ने उनके सिर में तीन सीधे जाने वाले बाण मारे ॥१६॥

ततोऽङ्गदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुङ्गवैः ।
हनुमानपि विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥२०॥

इतने में अङ्गद को तीन वीरश्रेष्ठ राक्षसों द्वारा घेर कर मारे जाते देख, हनुमान और नील दौड़े ॥२०॥

ततश्चिक्षेप शैलाग्रं नीलस्त्रिशिरसे तदा ।
तद्रावणसुतो धीमान् बिभेद निशितैः शरैः ॥२१॥

नील ने एक शैलशृङ्ग खींच कर त्रिशिरा के सिर पर फेंका किन्तु वीरवर रावणतनय त्रिशिरा ने, उस शैलशृङ्ग के; पैने तीरों से टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥२१॥

तद्बाणशतनिर्भिन्नं विदारितशिलातलम् ।
सविस्फुलिंगं सज्वालं निपपात गिरेः शिरः ॥२२॥

उस शैलशृङ्ग को सौ बाण चला जब त्रिशिरा ने चूर चूर कर डाला ; तब आग की चिनगारियों और ज्वाला से युक्त वह पर्वत पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२२॥

[ टिप्पणी—बाण लोहे के थे । अतः ज़ोर से टकराने से पर्वत से आग की चिनगारियां निकलने लगी थीं । ]

तवो [1]जृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तकस्तदा ।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥२३॥

उस शैलशृङ्ग को चूर चूर हो कर पृथिवी पर गिरा हुआ देख, देवान्तक हर्षित हुआ और हाथ में परिघ ले वह लड़ने के लिए हनुमान् के ऊपर झपटा ॥२३॥

तमापतन्तमुत्प्लुत्य हनुमान् मारुतात्मजः ।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥२४॥

परन्तु उसके आते ही हनुमान् जी ने उछल कर, वज्र के समान एक घूँसा उसके सिर में मारा ॥२४॥

शिरसि प्रहरन् वीरस्तदा वायुसुतो बली ।
नादेनाकम्पयच्चैव राक्षसान् स महाकपिः ॥२५॥

कपिश्रेष्ठ वीर हनुमान जी उसके सिर में घूँसा मार कर, ऐसे जोर से गर्जे कि, राक्षस दहल गए ॥२५॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविकीर्णमूर्धा
निर्वान्तदन्ताक्षिविलम्बिजिह्वः ।
देवान्तको राक्षसराजसूनुः
गतासुरुर्व्यां सहसा पपात ॥२६॥

उस घूँसे की चोट से राक्षसराज रावण के पुत्र देवान्तक का मस्तक चूर चूर हो गया, दाँत और नेत्र निकल पड़े, जीभ लंबी हो कर मुख के बाहिर आ पड़ी। वह निर्जीव हो धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा ॥२६॥

---

१ जृम्भितं—भग्न। ( गो० )

तस्मिन् हते राक्षसयोधमुख्ये
महाबले संयति देवशत्रौ ।
क्रुद्धस्त्रिमूर्धा निशिताग्रमुग्रं
ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥२७॥

युद्ध में उस देवशत्रु एवं महाबली मुख्य राक्षस योद्धा देवान्तक के मारे जाने पर, त्रिशिरा अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने बड़े उग्र एवं पैने बाणों की, नील की छाती के ऊपर वर्षा की ॥२७॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।
भूयः समधिरुह्याशु मन्दरं रश्मिवानिव ॥२८॥

इतने में महोदर भी अत्यन्त कुपित हो शीघ्रतापूर्वक एक दूसरे पर्वत के समान ऊँचे हाथी पर सवार हुआ। उस समय वह वैसा ही जान पड़ा, जैसा ( अस्त होने वाला ) सूर्य, मन्दराचल पर स्थित होने पर जान पड़ता है ॥२८॥

ततो बाणमयं वर्षं नीलस्योरस्यपातयत् ।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रचापवानिव तोयदः ॥२९॥

उसने भी नील की छाती पर बाणों की वर्षा की। उस समय ऐसा जान पड़ा; मानों इन्द्रधनुष और बिजलीयुक्त मेघ, पर्वत पर जल की वर्षा करता हो ॥२९॥

ततः शरौघैरभिवर्ष्यमाणो
विभिन्नगात्रः कपिसैन्यपालः ।

नीलो बभूवाथ [1]निसृष्टगात्रो
[2]विष्टम्भितस्तेन महाबलेन ॥३०॥

कपिवाहिनी के सेनापति नील का सारा शरीर उस बाणवृष्टि से क्षतविक्षत हो गया। उसके शरीर के सारे अङ्ग शिथिल पड़ गए। महाबली महोदर ने नील को स्तब्ध अर्थात् मूर्च्छित कर दिआ ॥३०॥

ततस्तु नीलः प्रतिलभ्य संज्ञां
शैलं समुत्पाट्य सवृक्षषण्डम्।
ततः समुत्पत्य भृशोग्रवेगो
महोदरं तेन जघान मूर्ध्नि ॥३१॥

कुछ देर पीछे जब नील सचेत हुए, तब उन्होंने पेड़ों सहित एक शैल को उखाड़ लिया और बड़े वेग से उछल कर, उस शैल से महोदर के सिर में प्रहार किआ ॥३१॥

ततः स शैलेन्द्रनिपातभग्नो
महोदरस्तेन महाद्विपेन।
विपोथिता भूमितले गतासुः
पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः ॥३२॥

महोदर उस शैल के प्रहार से अपने उस महागज सहित चकनाचूर हो गया और निर्जीव हो भूमि पर वैसे ही गिर पड़ा जैसे वज्र के प्रहार से टूट कर पर्वत भूमि पर गिरता है ॥३२॥

---

१ निसृष्टगात्रः—शिथिलगात्रः। (गो०) २ विष्टम्भितः—स्तब्धीकृतः। (गो०)

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ।
हनुमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥३३॥

अपने चचा महोदर को मरा हुआ देख, त्रिशिरा अत्यन्त कुपित हुआ और हनुमान जी को पैने पैने बाणों से घायल करने लगा ॥३३॥

स वायुसूनुः कुपितश्चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
त्रिशिरास्तच्छरैस्तीक्ष्णैर्बिभेद बहुधा बली ॥३४॥

पवननन्दन हनुमान ने कोप कर एक शैलशृङ्ग उसके ऊपर फेंका, किन्तु बलवान त्रिशिरा ने पैने बाणों से उसके टुकड़े कर डाले ॥३४॥

तद्व्यर्थं शिखरं दृष्ट्वा द्रुमवर्षं महाकपिः ।
विससर्ज रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥३५॥

उस युद्ध में शैलशृङ्ग को निष्फल हुआ देख, हनुमान जी रावणतनय त्रिशिरा को लक्ष्य बना, उसके ऊपर वृक्षों की वर्षा करने लगे ॥३५॥

तमापतन्तमाकाशे द्रुमवर्षं प्रतापवान् ।
त्रिशिरा निशितैर्बाणैश्चिच्छेद च ननाद च ॥३६॥

किन्तु प्रतापी त्रिशिरा उन सब वृक्षों को अपने ऊपर आते देख बीच ही में पैने तीर मार और उनके टुकड़े टुकड़े कर उन सब को भूमि पर गिरा देता था और गर्जता था ॥३६॥

ततो हनूमानुत्प्लुत्य हयांस्त्रिशिरसस्तदा ।
विददार नखैः क्रुद्धो गजेन्द्रं मृगराडिव ॥३७॥

तब हनुमान जी उछल कर त्रिशिरा के घोड़ों को अपने नखों से ऐसे फाड़ने लगे जैसे सिंह हाथी को चीर डालता है ॥३७॥

अथ शक्तिं समादाय कालरात्रिमिवान्तकः ।
चिक्षेपानिलपुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥३८॥

( यह देख ) रावणतनय त्रिशिरा ने कालरात्रि में यमराज की तरह भयङ्कर एक शक्ति हाथ में ले, हनुमान जी के ऊपर फैंकी ॥३८॥

दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्तामसङ्गताम् ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभञ्ज च ननाद च ॥३९॥

आकाश से टूटे हुए उल्का की तरह उस बड़ी साँग को अपने ऊपर आते देख, हनुमान जी ने बीच ही में उसे पकड़ लिया और उसको तोड़ मरोड़ कर फेंक दिया ॥३९॥

तां दृष्ट्वा [1]घोरसङ्काशां शक्तिं भग्नां हनूमता ।
प्रहृष्टा वानरगणा विनेदुर्जलदा इव ॥४०॥

उस भयङ्कर प्रकाश वाली साँग को हनुमान् द्वारा टूटा हुआ देख, वानरगण अत्यन्त प्रसन्न हो बादलों की तरह गर्जने लगे ॥४०॥

ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।
निजघान तदा [2]व्यूढे वायुपुत्रस्य वक्षसि ॥४१॥

तब राक्षसश्रेष्ठ त्रिशिरा ने तलवार उठा कर, वायुपुत्र की विशाल छाती में मारी ॥४१॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान् मारुतात्मजः ।
आजघान त्रिशिरसं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥४२॥

---

१ घोरसंकाशां—भयंकरप्रकाशां । ( गो० ) २ व्यूढे—विशाले । ( गो० )

उस खड्ग के प्रहार से घायल हो, पवननन्दन हनुमान जी ने उसकी छाती में एक थपेड़ मारी ॥४२॥

स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्तायुधो भुवि ।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥४३॥

उस थप्पड़ की चोट से महातेजस्वी त्रिशिरा के हाथ से आयुध छूट पड़ा और वह स्वयं भी मूर्छित हो, भूमि पर गिर पड़ा ॥४३॥

स तस्य पततः खड्गं समाच्छिद्य महाकपिः ।
ननाद गिरिसङ्काशस्त्रासयन् सर्वनैर्ऋतान् ॥४४॥

जब वह मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा, तब हनुमान जी ने उसके हाथ से तलवार छीन ली। तदनन्तर पर्वत के समान विशाल शरीरधारी हनुमान् जी, समस्त राक्षसों को त्रस्त करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥४४॥

अमृष्यमाणस्तं घोषमुत्पपात निशाचरः ।
उत्पत्य च हनूमन्तं ताडयामास मुष्टिना ॥४५॥

उस सिंहनाद को सहन न कर, वह निशाचर उठ खड़ा हुआ और उठ कर उसने एक मूका हनुमान जी के मारा ॥४५॥

तेन मुष्टिप्रहारेण संचुकोप महाकपिः ।
कुपितश्च निजग्राह किरीटे राक्षसर्षभम् ।
[ हनुमान् रोषताम्राक्षो राक्षसं परवीरहा ॥४६॥ ]

उस मुष्टिप्रहार से हनुमान जी को बड़ा क्रोध उपजा और क्रुद्ध हो उन्होंने उसका किरीट पकड़ लिया ॥४६॥

स तस्य शीर्षाण्यसिना शितेन
किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि।
क्रुद्धः प्रचिच्छेद सुतोऽनिलस्य
[1]त्वष्टुः सुतस्येव शिरांसि शक्रः ॥४७॥

तदनन्तर उसी की पैनी तलवार से, पवननन्दन ने त्रिशिरा के, कुण्डलों से अलङ्कृत और मुकुटों से भूषित तीनों सिर, वैसे ही काट डाले; जैसे इन्द्र ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप के सिर काटे थे ॥४७॥

तान्यायताक्षाण्यगसन्निभानि
प्रदीप्तवैश्वानरलोचनानि।
पेतुः शिरांसीन्द्ररिपोर्धरण्यां
ज्योतींषि मुक्तानि यथाऽर्कमार्गात् ॥४८॥

जैसे आकाश से नक्षत्र गिरा करते हैं, वैसे ही उस इन्द्रशत्रु निशाचर त्रिशिरा के प्रदीप्त अग्नि की तरह चमकते हुए नेत्रों से युक्त, वे तीनों पर्वताकार सिर पृथिवी पर गिर पड़े ॥४८॥

तस्मिन् हते देवरिपौ त्रिशीर्षे
हनूमता शक्रपराक्रमेण।
नेदुः प्लवङ्गाः प्रचचाल भूमी
रक्षांस्यथो दुद्रुविरे समन्तात् ॥४९॥

इन्द्र समान पराक्रमी हनुमान जी ने जब त्रिसिरा को मार डाला, तब वानर बड़े हर्षित हुए, एक बार पृथिवी हिल गई, और बचे हुए राक्षस चारों ओर भाग गए ॥४९॥

---

१ त्वष्टुःसुतः—विश्वरूपः। ( गो० )

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा तथैव च महोदरम् ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥५० ॥

त्रिशिरा, महोदर और दुर्धर्ष देवान्तक एवं नरान्तक को मरा हुआ देख, ॥५०॥

चुकोप परमामर्षी [1]मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
जग्राहार्चिष्मतीं घोरां गदां सर्वायसीं शुभाम् ॥५१॥

अत्यन्त असहिष्णु राक्षसश्रेष्ठ महापार्श्व अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। उसने लोहे की बनी अपनी चमचमाती भयङ्कर और अमोघ गदा उठाई ॥५१॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तां मांसशोणितफेनिलाम्[2] ।
विराजमानां वपुषा शत्रुशोणितरञ्जिताम् ॥५२॥

उस गदा में सोने के बन्द लगे हुए थे और वह युद्ध में कालरूपिणी थी तथा शत्रुओं के रक्त से रंगी हुई थी ॥५२॥

तेजसा सम्प्रदीप्ताग्रां रक्तमाल्यविभूषिताम् ।
ऐरावतमहापद्मसार्वभौमभयावहाम् ॥५३॥

उसका अग्रभाग ( अर्थात गदका ) चमचमा रहा था, उसके ऊपर लाल फूलों की माला पड़ी हुई थी। ऐरावत, महापद्म एवं सार्वभौम महादिग्गजों को भी इस गदा से डर लगता था ॥५३॥

गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुङ्गवः ।
हरीन् समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥५४॥

---

१ मत्तः—महापार्श्वः। मत्त इति महापार्श्वस्य नामान्तरं। ( गो० )
२ मांसशोणितफेनिलाम्—युद्धकालिक रूपं। ( गो० )

राक्षसश्रेष्ठ महापार्श्व क्रुद्ध हो और उस गदा को ले प्रलय-कालीन अग्नि की तरह जलता हुआ वानरों के पीछे दौड़ा ॥५४॥

अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् ।
मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥५५॥

तब बलवान् ऋषभ नामक वानरयूथपति कूद कर रावण के छोटे भाई महापार्श्व के पास जा, उसके सामने खड़ा हुआ ॥५५॥

तं पुरस्तात् स्थितं दृष्ट्वा वानरं पर्वतोपमम् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो गदया वज्रकल्पया ॥५६॥

पर्वताकार ऋषभ वानर को अपने सामने खड़ा देख, वज्र के समान उस गदा से, महापार्श्व ने क्रोध में भर ऋषभ की छाती में प्रहार किया ॥५६॥

स तयाऽभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
भिन्नवक्षाः समाधूतः सुस्राव रुधिरं बहु ॥५७॥

उस गदा के लगने से कपिश्रेष्ठ ऋषभ की छाती विदीर्ण हो गई। उसका शरीर काँप उठा और छाती से बहुत सा रक्त निकल गया ॥५७॥

स सम्प्राप्य चिरात् संज्ञामृषभो वानरर्षभः ।
अभिजग्राह वेगेन गदां तस्य महात्मनः ॥५८॥

बहुत देर बाद जब कपिश्रेष्ठ ऋषभ को चेत हुआ, तब उसने झपट कर महापार्श्व के हाथ से गदा छीन ली ॥५८॥

गृहीत्वा तां गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ।
मत्तानीकं महात्मानं जघान रणमूर्धनि ॥५९॥

उस भयङ्कर गदा को छीन और उसे बार बार घुमा, ऋषभ ने उससे, महाबली महापार्श्व के सिर में प्रहार किया ॥५६॥

स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ।
निपपात ततो मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥६०॥
विशीर्णनयने भूमौ गतसत्त्वे गतायुषि ।
पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥६१॥

उस अपनी ही गदा के प्रहार से महापार्श्व के दाँत चूर चूर हो गए और आँखें निकल पड़ीं। वज्रहत पर्वत की तरह महापार्श्व गिर पड़ा, उसके नेत्र निकल कर बिखर गए, वह गतायु राक्षस निर्जीव हो धरती पर गिर पड़ा। महापार्श्व के गिरते ही बची हुई राक्षसी सेना भाग गई ॥६०॥ ६१॥

[ उन्मत्तस्तु तदा दृष्ट्वा गतासुं भ्रातरं रणे ।
चुकोप परमक्रुद्धः प्रलयाग्निसमद्युतिः ॥६२॥

युद्ध में अपने भाई महापार्श्व को मरा देख, उन्मत्त नामक राक्षस बहुत क्रुद्ध हुआ और क्रोध में भर वह प्रलयाग्नि के समान दमकने लगा ॥६२॥

ततः समादाय गदां स वीरः
वित्रासयन् वानरसैन्यमुग्राम् ।
दुद्राव वेगेन तु सैन्यमध्ये
दहन् यथा वह्निरतिप्रचण्डः ॥६३॥

प्रचण्ड गदा को हाथ में ले वह वीर उससे वानरी सेना को हटाने लगा। जिस प्रकार वन में अति प्रचण्ड अग्नि लपक लपक

कर वन को भस्म करता है; उसी प्रकार उन्मत्त राक्षस वानरी सेना में लपक लपक कर वानरों का संहार करने लगा ॥६३॥

आपतन्तं तदा दृष्ट्वा राक्षसं भीमविक्रमम् ।
शैलमादाय दुद्राव गवाक्षः पर्वतोपमः ॥६४॥

उस भीम पराक्रमी राक्षस को आक्रमण करते देख पर्वताकार शरीरधारी वानरयूथपति गवाक्ष एक पर्वत उठा, उस पर दौड़ा ॥६४॥

जिघांसू राक्षसं भीमं तं शैलेन महाबलः ।
आपतन्तं तदा दृष्ट्वा उन्मत्तोऽपि महागिरिम् ॥६५॥

और उस भयङ्कर राक्षस का वध करने की इच्छा से वह पर्वत उसके ऊपर फेंका । उस विशाल पर्वत को अपने ऊपर आते देख, उन्मत्त ने भी ॥६५॥

चिच्छेद गदया वीरः शतधा तत्र संयुगे ।
चूर्णीकृतं गिरिं दृष्ट्वा रक्षसा कपिकुञ्जरः ॥६६॥

अपनी गदा के प्रहार से उस विशाल पर्वत को तोड़ कर, उसके सौ टुकड़े कर डाले । जब कपिश्रेष्ठ गवाक्ष ने देखा कि, उस राक्षसश्रेष्ठ ने उस पर्वत के टुकड़े टुकड़े कर डाले हैं ॥६६॥

विस्मितोऽभूत् महाबाहुर्जगर्ज च मुहुर्मुहुः ।
उन्मत्तस्तु सुसंक्रुद्धो ज्वलन्तीं राक्षसोत्तमः ॥६७॥

तब वीर गवाक्ष को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह बार बार गर्जने लगा । इससे राक्षसश्रेष्ठ उन्मत्त अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने चमचमाती ॥६७॥

गदामादाय वेगेन कपेर्वक्षस्यताडयत् ।
स तया गदया वीरस्ताडितः कपिकुञ्जरः ॥६८॥

गदा उठा कर बड़े जोर से गवाक्ष की छाती में मारी। उस गदा के प्रहार से कपिश्रेष्ठ गवाक्ष ॥६८॥

पपात भूमौ निःसंज्ञा सुस्राव रुधिरं बहु ।
पुनः संज्ञामथास्थाय वानरः स समुत्थितः ॥६९॥

मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा और उसकी छाती से बहुत सा रक्त भी निकल गया। कुछ देर बाद वह पुनः सचेत हुआ और उठ बैठा ॥६९॥

तलेन ताडयामास ततस्तस्य शिरः कपिः ।
तेन प्रताडितो वीरः राक्षसः पर्वतोपमः ॥७०॥

उठ कर गवाक्ष ने उसके सिर में एक चपत जमाई। चपत की चोट से पर्वताकार वीर राक्षस उन्मत्त के ॥७०॥

विस्रस्तदन्तनयनः निपपात महीतले ।
[ सुस्राव रुधिरं सोष्णं गतासुश्च ततोऽभवत् ॥७१॥ ]

दाँत टूट गए और आँखें निकल पड़ीं। उसके शरीर से गर्म लोहू बहने लगा और वह निर्जीव हो पृथिवी पर गिर पड़ा ॥७१॥

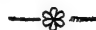
तस्मिन् हते भ्रातरि रावणस्य
तन्नैर्ऋतानां बलमर्णवाभम् ।
त्यक्तायुधं केवलजीवितार्थं
दुद्राव भिन्नार्णवसन्निकाशम् ॥७२॥

इति सप्ततितमः सर्गः ॥

इस प्रकार रावण के भाई उन्मत्त के मारे जाने पर, वह समुद्र के समान राक्षसी सेना, अस्त्र शस्त्र त्याग केवल अपने प्राण बचाने को, खलबलाते हुए समुद्र की तरह चारों ओर भाग गई ॥७२॥

[ टिप्पणी—६२ वें श्लोक से लेकर ७१ वें श्लोक तक का वर्णन कई संस्करणों में नहीं पाया जाता । ]

युद्धकाण्ड का सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



## एकसप्ततितमः सर्गः



स्वबलं व्यथितं दृष्ट्वा तुमुलं रोमहर्षणम् ।
भ्रातृंश्च निहतान् दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥१॥

अति भयङ्कर रोमाञ्चकारी अपनी सेना को व्यथित देख तथा अपने इन्द्र के समान पराक्रमी भाइयों का मारा जाना देख ॥१॥

पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे सन्निषूदितौ ।
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ राक्षसर्षभौ ॥२॥

तथा अपने दोनों चचों का युद्ध में नाश हुआ देख, एवं युद्धोन्मत्त एवं मत्त नामक अपने दोनों भाइयों का मारा जाना देख, ॥२॥

चुकोप च महातेजा ब्रह्मदत्तवरो युधि ।
अतिकायोऽद्रिसङ्काशो देवदानवदर्पहा ॥३॥

पर्वत के समान विशाल शरीरधारी महातेजस्वी एवं ब्रह्मा से युद्ध में सदा विजयी होने का वर पाए हुए तथा देवताओं और दानवों का दर्प दलन करने वाला अतिकाय बड़ा क्रुद्ध हुआ ॥३॥

स भास्करसहस्रस्य सङ्घातमिव भास्वरम् ।
रथमास्थाय शक्रारिरभिदुद्राव वानरान् ॥४॥

वह इन्द्रशत्रु अतिकाय हज़ार सूर्य के समान चमकीले रथ पर सवार हो वानरों पर दौड़ा ॥४॥

स विस्फार्य महच्चापं किरीटी मृष्टकुण्डलः ।
नाम विश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥५॥

कानों में कुण्डल पहिने और सिर पर मुकुट धारण किए हुए अतिकाय ने अपना धनुष टङ्कोर कर, सब को अपना नाम सुनाया और वह बड़े ज़ोर से गर्जा ॥५॥

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेन च ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥६॥

उसके सिंहगर्जन से तथा उच्चस्वर से अपना नामोच्चारण करने एवं उसके भयङ्कर रोदे की टङ्कार से वानर भयभीत हो गए ॥६॥

ते दृष्ट्वा देहमाहात्म्यं कुम्भकर्णोऽयमुत्थितः ।
भयार्ता वानराः सर्वे संश्रयन्ते परस्परम् ॥७॥

उसके शरीर की विशालता देख वानरों ने समझा कि, मरा मराया कुम्भकर्ण फिर जी उठा है। सो वे वानर भय से पीड़ित हो आपस में एक दूसरे का सहारा लेने लगे ॥७॥

ते तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ।
भयाद्वानरयूथास्ते विद्रवन्ति ततस्ततः ॥८॥

विष्णु के त्रिविक्रमावतार की तरह उसका रूप देख, वे वानर यूथपति इधर उधर भागने लगे ॥८॥

तेऽतिकायं समासाद्य वानरा मूढचेतसः ।
शरण्यं शरणं जग्मुर्लक्ष्मणाग्रजमाहवे ॥९॥

वे मूढ़ वानर, अतिकाय को रणभूमि में आते देख, सर्वलोकशरण्य श्रीरामचन्द्र जी के शरण में गए ॥९॥

ततोऽतिकायं काकुत्स्थो रथस्थं पर्वतोपमम् ।
ददर्श धन्विनं दूराद्गर्जन्तं कालमेघवत् ॥१०॥

श्रीरामचन्द्र जी ने पर्वताकार अतिकाय को रथ पर सवार, हाथ में धनुष लिये हुए और दूर ही से प्रलयकालीन मेघ की तरह गर्जते हुए देखा ॥१०॥

स तं दृष्ट्वा महात्मानं राघवस्तु विसिष्मिये ।
वानरान् सान्त्वयित्वाऽथ विभीषणमुवाच ह ॥११॥

उस महाकाय राक्षस को देख श्रीरामचन्द्र जी को भी आश्चर्य हुआ और वानरों को धीरज बँध, वे विभीषण से बोले ॥११॥

कोऽसौ पर्वतसङ्काशो धनुष्मान् हरिलोचनः[1] ।
युक्ते हयसहस्रेण विशाले स्यन्दने स्थितः ॥१२॥

---

१ हरिलोचनः—सिंहदृष्टिः । ( गो० )

यह कौन है जो पर्वत के समान, विशाल शरीर धारण किए हुए और सिंह की तरह देखता हुआ, हजार घोड़ों के विशाल रथ पर बैठा हुआ है ? ॥१२॥

य एष निशितैः शूलैः सुतीक्ष्णैः प्रासतोमरैः ।
अर्चिष्मद्भिर्वृतो भाति भूतैरिव महेश्वरः ॥१३॥

अत्यन्त पैने और चमचमाते शूलों, प्रासों और तोमरों को लिये हुए यह ऐसा जान पड़ता है, मानों भूतों से घिरे हुए शिव जी हों ॥ १३॥

कालजिह्वाप्रकाशाभिर्य एषोऽतिविराजते ।
आवृतो [1]रथशक्तीभिर्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥१४॥

रथ में रखी हुई और काल की जीभों की तरह चमचमाती साँगों से यह ऐसा शोभित हो रहा है जैसे बिजली से बादल शोभित होता है ॥१४॥

धनूंषि चास्य सज्यानि हेमपृष्ठानि सर्वशः ।
शोभयन्ति रथश्रेष्ठं शक्रचाप इवाम्बरम् ॥१५॥

सोने के बन्दों से भूषित और रोदा चढ़ा हुआ इसका धनुष उसके उत्तम रथ को, उसी प्रकार शोभायमान कर रहा है, जिस प्रकार इन्द्र-धनुष आकाश को शोभित करता है ॥१५॥

क एष रक्षःशार्दूलो रणभूमिं विराजयन् ।
अभ्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनादित्यतेजसा ॥१६॥

सूर्य के समान चमचमाते रथ में बैठा एवं रथियों में श्रेष्ठ यह कौन राक्षसशार्दूल रण भूमि में चला आ रहा है ॥१६॥

---

१ रथशक्तीभिः रथस्थिताभिः शक्तिभिः । (गो०)

ध्वजशृङ्गप्रतिष्ठेन राहुणाभिविराजते ।
सूर्यरश्मिनिभैर्बाणैर्दिशो दश विराजयन् ॥१७॥

इसके रथ की ध्वजा पर राहु की मूर्ति है। सूर्य किरणों के समान चमचमाते इसके बाण भी दसों दिशाओं को कैसा प्रकाशित कर रहे हैं ॥१७॥

त्रिणतं मेघनिर्ह्रादं हेमपृष्ठमलंकृतम् ।
शतक्रतुधनुःप्रख्यं धनुश्चास्य विराजते ॥१८॥

तीन जगहों में झुका हुआ, बादल के समान शब्दायमान, सुवर्ण की पीठ से शोभित इसका धनुष, इन्द्रधनुष की तरह कैसा शोभित हो रहा है ॥१८॥

सध्वजः सपताकश्च सानुकर्षो[1] महारथः ।
चतुःसादिसमायुक्तो मेघस्तनितनिस्वनः ॥१९॥

इसका विशाल रथ ध्वजा पताका से सजा हुआ है और अनुकर्ष रथ के नीचे लगी लकड़ी से युक्त है। चार सारथि उसको हाँक रहे हैं और उससे मेघ की तरह गड़गड़ाहट का शब्द हो रहा है ॥१९॥

विंशतिर्दश चाष्टौ च तूणोऽस्य रथमास्थिताः ।
कार्मुकाणि च भीमानि ज्याश्च काञ्चनपिङ्गलाः ॥२०॥

इसके रथ पर अड़तीस तरकस, भयङ्कर अड़तीस धनुष और सुनहले, पीले रंग के अड़तीस ही रोदे (धनुष की डोरी) रखे हुए हैं ॥२०॥

---

१ अनुकर्षः—रथाधःस्थदारु । ( गो० )

द्वौ च खड्गौ रथगतौ पार्श्वस्थौ पार्श्वशोभितौ ।
चतुर्हस्त त्सरुयुतौ व्यक्तहस्तदशायतौ ॥२१॥

रथ के भीतर अगल बगल रखे हुए दो खड्ग दोनों ओर कैसे सुन्दर जान पड़ते हैं। इन खड्गों की मूँठे चार चार हाथ की हैं और ये दस हाथ लंबे हैं ॥२१॥

[ टिप्पणी—उस काल के युद्धोपयोगी ( जंगी ) रथ का आभास इस वर्णन से मिल जाता है। ]

रक्तकण्ठगुणो धीरो महापर्वतसन्निभः ।
कालःकालमहावक्त्रो मेघस्थ इव भास्करः ॥ २२॥

लाल रंग की माला पहिने हुए, धैर्यशाली, एक बड़े पहाड़ के समान लंबा, काला कलूटा काल की तरह मुँह बाए, यह राक्षस ऐसा जान पड़ता है, मानों मेघ के ऊपर सूर्य सवार हो ॥२२॥

काञ्चनाङ्गदनद्धाभ्यां भुजाभ्यामेष शोभते ।
शृङ्गाभ्यामिव तुङ्गाभ्यां हिमवान् पर्वतोत्तमः ॥२३॥

इसकी दोनों भुजाएँ बाजूबन्दों से शोभायमान हो ऐसी जान पड़ती हैं, मानों ऊँचे ऊँचे दो शिखरों से विशाल हिमालय पर्वत शोभित हो रहा हो ॥२३॥

कुण्डलाभ्यां तु यस्यैतद्भाति वक्त्रं शुभेक्षणम् ।
पुनर्वस्वन्तरगतं पूर्णं बिम्बमिवैन्दवम् ॥२४॥

सुन्दर नेत्रों से युक्त इसका मुखमण्डल दो कुण्डलों से भूषित हो ऐसा जान पड़ता है, जैसा कि, पुनर्वसु नक्षत्र के बीच में पूर्ण बिम्बवाला चन्द्रमा ॥२४॥

आचक्ष्व मे महाबाहो त्वमेनं राक्षसोत्तमम् ।
यं दृष्ट्वा वानराः सर्वे भयार्ता विद्रुता दिशः ॥२५॥

( विभीषण से ) हे महाबाहो ! तुम मुझे बतलाओ कि, यह कौन राक्षस है, जिसको देख कर समस्त वानर भयभीत हो भागे जा रहे हैं ॥२५॥

स पृष्टो राजपुत्रेण रामेणामिततेजसा ।
आचचक्षे महातेजा राघवाय विभीषणः ॥२६॥

अमित तेज सम्पन्न राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी ने जब इस प्रकार पूछा ; तब महातेजस्वी विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी को उत्तर देते हुए उनसे कहा ॥२६॥

दशग्रीवो महातेजा राजा वैश्रवणानुजः ।
भीमकर्मा महोत्साहो रावणो राक्षसाधिपः ॥२७॥

दस सिर वाला, महातेजस्वी, राजा कुबेर का छोटा भाई; भयङ्कर कृत्य करने वाला बड़ा उत्साही और महाबली जो राक्षसराज रावण है ॥२७॥

तस्यासीद्वीर्यवान् पुत्रो रावणप्रतिमो रणे ।
वृद्धसेवी श्रुतिधरः सर्वास्त्रविदुषां वरः ॥२८॥

उसीका यह पराक्रमी पुत्र है और रावण ही की तरह युद्ध करने में निपुण है । यह वृद्धों की सेवा करने वाला है, बहुश्रुत है और सब शस्त्रधारियों में अग्रणी है ॥२८॥

अश्वपृष्ठे रथेनागे खड्गे धनुषि कर्षणे ।
भेदे सान्त्वे च दाने च नये मन्त्रे च सम्मतः ॥२९॥

यह घोड़ा, रथ और हाथी पर सवार होने में दक्ष तथा तलवार चलाने और धनुष पर बाण रख कर चलाने में चतुर है यह साम, दान भेदादि राजनीति में कुशल है । यह परामर्श देने में भी निपुण है । रावण का यह कृपापात्र है ॥२९॥

यस्य बाहू समाश्रित्य लङ्का वसति निर्भया ।
तनयं धान्यमालिन्या अतिकायमिमं विदुः ॥३०॥

इसके बाहुबल के सहारे लङ्कावासी निर्भय रहते हैं। यह धान्य-मालिनी ( मन्दोदरी ) के गर्भ से उत्पन्न हुआ है और इसका नाम अतिकाय है ॥३०॥

एतेनाराधितो ब्रह्मा तपसा भावितात्मना ।
अस्त्राणि चाप्यवाप्तानि रिपवश्च पराजिताः ॥३१॥

इसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न कर अस्त्र पाए हैं और उनसे अपने वैरियों को परास्त किया है ॥३१॥

सुरासुरैरवध्यत्वं दत्तमस्मै स्वयंभुवा ।
एतच्च कवचं दिव्यं रथश्चैषोऽर्कभास्वरः ॥३२॥

ब्रह्मा ने इसे सुरों और असुरों से अवध्य होने का वर दिया है, अर्थात् देवताओं और दैत्यों के हाथ से यह मर नहीं सकता इसे दिव्य कवच और सूर्य के समान चमकीला रथ भी ( तप प्रभाव से ) प्राप्त हुआ है ॥३२॥

एतेन शतशो देवा दानवाश्च पराजिताः ।
रक्षितानि च रक्षांसि यक्षाश्चापि निषूदिताः ॥३३॥

इसने सैकड़ों देवताओं और दानवों को पराजित कर राक्षसों की रक्षा की है और यक्षों का संहार किया है ॥३३॥

वज्रं विष्टम्भितं येन बाणैरिन्द्रस्य धीमतः ।
पाशः सलिलराजस्य रणे प्रतिहतस्तथा ॥३४॥

इस रणकुशल ने अपने बाणों से इन्द्र के वज्र की गति स्तम्भित कर दी थी तथा वरुण के पाश को व्यर्थ कर दिया था ॥३४॥

एषोऽतिकायो बलवान्राक्षसानामथर्षभः ।
रावणस्य सुतो धीमान्देवदानवदर्पहा ॥३५॥

देवता और दानवों के दर्प का नाश करने वाला यह वही रावण का बुद्धिमान पुत्र राक्षसश्रेष्ठ बलवान अतिकाय है ॥३५॥

तदस्मिन् क्रियतां यत्नः क्षिप्रं पुरुषपुङ्गव ।
पुरा वानरसैन्यानि क्षयं नयति सायकैः ॥३६॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! सो उसके रोकने का कोई उपाय शीघ्र करना चाहिए। क्योंकि यह सब से पहिले, मारे बाणों के वानरों ही का संहार कर रहा है ॥३६॥

ततोऽतिकायो बलवान् प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥३७॥

तदनन्तर बलवान् अतिकाय वानरी सेना में घुस, धनुष को टंकारता हुआ, बारंबार सिंहनाद करने लगा ॥३७॥

तं भीमवपुषं दृष्ट्वा रथस्थं रथिनां वरम् ।
अभिपेतुर्महात्मानो ये प्रधाना वनौकसः ॥३८॥

रथियों में श्रेष्ठ उस भयङ्कर शरीर वाले अतिकाय को रथ में बैठा हुआ देख, बलवान् वानरयूथपति उसका सामना करने के लिए दौड़े ॥३८॥

कुमुदो द्विविदो मैन्दो नीलः शरभ एव च ।
पादपैर्गिरिशृङ्गैश्च युगपत्समभिद्रवन् ॥३९॥

कुमुद, द्विविद, नील, शरभ हाथों में वृक्ष और पर्वतशिखर ले ले कर, एक साथ उसके ऊपर दौड़े ॥३९॥

तेषां वृक्षांश्च शैलांश्च शरैः काञ्चनभूषणैः ।
अतिकायो महातेजाश्चिच्छेदास्त्रविदां वरः ॥४०॥

अस्त्रविद्या में निपुण महातेजस्वी अतिकाय ने सुवर्णभूषित बाणों से उन वानर यूथपतियों के फैंके हुए उन पेड़ों और पर्वतों के टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥४०॥

तांश्चैव सर्वान्स हरीञ्शरैः सर्वायसैर्बली ।
विव्याधाभिमुखाः संख्ये भीमकायो निशाचरः ॥४१॥

तदनन्तर उस भीमकाय बली राक्षस ने अपने ऊपर आक्रमण करने वाले उन समस्त वानरयूथपतियों से युद्ध करते हुए, उनको लोहे के बाणों से घायल कर डाला ॥४१॥

तेऽर्दिता बाणवर्षेण भग्नगात्राः प्लवङ्गमाः ।
न शेकुरतिकायस्य प्रतिकर्तुं महारणे ॥४२॥

अतिकाय की बाणवर्षा से उन वानरों के शरीर क्षतविक्षत हो गए और वे पीडित हुए। वे उस महायुद्ध में अतिकाय को न रोक सके ॥४२॥

तत्सैन्यं हरिवीराणां त्रासयामास राक्षसः ।
मृगयूथमिव क्रुद्धो हरिर्यौवनदर्पितः ॥४३॥

वानर वीरों की उस सेना को उस राक्षस ने त्रस्त कर डाला। वह जवानी के मद में चूर राक्षस, क्रुद्ध हो वानरों को वैसे ही डराने लगा, जैसे सिंह मृगों के झुण्ड को डराता है ॥४३॥

स राक्षसेन्द्रो हरिसैन्यमध्ये
नायुध्यमानं निजघान कश्चित् ।

उपेत्य रामं सधनुः कलापी[1]
सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे ॥४४॥

उस राक्षसेन्द्र अतिकाय ने वानरी सेना में से ऐसे एक भी बंदर को न मारा, जो उसके साथ लड़ने नहीं गया। वीरवर अतिकाय तरकस बाँधे और धनुष लिए हुए श्रीरामचन्द्र जी के सामने जा, उनसे गर्व सहित यह बोला ॥४४॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणिः
न प्राकृतं कञ्चन योधयामि ।
यश्चास्ति कश्चिद्व्यवसाय[2] युक्तो
ददातु मे क्षिप्रमिहाद्य युद्धम् ॥४५॥

देखो, मैं रथ पर सवार हूँ और मेरे हाथ में धनुष और बाण हैं। मैं किसी साधारण योद्धा से लड़ना नहीं चाहता। यदि किसी में मेरे साथ लड़ने का साहस हो तो, वह शीघ्र आकर मुझसे लड़े ॥४५॥

तत्तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य
चुकोप सौमित्रिरमित्रहन्ता ।
अमृष्यमाणश्च समुत्पपात
जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा ॥४६॥

राक्षस अतिकाय की इस गर्वोक्ति को सुन, शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी से न रहा गया। वह मुसकाते हुए, किन्तु क्रोध में भरे, धनुष बाण हाथ में ले, उठ खड़े हुए ॥४६॥

---

१ कलापी—तूणीरवान्। ( गो० ) २ व्यवसायः—उत्साहः। ( गो० )

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्य तूणादाक्षिप्य सायकम् ।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥४७॥

क्रोध में भरे लक्ष्मण जी ने खड़े होते ही तरकस से बाण खींच लिया और अतिकाय के सामने ही अपने विशालधनुष को टकोरा ॥४७॥

[ टिप्पणी—जैसे पहलवान लोग कुश्ती लड़ते समय ताल ठोंक कर अपने प्रतिद्वन्द्वी को उत्तेजित करते हैं, वैसे ही धनुर्धारियों के युद्ध में, धनुर्धारी वीर शत्रु को उत्तेजित कर धनुष की प्रत्यंचा को खींच कर उसे खाली छोड़ देते थे। ऐसा करने से उसमें से शब्द होता था। उसीको टंकोर या टंकार कहते हैं। ]

पूरयन् स महीं शैलानाकाशं सागरं दिशः ।
ज्याशब्दो लक्ष्मणस्योग्रस्त्रासयन् रजनीचरान् ॥४८॥

उस टंकोर के शब्द से सारी पृथिवी, पहाड़, आकाश, सागर और दसों दिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। लक्ष्मण को प्रचण्ड धनुषटंकोर से समस्त राक्षस भयभीत हो गए ॥४८॥

सौमित्रेश्चापनिर्घोषं श्रुत्वा [१]प्रतिभयं तदा ।
विसिष्मिये महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥४९॥

लक्ष्मण जी के धनुष की भयङ्कर टंकोर को सुन, महातेजस्वी एवं वीर रावणपुत्र अतिकाय को आश्चर्य हुआ ॥४९॥

अथातिकायः कुपितो दृष्ट्वा लक्ष्मणमुत्थितम् ।
आदाय निशितं बाणमिदं वचनमब्रवीत् ॥५०॥

अतिकाय ने लक्ष्मण जी को युद्ध करने को खड़े होते देख, क्रुद्ध हो, पैने बाण (तरकस से) निकाल, (लक्ष्मण जी से) कहा ॥५०॥

---

१ प्रतिभयं भयङ्कर। (गो०)

बालस्त्वमसि सौमित्रे विक्रमेष्वविचक्षणः ।
गच्छ किं कालसदृशं मां योधयितुमिच्छसि ॥५१॥

हे सौमित्रे ! तू अभी बालक है। तू युद्धविद्या में निपुण नहीं है। मुझ काल सदृश के साथ तू क्यों लड़ना चाहता है ! ॥५१॥

न हि मद्बाहुसृष्टानामस्त्राणां हिमवानपि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिक्षमथो मही ॥५२॥

मेरे छोड़े हुए बाणों के वेग को हिमालय पर्वत, आकाश और पृथिवी—कोई भी नहीं सह सकता ॥५२॥

सुखप्रसुप्तं कालाग्निं निबोधयितुमिच्छसि ।
न्यस्य चापं निवर्तस्व मा प्राणाञ्जहि मद्गतः ॥५३॥

सो तू सुख से सोई हुई प्रलयकालीन आग को क्यों भड़काता है ? धनुष त्याग कर लौट जा, मुझसे भिड़ कर अपने प्राण मत खो ॥५३॥

अथवा त्वं [1]प्रतिष्टब्धो न निवर्तितुमिच्छसि ।
तिष्ठ प्राणान् परित्यज्य गमिष्यसि यमक्षयम् ॥५४॥

अथवा यदि तू मेरा सामना ही करना चाहता है और लौट कर जाना नहीं चाहता, तो खड़ा रह। तू शीघ्र ही प्राण त्याग कर, यमालय को जायगा ॥५४॥

पश्य मे निशितान् बाणानरिदर्पनिषूदनान् ।
[2]ईश्वरायुधसङ्काशांस्तप्तकाञ्चनभूषणान् ॥५५॥

---

१ प्रतिष्टब्धः—प्रतिमुखंस्थितः (गो०) २ ईश्वरायुधं—त्रिशूलं । (गो०)

मेरे इन शत्रुहन्ता और शत्रु-दर्प-दलन-कारी पैने बाणों को देख ले, जो शिव जी के त्रिशूल के समान भयङ्कर हैं और सुवर्ण से भूषित हैं ॥५५॥

एष ते सर्पसङ्काशो बाणः पास्यति शोणितम् ।
मृगराज इव क्रुद्धो नागराजस्य शोणितम् ।
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरं धनुषि सन्दधे ॥५६॥

मेरा यह साँप के समान बाण तेरा रक्त उसी प्रकार पावेगा, जिस प्रकार क्रुद्ध सिंह, गजेन्द्र का रक्त पीता है। यह कह कर, उसने वह बाण अपने धनुष पर रखा ॥५६॥

श्रुत्वाऽतिकायस्य वचः सरोषं
सगर्वितं संयति राजपुत्रः ।
स सञ्चुकोपातिबलो बृहच्छ्रीः
उवाच वाक्यं च ततो महार्थम् ॥५७॥

युद्धभूमि में अतिकाय के रोषभरे और गर्वीले इन वचनों को सुन, अति बलवान एवं अत्यन्त कान्तिवान् राजकुमार लक्ष्मण ने रोष में भर, उससे अर्थयुक्त ये वचन कहे ॥५७॥

न वाक्यमात्रेण भवान्प्रधानो
न [1]कत्थनात्सत्पुरुषा[2] भवन्ति ।
मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ
निदर्शय स्वात्मबलं दुरात्मन् ॥५८॥

१ कत्थनात्—आत्मश्लाघनात् (गो०) २ सत्पुरुषाः—शूरपुरुषा। (गो०)

'अरे दुष्ट! न सो तू केवल कह देने से बड़ा हो सकता है और न आत्मश्लाघा करने से कोई शूरवीर ही कहला सकता है। मैं धनुष और बाण लिये तेरे सामने खड़ा हूँ। अब तू अपना पराक्रम दिखलाता क्यों नहीं ॥५८॥

**कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि ।**
**पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥५९॥**

बहुत सी अपनी बड़ाई न कर के कुछ कर के अपना बल पौरुष दिखला। क्योंकि जो पुरुषार्थी होता है वही शूरवीर कहलाता है ॥५९॥

**सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः ।**
**शरैर्वा यदि वाऽप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥६०॥**

तेरे पास सब प्रकार के आयुध हैं, तू धनुर्धर भी है और रथ पर सवार है। सो चाहे धनुष बाण से अथवा अन्य किसी आयुध से (जिसमें तू दक्ष हो) अपना बल पराक्रम दिखला ॥६०॥

**ततः शिरस्ते निशितैः पातयिष्याम्यहं शरैः ।**
**मारुतः कालसंपक्वं [1]वृन्ताचालफलं यथा ॥६१॥**

पीछे से तो मैं अपने पैने बाणों से तेरा सिर काट कर वैसे ही गिराऊँगा ही, जैसे हवा पके हुए ताल फल को गुच्छे से गिराती है ॥६१॥

**अद्य ते मामका बाणास्तप्तकाञ्चनभूषणाः ।**
**पास्यन्ति रुधिरं गात्राद्बाणशल्यान्तरोत्थितम् ॥६२॥**

---

१ वृन्तात्—प्रसवबन्धनात्। (गो०)

आज मेरे सुवर्णभूषित बाण तेरे शरीर को भेद कर, घावों से लोहू निकाल कर पीयेंगे ॥६२॥

बालोऽयमिति विज्ञाय न माऽवज्ञातुमर्हसि ।
बालो वा यदि वा वृद्धो मृत्युं जानीहि संयुगे ॥६३॥

लड़का जान कहीं मुझे तुच्छ मत समझ लेना। मुझे चाहे तू बालक समझ या बूढ़ा, किन्तु तू आज मारा मेरे ही हाथ से जायगा ॥६३॥

बालेन विष्णुना लोकास्त्रयः क्रान्तास्त्रिभिः क्रमैः ।
इत्येवमुक्त्वा संक्रुद्धः शरान् धनुषि सन्दधे ॥६४॥

देख, विष्णु, बालक ही थे, जिन्होंने तीन पैर से तीनों लोक नाप डाले थे। यह कह क्रोध में भर लक्ष्मण जी ने कुपित हो अपने धनुष पर बाण रखे ॥६४॥

लक्ष्मणस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ।
अतिकायः प्रचुक्रोध बाणं चोत्तममाददे ॥६५॥

उधर लक्ष्मण जी के युक्तियुक्त और अर्थपूरित वचनों को सुन, अतिकाय मारे क्रोध के आगबबूला हो गया और एक सर्वोत्तम बाण निकाला ॥६५॥

ततो विद्याधरा भूता देवा दैत्या महर्षयः ।
गुह्यकाश्च महात्मानस्तद्युद्धं द्रष्टुमागमन् ॥६६॥

इतने में विद्याधर, भूत, देवता दैत्य, महर्षि गुह्यक तथा महात्मा लोग, लक्ष्मण और अतिकाय के उस युद्ध को देखने के लिए ( वहाँ ) इकट्ठे हो गए ॥६६॥

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥६७॥

उधर अतिकाय ने क्रुद्ध हो अपने धनुष पर वह बाण रख ऐसे वेग से छोड़ा, मानों अपने और लक्ष्मण के बीच के अन्तर को छोटा कर डाला हो। (अर्थात् दूरी होने पर भी, तेजी के कारण, उस बाण को लक्ष्मण तक पहुँचने में देर न लगी ॥६७॥

तमापतन्तं निशितं शरमाशीविषोपमम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥६८॥

पर शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी ने बिषधर सर्प की तरह उस भयंकर बाण को अर्धचन्द्राकार बाण से काट गिराया ॥६८॥

तं निकृत्तं शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोरगम् ।
अतिकायो भृशं क्रुद्धः पञ्च बाणान् समाददे ॥६९॥

जिस तरह गरुड़ किसी विशाल सर्प के टुकड़े टुकड़े कर डालते हैं, उसी तरह अपने उस बाण के टुकड़े हुए देख, अतिकाय बड़ा कुपित हुआ और इस बार उसने एक साथ पाँच बाण छोड़े ॥६९॥

ताञ्शरान् संप्रचिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
तानप्राप्ताञ्शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भरतानुजः ॥७०॥

जब अतिकाय ने लक्ष्मण के ऊपर वे पाँच बाण छोड़े, तब वे लक्ष्मण जी के पास तक पहुँचने भी न पाए कि, उन्होंने बीच ही में उन पाँचों को काट कर गिरा दिआ ॥७०॥

स ताञ्छित्त्वा शरैस्तीक्ष्णैर्लक्ष्मणः परवीरहा ।
आददे निशितं बाणं ज्वलन्तमिव तेजसा ॥७१॥

शत्रुघाती लक्ष्मण ने अपने पैने बाणों से उन समस्त बाणों को काट कर, एक अत्यन्त पैना और अग्नि की तरह चमचमाता हुआ बाण निकाला ॥७१॥

तमादाय धनुःश्रेष्ठे योजयामास लक्ष्मणः ।
विचकर्ष च वेगेन विससर्ज च वीर्यवान् ॥७२॥

फिर उसे महाबली लक्ष्मण जी ने अपने श्रेष्ठ धनुष पर रखा और धनुष की डोरी को कान तक खींच उसे छोड़ा ॥७२॥

पूर्णायतविसृष्टेन शरेण नतपर्वणा ।
ललाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स वीर्यवान् ॥७३॥

पूरी तरह तान कर छोड़ा हुआ और झुकी हुई गाँठों वाला वह बाण, लक्ष्मण जी ने उसके माथे में मारा ॥७३॥

स ललाटे शरो मग्नस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
ददृशे शोणितेनाक्तः पन्नगेन्द्र इवाचले ॥७४॥

वह बाण उस भीमपराक्रमी राक्षस के मस्तक में घुस गया। उस समय वह बाण ऐसा जान पड़ा, मानों रुधिर में सना साँप पर्वत में घुसा हो ॥७४॥

राक्षसः प्रचकम्पे च लक्ष्मणेषुप्रपीडितः ।
रुद्रबाणहतं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥७५॥

जैसे पूर्वकाल में शिव जी के भयङ्कर बाण से त्रिपुरासुर के पुर का बाहिरी फाटक काँप उठा था, वैसे ही लक्ष्मण जी के बाण से अतिकाय अत्यन्त पीड़ित हो काँप उठा ॥७५॥

चिन्तयामास चाश्वास्य विमृश्य च महाबलः ।
साधु बाणनिपातेन श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः ॥७६॥

तदनन्तर महाबलवान् अतिकाय क्षण भर में सावधान हो मन ही मन कुछ सोच कर और आगे का अपना कर्त्तव्य निश्चित कर, बोला—शाबाश ! बाण मारे तो ऐसा । लक्ष्मण । तू मेरा शत्रु होने पर भी सराहने योग्य है ॥७६॥

विधायैवं विनम्यास्यं नियम्य च भुजावुभौ ।
स रथोपस्थमास्थाय रथेन प्रचचार ह ॥७७॥

लक्ष्मण जी की इस प्रकार प्रशंसा कर और मुँह बाय तथा दोनों भुजाओं को झुका कर, अपने रथ पर सवार वह समरभूमि में घूमने लगा ॥७७॥

एकं तीन् पञ्च सप्तेति सायकान् राक्षसर्षभः ।
आददे सन्दधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥७८॥

फिर अतिकाय एक, तीन, पाँच और सात बाणों को एक साथ धनुष पर रख और धनुष के रोदे को कान तक खींच, उन बाणों को छोड़ने लगा ॥७८॥

ते बाणाः कालसङ्काशा राक्षसेन्द्रधनुश्च्युताः ।
हेमपुङ्खा रविप्रख्याश्चक्रुर्दीप्तमिवाम्बरम् ॥७९॥

राक्षसेन्द्र अतिकाय के धनुष से छूटे हुए काल के समान, सुवर्ण पुङ्ख वाले वे बाण, सूर्य की तरह आकाश को प्रकाशित सा करते हुए चले ॥७९॥

ततस्तान् राक्षसोत्सृष्टाञ्शरौघान् राघवानुजः ।
असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥८०॥

तब अतिकाय के छोड़े उन बाणों को देख कर, लक्ष्मण जी ज़रा भी न घबड़ाए और बहुत से पैने बाण छोड़ कर, उन सब को काट डाला ॥८०॥

ताञ्शरान् युधि संप्रेक्ष्य निकृत्तान रावणात्मजः ।
चुकोप त्रिदशेन्द्रारिर्जग्राह निशितं शरम् ॥८१॥

रावणपुत्र अतिकाय ने अपने उन बाणों को युद्धभूमि में कटा हुआ देख, बड़ा क्रोध किया और उन इन्द्रशत्रु ने एक बड़ा पैना बाण निकाला ॥८१॥

स सन्धाय महातेजास्तं बाणं सहसोत्सृजत् ।
ततः सौमित्रिमायान्तमाजघान स्तनान्तरे ॥८२॥

उस महातेजस्वी राक्षस ने उस बाण को धनुष पर रख, अचानक छोड़ दिया। वह बाण आकर लक्ष्मण जी की छाती में लगा ॥८२॥

अतिकायेन सौमित्रिस्ताडितो युधि वक्षसि ।
सुस्राव रुधिरं तीव्रं मदमत्त इव द्विपः ॥८३॥

इस लड़ाई में अतिकाय के चलाए उस बाण के लक्ष्मण जी की छाती में लगने से, वैसे ही रक्त बहने लगा, जैसे मतवाले हाथी के मस्तक से मद बहता है ॥८३॥

स चकार तदाऽऽत्मानं विशल्यं सहसा विभुः ।
जग्राह च शरं तीक्ष्णमस्त्रेणापि[1] च सन्दधे ॥८४॥

---

१ अस्त्रेण—अस्त्रमंत्रेण । (गो०)

लक्ष्मण जी ने वह बाण छाती से तुरंत खींच कर फेंक दिया। तदनन्तर एक तीक्ष्ण बाण निकाल और मंत्र पढ़ उसे धनुष पर रखा ॥८४॥

**आग्नेयेन तदाऽऽस्त्रेण योजयामास सायकम् ।**
**स जज्वाल तदा बाणो धनुष्यस्य महात्मनः ॥८५॥**

उस बाण को आग्नेयास्त्र के मंत्र से अभिमन्त्रित कर और उसे धनुष पर रख कर छोड़ा। जिस समय उन्होंने वह बाण छोड़ा, उस समय बाण और धनुष दोनों से प्रज्ज्वलित अग्नि की लपटें निकलीं ॥८५॥

**अतिकायोऽपि तेजस्वी सौरमस्त्रं समादधे ।**
**तेन बाणं भुजङ्गाभं हेमपुङ्खमयोजयत् ॥ ८६॥**

आग्नेयास्त्र को आते देख, अतिकाय ने सुवर्णपुङ्ख वाला सर्पाकार बाण निकाल और उसे सौर्यास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर छोड़ा ॥८६॥

**तदस्त्रं ज्वलितं घोरं लक्ष्मणः शरमाहितम् ।**
**अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥८७॥**

जिस प्रकार यमराज कालदण्ड को चलाते हैं, उसी प्रकार लक्ष्मण जी ने दिव्यास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर, वह बाण अतिकाय पर चलाया ॥८७॥

**आग्नेयेनाभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ।**
**उत्ससर्ज तदा बाणं दीप्तं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥८८॥**

आग्नेयास्त्र को अपने ऊपर आते देख, अतिकाय ने चमचमाता सूर्यास्त्र छोड़ा ॥८८॥

तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
तेजसा संप्रदीप्ताग्रौ क्रुद्धाविव भुजङ्गमौ ॥८९॥

वे दोनों दिव्यास्त्र आकाश में जा आपस में ऐसे भिड़ गए, मानों दो क्रुद्ध सर्प आपस में लड़ रहे हों। दोनों ही बाण तेज के प्रभाव से प्रदीप्त थे और बड़े उग्र थे ॥८९॥

तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ।
निरर्चिषौ भस्मकृतौ न भ्राजेते शरोत्तमौ ॥९०॥

वे दोनों ही बाण एक दूसरे को भस्म कर, पृथिवी पर गिर पड़े। जल जाने के कारण उन दोनों श्रेष्ठ बाणों की तेजी और चमक जाती रही ॥९०॥

ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वस्त्रमैषीकमुत्सृजत् ।
तत्प्रचिच्छेद सौमित्रिरस्त्रेणैन्द्रेण वीर्यवान् ॥९१॥

अब अतिकाय ने क्रुद्ध त्वाष्ट्रऐषिकास्त्र चलाया। इसको बलवान लक्ष्मण जी ने ऐन्द्रास्त्र चला कर काट डाला ॥९१॥

ऐषीकं निहतं दृष्ट्वा रुषितो रावणात्मजः ।
याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ॥९२॥

ऐषीक को नष्ट हुआ देख, अतिकाय रोष में भर गया और उसने एक बाण निकाल, उसे यमास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित किया ॥९२॥

ततस्तदस्त्रं चिक्षेप लक्ष्मणाय निशाचरः ।
वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥९३॥

फिर राक्षस ने उस अस्त्र को लक्ष्मण जी के ऊपर छोड़ा। उस यमास्त्र को लक्ष्मण जी ने वायव्यास्त्र से नष्ट कर डाला ॥९३॥

अथैनं शरधाराभिर्धाराभिरिव तोयदः ।
अभ्यवर्षत् सुसंक्रुद्धो लक्ष्मणो रावणात्मजम् ॥९४॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने क्रोध में भर अतिकाय के ऊपर उसी प्रकार बाण बरसाए, जिस प्रकार मेघ जल बरसाते हैं ॥९४॥

तेऽतिकायं समासाद्य कवचे वज्रभूषिते ।
भग्नाग्रशल्याः सहसा पेतुर्बाणा महीतले ॥९५॥

किन्तु अतिकाय के हीरों के जड़ाऊ कवच पर टकरा टकरा कर, उन बाणों की नोंकें टूट गईं और वे भूमि पर गिर पड़े ॥९५॥

तान्मोघानभिसंप्रेक्ष्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अभ्यवर्षत् शरेषूणां सहस्रेण महायशाः ॥९६॥

शत्रुहन्ता एवं महायशस्वी लक्ष्मण जी ने उन समस्त बाणों को निष्फल गए देख, एक साथ एक सहस्र बड़े बड़े बाण अति काय पर छोड़े ॥९६॥

स वृष्यमाणो बाणौघैरतिकायो महाबलः ।
अवध्यकवचः संख्ये राक्षसो नैव विव्यथे ॥९७॥

किन्तु अभेद्य कवच पहिने रहने के कारण महाबली अतिकाय इस युद्ध में उस बाणवृष्टि से तनिक भी व्यथित न हुआ ॥९७॥

शरं चाशीविषाकारं लक्ष्मणाय व्यपासृजत् ।
स तेन विद्धः सौमित्रिः मर्मदेशे शरेण ह ॥९८॥

बल्कि उसने विषधर सर्प की तरह लक्ष्मण जी पर बाण छोड़े; जिनसे लक्ष्मण जी के मर्मस्थल विध गए ॥९८॥

मुहूर्तमात्रं निःसंज्ञोऽभवच्छत्रुतापनः ।
ततः संज्ञामुपालभ्य चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥९९॥

एक मुहूर्त भर के लिए शत्रु को सन्तप्त करने वाले लक्ष्मण जी मूर्च्छित हो गए। तदनन्तर सचेत हो, चार उत्तम बाण चला ॥९९॥

निजघान हयान् संख्ये सारथिं च महाबलः ।
ध्वजस्योन्मथनं कृत्वा शरवर्षैररिन्दमः ॥१००॥

महाबली लक्ष्मण जी ने उस युद्ध में अतिकाय के रथ के घोड़ों को और उसके सारथी को मार डाला। शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी ने बाणों की वर्षा कर उसके रथ की ध्वजा के टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥१००॥

असम्भ्रान्तः स सौमित्रिः तान् शरानभिलक्षितान् ।
मुमोच लक्ष्मणो बाणान् वधार्थं तस्य रक्षसः ॥१०१॥

लक्ष्मण जी अतिकाय का वध करने के लिए बड़ी सावधानी से निशाना ताक ताक कर बाण छोड़ रहे थे ॥१०१॥

न शशाक रुजं कर्तुं युधि तस्य नरोत्तमः ।
अथैनमभ्युपागम्य वायुर्वाक्यमुवाच ह ॥१०२॥

किन्तु लक्ष्मण जी इस बाणवर्षा से जब अतिकाय का बाल भी बाँका न कर सके; तब पवन देवता ने उनके पास जा कर कहा ॥१०२॥

ब्रह्मदत्तवरो ह्येष अवध्यकवचावृतः ।
ब्राह्मेणास्त्रेण भिन्ध्येनमेष वध्यो हि नान्यथा ।
अवध्य एष ह्यन्येषामस्त्राणां कवची बली ॥१०३॥

इसका ब्रह्मा जी का बरदान है और यह अभेद्य कवच पहिने हुए है। अतः तुम ब्रह्मास्त्र से इसका वध करो। अन्य किसी अस्त्र से तुम इसे नहीं मार सकोगे। क्योंकि यह अभेद्य कवच पहिने हुए है और बड़ा बलवान भी है ॥१०३॥

ततस्तु वायोर्वचनं निशम्य
सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानवीर्यः।
समाददे बाणममोघवेगं
तद्ब्राह्ममस्त्रं सहसा नियोज्य ॥१०४॥

इन्द्र के समान बल पराक्रम से युक्त लक्ष्मण जी ने पवनदेव के वचन सुन, एक बाण निकाल उसे ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित किया और उस अमोघ वेगवान बाण को धनुष पर रखा ॥१०४॥

तस्मिन् महास्त्रे तु नियुज्यमाने
सौमित्रिणा बाणवरे शिताग्रे।
दिशश्च चन्द्रार्कमहाग्रहाश्च
नभश्च तत्रास चचाल चोर्वी ॥१०५॥

जब लक्ष्मण ने इस श्रेष्ठ और तीखे महास्त्र बाण को धनुष पर रखा, तब समस्त दिशाएँ, चन्द्र, सूर्य, बड़े बड़े ग्रह और पृथिवी हिल गई ॥१०५॥

तं ब्रह्मणोऽस्त्रेण नियोज्य चापे
शरं सुपुङ्खं यमदूतकल्पम्।
सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य
ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥१०६॥

लक्ष्मण जी ने यमदूत और वज्र के समान वहीं पैनी फोंक वाला बाण ब्रह्मास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर, इन्द्रशत्रु रावणात्मज अतिकाय के ऊपर छोड़ा ॥१०६॥

तं लक्ष्मणोत्सृष्टममोघवेगं
समापतन्तं ज्वलनप्रकाशम् ।
सुवर्णवज्रोत्तमचित्रपुङ्खं
तदातिकायः समरे ददर्श ॥१०७॥

सुवर्णमय. हीरे की नोकवाला और पवन के समान वेगवान् उस अस्त्र को जिसे लक्ष्मण जी ने छोड़ा था, समरभूमि में अतिकाय ने अपने ऊपर आते हुए देखा ॥१०७॥

तं प्रेक्षमाणः सहसाऽतिकायो
जघान बाणैर्निशितैरनेकैः ।
स सायकस्तस्य सुपर्णवेगः
तदातिकायस्य जगाम पार्श्वम् ॥१०८॥

उसको अपनी ओर आते देख, अतिकाय ने बड़े बड़े पैने अनेक तीरों से उसको काट कर नष्ट करना चाहा, किन्तु वह अस्त्र नष्ट न होकर गरुड़ की तरह बड़े वेग से अतिकाय के समीप जा पहुँचा ॥१०८॥

तमागतं प्रेक्ष्य तदाऽऽतिकायो
बाणं प्रदीप्तान्तककालकल्पम् ।
जघान शक्त्यृष्टिगदाकुठारैः
शूलैर्हुलैश्चाप्यविपन्नचेताः ॥१०९॥

तब तो अतिकाय मृत्यु समान, प्रदीप्त बाण को अपने निकट आया देख, शक्ति, लोहे के डंडे, गदा, कुठार, शूल और बाणों से उसे नष्ट करने का यत्न करने लगा, किन्तु उसके सब प्रयत्न वृथा हुए ॥१०६॥

तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि
मोघानि कृत्वा स शरोऽग्निदीप्तः ।
प्रगृह्य तस्यैव किरीटजुष्टं
ततोऽतिकायस्य शिरो जहार ॥११०॥

परन्तु उस अग्नि के समान प्रदीप्त बाण ने उन समस्त अद्भुत आयुधों को विफल कर के, अतिकाय का किरीटशोभित मस्तक काट डाला ॥११०॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषुप्रपीडितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृङ्गं हिमवतो यथा ॥१११॥

लक्ष्मण जी के बाण चलाने से कटा हुआ उसका सिर मय पगड़ी के सहसा जमीन पर गिर पड़ा, मानों हिमाचल का शृङ्ग टूट कर गिरा हो ॥१११॥

तं तु भूमौ निपतितं दृष्ट्वा विक्षिप्तभूषणम् ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हतशेषा निशाचराः ॥११२॥

मरने से बचे हुए समस्त राक्षस उस वीर अतिकाय को पृथिवी पर गिरा हुआ देख तथा उसके आभूषणों को बिखरे हुए देख अत्यन्त दुःखी हुए ॥११२॥

ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः ।
विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥११३॥

वानरों के प्रहार से शिथिल, उदासमुख और दीन हो वे राक्षस सहसा उच्च स्वर से विकट चीत्कार कर चिल्लाने लगे ॥११३॥

ततस्ते त्वरितं याता निरपेक्षा[1] निशाचराः ।
पुरीमभिमुखा भीता द्रवन्तो नायके हते ॥११४॥

अपने सेनानायक के मारे जाने पर, वे राक्षस युद्ध छोड़ और भयभीत हो, शीघ्रतापूर्वक लंका की ओर भागे ॥११४॥

प्रहर्षयुक्ता बहवस्तु वानराः
प्रबुद्धपद्मप्रतिमाननास्तदा ।
अपूजयँल्लक्ष्मणमिष्टभागिनं[2]
हते रिपौ भीमबले दुरासदे ॥११५॥

भयङ्कर और दुर्धर्ष राक्षस के मारे जाने पर वानर लोगों के हर्ष की सीमा न रहा। उनके मुखमण्डल कमल की तरह प्रसन्नता से खिल उठे। अतिकाय के मारने के लिये, उन्होंने लक्ष्मण की बड़ी प्रशंसा की ॥११५॥

[ अतिबलमतिकायमभ्रकल्पं
युधि विनिपात्य स लक्ष्मणः प्रहृष्टः ।
त्वरितमथ तदा स रामपार्श्वं
कपिनिवहैश्च सुपूजितो जगाम ॥११६॥

इति एकसप्ततितमः सर्गः ॥

१ निरपेक्षाः—युद्धानपेक्षाः। ( गो० ) २ इष्टभागिनं—इष्टमतिकायवधं प्राप्तं ( रा० )

मेघ के समान विशालकाय एवं अमितबलशाली अतिकाय को युद्ध में परास्त कर, लक्ष्मण जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कपिवाहिनी द्वारा प्रशंसित हो, वे तुरन्त श्रीराम जी के पास चले गए ॥११६॥

युद्धकाण्ड का एकहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## द्विसप्ततितमः सर्गः

—❀—

अतिकायं हतं श्रुत्वा लक्ष्मणेन महौजसा ।
उद्वेगमगमद्राजा वचनं चेदमब्रवीत् ॥१॥

महाबलवान् लक्ष्मण जी के हाथ से अतिकाय का मारा जाना सुन, राक्षसराज रावण विकल हुआ और यह बोला ॥१॥

धूम्राक्षः परमामर्षी धन्वी शस्त्रभृतां वरः ।
अकम्पनः प्रहस्तश्च कुम्भकर्णस्तथैव च ॥२॥

धूम्राक्ष शत्रु के प्रहार को कभी सहने वाला न था और शस्त्र चलाने वालों में श्रेष्ठ था; अकम्पन, प्रहस्त और कुम्भकर्ण ॥२॥

एते महाबला वीरा राक्षसा युद्धकाङ्क्षिणः ।
जेतारः परसैन्यानां परैर्नित्यापराजिताः ॥३॥

ये समस्त ही बड़े बलवान, वीर और सदा शत्रु से लड़ने की आकांक्षा रखने वाले राक्षस थे। ये शत्रुसेना को जीतने वाले थे किन्तु शत्रु से कभी परास्त होने वाले न थे ॥३॥

निहतास्ते महावीर्या रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
राक्षसाः सुमहाकाया नानाशस्त्रविशारदाः ॥४॥

किन्तु महावीर्यवान ये सब के सब अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से मार डाले गए। बड़े बड़े डीलडौल के राक्षस जो विविध प्रकार के शस्त्र चलाने में निपुण थे ॥४॥

अन्ये च बहवः शूरा महात्मानो निपातिताः ।
प्रख्यातबलवीर्येण पुत्रेणेन्द्रजिता मम ॥५॥

तथा अन्य बहुत से शूरवीर राक्षसों को भी महाबलवान श्रीरामचन्द्र ने मार कर गिरा दिआ। प्रसिद्ध बलवान और वीर्य-वान् मेरे पुत्र इन्द्रजीत ने ॥५॥

यौ हि तौ भ्रातरौ वीरौ बद्धौदत्तवरैः शरैः ।
यन्न शक्यं सुरैः सर्वैरसुरैर्वा महाबलैः ॥६॥

मोक्तुं तद्बन्धनं घोरं यक्षगन्धर्वकिन्नरैः ।
तन्न जाने [1]प्रभावैर्वा [2]मायया [3]मोहनेन वा ॥७॥

उन दोनों बीर भाइयों को, वरदान में प्राप्त भयङ्कर बाणपाश में बाँध लिआ था। उन बाणों के भयङ्कर बन्धन से सारे देव-ताओं और असुरों में से तथा यक्षों, गन्धर्वों और किन्नरों में से कोई भी उन्हें नहीं छुड़ा सकता था, किन्तु समझ में नहीं आता, किस शक्ति से अथवा जादू से अथवा किस औषधोपचार से ॥६॥७॥

---

१ प्रभावः—सामर्थ्यं। (गो०) २ माया—व्यामोहकारिणी विद्या। (गो०) ३ मोहनं—औषधादिकं। (गो०)

शरबन्धाद्विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
ये योधा निर्गताः शूरा राक्षसा मम शासनात् ॥८॥

वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण उस शरबन्धन से मुक्त होगये। मेरी आज्ञा से जो जो वीर योद्धा युद्धभूमि में गए ॥८॥

ते सर्वे निहता युद्धे वानरैः सुमहाबलैः ।
तं न पश्याम्यहं युद्धे योऽद्य रामं सलक्ष्मणम् ॥९॥

वे सब के सब अत्यन्त बलवान वानरों द्वारा लड़ाई में मार डाले गए। (अपने यहाँ) अब मैं ऐसा किसी को नहीं पाता जो युद्ध में राम और लक्ष्मण को ॥९॥

शासयेत् सबलं वीरं ससुग्रीवविभीषणम् ।
अहो नु बलवान् रामो महदस्त्रबलं च वै ॥१०॥

सारी वानरी सेना और वीर सुग्रीव एवं विभीषण सहित परास्त करे या मार डाले। वाह! (सचमुच) श्रीरामचन्द्र बड़े बलवान हैं और उनका अस्त्रबल भी अति प्रबल है ॥१०॥

यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताः ।
तं मन्ये राघवं वीरं नारायणमनामयम् ॥११॥

क्योंकि उनके उसी पराक्रम के सहारे तो इतने राक्षस मारे जा चुके हैं। अतएव मैं उन वीर श्रीरामचन्द्र जी को षड्विकाररहित साक्षात् नारायण ही समझता हूँ ॥११॥

तद्भयाद्धि पुरी लङ्का पिहितद्वारतोरणा ।
अप्रमत्तैश्च सर्वत्र गुप्तै रक्ष्या पुरी त्वियम् ॥१२॥

[टिप्पणी—इसी का नाम होनी है। रावण को जब श्रीरामचन्द्र जी के स्वरूप का ज्ञान पूर्णरूप से हो गया, तब भी उसने विभीषण के सुझाव के अनुसार सीता को लौटा अपने दुष्कर्म के लिए क्षमायाचना नहीं की। ठीक ही है जिसके सिर पर काल खेलता है—उसे बीच बीच में यथार्थ ज्ञान होने पर भी वह विपरीत कार्यों ही में लिप्त रहता है।]

उनके भय से इस पुरी के समस्त फाटक बन्द हैं। (अर्थात् शत्रुसैन्य घेरा डाले पड़ी है) इस समय सर्वत्र इस पुरी की रक्षा बड़ी सावधानी से करनी चाहिए ॥१२॥

अशोकवनिकायां च यत्र सीताऽभिरक्ष्यते ।
[१]निष्क्रामो वा प्रवेशो वा ज्ञातव्यः सर्वथैव नः ॥१३॥

जहाँ पर सीता है, वहाँ उस अशोकवाटिका की भी भलीभाँति रक्षा करनी चाहिए। वहाँ मेरी आज्ञा बिना न तो किसी को जाने दो और न वहाँ से किसी को निकलने दो ॥१३॥

यत्र यत्र भवेद्गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः ।
सर्वतश्चापि तिष्ठध्वं स्वैः स्वैः परिवृता बलैः ॥१४॥

जहाँ जहाँ मेरे गुल्म (चौकियाँ) अथवा दुर्ग हैं वहाँ वहाँ की देखभाल बार बार करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त नगरी के चारों ओर तुम लोग अपनी अपनी अधीनस्थ सेना लेकर सदा लड़ने को तैयार खड़े रहो ॥१४॥

द्रष्टव्य च पदं तेषां वानराणां निशाचराः ।
प्रदोषे वार्धऽरात्रे वा प्रत्यूषे वाऽपि सर्वतः ॥१५॥

[ टिप्पणी—गुल्म, प्रधान पुरुषों से युक्त रक्षकों का दल, जिसमें ९ हाथी, ९ रथ, २७ घोड़े और ४५ पैदल हों। गुल्म का अर्थ दुर्ग का बुर्ज भी है।]

चाहे शाम हो, चाहे आधी रात हो, चाहे सबेरा हो राक्षसों को सर्वदा वानरों के ठहरने के स्थान पर दृष्टि रखनी चाहिए ॥१५॥

---

१ निष्क्रामो...नः—मदनुज्ञां विना न कोपि जनो निर्गमयितव्यो नापि प्रवेष्टव्य इत्यर्थः। (गो०)

नावज्ञा तत्र कर्तव्या वानरेषु कदाचन ।
द्विषतां बलमुद्युक्तमापतत् किंस्थितं सदा ॥१६॥

उन वानरों को तुच्छ कभी मत समझना। सदैव देखते रहो कि शत्रुसैन्य लड़ने को तैयार है, खड़ी है अथवा क्या कर रही है? ॥१६॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे श्रुत्वा लङ्काधिपस्य तत् ।
वचनं सर्वमातिष्ठन् यथावत्तु महाबलाः ॥१७॥

इस प्रकार लङ्कापति रावण के वचन सुन, वे सब महाबलवान राक्षस रावण के कथनानुसार कार्य करने लगे ॥१७॥

स तान् सर्वान् समादिश्य रावणो राक्षसाधिपः ।
मन्युशल्यं वहन् दीनः प्रविवेश स्वमालयम् ॥१८॥

राक्षसराज रावण उनको आज्ञा देकर और छाती में प्रदीप्त क्रोध रूप तीर सा चुभो कर, अपने अन्तःपुर में चला गया ॥१८॥

ततः स सन्दीपितकोपवह्निः
निशाचराणामधिपो महाबलः ।
तदेव पुत्रव्यसनं विचिन्तयन्
मुहुर्मुहुश्चैव तदा व्यनिःश्वसत् ॥१९॥

इति द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

महाबली राक्षसेश्वर क्रोधानल से जलता हुआ और पुत्र के मारे जाने की व्यथा को स्मरण कर, बार बार लंबी साँसें लेने लगा ॥१९॥

युद्धकाण्ड का बहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

## त्रिसप्ततितमः सर्गः

—❀—

ततो हतान् राक्षसपुङ्गवांस्तान्
देवान्तकादित्रिशिरोऽतिकायान् ।
रक्षोगणास्तत्र हतावशिष्टा-
स्ते रावणाय त्वरितं शशंसुः ॥१॥

तदनन्तर मरने से बचे बचाए राक्षसों ने, राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक, अतिकाय और त्रिशिरादि के मारे जाने का वृत्तान्त बड़ी फुर्ती से जाकर रावण से कहा ॥१॥

[टिप्पणी—इसके पूर्व रावण ने केवल इन लोगों के मारे जाने का समाचार सुना था; किन्तु इस बार उनके मारे जाने का विस्तृत वृत्तान्त लड़ाई में उपस्थित अर्थात् प्रत्यक्षदर्शी राक्षसों से सुन कर, रावण बहुत दुःखी हुआ ।]

ततो हतांस्तान् सहसा निशम्य
राजा मुमोहाश्रुपरिप्लुताक्षः ।
पुत्रक्षयं भ्रातृवधं च घोरं
विचिन्त्य राजा विपुलं[1] प्रदध्यौ ॥२॥

तब रावण उन राक्षसों के मुख से यह अशुभ संवाद सुन रोते रोते मोह को प्राप्त हो गया । तदनन्तर पुत्रवध और भ्रातृवध के लिए घोर चिन्तित हो, वह बड़े सोच विचार में पड़ गया ॥२॥

---

१ विपुलं प्रदध्यौ—अत्यन्तं विचारयामास । ( शि० )

ततस्तु राजानमुदीक्ष्य दीनं
शोकार्णवे सम्परिपुप्लुवानम् ।
रथर्षभो राक्षसराजसूनुः
तमिन्द्रजिद्वाक्यमिदं बभाषे ॥३॥

रावण को उदास और शोकसागर में डूबा हुआ देख, राक्षस राज का वीरश्रेष्ठ पुत्र इन्द्रजीत बोला ॥३॥

न तात मोहं प्रतिगन्तुमर्हसि
यत्रेन्द्रजिज्जीवति राक्षसेन्द्र ।
[ मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहाः
प्राणैर्वियुक्ताः समरे पतन्ति ] ॥४॥

हे तात ! हे राक्षसेन्द्र ! जब इन्द्रजीत जीवित है, तब आप इतने दुःखी क्यों होते हैं ? आप देखना आपके शत्रु मेरे छोड़े हुए बाणों से क्षतविक्षत शरीर हो और मर कर युद्धभूमि में गिरेंगे ॥४॥

नेन्द्रारिबाणाभिहतो हि कश्चित्
प्राणान् समर्थः समरेऽभिपातुम् ।
पश्याद्य रामं सह लक्ष्मणेन
मद्बाणनिर्भिन्नविकीर्णदेहम् ॥५॥

ऐसा कोई नहीं है जो युद्ध में इन्द्रशत्रु के बाणों से अपने प्राण बचा सके । आप देखना कि, आज ही लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्र के समस्त अङ्ग क्षतविक्षत हो जायँगे ॥५॥

गतायुषं भूमितले शयानं
शितैः शरैराचितसर्वगात्रम् ।
इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः
सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ॥६॥

हे इन्द्रशत्र ! आप सुनिए, मैं दैवबल और अपने पुरुषार्थ बल के सहारे यह निश्चित प्रतिज्ञा करता हूँ कि, मैं आज ही उन दोनों गतायुष राजकुमारों को बाणों से घायल कर मार डालूँगा और उन दोनों को सदा के लिए धरती पर सुला दूँगा ॥६॥

अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन
[1]सन्तर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ।
अद्येन्द्रवैवस्वतविष्णुमित्र-
साध्याश्विवैश्वानरचन्द्रसूर्याः ॥७॥

मैं अपने अमोघ ( कभी निशाना न चूकने वाले ) बाणों से आज ही राम और लक्ष्मण के सारे शरीर को चलनी कर डालूँगा। इन्द्र, यम, विष्णु रुद्र, साध्य, अग्नि, चन्द्र और सूर्य ॥७॥

द्रक्ष्यन्तु मे विक्रमप्रमेयं
विष्णोरिवोग्रं बलियज्ञवाटे ।
स एवमुक्त्वा त्रिदशेन्द्रशत्रु-
रापृच्छ्य राजानमदीनसत्त्वः ॥८॥

---

१ सन्तर्पयिष्यामि—पूरयिष्यामि । ( गो० )

मेरे वैसे अचिन्त्य पराक्रम को देख, जैसा कि, वामन ने बलि के यज्ञ में प्रदर्शित किया था। वह वीर और निर्भीक मेघनाद इस प्रकार कह और रावण से बिदा माँग ॥८॥

समारुरोहानिलतुल्यवेगं ।
रथं खरश्रेष्ठसमाधियुक्तम्[1] ॥९॥

वायु वेग के समान चलने वाले रथ पर सवार हुआ। इस रथ में बड़ी सावधानी से उत्तम उत्तम खच्चर जोते जाते थे ॥९॥

तमास्थाय महातेजा रथं [2]हरिरथोपमम् ।
जगाम सहसा तत्र यत्र युद्धमरिन्दमः ॥१०॥

वह महातेजस्वी, रावणपुत्र सूर्य के समान रथ पर सवार हो सहसा वहाँ जा पहुँचा, जहाँ शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी थे ॥१०॥

तं प्रस्थितं महात्मानमनुजग्मुर्महाबलाः ।
संहर्षमाणा बहवो धनुष्प्रवरपाणयः ॥११॥

उस महाबलवान को युद्धभूमि में जाते देख, श्रेष्ठ धनुषधारी एवं बड़े बड़े बलवान राक्षस प्रसन्न होते हुए उसके पीछे हो लिए ॥११॥

गजस्कन्धगताः केचित् केचित् प्रवरवाजिभिः ।
[व्याघ्रवृश्चिकमार्जारैः खरोष्ट्रैश्च भुजङ्गमैः ॥१२॥
वराहश्वापदैः सिंहैः जम्बुकैः पर्वतोपमैः ।
शशहंसमयूरैश्च राक्षसा भीमविक्रमाः] ॥१३॥

---

१ समाधियुक्तं—सम्माधानेनयुक्तं । (गो०) २ हरिरथ.—सूर्यरथः । (रा०)

उनमें से कोई भीम पराक्रमी राक्षस हाथियों पर, कोई कोई उत्तम घोड़ों पर, कोई कोई व्याघ्र, विच्छू, (विच्छू के आकार के बने हुए रथादि वाहन) कोई बिलावों पर, कोई गधों पर, कोई ऊँटों पर और कोई साँपों पर, कोई कोई सूअरों पर, कोई चीतों पर, कोई सिंहों पर, कोइ शृगालों पर, कोई कोई पर्वत के समान विशाल शरीरधारी खरहों, हंसों और भौंरों पर सवार होकर चले ॥ १२॥१३॥

प्रासमुद्गरनिस्त्रिंशपरश्वथगदाधराः ।
सशङ्खनिनदैः पूर्णैर्भेरीणां चापि निःस्वनैः ॥१४॥

वे हाथों में प्रास, मुद्गर, खाँड़ा, फरसा और गदा लिये हुए थे। उनकी रणयात्रा के समय शङ्ख और तुरही जोर से बजाई गई थीं ॥१४॥

जगाम त्रिदशेन्द्रारिः स्तूयमानो निशाचरैः ।
सशङ्खशिवर्णेन छत्रेण रिपुसूदनः ॥१५॥

राक्षस लोग जाते जाते इन्द्रजीत की प्रशंसा करते ( अर्थात् उसका उत्साह बढ़ाते) जाते थे। उसके ऊपर शङ्ख अथवा चन्द्रमा के समान सफेद रंग का छत्र तना हुआ था ॥१५॥

रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमसा यथा ।
अवीज्यत ततो वीरो हैमैर्हेमविभूषितैः ॥१६॥

चारुचामरमुख्यैश्च मुख्यः सर्वधनुष्मताम् ।
[ स तु दृष्ट्वा विनिर्यान्तं बलेन महता वृतम् ॥१७॥

जो वैसा ही शोभित हो रहा था, जैसा कि पूर्णिमा के चन्द्रमा से आकाश शोभित होता है। धनुषधारियों में श्रेष्ठ उस वीर

प्रधान के ऊपर सोने की डंडी के सुन्दर चँवर डुलाए जा रहे थे। उसको बड़ी भारी सेना के सहित जाते देख, ॥१६॥१७॥

राक्षसाधिपतिः श्रीमान् रावणः पुत्रमब्रवीत् ।

त्वमप्रतिरथः पुत्र त्वया वै वासवो जितः ॥१८॥

राक्षसराज श्रीमान रावण ने उस अपने पुत्र से कहा। हे बेटा! तुम बड़े शूर हो, तुम इन्द्र तक को परास्त कर चुके हो ॥१८॥

किं पुनर्मानुषं धृष्यं विहनिष्यसि राघवम् ।

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रत्यगृह्णात् महाशिषः ॥१९॥

फिर इस ढीठ मनुष्य राम की तो बिसात ही क्या है, तुम उसे (अवश्य) मारोगे। इस प्रकार रावण द्वारा उत्साहित हो, इन्द्रजीत ने अपने पिता से आशीर्वाद लिआ ॥१९॥

ततस्त्विन्द्रजिता लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ।

रराजाप्रतिवीरेण द्यौरिवार्केण भास्वता ॥२०॥

उस समय सूर्य के समान तेजस्वी अमित पराक्रमी मेघनाद से लङ्का नगरी की ऐसी शोभा हुई, जैसी चन्द्रमा से आकाश की होती है ॥२०॥

स सम्प्राप्य महातेजा युद्धभूमिमरिन्दमः ।

स्थापयामास रक्षांसि रथं प्रति समन्ततः ॥२१॥

शत्रुविजयी मेघनाद ने रणभूमि में पहुँच कर, अपने रथ के चारों ओर राक्षसों को खड़ा किआ अर्थात् एक प्रकार का व्यूह बनाया ॥२१॥

ततस्तु हुतभोक्तारं हुतभुक्सदृशप्रभः ।

जुहाव राक्षसश्रेष्ठो मन्त्रवद्विधिवत्तदा ॥२२॥

अनन्तर अग्नि के समान तेजस्वी राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजीत क्रमानुसार मंत्रों से आग जला कर उसमें हवन करने लगा ॥२२॥

स हविर्लाजसंस्कारैः१ माल्यगन्धपुरस्कृतैः ।
जुहुवे पावकं दीप्तं राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥२३॥

साफ किए हुए हवि, लावा, फूलों की माला तथा सुगन्धित पदार्थों से, प्रतापी राक्षसेन्द्र मेघनाद ने दहकते हुए अग्नि में हवन किया ॥२३॥

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतकाः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥२४॥

जहाँ पर सरपत बिछाने चाहिये, वहाँ उसने सब शस्त्र बिछाए, बहेरे की लकड़ियों की समिधाएँ बनाईं, लाल वस्त्र धारण किए और लोहे का श्रुवा लिया ॥२४॥

स तत्राग्निं समास्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः ।
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥२५॥

सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः ।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं यान्यदर्शयन् ॥२६॥

तोमर और सरपत बिछाकर उनके ऊपर उसने अग्नि रखी, फिर काले रंग के जीवित बकरे का गला पकड़ उसे जलती आग में एक बार ही छोड़ दिया। उस आग को जैसे ही आहुति दी गई वैसे ही आग धूमरहित हो प्रज्वलित हो उठा। जयसूचक जो शकुन होने चाहिए थे, वे सब उस समय प्रकट हुए ॥२५॥२६॥

१ हविर्लाजसंस्कारैः—संस्कृतहविर्लाजैः । ( गो० )

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तकाञ्चनभूषणः ।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥२७॥

विशुद्ध सुवर्ण के समान अग्निदेव ने दहिनी ओर घूमती हुई ज्वाला के साथ, अग्निकुण्ड में प्रकट हो, मेघनाद की दी हुई आहुति स्वयं ग्रहण की ॥२७॥

सोऽस्त्रमाहारयामास[1] ब्राह्ममिन्द्ररिपुस्तदा ।
धनुश्चात्मरथं चैव सर्वं तत्राभ्यमन्त्रयत् ॥२८॥

तदनन्तर इन्द्रजीत ने ब्रह्मास्त्र के मंत्र से हवन किया और अपने धनुषादि अस्त्रों को तथा रथ और कवच को भी मंत्रों से अभिमंत्रित किया ॥२८॥

तस्मिन्नाहूयमानेऽस्त्रे हूयमाने च पावके ।
सार्कग्रहेन्दुनक्षत्रं वितत्रास नभस्थलम् ॥२९॥

जब इन्द्रजीत ने ब्रह्मास्त्र का आह्वान कर, अग्नि में आहुति देनी आरम्भ की, तब सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रों के साथ आकाशमण्डल वासी भयभीत हो गए ॥२९॥

स पावकं पावकदीप्ततेजा
हुत्वा महेन्द्रप्रतिमप्रभावः ।
सचापबाणासिरथाश्वसूतः
खेऽन्तर्दधेत्मानमचिन्त्यरूपः ॥३०॥

---

१ आहारयामास—आजुहाव । ( गो० )

इन्द्र के समान अमित पराक्रमी और अग्नि के समान तेजस्वी तथा अचिन्त्य रूपवाला इन्द्रजीत अग्नि में आहुति दे, धनुषबाण खड्ग रथ, अश्व और सारथि सहित आकाश में छिप गया ॥३०॥

ततो हयरथाकीर्णं पताकाध्वजशोभितम् ।
निर्ययौ राक्षसबलं नर्दमानं युयुत्सया ॥३१॥

तदनन्तर घोड़ों, हाथियों, रथों, ध्वजाओं तथा पताकाओं से सुशोभित राक्षसी सेना सिंहनाद करती हुई लड़ने के लिए बाहिर निकली ॥३१॥

ते शरैर्बहुभिश्चित्रैः तीक्ष्णवेगैरलंकृतैः ।
तोमरैरंकुशैश्चापि वानराञ्जघ्नुराहवे ॥३२॥

वे राक्षस, वानरों के साथ युद्ध करते हुए, वानरों को विविध प्रकार के अद्भुत बाणों, पैने पैने और वेगवान् सुन्दर तोमरों तथा अङ्कुशों से मारने लगे ॥३२॥

रावणिस्तु ततः क्रुद्धः तान्निरीक्ष्य निशाचरान् ।
हृष्टा भवन्तो युध्यन्तु वानराणां जिघांसया ॥३३॥

मेघनाद अपनी सेना को लडते देख क्रोध में भर कहने लगा कि, आप सब लोग वानरों का संहार करने के लिए हर्षित होकर उनसे खूब लड़ो ॥३३॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे नर्दन्तो जयकाङ्क्षिणः ।
अभ्यवर्षंस्ततो घोरान् वानराञ्शरवृष्टिभिः ॥३४॥

विजय पाने की आशा किए हुए राक्षस यह सुनते ही वानरों के ऊपर घोर बाणवृष्टि करने लगे ॥३४॥

स तु नालीकनाराचैर्गदाभिर्मुसलैरपि ।
रक्षोभिःसंवृतः संख्ये वानरान् विचकर्त ह ॥३५॥

वह इन्द्रजीत भी ( ऊपर से ) नालिक, नाराच, गदा, मूसल आदि शस्त्रों की वृष्टि कर, राक्षसों से घेरे हुए वानरों को घायल करने लगा ॥३५॥

ते वध्यमानाः समरे वानराः पादपायुधाः ।
अभ्यद्रवन्त सहिता रावणिं रणकर्कशम् ॥३६॥

समर में मारे जाते हुए वानर भी हाथों में वृक्ष लेकर रण-कर्कश मेघनाद की राक्षसी सेना के ऊपर आक्रमण कर रहे थे ॥३६॥

इन्द्रजित्तु ततः क्रुद्धो महातेजा महाबलः ।
वानराणां शरीराणि व्यधमद्रावणात्मजः ॥३७॥

उस समय महातेजस्वी और महाबली रावणात्मज इन्द्रजीत क्रुद्ध हो वानरों के शरीर को बाणों से छिन्नभिन्न करने लगा ॥३७॥

शरेणैकेन च हरीन्नव पञ्च च सप्त च ।
चिच्छेद समरे क्रुद्धो राक्षसान् संप्रहर्षयन् ॥३८॥

वह क्रुद्ध हो युद्ध करता हुआ एक ही बाण से कभी पाँच, कभी सात और कभी नौ नौ वानरों को वेध कर, राक्षसों को हर्षित करता था ॥३८॥

स शरैः सूर्यसङ्काशैः शातकुम्भविभूषितैः ।
वानरान् समरे वीरः प्रममाथ सुदुर्जयः ॥३९॥

उस दुर्जेय वीर इन्द्रजीत ने सूर्य समान चमचमाते सुवर्णमय बाणों से वानरों का खूब संहार किया ॥३९॥

ते भिन्नगात्राः समरे वानराः शरपीडिताः ।
पेतुर्मथितसङ्कल्पाः सुरैरिव महासुराः ॥४०॥

इस युद्ध में वानर शरों के आघात से घायल और पीड़ित हो रहे थे। इस समय राक्षसों द्वारा वानरों की वैसी ही दुर्दशा हो रही थी, जैसी कि असुरों के नाश करने का सङ्कल्प किए हुए देवताओं द्वारा असुरों की हुई थी ॥४०॥

तं तपन्तमिवादित्यं घोरैर्बाणगभस्तिभिः ।
अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः संयुगे वानरर्षभाः ॥४१॥

बड़े बड़े वीर वानरयूथपति बाणरूपी किरणों से सन्तप्त करने वाले इन्द्रजीतरूपी सूर्य के ऊपर क्रोध में भरे दौड़े ॥४१॥

ततस्तु वानराः सर्वे भिन्नदेहा विचेतसः ।
व्यथिता विद्रवन्ति स्म रुधिरेण समुक्षिताः ॥४२॥

परन्तु बाणों की चोट से पीड़ित हो और रक्त से समस्त शरीर तर कर और चेतना गँवा कर, वानर भागे ॥४२॥

रामस्यार्थे पराक्रम्य वानरास्त्यक्तजीविताः ।
नर्दन्तस्तेऽभिवृत्तास्तु समरे सशिलायुधाः ॥४३॥

श्रीरामचन्द्र जी के लिए अपना अपना पराक्रम दिखला बहुत से वानर अपने प्राणों से हाथ धो बैठे तिस पर भी बहुत से वानर हाथों में शिलाएँ लिये हुए और गर्जते हुए युद्धभूमि में डटे रहे ॥४३॥

ते द्रुमैः पर्वताग्रैश्च शिलाभिश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यवर्षन्त समरे रावणिं पर्यवस्थिताः ॥४४॥

वे मेघनाद के ऊपर चारों ओर से पेड़ों, पर्वतशृङ्गों और शिलाओं की वर्षा कर लड़ने लगे ॥४४॥

**तद्द्रुमाणां शिलानां च वर्षं प्राणहरं महत् ।**
**व्यपोहत महातेजा रावणिः समितिञ्जयः ॥४५॥**

किन्तु समरविजयी रावणात्मज मेघनाद ने वानरों के फेके हुए प्राणहारी पेड़ों, शिलाओं और पर्वतों को अपने बाणों से विफल कर दिआ ॥४५॥

**ततः पावकसङ्काशैः शरैराशीविषोपमैः ।**
**वानराणामनीकानि बिभेद समरे प्रभुः ॥४६॥**

इन्द्रजीत ने अग्नि की तरह दहकते और विषधर सर्प की तरह भयङ्कर बाणों से रणभूमि में वानरी सेना को बेध डाला ॥४६॥

**अष्टादशशरैस्तीक्ष्णैः स विद्ध्वा गन्धमादनम् ।**
**विव्याध नवभिश्चैव नलं दूरादवस्थितम् ॥४७॥**

उसने १८ बाण गन्धमादन के मारे । नौ बाण उसने दूर पर खड़े नल के मारे ॥४७॥

**सप्तभिस्तु महावीर्यो मैन्दं मर्मविदारणैः ।**
**पञ्चभिर्विशिखैश्चैव गजं विव्याध संयुगे ॥४८॥**

सात बाण मैन्द के मार उसके मर्मस्थलों को विदीर्ण कर डाला । इसी प्रकार इस लड़ाई में उस बली ने पाँच पैने बाण गज नामक वानर के मार उसको घायल कर डाला ॥४८॥

**जाम्बवन्तं तु दशभिः नीलं त्रिंशद्भिरेव च ।**
**सुग्रीवमृषभं चैव सोऽङ्गदं द्विविदं तथा ॥४९॥**

उसने दस बाण जाम्बवान के मारे और तीस बाण नील के मारे। सुग्रीव, ऋषभ, अङ्गद और द्विविद को ॥४६॥

घोरैर्दत्तवरैस्तीक्ष्णैः निष्प्राणानकरोत्तदा ।
अन्यानपि तथा मुख्यान् वानरान् बहुभिः शरैः ॥५०॥

तो उसने वरदान में प्राप्त भयङ्कर पैने बाणों से मृतप्राय कर डाला। अन्य और जो प्रधान वानरयूथपति थे, उनके भी उसने बहुत से बाण मार कर ॥५०॥

अर्दयामास संक्रुद्धः कालाग्निरिव मूर्छितः ।
स शरैः सूर्यसङ्काशैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥५१॥

उनको विकल कर डाला। वह अत्यन्त कुपित हो कालाग्नि की तरह हो रहा था। उसने सूर्य की तरह चमचमाते, शीघ्रगामी तथा कान तक खींच कर छोड़े हुए बाणों से ॥५१॥

वानराणामनीकानि निर्ममन्थ महारणे ।
आकुलां वानरीं सेनां शरजालेन मोहिताम् ॥५२॥

वानरी सेनाओं को इस महायुद्ध में मथ डाला। वानरी सेनाओं को विकल और शरों की वृष्टि से मूर्छित ॥५२॥

हृष्टः स परया प्रीत्या ददर्श क्षतजोक्षिताम् ।
पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रात्मजो बली ॥५३॥

एवं क्षतविक्षत देख परम प्रसन्न और सन्तुष्ट हुआ। वीर एवं महातेजस्वी रावणतनय इन्द्रजीत ने पुनः ॥५३॥

संसृज्य बाणवर्षं च शस्त्रवर्षं च दारुणम् ।
ममर्द वानरानीकं इन्द्रजित्त्वरितो बली ॥५४॥

पुनः बाणों और शस्त्रों की दारुण वर्षा की। वीर इन्द्रजीत ने इस प्रकार वानरी सेना को रगड़ डाला ॥५४॥

स्वसैन्यमुत्सृज्य समेत्य तूर्णं
महारणे वानरवाहिनीषु।
अदृश्यमानः शरजालमुग्रं
ववर्ष नीलाम्बुधरो यथाऽम्बु ॥५५॥

इन्द्रजीत ने अपनी सेना को तो पीछे ही छोड़ दिआ और वह स्वयं शीघ्रतापूर्वक वानरी सेना में घुस गया और छिप कर वह वानरों के ऊपर प्रचण्ड बाणों की वर्षा वैसे ही करने लगा जैसे बादल जल की वृष्टि करते हैं ॥५५॥

ते शक्रजिद्बाणविशीर्णदेहा
मायाहता विस्वरमुन्नदन्तः।
रणे निपेतुर्हरयोद्रिकल्पा
यथेन्द्रवज्राभिहता नगेन्द्राः ॥५६॥

इन्द्रजीत की माया से मोहित हो पर्वताकार वानरों के शरीर उसके बाणों से बहुत घायल हो गए। वे समरभूमि में दाँत निकाल और आर्तनाद करते हुए वैसे ही गिर पड़े जैसे इन्द्र के वज्र के प्रहार से पर्वत पङ्ख कट जाने पर गिरे थे ॥५६॥

ते केवलं संददृशुः शिताग्रान्
बाणान् रणे वानरवाहिनीषु।
मायानिगूढं तु सुरेन्द्रशत्रुं
न चात्र तं राक्षसमभ्यपश्यन् ॥५७॥

उन वानरों को वानरी सेना में केवल बाण आते हुए ही देख पड़ते थे। किन्तु माया से अपने को छिपाए हुए इन्द्रशत्रु मेघनाद नहीं देख पड़ता था ॥५७॥

ततः स रक्षोधिपतिर्महात्मा
सर्वा दिशो बाणगणैः शिताग्रैः ।
प्रच्छादयामास रविप्रकाशैः
विषादयामास च वानरेन्द्रान् ॥५८॥

उस महाबलवान राक्षसाधिपति ने इतने बाण चलाए कि, उन तीक्ष्ण बाणों से सारी दिशाएँ पूर्ण हो गईं। सूर्य ढक गए और बड़े बड़े नामी वानरयूथपति भी घबड़ा गए ॥५८॥

स शूलनिस्त्रिंशपरश्वधानि
व्याविध्य दीप्तानलसन्निभानि ।
सविस्फुलिङ्गोज्ज्वलपावकानि
ववर्ष तीव्रं प्लवगेन्द्रसैन्ये ॥५९॥

उसने दहकते हुए अङ्गारे की तरह चमचमाते, शूल, खाँडे, परसा आदि शस्त्रों के प्रहार से वानरों को विदीर्ण कर डाला। उसने जलती हुई आग की तरह चमचमाते और चिनगारियाँ निकलते हुए तीव्र बाण सुग्रीव की सेना के ऊपर बरसाए ॥५९॥

ततो ज्वलनसङ्काशैः शितैर्वानरयूथपाः ।
ताडिताः शक्रजिद्बाणैः प्रफुल्ला इव किंशुकाः ॥६०॥

दहकती हुई आग की तरह चमकीले और पैने इन्द्रजीत के उन बाणों की चोट से घायल वानर ऐसे जान पड़ते थे, जैसे फूले हुए टेसू के पेड़ ॥६०॥

तेऽन्योन्यमभिसर्पन्तो निनदन्तश्च विस्वरम् ।
राक्षसेन्द्रास्त्रनिर्भिन्ना निपेतुर्वानरर्षभाः ॥६१॥

वे वानरश्रेष्ठ एक दूसरे से सटे हुए बुरी तरह चिल्ला रहे थे और इन्द्रजीत के अस्त्रों से घायल हो पृथिवी पर गिरते जाते थे ॥६१॥

उदीक्षमाणा गगनं केचिन्नेत्रेषु ताडिताः ।
शरैर्विविशुरन्योन्यं पेतुश्च जगतीतले ॥६२॥

यदि कोई वानर ऊपर ताकता तो ताकते ही उसकी आँख में बाण लगता था। उस पीड़ा से पीड़ित हो वे एक दूसरे को थामते और अन्त में ज़मीन पर गिर जाते थे ॥६२॥

हनूमन्तं च सुग्रीवमङ्गदं गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्तं सुषेणं च वेगदर्शिनमेव च ॥६३॥

मैन्दं च द्विविदं नीलं गवाक्षं गजगोमुखौ ।
केसरिं हरिलोमानं विद्युद्दंष्ट्रं च वानरम् ॥६४॥

सूर्याननं ज्योतिमुखं तथा दधिमुखं हरिम् ।
पावकाक्षं नलं चैव कुमुदं चैव वानरम् ॥६५॥

प्रासैः शूलैः शितैर्बाणैरिन्द्रजिन्मन्त्रसंहितैः ।
विव्याध हरिशार्दूलान् सर्वांस्तान् राक्षसोत्तमः ॥६६॥

हनूमान, सुग्रीव, अङ्गद, गन्धमादन, जाम्बवान, सुषेण, वेगदर्शी मैन्द, द्विविद, नील, गवाक्ष, गजमुख, गोमुख, केसरी,

हरिलोमा, विद्युद्दंष्ट्र, सूर्यानन, ज्योतिर्मुख, दधिमुख, पावकाक्ष, नल और कुमुद इन मुख्य मुख्य वानरों को इन्द्रजीत प्रासों, शूलों और पैने बाणों से वेधता था। ये बाण मंत्रविशेषों से अभिमंत्रित किए हुए होते थे ॥६३॥ ॥६४॥ ॥६५॥ ॥६६॥

स वै गदाभिर्हरियूथमुख्यान्
निर्भिद्य बाणैस्तपनीयपुंखैः ।
ववर्ष रामं शरवृष्टिजालैः
सलक्ष्मणं भास्कररश्मिकल्पैः ॥६७॥

उसने वानरयूथपतियों को गदाओं के प्रहार से चोटिल कर उनके शरीर को सुवर्णमय पुङ्खों से युक्त बाणों से विदीर्ण किया। तदनन्तर उसने सूर्य की किरणों की तरह चमकते हुए बाणों की वृष्टि श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के ऊपर की ॥६७॥

स बाणवर्षैरभिवर्ष्यमाणो
धारानिपातानिव तान् विचिन्त्य ।
समीक्षमाणः परमाद्भुतश्री
रामस्तदा लक्ष्मणमित्युवाच ॥६८॥

अद्भुत धैर्यसम्पन्न श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर जब वह बाणवृष्टि हुई तब उन्होंने उस बाणवृष्टि को जलवृष्टि ही के समान तुच्छ समझा और वे लक्ष्मण की ओर देख कर बोले ॥६८॥

निपातयित्वा हरिसैन्यमुग्र-
मस्मिन् शरैरर्दयति प्रसक्तः ॥६९॥

हे लक्ष्मण ! देखो, यह इन्द्रशत्रु राक्षसेन्द्र फिर ब्रह्मास्त्र का सहारा ले, प्रचण्ड वानरी सेना को बाणों से घायल कर और गिरा कर, हम पर वार कर रहा है ॥६९॥

स्वयंभुवा दत्तवरो महात्मा
खमास्थितोऽन्तर्हितभीमकायः ।
कथं नु शक्यो युधि [1]नष्टदेहो
निहन्तुमद्येन्द्रजिदुद्यतास्त्रः ॥७०॥

यह भीमकाय महाबली इन्द्रजीत, ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से आकाश में छिपा हुआ है। इस प्रकार अदृश्य होकर युद्ध करने वाला यह इन्द्रजीत समर में कैसे मारा जा सकेगा ? ॥७०॥

मन्ये स्वयंभूर्भगवानचिन्त्यो
यस्यैतदस्त्रं प्रभवश्च योऽस्य ।
बाणावपातांस्त्वमिहाद्य धीमन्
मया सहाव्यग्रमनाः सहस्व ॥७१॥

हे बुद्धिमान् ! जो इस मनुवंश की उत्पत्ति के कारण हैं, उन ब्रह्मा जी की बात किसी प्रकार हेटी की जाय, इसका तो विचार तक मन में लाना ठीक नहीं। सो ये अस्त्र उन्हीं ब्रह्मा जी के दिए हुए हैं। अतः मेरे साथ तुम भी इन बाणों की चोट को अव्यग्र मन

---

१ नष्टदेहो—अदृश्यदेहो। ( शि० )

से सहो। मैं तो इस समय यही उचित समझता हूँ। ( अर्थात् यद्यपि हम में इन्द्रजीत की माया नष्ट करने की पूर्ण शक्ति है, तथापि ब्रह्मा जी का गौरव कर हमें इसको सह लेना ही उचित है।। शिरोमणि टीकाकार के अभिप्रायानुसार यह अर्थ है ।।७१॥

प्रच्छादयत्येष हि राक्षसेन्द्रः
सर्वा दिशः सायकवृष्टिजालैः ।
एतच्च सर्वं पतिताग्र्यशूरं
न भ्राजते वानरराजसैन्यम् ।।७२।।

देखो, इस राक्षसेन्द्र ने बाणवृष्टि कर सब दिशाओं को ढक दिआ है। देखो, ये सब वानरयूथपति गिरे पड़े हैं, अतएव अब सुग्रीव की इस वानरी सेना की कुछ भी शोभा नहीं रह गई ।।७२।।

अहं तु दृष्ट्वा पतितौ विसंज्ञौ
निवृत्तयुद्धौ गतरोषहर्षौ ।
ध्रुवं प्रवेक्ष्यत्यमरारिवास-
मसौ समादाय रणाग्रलक्ष्मीम् ।।७३।।

हम दोनों को रोषहर्ष रहित युद्ध से निवृत्त और मूर्छित हो पृथिवी पर पड़ा हुआ देख, समर में अपनी जीत समझ, यह इन्द्रजीत निश्चय ही राक्षसों की आवासभूमि लङ्का को लौट जायगा ।।७३।।

ततस्तु ताविन्द्रजिदस्त्रजालैः
बभूवतुस्तत्र तथा विशस्तौ ।
स चापि तौ तत्र विदर्शयित्वा
ननाद हर्षाद्युधि राक्षसेन्द्रः ।।७४।।

इस प्रकार का विचार निश्चित कर दोनों भाई इन्द्रजीत के बाणों से मृतक समान हो गए। दोनों राजकुमारों को ऐसा देख इन्द्रजीत ने हर्षित हो समरभूमि में सिंहनाद किया ॥७४॥

स तत्तदा वानरसैन्यमेवं
रामं च संख्ये सह लक्ष्मणेन ।
विषादयित्वा सहसा विवेश
पुरीं दशग्रीवभुजाभिगुप्ताम् ॥७५॥

॥ त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥

उस दिन की लड़ाई में श्रीराम, लक्ष्मण एवं वानरी सेना को परास्त कर मेघनाद, रावणरक्षित लङ्का में सहसा चला गया ॥७५ ॥

युद्धकाण्ड का तिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## चतुःसप्ततितमः सर्गः

—❀—

तयोस्तदा सादितयो रणाग्रे
मुमोह सैन्यं हरिपुङ्गवानाम् ।
सुग्रीवनीलाङ्गदजाम्बवन्तः
न चापि किञ्चित्प्रतिपेदिरे ते ॥१॥

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के इस प्रकार मूर्छित होने पर, वानरयूथपतियों की सेना मोहित हो गई। सुग्रीव, नील अङ्गद,

जाम्बवान जैसे प्रधान वानरों से भी कुछ करते न बन पड़ा ॥१॥

ततो विषण्णं समवेक्ष्य सैन्यं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ।
उवाच शाखामृगराजवीरा-
नाश्वासयन्नप्रतिमैर्वचोभिः ॥२॥

तदनन्तर बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विभीषण ने, वानरी सेना को विषादित देख, वानरराज सुग्रीव से उपमारहित वानर कह कर, उनको धीरज धराया ॥२॥

मा भैष्ट नास्त्यत्र विषादकालो
यदार्यपुत्रौ ह्यवशौ विषण्णौ ।
स्वयंभुवो वाक्यमथोद्वहन्तौ
यत्सादिताविन्द्रजिदस्त्रजालैः ॥३॥

( विभीषण कहने लगे ) भाइयो डरो मत । यह समय दुःखी होने का नहीं है । ये जो दोनों राजकुमार मूर्छित हो रहे हैं, ( सो वास्तव में शस्त्राघात से मूर्छित नहीं हैं बल्कि ) ब्रह्मा जी के वरदान का बड़प्पन मान, स्वयं ही मेघनाद के अस्त्रजाल में फँस गए हैं ॥३॥

तस्मै तु दत्तं परमास्त्रमेतत् ।
स्वयंभुवा ब्राह्मममोघवेगम् ।
तन् मानयन्तौ युधि राजपुत्रौ
निपातितौ कोऽत्र विषादकालः ॥४॥

स्वयंभू ब्रह्मा ने इन्द्रजीत को यह बड़ा भारी अमोघ वीर्य वाला ब्रह्मास्त्र दिया है। इसी अस्त्र की मर्यादारक्षा के लिए ये दोनों राजपुत्र मूर्छित हो गिर पड़े हैं। इसमें दुःखी होने अथवा घबड़ाने की कौन सी बात है ॥४॥

ब्राह्ममस्त्रं ततो धीमान् मानयित्वा तु मारुतिः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनुमांस्तमथाब्रवीत् ॥५॥

बुद्धिमान पवननन्दन हनुमान् जी, ब्रह्मास्त्र की मर्यादा को कुछ देर तक मान और विभीषण के वचन सुन, कहने लगे ॥५॥

एतस्मिन्निहते सैन्ये वानराणां तरस्विनाम् ।
यो यो धारयते प्राणांस्तं तमाश्वासयावहे ॥६॥

बलवान वानरों की इस गिरी हुई सेना में जो जो वानर अभी जीवित हैं, आओ हम लोग चल कर उनको धीरज बँधावें ॥६॥

तावुभौ युगपद्वीरौ हनुमद्राक्षसोत्तमौ ।
उल्काहस्तौ तदा रात्रौ रणशीर्षे विचेरतुः ॥७॥

तदनन्तर वे दोनों वीर अर्थात् हनुमान जी और विभीषण मिल कर उस रात को हाथों में मशालें लिये हुए समरभूमि में घूमने लगे ॥७॥

भिन्नलाङ्गूलहस्तोरुपादाङ्गुलिशिरोधरैः ।
स्रवद्भिः क्षतजं गात्रैः प्रस्रवद्भिस्ततस्ततः ॥८॥

वहाँ उन दोनों ने देखा कि, किसी की पूँछ कट गई है, किसी का हाथ कट गया है, किसी की जाँघ कट गई है, किसी के पैर कटे हुए हैं, किसी की उँगलियाँ कट गई हैं, किसी का सिर

कट गया है और किसी के ओठ कट गए हैं। चारों ओर से घावों में से रुधिर की धारा बह रही है ॥८॥

पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंकुलाम् ।
शस्त्रैश्च पतितैर्दीप्तैर्ददृशाते वसुन्धराम् ॥९॥

बड़े बड़े पर्वताकार वानर पड़े हुए हैं। चमकीले अस्त्र भी जिधर देखो उधर पड़े हुए हैं। समरभूमि में कहीं पैर तक रखने को जगह नहीं है ॥९॥

सुग्रीवमङ्गदं नीलं शरभं गन्धमादनम् ।
गवाक्षं च सुषेणं च वेगदर्शिनमाहुकम् ॥१०॥

मैन्दं नलं ज्योतिमुखं द्विविदं पनसं तथा ।
एतांश्चान्यांस्ततो वीरौ ददृशाते [1]हतान् रणे ॥११॥

तदनन्तर उन दोनों ने देखा कि, सुग्रीव, अंगद, नील, शरभ, गन्धमादन, गवाक्ष, सुषेण, वेगदर्शी, आहुक, मैन्द, नल, ज्योतिमुख, द्विविद, पनस, ये सब तथा अन्य बहुत से रणभूमि में मरे हुएसे पड़े हैं ॥१०॥ ॥११॥

सप्तषष्टिर्हताः कोट्यो वानराणां तरस्विनाम् ।
अह्नः पञ्चमशेषेण [2]वल्लभेन स्वयंभुवः ॥१२॥

ब्रह्मास्त्र ने अथवा इन्द्रजीत ने बारह घड़ी में सरसठ करोड़ बड़े बड़े वीर वानरों को मार गिराया ॥१२॥

---

१ हतान्—हतप्रायान्। (गो०) २ स्वयंभुवोवल्लभेन—इन्द्रजिता ब्रह्मास्त्रेण वा। (गो०)

सागरौघनिभं भीमं दृष्ट्वा बाणार्दितं बलम्।
मार्गते जाम्बवन्तं स्म हनुमान् सविभीषणः ॥१३॥

समुद्र के समान अपार वानरी सेना को बाणों से मथित देख, विभीषण और हनुमान दोनों जन, अब जाम्बवान् को ढूँढ़ने लगे ॥१३॥

स्वभावजरया युक्तं वृद्धं शरशतैश्चितम्।
प्रजापतिसुतं वीरं शाम्यन्तमिव पावकम् ॥१४॥

बहुत ढूँढ़ने के बाद प्रजापति के पुत्र वीर जाम्बवान् इन दोनों को देख पड़े। वे बूढ़े तो थे ही, तिस पर वे सैकड़ों बाणों की चोट खा कर, बुझी हुई आग की तरह भूमि पर पड़े थे ॥१४॥

दृष्ट्वा तमुपसङ्क्रम्य पौलस्त्यो वाक्यमब्रवीत्।
कच्चिदार्यशरैस्तीक्ष्णैः प्राणा न ध्वंसितास्तव ॥१५॥

उन्हें पड़ा देख और उनके पास जा, विभीषण ने कहा—हे आर्य! इस दारुण बाणवर्षा से तुम्हारे प्राणों का तो संहार नहीं हुआ? ॥१५॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानृक्षपुङ्गवः।
कृच्छ्रादभ्युद्गिरन् वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥१६॥

भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान, विभीषण के वचन सुन, बड़ी कठिनाई से और कराहते हुए, यह बोले ॥१६॥

नैर्ऋतेन्द्र महावीर्य स्वरेण त्वाऽभिलक्षये।
पीड्यमानः शितैर्बाणैः न त्वां पश्यामि चक्षुषा ॥१७॥

हे राक्षसेन्द्र ! हे महाबली ! मैं तुम्हें तुम्हारे कण्ठस्वर से पहिचान सका हूँ, पैने बाणों से मेरा शरीर ऐसा बिधा हुआ है कि आँखों से मैं तुम्हें नहीं देख सकता ॥१७॥

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च नैरृत ।
हनुमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान धारयते क्वचित् ॥१८॥

हे सुव्रत ! जिनको प्राप्त कर अञ्जना सुपुत्रवती हुई हैं और पवनदेव सुपुत्रवान् हुए हैं, वे वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी तो जीवित हैं ? ॥१८॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः ।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात् पृच्छसि मारुतिम् ॥१९॥

जाम्बवान का यह प्रश्न सुन विभीषण कहने लगे—राजकुमारों का कुशल न पूँछ कर, हनुमान जी के जीवित रहने की बात सब से प्रथम आपने पूँछी—इसका क्या कारण है ? ॥१९॥

नैव राजनि सुग्रीवे नाङ्गदे नापि राघवे ।
आर्य सन्दर्शितः स्नेहः यथा वायुसुते परः ॥२०॥

यह प्रश्न कर आपने न तो कपिराज सुग्रीव, न अङ्गद और न श्रीरामचन्द्र एवं लक्ष्मण के प्रति वैसा स्नेह प्रकट किया; जैसा कि, आपने हनुमान् जी के प्रति प्रकट किया है ॥२०॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान् वाक्यमब्रवीत् ।
शृणु नैरृतशार्दूल यस्मात्पृच्छामि मारुतिम् ॥२१॥

विभीषण के वचन सुन जाम्बवान् कहने लगे—हे राक्षसराज ! मैंने सबसे प्रथम हनुमान् जी का कुशल क्यों पूछा—इसका कारण बतलाता हूँ, सुनो ॥२१॥

तस्मिन् जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम्।
हनुमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि वयं हताः ॥२२॥

यदि हनुमान जीवित हैं तो सारी सेना के मारे जाने पर भी वह अभी जीवित है, मरी नहीं; और यदि कहीं हनुमान् जी मर गए तो समझ लो कि, हम सब जीते हुए भी मरे हुओं के बराब हैं ॥२२॥

धरते मारुतिस्तात मारुतप्रतिमो यदि।
वैश्वानरसमो वीर्ये जीविताशा ततो भवेत् ॥२३॥

यदि पवन के समान वेगवान् और अग्नि के समान बलवान् हनुमान् जी जीवित हैं, तो मुझे (मरे हुओं के) जीवित होने की भी आशा है ॥२३॥

ततो वृद्धमुपागम्य नियमेनाभ्यवादयत्।
गृह्य जाम्बवतः पादौ हनुमान् मारुतात्मजः ॥२४॥

तब पवननन्दन हनुमान जी बूढ़े जाम्बवान् के समीप गए और उनके दोनों चरण पकड़ कर, नियमानुसार (अपना नाम लेकर) उनको प्रणाम किया ॥२४॥

श्रुत्वा हनुमतो वाक्यं तथापि व्यथितेन्द्रियः।
पुनर्जातमिवात्मानं मन्यते स्मर्क्षपुङ्गवः ॥२५॥

घावों की पीड़ा से अत्यन्त विकल होने पर भी, भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान् ने हनुमान् जी का कण्ठस्वर पहचान, अपना पुनर्जन्म हुआ माना ॥२५॥

ततोऽब्रवीत् महातेजा हनुमन्तं स जाम्बवान्।
आगच्छ हरिशार्दूल वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥२६॥

तदनन्तर परम तेजस्वी जाम्बवान् ने हनुमान् जी से कहा — हे वानरशार्दूल ! आओ और वानरों के प्राण बचाओ ॥२६॥

नान्यो विक्रमपर्याप्तस्त्वमेषां परमः सखा ।
त्वत्पराक्रमकालोऽयं नान्यं पश्यामि कञ्चन ॥२७॥

हे वीर ! एक तो तुम इन सब के परम मित्र हो, दूसरे तुममें पराक्रम भी इतना है कि, तुम इनके प्राणों की रक्षा कर सकते हो। यह समय भी ऐसा है कि, तुम्हें अपने पराक्रम से काम लेना चाहिए। अथवा यह समय तुम्हारे ही पराक्रम करने का है क्योंकि ऐसा दूसरा तो मुझे कोई यहाँ देख नहीं पड़ता ॥२७॥

ऋक्षवानरवीराणामनीकानि प्रहर्षय ।
विशल्यौ कुरु चाप्येतौ सादितौ रामलक्ष्मणौ ॥२८॥

सो तुम रीछों और वानरों की सेना को आनन्दित करो और घायल हुए श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण की बाणपीड़ा को दूर करो ॥२८॥

गत्वा परममध्वानमुपर्युपरि सागरम् ।
हिमवन्तं नगश्रेष्ठं हनुमन् गन्तुमर्हसि ॥२९॥

हे हनुमान् ! तुम समुद्र के ऊपर ऊपर बहुत दूर तक जाकर पर्वत श्रेष्ठ हिमालय पर चले जाओ ॥२९॥

ततः काञ्चनमत्युच्चमृषभं पर्वतोत्तमम् ।
कैलासशिखरं चापि द्रक्ष्यस्यरिनिषूदन ॥३०॥

उसके आगे तुम्हें सुवर्णमय और बड़ा ऊँचा ऋषभ नामक एक पर्वतश्रेष्ठ मिलेगा। हे शत्रुहन्ता ! वहीं से तुम्हें कैलास पर्वत की चोटी भी देख पड़ेगी ॥३०॥

तयोः शिखरयोर्मध्ये प्रदीप्तमतुलप्रभम् ।
सर्वौषधियुतं वीर द्रक्ष्यस्योषधिपर्वतम् ॥३१॥

हे वीर! इन्हीं दोनों पर्वत-शिखरों के बीच तुम अत्यन्त तेजस्वी चमकीले तथा सब जड़ी बूटियों से भरे हुए औषध-पर्वत को देखोगे ॥३१॥

तस्य वानरशार्दूल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भवाः ।
द्रक्ष्यस्योषधयो दीप्ता दीपयन्त्यो दिशो दश ॥३२॥

उस पर्वतशिखर पर तुमको चार बूटियाँ मिलेंगी। वे बड़ी चमकीली हैं—यहाँ तक कि उनकी चमक से दसों दिशाएँ प्रकाशित रहती हैं ॥३२॥

मृतसञ्जीवनीं चैव विशल्यकरणीमपि ।
सावर्ण्यकरणीं चैव सन्धानकरणीं तथा ॥३३॥

( उन चारों के नाम हैं )—[1]मृतसञ्जीवनी, [2]विशल्यकरणी, [3]सावर्णकरणी और [4]सन्धानकरणी ॥३३॥

ताः सर्वा हनुमन् गृह्य क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
आश्वासय हरीन् प्राणैर्योज्य गन्धवहात्मज ॥३४॥

हे हनुमान्! इन चारों को लेकर तुम शीघ्र यहाँ लौट आओ। हे पवननन्दन! तुम उन औषधियों को तुरन्त लाकर वानरों को जिला दो ॥३४॥

---

१ मृतसञ्जीवनी—मरे को जिलाने वाली। २ विशल्यकरणी—घावों को अच्छा करने वाली। ३ सावर्णकरणी—घाव की गूत का रंग बदल कर पूर्ववत् कर देने वाली। ४ सन्धानकरणी—घाव भरने पर खाल को जोड़ कर, एक सा कर देने वाली।

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यं हनुमान् हरिपुङ्गवः ।
आपूर्यत बलोद्धर्षैस्तोयवेगैरिवार्णवः ॥३५॥

जाम्बवान के इन वचनों को सुन, वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी, बल और हर्ष से ऐसे फूल उठे, जैसे जल के वेग से समुद्र भर जाता है ॥३५॥

स पर्वततटाग्रस्थः पीडयन् पर्वतोत्तमम् ।
हनुमान् दृश्यते वीरो द्वितीय इव पर्वतः ॥३६॥

जब वीरवर हनुमान जी कूदने के लिए त्रिकूटपर्वत के शिखर को पैरों से दबा कर उसके ऊपर खड़े हुए, तब वे एक दूसरे पर्वत के समान जान पड़े ॥३६॥

हरिपादविनिर्भग्नो निषसाद स पर्वतः ।
न शशाक तदाऽऽत्मानं सोढुं भृशनिपीडितः ॥३७॥

हनुमान् जी के पैरों से दब कर वह पर्वत घबड़ा गया। वह अपने को सम्हाल न सका। क्योंकि वह हनुमान् जी के बोझ से बहुत दब गया था ॥३७॥

तस्य पेतुर्नगा भूमौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ।
शृङ्गाणि च व्यशीर्यन्त पीडितस्य हनूमता ॥३८॥

हनुमान् जी के वेग से उसके ऊपर के वृक्ष गिर पड़े। उसके समस्त शिखर कट गए और उसमें से आग निकलने लगी ॥३८॥

तस्मिन् सम्पीड्यमाने तु भग्नद्रुमशिलातले ।
न शेकुर्वानराः स्थातुं घूर्णमाने नगोत्तमे ॥३९॥

इस प्रकार हनुमान् जी के बोझ से दब कर पर्वतश्रेष्ठ त्रिकूटाचल के सब वृक्ष टूट पड़े, शिलाएँ चूर हो गईं। उस पर्वत के हिलने पर जो वानर उसके ऊपर थे, वे सब भी स्थिर न रह सके ॥३९॥

सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभग्नगृहगोपुरा ।
लङ्का त्रासाकुला रात्रौ प्रनृत्तेवाभवत्तदा ॥४०॥

उसके उस हिस्से के हिलने से लङ्का के उस भाग के बड़े बड़े फाटक, बड़े बड़े दरवाजे और घर गिर पड़े। लङ्कावासी जन भयभीत हो गए। उस समय ऐसा जान पड़ा, मानो राक्षसों की लङ्का नाच रही हो ॥४०॥

पृथिवीधरसङ्काशो निपीड्य धरणीधरम् ।
पृथिवीं क्षोभयामास सार्णवां मारुतात्मजः ॥४१॥

पर्वताकार वानरवीर पवनकुमार ने पर्वत को पीड़ित कर, समस्त पृथ्वी को समुद्र सहित क्षुब्ध कर डाला ॥४१॥

आरुरोह तदा तस्माद्धरिर्मलयपर्वतम् ।
मेरुमन्दरसङ्काशं नानाप्रस्रवणाकुलम् ॥४२॥

तदनन्तर हनुमान् जी त्रिकूटपर्वत से मलयाचलपर्वत पर चढ़े, जो मेरुपर्वत की तरह ऊँचा था और जिसमें जगह जगह जल के झरने झर रहे थे ॥४२॥

नानाद्रुमलताकीर्णं विकासिकमलोत्पलम् ।
सेवितं देवगन्धर्वैः षष्टियोजनमुच्छ्रितम् ॥४३॥

उसके ऊपर अनेक वृक्ष लगे हुए थे और लताएँ फैली हुई थीं और कमल खिले हुए थे। उस पर्वत पर देवता और गन्धर्वों का वास था और वह ६० योजन ऊँचा था ॥४३॥

विद्याधरैर्मुनिगणैरप्सरोभिर्निषेवितम् ।
नानामृगगणाकीर्णं बहुकन्दरशोभितम् ॥४४॥

उसके ऊपर विद्याधर, मुनि और अप्सराएँ वास करती थीं। विविध प्रकार के जीवजन्तु घूमा करते थे तथा बहुत सी कन्दराओं से वह सुशोभित था ॥४४॥

सर्वानाकुलयंस्तत्र यक्षगन्धर्वकिन्नरान् ।
हनुमान् मेघसङ्काशो ववृधे मारुतात्मजः ॥४५॥

मेघ के समान विशाल वपुधारी पवननन्दन हनुमान् जी ने मलयाचलवासी समस्त प्राणियों को आकुल कर अपने शरीर को बढ़ाया ॥४५॥

पद्भ्यां तु शैलमापीड्य बडवामुखवत् मुखम् ।
विवृत्योग्र ननादोच्चैः त्रासयन्निव राक्षसान् ॥४६॥

पैर से मलयाचल को दबा कर, और बड़वानल के समान अपने उग्र मुख को फैला कर, हनुमान जी ऐसे जोर से गर्जे कि, राक्षस भयभीत हो गए ॥४६॥

तस्य नानद्यमानस्य श्रुत्वा निनदमद्भुतम् ।
लङ्कास्था राक्षसाः सर्वे न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ॥४७॥

उनके सिंहनाद करने पर, उस अद्भुत सिंहगर्जन को सुन, लङ्कावासी समस्त राक्षस मारे डर के अपनी जगहों से हिल तक न सके ॥४७॥

नमस्कृत्वाऽथ रामाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
राघवार्थं परं कर्म समीहत परन्तपः ॥४८॥

शत्रुओं के मारने वाले, भीम पराक्रमी हनुमान जी, श्रीराम-चन्द्र जी को प्रणाम कर, अपने स्वामी श्रीरामचन्द्र जी के लिए बड़ा भारी काम करने को उद्यत हुए ॥४८॥

स पुच्छमुद्यम्य भुजङ्गकल्पं
विनम्य पृष्ठं श्रवणौ निकुञ्च्य ।
विवृत्य वक्त्रं बडवामुखाभम्
आपुप्लुवे व्योमनि चण्डवेगः ॥४६॥

अपनी सर्प जैसी पूँछ के ऊपर उठा, दोनों कान चिपका, कमर झुका और बड़वानल जैसा अपना मुख फैला, हनुमान जी अति प्रचंड वेग से आकाश में उड़े ॥४६॥

स वृक्षषण्डांस्तरसाऽऽजहार
शैलान्शिलाः प्राकृतवानरांश्च ।
बाहूरुवेगोद्धतसम्प्रणुन्नाः
ते क्षीणवेगाः सलिले निपेतुः ॥५०॥

हनुमान जी के उछलने के समय उनकी भुजाओं और जाँघों के वेग से वृक्ष, पर्वत, शिला और साधारण वानर भी कुछ दूर तक उनके पीछे पीछे उडे । पीछे जब वेग कम हुआ, तब वे सब समुद्र के जल में गिर पड़े ॥५०॥

स तौ प्रसार्योरगभोगकल्पौ
भुजौ भुजङ्गारिनिकाशवीर्यः ।
जगाम *शैलं नगराजमग्र्यं
दिशः प्रकर्षन्निव वायुसूनुः ॥५१॥

---

* पाठान्तरे—"मेरुं ।"

गरुड जी के समान पराक्रमी पवननन्दन हनुमान जी, अपनी सर्पाकार दोनों भुजाओं को ऐसे फैलए हुए थे, मानों दिशाओं को अपनी ओर खींच लेना चाहते हैं। सो वे उस पर्वतराज के शिखर की ओर प्रस्थानित हुए ॥५१॥

स सागरं घूर्णितवीचिमालं
तदा भृशं भ्रामितसर्वसत्त्वम् ।
समीक्षमाणः सहसा जगाम
चक्रं यथा विष्णुकराग्रमुक्तम् ॥५२॥

हनुमान जी लहराते हुए समुद्र में विविध प्रकार के जलजीवों को देखते हुए, विष्णु के हाथ से छूटे हुए चक्र की तरह, बड़े वेग के साथ चले जाते थे ॥५२॥

स पर्वतान् वृक्षगणान् सरांसि
नदीस्तटाकानि पुरोत्तमानि ।
स्फीताञ्जनान्तानपि सम्प्रवीक्ष्य
जगाम वेगात् पितृतुल्यवेगः ॥५३॥

वे हनुमान जी अपने पिता पवन की तरह वेग के साथ, उड़ते हुए अनेक पहाड़ों, वृक्षों, सरोवरों, नदियों, तालाबों, उत्तम पुरों तथा भरे पूरे जनपदों को देखते हुए, चले जाते थे ॥५३॥

आदित्यपथमाश्रित्य जगाम स गतक्लमः ।
हनुमांस्त्वरितो वीरः पितृतुल्यपराक्रमः ॥५४॥

अपने पिता पवन के समान पराक्रमी एवं वीर हनुमान् जी सूर्यपथ ( आकाशमार्ग ) से बड़ी शीघ्रता के साथ गए ॥५४॥

जवेन महता युक्तो मारुतिर्मारुतो यथा ।
जगाम हरिशार्दूलो दिशः शब्देन पूरयन् ॥५५॥

पवननन्दन हनुमान् जी पवन की तरह बड़े वेग से गमन करते ुए और अपने सिंहनाद से समस्त दिशाओं को प्रतिध्वनित करते ाते थे ॥५५॥

स्मरञ्जाम्बवतो वाक्यं मारुतिर्वातरंहसा ।
ददर्श सहसा चापि हिमवन्तं महाकपिः ॥५६॥

पवन की तरह गमनशील पवननन्दन जाम्बवान् के वचन मरण करते हुए, थोड़ी ही देर में हिमालय के निकट जा पहुँचे । प्रथवा जाम्बवान् के बतलाए स्थान पर सहसा हिमालय को ेखा ॥५६॥

नानाप्रस्रवणोपेतं बहुकन्दरनिर्झरम् ।
श्वेताभ्रचयसङ्काशैः शिखरैश्चारुदर्शनैः ।
शोभितं विविधैर्वृक्षैरगमत् पर्वतोत्तमम् ॥५७॥

हिमालय से अनेक जल के सोते बह रहे थे उसमें बहुत सी कन्दराएँ और बहुत से झरने भी थे। उसके ( हिममंडित ) शिखर सफेद बादलों की तरह बड़े सुन्दर देख पड़ते थे। विविध जाति के वृक्षों से सुशोभित उस हिमालय पर श्री हनुमान् जी पहुँचे ॥५७॥

स तं समासाद्य महानगेन्द्रम्
अतिप्रवृद्धोत्तमघोरशृङ्गम् ।
ददर्श पुण्यानि महाश्रमाणि
सुरर्षिसङ्घोत्तमसेवितानि ॥५८॥

अत्यन्त उच्च और भयंकर शिखरों से युक्त पर्वतराज हिमालय पर पहुँच कर, हनुमान जी ने अनेक बड़े-बडे एवं पवित्र आश्रमों को देखा, जिनमें देवर्षियों के समुदाय निवास करते थे ॥५८॥

स ब्रह्मकोशं[1] रजतालयं च
शक्रालयं रुद्रशरप्रमोक्षम् ।
[3]हयाननं ब्रह्मशिरश्च दीप्तं
ददर्श वैवस्वतकिङ्करांश्च ॥५९॥

उस हिमालय पर्वत के ऊपर हनुमान जी ने ब्रह्मा जी का भवन कैलास, इन्द्र का भवन, रुद्रशरप्रमोक्ष स्थान (वह स्थान जहाँ से शिव जी ने त्रिपुरासुर को बाण मारा था), भगवान् हयग्रीव के आराधन का स्थान, प्रकाशमान ब्रह्मशिरःस्थान, (वह स्थान जहाँ रुद्र ने ब्रह्मा का सिर काट कर फैंका था) तथा यमराज के दूतों को देखा ॥५९॥

[4]वज्रालयं वैश्रवणालयं च
सूर्यप्रभं सूर्यनिबन्धनं[5] च ।
ब्रह्मासनं शङ्करकार्मुकं च
ददर्श [6]नाभिं च वसुन्धरायाः ॥६०॥

---

१ कोशो—गृहं । (गो०) २ रजतालयं—कैलासं । (गो०) ३ हयाननं हयग्रीवाराधनस्थानं । (गो०) ४ वज्रालयं—इन्द्राय ब्रह्मणा वज्रप्रदानस्थानं । (गो०) ५ सूर्यनिबन्धनं—छायादेवीप्रीतये विश्वकर्मणा शाणारोपणाय सूर्यनिबन्धनस्थानं । (गो०) ६ नाभिं—पातालप्रवेशरन्ध्रं । (गो०)

इनके अतिरिक्त हनुमान् जी ने, वज्रालय ( वह स्थान जहाँ ब्रह्मा ने इन्द्र को वज्र प्रदान किआ था ), सूर्य के समान प्रभावान् कुबेर जी का स्थान, सूर्यनिबन्ध स्थान ( वह स्थान जहाँ विश्वकर्मा ने सूर्यपत्नी छायादेवी की प्रसन्नता सम्पादन करने के लिए सनिया कपड़ा तान कर छाया की थी ), ब्रह्मासन ( वह स्थान जहाँ पर ब्रह्मा जी का सिंहासन है जिस पर बैठ कर वे देवताओं को दर्शन दिआ करते हैं ), शङ्कर-कार्मुक-स्थान ( वह स्थान जहाँ महादेव जी का धनुष रखा गया था ) और पाताल में जाने के मार्ग को भी देखा ॥६०॥

कैलासमग्र्यं हिमवच्छिलां च
तथर्षभं काञ्चनशैलमग्र्यम् ।
सन्दीप्तसर्वौषधिसम्प्रदीप्तं
ददर्श सर्वौषधिपर्वतेन्द्रम् ॥६१॥

फिर हनुमान् जी ने कैलास शिखर को, उसके समीप हिमवच्छिला नामक स्थान को, ऋषभपर्वत को, सुवर्णमय शृंगयुक्त पर्वत अर्थात् सुमेरु को तथा औषधियों के प्रकाश से प्रकाशमान पर्वतराज ओषधिपर्वत को देखा ॥६१॥

स तं समीक्ष्यानलरश्मिदीप्तं
विसिष्मिये [1]वासवदूतसूनुः ।
आवृत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं
तत्रौषधीनां विचयं चकार ॥६२॥

---

१ वासवदूतः—वायुः । (गो० )

पवनकुमार हनुमान जी अग्नि के ढेर के समान प्रदीप्त उस ओषधिपर्वत को देख, विस्मित हुए और उस पर चढ़ कर उन जड़ी बूटियों को ढूँढ़ने लगे ॥६२॥

स योजनसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।
दिव्यौषधिधरं शैलं व्यचरन् मारुतात्मजः ॥६३॥

पवननन्दन हनुमान जी एक हज़ार योजन का मार्ग तै कर, ओषधियुक्त उस पर्वत पर पहुँच कर, चारों ओर उन जड़ी बूटियों की खोज में घूमने लगे ॥६३॥

महौषध्यस्ततः सर्वास्तस्मिन् पर्वतसत्तमे ।
विज्ञायार्थिनमायान्तं ततो जग्मुरदर्शनम् ॥६४॥

किन्तु उस पर्वतश्रेष्ठ पर जो महौषधियाँ थीं—वे यह समझ कर कि, हमको लेने के लिए कोई आया है, छिप गईं ॥६४॥

स ता महात्मा हनुमानपश्यं-
श्चुकोप कोपाच्च भृशं ननाद ।
अमृष्यमाणोऽग्निनिकाशचक्षुः
महीधरेन्द्रं तमुवाच वाक्यम् ॥६५॥

उनको वहाँ न देख कर, महाबलवान हनुमान जी अति कुपित हुए और अति उच्च स्वर से गरजे। उन जड़ी बूटियों के इस प्रकार के अनुचित व्यवहार को न सह सकने के कारण, उनके दोनों नेत्र दहकती हुई आग की तरह लाल हो गए और उन्होंने उस पर्वत से कहा ॥६५॥

किमेतदेवं सुविनिश्चितं ते
यद्राघवेनासि कृतानुकम्पः ।
पश्याद्य मद्बाहुबलाभिभूतो
विशीर्णमात्मानमथो नगेन्द्र ॥६६॥

हे नगेन्द्र ! तुम जो श्रीरामचन्द्र के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार कर रहे हो, ( सो क्या यह ठीक है ? ) क्या तुमने ( अपने मन में ) यही ठान ठाना है ? ( यदि ऐसा ही है तो ) तुम अभी मेरी भुजाओं के बल से अपने आपको विध्वंस हुआ देखोगे ॥६६॥

स तस्य शृङ्गं सनगं सनागं
सकाञ्चनं धातुसहस्रजुष्टम् ।
विकीर्णकूटज्वलिताग्रसानुं
प्रगृह्य वेगात् सहसोन्ममाथ[1] ॥६७॥

( यह कह कर ) हनुमान जी ने उस पर्वत के अनेक वृक्षों और हाथियों से युक्त तथा सहस्रों ऐसी धातुओं की खानों से शोभित एवं प्रदीप्त शिखर को, एक झटका दे कर उखाड़ा कि, वह पर्वत छितरा गया ॥६७॥

स तं समुत्पाट्य खमुत्पपात
वित्रास्य लोकान् ससुरासुरेन्द्रान् ।
संस्तूयमानः खचरैरनेकैः
जगाम वेगाद्गरुडोग्रवेगः ॥६८॥

---

१उन्ममाथ—उत्पाटयामास । ( शि० )

उस पर्वत को उखाड़ कर, हनुमान जी आकाश में जा पहुँचे। (उनके इस कृत्य को देख) समस्त इन्द्रादि प्रमुख देवता लोग भयभीत हो गए। अनेक आकाशचारियों से अपनी प्रशंसा सुनते हुए, हनुमान् जी वहाँ से वैसे ही वेग से (लंका की ओर) उड़े जैसे गरुड़ जी उड़ते हैं ॥६८॥

स भास्कराध्वानमनुप्रपन्नः
तं भास्कराभं शिखरं प्रगृह्य ।
बभौ तदा भास्करसन्निकाशो
रवेः समीपे प्रतिभास्कराभः ॥६९॥

सूर्य के समान चमकीले उस पर्वत को लिये हुए हनुमान जी आकाश में उस मार्ग पर पहुँचे जिस पर सूर्य चला करते हैं। उस समय सूर्य के समान प्रदीप्त हनुमान जी की ऐसी शोभा हुई, मानों एक सूर्य के पास दूसरा सूर्य स्थित हो ॥६९॥

स तेन शैलेन भृशं रराज
शैलोपमो गन्धवहात्मजस्तु ।
सहस्रधारेण सपावकेन
चक्रेण खे विष्णुरिवार्पितेन ॥७०॥

पर्वताकार पवननन्दन हनुमान जी उस पहाड़ को लिये हुए अग्नि के समान उग्र सहस्र धारों वाला चक्र धारण किए भगवान विष्णु की तरह शोभायमान हुए ॥७०॥

तं वानराः प्रेक्ष्य विनेदुरुच्चैः
स तानपि प्रेक्ष्य मुदा ननाद ।

तेषां समुद्घुष्टरवं निशम्य

[1]लङ्कालया भीमतरं विनेदुः ॥७१॥

हनुमान जी के लङ्का में पहुँचने पर उनको देख कर वानरों ने बड़े ज़ोर से किलकारियाँ लगाईं और उन वानरों की किलकारी का शब्द सुन. हनुमान (हर्षसूचक) जी ने भी हर्षित हो सिंहनाद किया। इन दोनों के मिश्रित नाद को सुन, राक्षसों ने इन दोनों से भी अधिक भयङ्कर सिंहनाद किया ॥७१॥

ततो महात्मा निपपात तस्मिन्

शैलोत्तमे वानरसैन्यमध्ये ।

हर्युत्तमेभ्यः शिरसाऽभिवाद्य

विभीषणं तत्र स सस्वजे च ॥७२॥

तदनन्तर महाबलवान हनुमान जी उस शैल को लिये हुए वानरों के बीच आकाश से नीचे उतर आए। फिर उन्होंने बड़े बूढ़े वानरों को सिर झुका कर प्रणाम किया और विभीषण को गले लगाया ॥७२॥

तावप्युभौ मानुषराजपुत्रौ

तं गन्धमाघ्राय महौषधीनाम् ।

बभूवतुस्तत्र तदा विशल्या-

वुत्तस्थुरन्ये च हरिप्रवीराः ॥७३॥

उन दिव्य ओषधियों की गन्ध को सूंघने ही से दोनों राजकुमार श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के घाव पुर गये तथा अन्य घायल वीर वानरों के भी घाव अच्छे हो गए और वे उठ बैठे ॥७३॥

---

१ लङ्कालयाः—राक्षसाः । (शि०)

सर्वे विशल्या विरुजः क्षणेन
हरिप्रवीरा निहताश्च ये स्युः ।
गन्धेन तासां प्रवरौषधीनां
सुप्ता निशान्तेष्विव संप्रबुद्धाः ॥७४॥

एक क्षण में सब के घाव भर गए और सब चंगे हो गए उन उत्कृष्ट जड़ी बूटियों की महक ही से, वे वानर वीर भी, जो मर गए थे, जीवित हो, ऐसे उठ बैठे; जैसे सोता हुआ आदमी, रात बीतने पर उठ बैठता है ॥७४॥

[टिप्पणी—इन जड़ी बूटियों के गन्ध का प्रभाव मरे हुए और घायल राक्षसों के ऊपर क्यों न हुआ ? इस शंका का समाधान करते हुए आदि काव्यकार ने लिखा है :—]

यदाप्रभृति लङ्कायां युध्यन्ते कपिराक्षसाः ।
तदाप्रभृति [1]मानार्थमाज्ञया रावणस्य च ॥७५॥
ये हन्यते रणे तत्र राक्षसाः कपिकुञ्जरैः ।
[2]हताहतास्तु क्षिप्यन्ते सर्व एव तु सागरे ॥७६॥

जब से लङ्का में वानरों और राक्षसों की लड़ाई आरम्भ हुई, तभी से लड़ाई में जो राक्षस वानरों के हाथ से मारे जाते थे या घायल होते थे, वे सब के सब, रावण के आज्ञानुसार उठा कर, समुद्र में पटक दिए जाते थे। इसलिए कि, शत्रुओं को मरे हुए राक्षसों की संख्या का पता न लगने पावे ॥७५॥७६॥

---

१ मानार्थ—हतानां राक्षसानां इयत्ता अपरिज्ञानार्थम् । (गो०)
२ हताहताः—मुमूर्षावस्थाः । (गो०)

ततो हरिर्गन्धवहात्मजस्तु
तमोषधीशैलमुदग्रवीर्यः ।
निनाय वेगाद्धिमवन्तमेव
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥७७॥

इति चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥

तदनन्तर जब समस्त वानर जी उठे, तब अत्यन्त वेगसम्पन्न पवननन्दन हनुमान जी उस औषध-पर्वत को उठा कर, जहाँ का तहाँ रख कर, पुनः श्रीरामचन्द्र जी के पास आ गये ॥७७॥

युद्धकाण्ड का चौहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## पञ्चसप्ततितमः सर्गः

—❀—

ततोऽब्रवीत् महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
[1]अर्थ्यं विज्ञापयंश्चापि हनुमन्तमिदं वचः ॥१॥

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव ने (वानरी सेना के लिए) आगे के कर्त्तव्य को बतलाते हुए, हनुमान् जी से यह कहा ॥१॥

यतो हतः कुम्भकर्णः कुमाराश्च निषूदिताः ।
नेदानीमुपनिर्हारं[2] रावणो दातुमर्हति ॥२॥

---

१ अर्थ्यं—अर्थादनपेतं । औत्तरकालिककर्त्तव्यं बोधयन् । (शि०)
२ उपनिर्हारं—स्वपुररक्षांदातुं सम्पादयितुंनार्हति । (शि०)

जब से कुम्भकर्ण और राजकुमार युद्ध में मारे गए हैं, तब से रावण लङ्कापुरी की रक्षा करने में असमर्थ है ॥२॥

ये ये महाबलाः सन्ति [1]लघवश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कामभ्युत्पतन्त्वाशु गृह्योल्काः प्लवमर्षभाः ॥३॥

अतएव वानरी सेना मे जो महाबलवान और फुर्तीले वानर हों वे सब शीघ्र ही मशालें हाथों में ले लेकर, लङ्कापुरी में घुस पड़ें ॥३॥

ततोऽस्तंगत आदित्ये रौद्रे[3] तस्मिन्निशामुखे[2] ।
लङ्कामभिमुखाः सोल्का जग्मुस्ते प्लवगर्षभाः ॥४॥

जब सूर्य अस्ताचलगामी हो गए और एक पहर रात बीत गई तथा अन्धकार फैल गया, तब वानरगण हाथों में जलती मशालें लिये हुए लङ्का की ओर चले ॥४॥

उल्काहस्तैर्हरिगणैः सर्वतः समभिद्रुताः ।
आरक्षस्था[4] विरूपाक्षाः[5] सहसा विप्रदुद्रुवुः ॥५॥

जब हाथों में मशालें लिये हुए वानरगण चारों ओर से लङ्का के ऊपर दौड़े, तब वे राक्षस जो लङ्का के दुर्गों की रक्षा करने को नियुक्त किए गए थे, सहसा भाग खड़े हुए ॥५॥

गोपुराट्टप्रतोलीषु चर्यासु[6] विविधासु च ।
प्रासादेषु च संहृष्टाः ससृजुस्ते हुताशनम् ॥६॥

---

१ लघवः—वेगवन्तः । (गो०) २ निशामुखे—रात्रेः प्रथमयाम उच्यते । (गो०) ३ रौद्र-इति विशेषणात् यामान्तत्वेन गाढान्धकारत्वमुच्यते । (गो०) ४ आरक्षस्थाः—गुल्मस्थाः । ( गो० ) ५ विरूपाक्षाः—राक्षसाः । ( गो० ) ६ चर्याः—अवान्तरवीथ्यः । ( गो० )

तब वानर लोग हर्षित हो लङ्कापुरी के फाटकों में, परकोटे के ऊपर बने बुर्जों में, गलियों में, गलियों के भीतर की अनेक गलियों में, हवेलियों में आग लगाने लगे ॥६॥

तेषां गृहसहस्राणि ददाह हुतभुक्तदा ।
प्रासादाः पर्वताकाराः पतन्ति धरणीतले ॥७॥

लङ्का के हजारों घरों को अग्निदेव ने जला कर भस्म कर डाला, पहाड़ों की तरह बड़े ऊँचे ऊँचे महल भस्म होकर, पृथिवी पर गिर पड़े ॥७॥

अगरुर्दह्यते तत्र वरं च हरिचन्दनम् ।
मौक्तिका मणयः स्निग्धा वज्रं चापि प्रवालकम् ॥८॥

कहीं पर अगर जल रहा था, कहीं पर बढ़िया चन्दन की लकड़ियाँ जल रही थीं। बढ़िया बढ़िया मोती, मणियाँ, हीरे और मूंगे जल रहे थे ॥८॥

क्षौमं च दह्यते तत्र कौशेयं चापि शोभनम् ।
आविकं विविधं चौर्णं काञ्चनं भाण्डमायुधम् ॥९॥
[1]नानाविकृतसंस्थानं वाजिभाण्डपरिच्छदौ ।
गजग्रैवेयकक्ष्याश्च रथभाण्डाश्च संस्कृताः ॥१०॥

सुन्दर रेशमी वस्त्र और बनावटी रेशम के वस्त्र भस्म हो गए विविध प्रकार के पशमीने और कंबल और सोने के कलसे, भगोने तथा हथियार भी जल कर राख हो गए। तरह तरह के भोज्य-पदार्थ रखने के कोठे, घोड़ों के जेवर व जीनकाठियाँ, हाथियों के गले के कठुले तथा पीठ पर कसने की डोरियाँ, रथों की सजावट

---

१ नाना विकृतसंस्थानं—नाना विकृतानाम् अन्नादि पाकानां स्थलम् ।

के लिए गहने आदि जो कुछ वस्तुएँ वहाँ बड़ी सम्हाल के साथ अथवा झाड़ी पौंछी हुई रखीं थीं, वे सब जल कर भस्म हो गईं ॥९॥१०॥

तनुत्राणि च योधानां हस्त्यश्वानां च वर्म च ।
खड्गा धनूंषि ज्याबाणास्तोमराङ्कुशशक्तयः ॥११॥

कहीं सिपाहियों के कवच, कहीं हाथियों और घोड़ों के कवच, कहीं तलवारें, कहीं धनुष, कहीं धनुष के रोदे, कहीं बाण, कहीं तोमर, कहीं अंकुश और कहीं शक्तियों के ढेर के ढेर जल कर भस्म हो रहे थे ॥११॥

रोमजं वालजं चर्म व्याघ्रजं चाण्डजं बहु ।
मुक्तामणिविचित्रांश्च प्रासादांश्च समन्ततः ॥१२॥

कहीं कंबल, कहीं चँवर, कहीं ढालें, कहीं व्याघ्रों के चर्म, कहीं कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ, रंगबिरंगी मणियाँ और मोती जल रहे थे। लंका में जिधर देखा उधर ही बड़े बड़े भवनों में आग लगी हुई थी ॥१२॥

विविधानस्त्रसंयोगानग्निर्दहति तत्र वै ।
नानाविधान् गृहच्छन्दान् ददाह हुतभुक् तदा ॥१३॥

विविध प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों के संयोग से अग्नि ने और भी प्रचंड हो कर तथा विविध प्रकार के रूप धारण कर के, राक्षसों के गृहों और बैठकों को जला कर भस्म कर डाला ॥१३॥

[ टिप्पणी—"विविध प्रकार के अस्त्रों शस्त्रों के संयोग—का अभिप्राय दहक उठने वाले कल जैसे हथियारों से है। ]

आवासान् राक्षसानां च सर्वेषां [1]गृह्यगर्धिनाम् ।
हेमचित्रतनुत्राणां स्रग्दामाम्बरधारिणाम् ॥१४॥

---

१ गृह्यगर्धिनां —गृहस्थाना। ( गो० )

सुवर्णखचित कवच एवं पुष्पमाला तथा हार पहिनने वाले समस्त गृहस्थ राक्षसों के घरों को भी वानरों ने अग्नि से जला कर भस्म कर डाला ॥१४॥

शीधुपानचलाक्षाणां मदविह्वलगामिनाम् ।
[1]कान्तालम्बितवस्त्राणां शत्रुसञ्जातमन्युनाम् ॥१५॥

गदाशूलासिहस्तानां खादतां पिबतामपि ।
शयनेषु महार्हेषु प्रसुप्तानां प्रियैः सह ॥१६॥

त्रस्तानां गच्छतां तूर्णं पुत्रानादाय सर्वतः ।
तेषां शतसहस्राणि तदा लङ्कानिवासिनाम् ॥१७॥

अदहत् पावकस्तत्र जज्वाल च पुनः पुनः ।
[2]सारवन्ति महार्हाणि [3]गम्भीरगुणवन्ति[4] च ॥१८॥

मदिरापान के कारण चञ्चल नेत्र वाले. पोशाकें पहिने हुए, नशे में मतवाले हो अटपट चाल चलने वाले, रतिपरायण और शत्रुओं पर क्रुद्ध हो, हाथों में गदा, शूल, तलवार लिये हुए, भोजन करते हुए तथा शराब पीते हुए तथा बढ़िया सेजों पर अपनी प्यारियों के साथ सोते हुए तथा भयभीत हो पुत्रों को लिये हुए चारों ओर शीघ्रतापूर्वक भागते हुए सैकड़ों सहस्रों लंका-वासी राक्षसों को आग ने जला कर भस्म कर डाला। इस पर भी वह आग धाँय धाँय कर बार बार जल रही थी। विपुल धन से युक्त, बड़े मूल्यवान् कई खनों के, बड़े सुन्दर ॥१५॥१६॥ ॥१७॥ १८॥

---

१ कान्तालम्बितवस्त्राणां—रतिपरायणामिति यावत् । ( गो० )
२ सारवन्ति—श्रेष्ठधनवन्ति । ( गो० ) ३ गम्भीराणि—महातल्पवन्ति । ( गो० ) ४ गुणवन्ति—सौन्दर्यवन्ति । ( गो० )

हेमाचन्द्रार्धचन्द्राणि चन्द्रशालोन्नतानि च ।
रत्नचित्रगवाक्षाणि साधिष्ठानानि सर्वशः ॥१९॥

सुवर्ण के बने चन्द्राकार और अर्द्धचन्द्राकार भवन तथा उनके ऊपर बनी हुई अत्युच्च अटारियाँ, जिनमे रत्नखचित रंग-बिरंगे झरोखे बने हुए थे, इन सब को सेजों और बैठकों सहित अग्निदेव ने जला कर भस्म कर डाला ॥१९॥

मणिविद्रुमचित्राणि स्पृशन्तीव दिवाकरम् ।
क्रौञ्चबर्हिणवीणानां भूषणानां च निःस्वनैः ॥२०॥

इनमें ऐसे ऐसे राजभवन थे, जिनमें मणियों और मूँगों की पच्चीकारी के काम बने हुए थे और जो इतने ऊँचे थे कि, सूर्यपथ को स्पर्श करते हुए से जान पड़ते थे। इन भवनों (के गृहोद्यानों) में क्रौंच और मोर पक्षी बोला करते थे और इनमें भूषणों की झनकार और वीणा की मधुर ध्वनि सदा हुआ करती थी ॥२०॥

नादितान्यचलाभानि वेश्मान्यग्निर्ददाह सः ।
ज्वलनेन परीतानि तोरणानि चकाशिरे ॥२१॥

जो एक दूसरे पर्वत की तरह देख पड़ते थे—उन सुन्दर सुन्दर भवनों को आग जला कर भस्म कर रही थी। वहाँ आग से भस्म होते हुए तोरण द्वार ऐसे जान पड़ते थे ॥२१॥

विद्युद्भिरिव नद्धानि मेघजालानि घर्मगे ।
ज्वलनेन परीतानि निपेतुर्भवनान्यथ ॥२२॥

---

१ साधिष्ठानानि—शय्यासनादिसहितानि । ( गो० )

जैसे ग्रीष्मकाल में बिजली से युक्त मेघों की घटाएँ। आग से जलते हुए राक्षसों के घर ऐसे गिर रहे थे ॥२२॥

वज्रिवज्रहतानीव शिखराणि महागिरेः।
विमानेषु प्रसुप्ताश्च दह्यमाना वराङ्गनाः ॥२३॥

जैसे इन्द्र के वज्र के प्रहार से टूट कर गिरे हुए बड़े बड़े पर्वतों के शिखर। अटारियों में सोती हुई सुन्दरियाँ घर में आग लगने पर ॥२३॥

त्यक्ताभरणसर्वाङ्गा हा हेत्युच्चैर्विचुक्रुशुः।
तानि निर्दह्यमानानि दूरतः प्रचकाशिरे ॥२४॥

आभूषण फेंक फेंक कर "हाय हाय" कह कर, चिल्ला रही थीं। उनके जलते हुए भवन दूर से ऐसे जान पड़ते थे ॥२४॥

हिमवच्छिखराणीव दीप्तौषधिवनानि च।
हर्म्याग्रैर्दह्यमानैश्च ज्वालाप्रज्वलितैरपि ॥२५॥

मानों हिमालय के शिखर पर चमकती हुई जड़ी बूटियों से युक्त वन हों। बड़े बड़े भवनों की अटारियों पर बड़ी बड़ी लपटों के साथ आग दहक रही थी ॥२५॥

रात्रौ सा दृश्यते लङ्का पुष्पितैरिव किंशुकैः।
हस्त्यध्यक्षैर्गजैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ॥२६॥

उस समय रात में लङ्का ऐसी जान पड़ती थी, मानों फूले हुए टेसू के पेड़ों का वन हो। कहीं महावत, कहीं छूटे हुए हाथी और घोड़े इधर उधर भाग रहे थे ॥२६॥

बभूव लङ्का लोकान्ते भ्रान्तग्राह इवार्णवः ।
अश्वं मुक्तं गजो दृष्ट्वा क्वचिद्भीतोऽपसर्पति ॥२७॥

उस समय लङ्का की वैसी ही दशा हो रही थी, जैसी प्रलय-काल में विकल मगरों मच्छों से समुद्र की हुआ करती है। कहीं तो किसी छूटे हुए घोड़े को देख मारे डर के कोई हाथी भाग रहा था ॥२७॥

भीतो भीतं गजं दृष्ट्वा क्वचिदश्वो निवर्तते ।
लङ्कायां दह्यमानायां शुशुभे स महार्णवः ॥२८॥
छायासंसक्तसलिलो लोहितोद इवार्णवः।
सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्दीपिता पुरी ॥२९॥

और कहीं किसी छूटे हुए और डरे हुए हाथी को देख, कोई घोड़ा भाग रहा था। लंका में आग लगने से और आग की छाया समुद्र में पड़ने से, समुद्र ऐसा जान पड़ता था, मानों उसमें लाल जल भरा हो। वानरों के द्वारा आग लगाई जाने से मुहूर्त्त भर में वह लङ्का ऐसी (भयंकर) हो गई ॥२८॥२९॥

लोकस्यास्य क्षये घोरे प्रदीप्तेव वसुन्धरा ।
नारीजनस्य धूमेन व्याप्तस्योच्चैर्विनेदुषः ॥३०॥

जैसी लोकक्षय (प्रलय) के समय जल कर, पृथिवी भयंकर हो जाती है। धुएं से दम घुटने पर विकल हो, स्त्रियाँ उच्च स्वर से चिल्ला रही थीं ॥३०॥

स्वनो ज्वलनतप्तस्य शुश्रुवे दशयोजनम् ।
प्रदग्धकायानपरान् राक्षसान्निर्गतान् बहिः ॥३१॥

इस अग्निकाण्ड का (चटपट का और मकानों के गिरने का धड़ामधड़ाम का तथा लोगों के हाहाकार का) शब्द दस योजन की दूरी तक सुनाई पड़ता था। जिन राक्षसों के शरीर झुलस जाते थे वे जब घर के बाहिर निकलते थे ॥३१॥

सहसाऽभ्युत्पतन्ति स्म हरयोऽथ युयुत्सवः।
उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनः ॥३२॥

तब वानर भी उनसे लड़ने के लिये कूद कर उनके पास पहुँच जाते थे। उस समय वानरों और राक्षसों के चिल्लाने का शब्द ॥३२॥

दिशो दश समुद्रं च पृथिवीं चान्वनादयत्।
विशल्यौ तु महात्मानौ ताबुभौ रामलक्ष्मणौ ॥३३॥

दसों दिशाओं में, समुद्र में और पृथिवी पर प्रतिध्वनित हो रहा था। उधर बाणों के घावों के पुर जाने से दोनों बलवान भाई श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी ने ॥३३॥

असम्भ्रान्तौ जगृहतुस्ते उभे धनुषी वरे।
ततो विष्फारयानस्य रामस्य धनुरुत्तमम् ॥३४॥

सावधान हो, अपने अपने श्रेष्ठ धनुषों को उठाया। तदनन्तर जब श्रीरामचन्द्र जी ने अपने श्रेष्ठ धनुष का रोदा तान कर उसे टंकारा ॥३४॥

बभूव तुमुलः शब्दो राक्षसानां भयावहः।
अशोभत तदा रामो धनुर्विष्फारयन् महत् ॥३५॥

तब उस टङ्कार का ऐसा भयङ्कर शब्द हुआ कि, राक्षस डर गए। उस समय धनुष को टङ्कारते हुए श्रीरामचन्द्र जी की वैसी ही शोभा हुई ॥३५॥

भगवानिव संक्रुद्धो भवो वेदमयं धनुः ।
उद्घुष्टं वानराणां च राक्षसानां च निस्वनम् ॥३६॥

जैसी (शोभा) अत्यन्त क्रुद्ध भगवान् शिव की वेदमय (धनुर्वेदोक्तलक्षणयुक्त) धनुष हाथ में लेने से हुई थी। वानरों और राक्षसों के सिंहनाद को ॥३६॥

ज्याशब्दस्तावुभौ शब्दावतिरामस्य शुश्रुवे ।
वानरोद्घुष्टघोषश्च राक्षसानां च निस्वनः ॥३७॥

दबा कर, श्रीरामचन्द्र जी के धनुष के रोदे का शब्द सुनाई पड़ा। वानरों की किलकारियाँ और राक्षसों के गर्जन का शब्द ॥३७॥

ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप्तं दिशो दश ।
तस्य कार्मुकमुक्तैश्च शरैस्तत्पुरगोपुरम् ॥३८॥

तथा श्रीरामचन्द्र जी के धनुष के टङ्कार का शब्द—ये तीनों शब्द दसों दिशाओं में व्याप्त हो गए। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के धनुष से छूटे हुए तीरों से लङ्का के परकोटे के फाटक ॥३८॥

कैलासशृङ्गप्रतिमं विकीर्णमपतद्भुवि ।
ततो रामशरान् दृष्ट्वा विमानेषु गृहेषु च ॥३९॥

कैलास पर्वत के शिखर की तरह टूट टूट कर पृथिवी पर गिरने लगे। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के बाणों को उच्च भवनों और साधारण घरों में पड़े देख, ॥३९॥

सन्नाहो राक्षसेन्द्राणां तुमुलः समपद्यत ।
तेषां सन्नह्यमानानां सिंहनादं च कुर्वताम् ॥४०॥

प्रधान प्रधान राक्षसों में भी भयंकर युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। उनके तैयार होने के कोलाहल से तथा उनके सिंहगर्जन से ॥४०॥

शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रौद्रीव समपद्यत ।
आदिष्टा वानरेन्द्रास्तु सुग्रीवेण महात्मना ॥४१॥

वह रात उन प्रधान राक्षसों के लिए कालरात्रि के समान हो गई। इसी अवसर में महाबलवान् सुग्रीव ने प्रधान प्रधान वानरों को आज्ञा दी कि, ॥४१॥

आसन्नद्वारमासाद्य युध्यध्वं प्लवगर्षभाः ।
यश्च वो वितथं कुर्यात्तत्र यत्र ह्युपस्थितः ॥४२॥

हे वानरों ! तुममें से जो वानर जिस द्वार पर हो, वह उसी द्वार पर युद्ध करे। जो वानर मोर्चे पर रह कर मेरी इस आज्ञा के विरुद्ध कार्य करेगा ॥४२॥

स हन्तव्यो हि संप्लुत्य राजशासनदूषकः ।
तेषु वानरमुख्येषु दीप्तोल्कोज्ज्वलपाणिषु ॥४३॥

वह वानर राजाज्ञा की अवहेलना करने के अपराध में पकड़ कर मार डाला जायगा। प्रधान प्रधान वानरों को हाथों में जलती हुई मशालें लिये ॥४३॥

स्थितेषु द्वारमासाद्य रावणं मन्युराविशत् ।
तस्य जृम्भितविक्षेपाद्व्यामिश्रा[१]वै दिशो[२] दश ॥४४॥

---

१ व्यामिश्रा—व्याकुलाः। ( गो० ) २ दिशः—दिक्स्थिताः। ( गो० )

पुरी के द्वारों पर खड़ा देख, रावण अत्यन्त कुपित हुआ और जँभुआई ली। उसके जँभुआई लेने से दसों दिशाओं के लोग घबड़ा गए ॥४४॥

रूपवानिव रुद्रस्य मन्युर्गात्रेष्वदृश्यत।
स निकुम्भं च कुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ॥४५॥

रुद्र के शरीर में जो शरीरधारी की तरह क्रोध बिराजता है, वही क्रोध रावण के शरीर में देख पड़ा। उसने कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र निकुम्भ और कुम्भ को ॥४५॥

प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह।
यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजङ्घः कम्पनस्तथा ॥४६॥

क्रोध में भर, बहुत से राक्षसों के साथ (वानरों से लड़ने के लिए) भेजा। यूपाक्ष, शोणिताक्ष प्रजंघ और कम्पन ॥४६॥

निर्ययुः कौम्भकर्णिभ्यां सह रावणशासनात्।
शशास चैव तान् सर्वान् राक्षसान् सुमहाबलान् ॥४७॥

नादयन् गच्छताऽत्रैव जयध्वं शीघ्रमेव च।
ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ॥४८॥

लङ्काया निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः।
रक्षसां भूषणस्थाभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वशः ॥४९॥

रावण की आज्ञा से कुम्भकर्ण के दोनों पुत्रों के साथ चले। चलते समय रावण ने उन सब अत्यन्त महाबलवान् राक्षसों से कहा—हे राक्षसो! तुम लोग सिंहनाद करते हुए तुरन्त जाओ। की ऐसी आज्ञा पाकर, राक्षस लोग बार बार सिंहनाद

करते हुए तथा विविध प्रकार के दमकते हुए आयुधों को लेकर, लंका से निकले । चारों ओर राक्षसों के भूषणों की दमक से ॥४७॥४८॥४९॥

चक्रुस्ते सप्रभं व्योम हरयश्चाग्निभिः सह ।
तत्र ताराधिपस्याभा ताराणां च तथैव च ॥५०॥

और वानरों की मशालों के प्रकाश से आकाश प्रकाशित हो गया । ( उस समय केवल इन्हींका प्रकाश न था, प्रत्युत ) चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्रों का भी प्रकाश सम्मिलित था ॥५०॥

तयोराभरणस्था च बलयोर्द्यामभासयन् ।
चन्द्राभा भूषणाभा च गृहाणां ज्वलतं च भा ॥५१॥

चन्द्रमा की चाँदनी, भूषणों की आभा, जलते हुए गृहों के आग के प्रकाश से और उन दोनों राक्षसी एवं वानरी सेनाओं के सैनिकों के भूषणों की दमक से, आकाश में प्रकाश ही प्रकाश देख पड़ने लगा ॥५१॥

हरिराक्षससैन्यानि भ्राजयामास सर्वतः ।
तत्र चोर्ध्वं प्रदीप्तानां गृहाणां सागरः पुनः ॥५२॥
भाभिः संसक्तपातालश्चलोर्मिः शुशुभेऽधिकम् ।
पताकाध्वजसंसक्तमुत्तमासिपरश्वधम् ॥५३॥

और राक्षसों और वानरों की सेनाएँ शोभायमान देख पड़ने लगीं । घरों के ऊपरी हिस्सों के जलने के प्रकाश से, चञ्चल तरङ्ग मालायुक्त समुद्र पाताल तक और भी अधिक शोभायमान हुआ । राक्षसी सेना ध्वजाओं पताकाओं से युक्त तथा बढ़िया बढ़िया तलवारों और परश्वधों को लिए हुए ॥५२॥५३॥

भीमाश्वरथमातङ्गं१नानापत्तिसमाकुलम् ।
दीप्तशूलगदाखड्गप्रासतोमरकार्मुकम् ॥५४॥

और भयंकर अश्वों, रथों और हाथियों पर सैनिक सवार थे। उस सेना में पैदल योद्धा भी बहुत थे। वे चमचमाते शूल, गदा, खड्ग, प्रास, तोमर, धनुषादि लिए हुए ॥५४॥

तद्राक्षसबलं घोरं भीमविक्रमपौरुषम् ।
ददृशे ज्वलितप्रासं किङ्किणीशतनादितम् ॥५५॥

राक्षसी सेना के सैनिक बड़े भयंकर और पराक्रमी एवं पुरुषार्थी थे। उन योद्धाओं में से किसी के पास ऐसा भी प्रास था, जिसमें सैकड़ों घुंघरू बजते जाते थे ॥५५॥

हेमजालाचितभुजं *व्यावेष्टितपरश्वधम् ।
व्याघूर्णितमहाशस्त्रं बाणसंसक्तकार्मुकम् ॥५६॥

सुवर्ण के आभूषणों से भूषित भुजाओं से राक्षस योद्धा फरसे तथा अन्य आयुध घुमा रहे थे। वे बड़े बड़े अस्त्रों को घुमा रहे थे तथा कमानों पर तीर रखे हुए थे ॥५६॥

गन्धमाल्यमधूत्सेकसम्मोदितमहानिलम्
घोरं शूरजनाकीर्णं महाम्बुधर निस्वनम् ।५७॥

कहीं पुष्पमालाओं की सुगन्धि से और कहीं शराब की महक से युक्त प्रचण्ड पवन चल रहा था। शूर योद्धाओं से युक्त बड़ी बड़ी मेघ घटाओं के समान गर्जन करती हुई ॥५७॥

---

१ पत्तयः—पदातयः। (गो०) *पाठान्तरे—"व्यामिश्रित परश्वधम् ।"

तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां सुदारुणम् ।
सञ्चचाल प्लवङ्गानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥५८॥

उस दारुण राक्षसी सेना को आते देख, वानरी सेना विचलित हो, उच्चस्वर से गर्जी ॥५८॥

जवेनाप्लुत्य च पुनस्तद्बलं रक्षसां महत् ।
अभ्ययात् प्रत्यरिबलं पतङ्गा इव पावकम् ॥५९॥

उधर बड़ी भारी वह राक्षसी सेना वानरों की सेना पर वैसे ही टूटी, जैसे पतंगों का दल दीपक पर गिरता है ॥५९॥

तेषां भुजपरामर्शव्यामृष्टपरिघाशनि ।
राक्षसानां बलं श्रेष्ठं भूयस्तरमशोभत ॥६०॥

उन राक्षसों की भुजाओं से परिचालित परिघ और वज्राकार शस्त्र उस श्रेष्ठ राक्षसी सेना की और भी अधिक शोभा बढ़ा रहे थे ॥६०॥

तत्रोन्मत्ता इवोपेतुर्हरयोऽथ युयुत्सवः ।
तरुशैलैरभिघ्नन्तो मुष्टिभिश्च निशाचरान् ॥६१॥

लड़ने के लिए तैयार वानर योद्धा राक्षसी सेना पर रणोन्मत्त की तरह टूट पड़े और पेड़ों पत्थरों और मूँकों से राक्षसों को मारने लगे ॥६१॥

तथैवापततां तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
शिरांसि सहसा जह्रू राक्षसा भीमदर्शनाः ॥६२॥

तब वे भयंकर राक्षस पैनी पैनी तलवारों से उन आक्रमण-कारी वानरों के सिर काटने लगे ॥६२॥

दशनैर्हृतकर्णाश्च मुष्टिनिष्कीर्णमस्तकाः ।
शिलाप्रहारभग्नाङ्गा विचेरुस्तत्र राक्षसाः ॥६३॥

वानरों द्वारा दाँतों से कटे हुए कानों वाले, मूँके से फटे हुए सिरों वाले, शिलाओं के प्रहार से अङ्गभंग राक्षस रणभूमि में इधरउधर विचर रहे थे ॥६३॥

तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामभिलक्षिताः[1] ।
प्रवीरानभितो जघ्नू राक्षसानां तरस्विनाम् ॥६४॥

अन्य प्रसिद्ध वीर वानर भी चुन चुन कर, बलवान् राक्षसों का संहार कर रहे थे ॥६४॥

तथैवाप्यपरे तेषां कपीनामसिभिः शितैः ।
हरिवीराभिजघ्नुश्च घोररूपा निशाचराः ॥६५॥

इसी प्रकार वे घोर राक्षस पैनी तलवारों से वीर वानरों को नष्ट कर रहे थे ॥६५॥

घ्नन्तमन्यं जघानान्यः पातयन्तमपातयत् ।
गर्हमाणं जगर्हेऽन्यो दशन्तमपरोऽदशत् ॥६६॥

ज्यों ही एक दूसरे वीर को मारने के लिये तैयार हुआ कि, त्योंही एक तीसरे वीर ने आकर उस मारने वाले को मार डाला । इसी प्रकार ज्यों ही एक वीर दूसरे को गिराना चाहता ही था कि,

---

१ कपीनां अभिलक्षिताः—प्रसिद्धाः । कपिप्रवरा इत्यर्थः । ( गो० )

यों ही तीसरे ने जाकर उसको गिरा दिया। इसी प्रकार ज्योंही एक वीर दूसरे वीर को धिक्कारने लगा, त्यों ही तीसरा जाकर उस धिक्कारने वाले वीर को धिक्कारने लगा और जो वीर किसी दूसरे को काटना चाहता था उसे तीसरा जाकर काट देता था। अथवा जिस प्रकार एक वीर दूसरे को मारता उसी प्रकार दूसरा भी उसे मारता था, जिस प्रकार एक दूसरे को गिराता वैसे ही वह भी उसे गिराता था। जैसे कोई किसी को डपटता तो वह भी उसे वैसे ही डपटता था। कोई किसी को काटता तो वह भी उसे वैसे ही काटता था ॥६६॥

देहीत्यन्यो ददात्यन्यो ददामीत्यपरः पुनः ।
किं क्लेश्यसि तिष्ठेति तत्रान्योन्यं बभाषिरे ॥६७॥

जब किसी वीर से चाहने पर दूसरा वीर उससे युद्ध करने लगता; तब इसी बीच में और कोई वीर आकर कहता—मैं लड़ूँगा तुम अपने आपको क्यों कष्ट देते हो, ठहरो। इसी प्रकार वह भी (जिससे यह कहा जाता) उससे (कहने वाले से) कहता था ॥६७॥

विप्रलम्बितवस्त्रं च विमुक्तकवचायुधम् ।
समुद्यतमहाप्रासं यष्टिशूलासिसङ्कुलम् । ॥६८॥

प्रावर्तत महारौद्रं युद्धं वानररक्षसाम् ।
वानरान् दश सप्तेति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥६९॥

धीरे धीरे वानरों और राक्षसों के युद्ध की भीषणता बढ़ने लगी। लड़ते लड़ते योद्धाओं के वस्त्र ढीले पड़ गए थे। हथियार छुट पड़े थे। बड़े बड़े फरसे, डंडे शूल तलवारों से युक्त भुजाएँ

( प्रहार करने के लिए ) राक्षस लोग उठाए हुए थे। इस युद्ध में राक्षस योद्धा एक एक बार में दस दस और सात सात वानरों को मार गिराते थे ॥६८॥६६॥

राक्षसान् दश सप्तेति वानराश्चाभ्यपातयन् ।
विस्रस्तकेशवसन विध्वस्तकवचध्वजम् ॥७०॥

और इसी प्रकार एक एक प्रहार से वानर भी दस दस और सात सात राक्षसों को मार कर गिरा देते थे। उस राक्षसी सेना के योद्धाओं के सिरों क बाल बिखर गए थे, कपड़े खुल पड़े थे, कवच चूर चूर हो गए थे और ध्वजाओं के टुकड़े टुकड़े हो गए थे ॥७०॥

बलं राक्षसमालम्ब्य१ वानराः पर्यवारयन् ॥७१॥

इति पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥

उस राक्षसी सेना को वानर वीर बड़े वेग से दौड़ दौड़ कर रोकते थे और उसे घेरे हुए थे ॥७१॥

युद्धकाण्ड का पचहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ।

## षट् सप्ततितमः सर्गः

—※—

प्रवृत्ते सङ्कुले[1] तस्मिन् घोरे वीरजनक्षये ।
अङ्गदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥१॥

जब वह घोर और वीरों का नाश करने वाला युद्ध निरन्तर हो रहा था, तब लड़ने के लिए उत्सुक अङ्गद ने कम्पन का सामना किया ॥१॥

आहूय सोऽङ्गदं कोपात्ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥२॥

अकम्पन ने अंगद को ललकार कर, बड़े जोर से अंगद के एक गदा मारी, जिसके प्रहार से अंगद डगमगाने लगे ॥२॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥३॥

तेजस्वी अंगद ने सावधान होने पर कम्पन के ऊपर एक गिरिशृंग फेंका, जिसकी चोट से कम्पन मर कर, पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३॥

ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ।
रथेनाभ्यपतत् क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥४॥

उस कम्पन को युद्ध में मरा हुआ देख, शोणिताक्ष ने निर्भय हो अपना रथ बड़ी शीघ्रता से अंगद की ओर हँकवाया ॥४॥

---

१ संकुले—निरन्तरे ।

सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ।
शरीरदारणैस्तीक्ष्णैः [1]कालाग्निसमविग्रहैः ॥५॥

और वह बड़ी फुर्ती से अंगद को पैने पैने बाणों से वेधने लगा। उन कालाग्नि सदृश आकार वाले पैने बाणों से अंगद का शरीर क्षतविक्षत हो गया ॥५॥

क्षुरक्षुरप्रैर्नाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ।
कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥६॥
अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रः प्रतापवान् ।
धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसा बली ॥७॥

अंगद ने क्षुर, क्षुरप्र, नाराच, वत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णि, शल्य और विपाठ ( ये सब बाणों के भेद हैं ) नामक बहुत से पैने तीरों की चोट खाई, किन्तु पीछे से बलवान् एवं प्रतापी वालिपुत्र अंगद ने उस राक्षस का उग्र धनुष, बाण और रथ बड़े वेग से तोड़ मरोड़ डाले ॥६।७॥

शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समाददे ।
उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥८॥

तब शोणिताक्ष क्रुद्ध हो तुरन्त ढाल तलवार ले बड़ी फुर्ती तेज़ी से (परिणाम) बिना बिचारे रथ से कूद पड़ा ॥८॥

तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य [2]परामृश्याङ्गदो बली ।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥९॥

---

१ कालाग्निसमविग्रहैः—कालाग्नितुल्याकारैः । ( गो० ) २ परामृश्य—प्रगृह्य । ( गो० )

तब विपुल बलशाली अंगद ने फुर्ती से झपट कर, उस राक्षस को पकड़ लिया और उसके हाथ से तलवार छीन, वे सिंहनाद करने लगे ॥९॥

तस्यांसफलके[1] खड्गं निजघान ततोऽङ्गदः ।
यज्ञोपवीतवच्चैनं चिच्छेद कपिकुञ्जरः ॥१०॥

फिर जैसे बाँये कन्धे से दहिनी कोख तक यज्ञोपवीत पड़ा रहता है, वैसे ही बाँए कन्धे से दहिनी कोख तक तलवार से शोणिताक्ष के शरीर को अंगद ने काट डाला ॥१०॥

तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः ।
वालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥११॥

फिर अंगद उस बड़े खड्ग को हाथ में लिये और बार बार गर्जते हुए समरभूमि में अन्य शत्रुओं पर आक्रमण करने लगे ॥११॥

आयसीं तु गदां वीरः प्रगृह्य कनकाङ्गदः ।
शोणिताक्षः *समाश्वस्य तमेवानु पपात ह ॥१२॥

इतने में सुवर्ण के बाजू से शोभित वीर शोणिताक्ष साव-धान हो और एक लोहे की गदा लेकर, अंगद के ऊपर झपटा ॥१२॥

प्रजङ्घसहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो वालिपुत्रं महाबलम् ॥१३॥

प्रजंघ के साथ बलवान यूपाक्ष भी क्रुद्ध हो और रथ पर सवार हो, महाबलवान् अंगद का सामना करने को गया ॥१३॥

---

१ अंसरूपेफलके—यज्ञोपवीतवदेन शोणिताक्षं । (रा०)

* पाठान्तरे—"तमाविध्य ।"

तयोर्मध्ये कपिश्रेष्ठः शोणिताक्षप्रजङ्घयोः ।
विशाखयोर्मध्यगतः पूर्णचन्द्र इवाभवत् ॥१४॥

उस समय अंगद शोणिताक्ष और प्रजंघ के बीच ऐसे शोभित हो रहे थे ; जैसे दो विशाख नक्षत्रों के बीच पूर्णिमा का चन्द्रमा शोभित होता है ॥१४॥

अङ्गदं परिरक्षन्तो *मैन्दो द्विविद एव च ।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्परदिदृक्षया ॥१५॥

मैन्द और द्विविद नामक दो वीर वानर, जो अंगद के पार्श्व-रक्षक थे, अपने साथ लड़ने योग्य वीर की तलाश में अंगद के समीप खड़े थे ॥१५॥

अभिपेतुर्महाकायाः प्रतियत्ता[1] महाबलाः ।
राक्षसा वानरान्रोषादसिचर्मगदाधराः ॥१६॥

महाबलवान् महाकाय राक्षस खड्ग, ढाल, और गदा लेकर और क्रोध में भर, सावधानतापूर्वक वानरों पर झपटा ॥१६॥

त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुङ्गवैः ।
ससक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥१७॥

उस समय परस्पर युद्ध करते हुए, मैन्द, द्विविद और अंगद इन तीन वानर श्रेष्ठोंके साथ प्रजंघ, यूपाक्ष और शोणिताक्ष इन तीन राक्षसश्रेष्ठों का घोर एव रोमहर्षणकारी संग्राम होने लगा ॥१७॥

ते तु वृक्षान् समादाय सम्प्रचिक्षिपुराहवे ।
खड्गेन प्रतिचिच्छेद तान् प्रजङ्घो महाबलः ॥१८॥

---

[1] प्रतियत्ताः—प्रतियत्नवन्तः । (गो०) * पाठान्तरे—" मैन्दौ ।"

वानर लड़ते हुए, राक्षसों पर पेड़ों को उखाड़ उखाड़ कर फैंकते थे। किन्तु महाबली प्रजङ्घ उन सब को तलवार से काट कर फैंक देता था ॥१८॥

रथानश्वान् द्रुमैः शैलैस्ते प्रचिक्षिपुराहवे ।
शरौघैः प्रतिचिच्छेद तान् यूपाक्षो निशाचरः ॥१९॥

तदनन्तर वानर पेड़ों और शिलाओं को उठा उठा कर रथों, घोड़ों पर और राक्षसों पर फेंकते थे। किन्तु उन सब को यूपाक्ष, बाणों से काट डालता था ॥१९॥

सृष्टान् द्विविदमैन्दाभ्यां द्रुमानुत्पाट्य वीर्यवान् ।
बभञ्ज गदया मध्ये शोणिताक्षः प्रतापवान् ॥२०॥

द्विविद और मैन्द उखाड़ उखाड़ कर जो पेड़ फेंकते, उनको प्रतापी शोणिताक्ष बीच ही में गदा से टुकड़े टुकड़े कर डालता था ॥२०॥

उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मनिकृन्तनम् ।
प्रजङ्घो वालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥२१॥

तदनन्तर शत्रु के मर्म को चीरने वाली बड़ी तलवार को उठा कर, प्रजङ्घ वालिपुत्र अङ्गद के ऊपर बड़े वेग से झपटा ॥२१॥

तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
आजघानाश्वकर्णेन द्रुमेणातिबलस्तदा ॥२२॥

उसको अपने ऊपर आक्रमण करते देख, महाबली अङ्गद ने एक अश्वकर्ण का पेड़ बड़े ज़ोर से उसके मारा ॥२२॥

अपने चचा प्रजंघ को युद्ध में मरा हुआ देख, यूपाक्ष की आँखों से आँसू निकल पड़े और वह हाथ में तलवार ले रथ से तुरन्त उतर पड़ा ॥२७॥

तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ।
आजघानोरसि क्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥२८॥

परन्तु महाबलवान् वीर द्विविद ने यूपाक्ष को आते देख, क्रोध में भर उसकी छाती में प्रहार कर उसे पकड़ लिआ ॥२८॥

गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलः ।
आजघान गदाग्रेण वक्षसि द्विविदं ततः ॥२९॥

महाबली शोणिताक्ष ने अपने भाई यूपाक्ष का पकड़ा जाना देख; द्विविद की छाती में गदा मारी ॥२९॥

स गदाभिहतस्तेन चचाल च महाबलः ।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥३०॥

उस गदा के प्रहार से महाबली द्विविद को गन्नेटा आ गया, किन्तु सावधान होने पर और दूसरी बार गदाप्रहार के लिए उसे उद्यत देख, द्विविद ने उसके हाथ से गदा छीन ली ॥३०॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो मैन्दो वानरयूथपः ।
यूपाक्षं ताडयामास तलेनोरसि वीर्यवान् ॥३१॥

इस बीच में बलवान् वानरयूथपति मैन्द ने वहाँ पहुँच कर यूपाक्ष की छाती में एक चपेटा जमाया ॥३१॥

तौ शोणिताक्षयूपाक्षौ प्लवङ्गाभ्यां तरस्विनौ ।
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥३२॥

अब तो शोणिताक्ष और यपाक्ष राक्षसों का वेगवान् मैन्द और द्विविद वानरों के साथ युद्ध होने लगा और एक दूसरे की खींचा-तानी और झकझोरा झकझोरी करने लगे ॥३२॥

द्विविदः शोणिताक्षं तु विददार नखैर्मुखे ।
निष्पिपेष च वेगेन क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥३३॥

द्विविद ने अपने पैने नाखूनों से यूपाक्ष का मुख भकोट लिया और पृथिवी पर पटक कर, उसे खूब रगड़ा ॥३३॥

यूपाक्षमपि संक्रुद्धो मैन्दो वानरयूथपः ।
पीडयामास बाहुभ्यां स पपात हतः क्षितौ ३४॥

उधर वानरयूथपति मैन्द ने भी क्रोध में भर यूपाक्ष को अपनी भुजाओं से ऐसा दबाया कि, वह मर कर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥३४॥

हतप्रवीरा व्यथिता राक्षसेन्द्रचमूस्तदा ।
जगामाभिमुखी सा तु कुम्भकर्णसुतो यतः ॥३५॥

इन राक्षस वीरों के मारे जाने पर, रावण की सेना व्यथित हो उस ओर गई जिस ओर कुम्भकर्ण का बेटा था ॥३५॥

आपतन्तीं च वेगेन कुम्भस्तां सान्त्वयच्चमूम् ।
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः[1] प्लवङ्गमैः ॥३६॥
निपातितमहावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं ततः ।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥३७॥

---

१ लब्धलक्षैः—अप्रतिद्वन्द्विभिः । (गो०)

अपनी सेना को बड़े जोर से भागते देख, कुम्भ ने सैनिकों को धीरज बँधाया। फिर अति उत्कृष्ट एवं महाबलवान् वानरी सेना के मुकाबले अपनी सेना को न पाकर और वानरों द्वारा अपने सेना के बड़े बड़े वीर योद्धाओं का मारा जाना देख, तेजस्वी कुम्भ ने ऐसी वीरता दिखायी, जो दूसरों के लिये दुष्कर थी ॥३६॥३७॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्शरान् देहविदारणान् ॥३८॥

धनुषधारियों में श्रेष्ठ उस कुम्भ ने अपना धनुष उठा सावधानतापूर्वक विषधर सर्पों की तरह भयकंर एवं शरीर को विदीर्ण करने वाले बाण छोड़े ॥३८॥

तस्य तच्छुशुभे भूयः सशरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥३९॥

उस समय उसका बाणों सहित धनुष ऐसा शोभायमान हुआ जैसा कि, बिजली सहित ऐरावत नामक इन्द्र का धनुष शोभायमान होता है ॥३९॥

[टिप्पणी—यहाँ कुम्भ के धनुष के रोद की उपमा बिजली से और उसके धनुष की उपमा इन्द्र के ऐरावत नामक धनुष से दी गई है। ऐरावत इन्द्र के एक बड़े धनुष का नाम है।]

आकर्णाकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन [1]हाटकपुङ्खेन पत्रिणा[2] पत्रवाससा[3] ॥४०॥

कुम्भ ने सोने की फोंक के और पंखों से भूषित बाण, कान तक रोदे को खींच कर, द्विविद के मारे ॥४०॥

१ हाटकं—स्वर्णं। (गो०) २ पत्रिणा—बाणेन। (गो०) ३ पत्रवाससा—वासःस्थानीयकंकपत्रेण। (गो०)

सहसाऽभिहतस्तेन [1]विप्रमुक्तपदः [2]स्फुरन् ।
निपपाताद्रिकूटाभो विह्वलः[3] प्लवगोत्तमः ॥४१॥

सहसा उन बाणों के लगने से द्विविद के पैर लड़खड़ाने लगे। वह अपने को न सम्हाल सका और पर्वतशिखर की तरह गिर पड़ा ॥४१॥

मैन्दस्तु भ्रातरं दृष्ट्वा भग्नं तत्र महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य महतीं शिलाम् ॥४२॥

अपने भाई द्विविद को युद्ध में घायल हुआ देख, मैन्द एक बड़ी भारी शिला उठा बड़े जोर से कुम्भ पर दौड़ा ॥४२॥

तां शिलां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महाबलः ।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः[4] पञ्चभिः शरैः ॥४३॥

और उस महाबलवान मैन्द ने वह शिला कुम्भ के ऊपर फेंकी, किन्तु कुम्भ ने उस शिला को बीच ही में पांच चमचमाते बाणों से काट कर गिरा दिया ॥४३॥

सन्धाय चान्यं सुमुखं शरमाशीविषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥४४॥

और विषधर सर्प की तरह एक और पैना बाण धनुष पर रख, महातेजस्वी कुम्भ ने द्विविद के ज्येष्ठ भ्राता मैन्द की छाती में मारा ॥४४॥

स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्छितः ॥४५॥

---

१ विप्रमुक्तपदः—शिथिलपदन्यासः। (गो०) २ स्फुरन्—चलन्। (गो०) ३ विह्वलः—विवशः सन्। (गो०) ४ प्रसन्नैः—भासमानैः। (शि०)

उस बाण

मूर्छित हो पृथिवी पर गिर पड़ा ॥४५॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा पतितौ तु महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ॥४६॥

अपने दोनों महाबली मामाओं (मैन्द और द्विविद) को गिरा हुआ देख, अङ्गद, धनुष लिये हुए कुम्भ की ओर बड़े वेग से झपटे ॥४६॥

तमापतन्तं विव्याध कुम्भः पञ्चभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैः शितैर्बाणैर्मातङ्गमिव तोमरैः ॥४७॥

अङ्गद को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, कुम्भ ने पांच लोहे के बाण मार अङ्गद को घायल किया। तदनन्तर तीन बाण दूसरी तरह के अङ्गद के वैसे ही मारे, जैसे हाथी के अंकुश मारा जाता है ॥४७॥

सोऽङ्गदं विविधैर्बाणैः कुम्भो विव्याध वीर्यवान् ।
[1]अकुण्ठधारैः[2]निशितैस्तीक्ष्णैः[3]कनकभूषणैः ॥४८॥

इनके अतिरिक्त बलवान कुम्भ ने विविध प्रकार के लोहे की नोंक के उत्कृष्ट एवं सोने के बन्दों से भूषित बाण मार कर, अङ्गद को घायल किया ॥४८॥

अङ्गदः प्रतिविद्धाङ्गो वालिपुत्रो न कम्पते ।
शिलापादपवर्षाणि तस्य मूर्ध्नि ववर्ष ह ॥४९॥

---

१ अकुण्ठधारैः—अभग्नाग्रैः । (गो०) निशितैः—उत्कृष्टैः । (गो०)
२ तीक्ष्णैः—अयोमयैः । (गो०)

किन्तु बहुत से बाण की चोट से घायल होने पर भी अङ्गद ज़रा भी विचलित न हुए और वे कुम्भ के सिर पर शिलाओं और वृक्षों की वर्षा करने लगे ॥४९॥

स प्रचिच्छेद तान् सर्वान् बिभेद च पुनः शिलाः ।
कुम्भकर्णात्मजः श्रीमान् वालिपुत्रसमीरितान् ॥५०॥

किन्तु कुम्भकर्ण का पुत्र कुम्भ बाण चला कर बीच ही में कान्तिमान वालितनय अङ्गद के फेंके हुये वृक्षों को काट कर गिरा देता था और शिलाओं को चूर चूर कर डालता था ॥५०॥

आपतन्तं च सम्प्रेक्ष्य कुम्भो वानरयूथपम् ।
भ्रुवोर्विव्याध बाणाभ्यामुल्काभ्यामिव कुञ्जरम् ॥५१॥

वानरयूथपति अङ्गद को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, कुम्भ ने अङ्गद की भौंहों के बीच में दो बाण वैसे ही मारे, जैसे कोई लुक्कों से हाथी को मारे ॥५१॥

तस्य सुस्राव रुधिरं पिहिते चास्य लोचने ।
अङ्गदः पाणिना नेत्रे पिधाय रुधिरोक्षिते ॥५२॥

उन बाणों से घायल होने के कारण भौंहों से रुधिर बहने लगा जिससे अङ्गद के नेत्र मुँद गए। किन्तु अङ्गद ने उस समय एक हाथ से रुधिर से तर नेत्रों को बन्द कर, ॥५२॥

सालमासन्नमेयेत परिजग्राह पाणिना ।
१सम्पीड्य चोरसि २स्कन्धं करेणाभिनिवेश्य च ॥५३॥

---

१ संपीड्य—पत्रादिरहितं कृत्वा। ( शि० ) २ स्कन्ध—सस्कन्धशाखा सहितं। ( शु० )

किञ्चिदभ्यवनम्यैनमुन्ममाथ यथा गजः ।
तमिन्द्रकेतुप्रतिमं वृक्षं मन्दरसन्निभम् ॥५४॥

दूसरे हाथ से पास ही लगा हुआ एक साल का पेड़ उखाड़ लिया। किन्तु एक हाथ से उसे उखाड़ना असम्भव काम था अतः उन्होंने तने और शाखाओं सहित उस वृक्ष को छाती से दबा, हाथ से उसके पत्ते टहनी आदि उसी प्रकार नोच डाले, जिस प्रकार हाथी वृक्ष की छोटी छोटी टहनियाँ और पत्ते नोंच डालता है। उस मन्दराचल अथवा इन्द्रध्वजा की तरह विशाल साल वृक्ष को ॥५३॥५४॥

समुत्सृजन्तं वेगेन पश्यतां सर्वरक्षसाम् ।
स बिभेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनैः ॥५५॥

सब राक्षसों के सामने अत्यन्त वेग से कुम्भ के ऊपर फेंका। किन्तु कुम्भ ने शरीर को विदीर्ण करने वाले सात पैने बाण मार कर, उसे काट गिराया ॥५५॥

अङ्गदो विव्यथेऽभीक्ष्णं पपात च मुमोह च ।
अङ्गदं पतितं दृष्ट्वा सीदन्तमिव सागरे ॥५६॥

तदनन्तर उसने एक बाण मार कर अङ्गद को बुरी तरह घायल किया। वे उसकी चोट से मूर्छित हो गिर पड़े। अङ्गद को पीड़ा रूपी समुद्र में गोता खाते देख ॥५६॥

दुरासदं हरिश्रेष्ठं रामायान्ये न्यवेदयन् ।
रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा वालिपुत्रं रणाजिरे ॥५७॥
व्यादिदेश हरिश्रेष्ठाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा ।
ते तु वानरशार्दूलाः श्रुत्वा रामस्य शासनम् ॥५८॥

बडे, बड़े वानर वीरों ने जा कर यह हाल श्रीरामचन्द्र जी से कहा। समर में अङ्गद के घायल होने का हाल सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने जाम्बवानादि प्रधान प्रधान वीर वानरों को जाकर अङ्गद की सहायता करने की आज्ञा दी। वे वानरशार्दूल श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पा ॥५७॥५८॥

अभिपेतुः सुसंक्रुद्धाः कुम्भमुद्यतकार्मुकम् ।
ततो द्रुमशिलाहस्ताः कोपसंरक्तलोचनाः ॥५९॥

क्रुद्ध हो धनुष लिए हुये कुम्भ के पास पहुँचे। उस समय उन सब के हाथों में पेड़ और पर्वत थे और मारे क्रोध के उनकी आँखें लाल लाल हो रही थीं ॥५९॥

१रिरक्षिषन्तोऽभ्यपतन्नङ्गदं वानरर्षभाः ।
जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ॥६०॥

ये वानरश्रेष्ठ अङ्गद के जीवन की रक्षा करने की अभिलाषा से आगे बढ़े। जाम्बवान, सुषेण, और वेगदर्शी नामक वानरों ने ॥६०॥

कुम्भकर्णात्मजं वीरं क्रुद्धाः समभिदुद्रुवुः ।
समीक्ष्यापततस्तांस्तु वानरेन्द्रान् महाबलान् ॥६१॥

क्रोध में भर, कुम्भकर्ण के वीर पुत्र कुम्भ पर बड़ी फुर्ती से आक्रमण किया। उन महाबलवान प्रधान वानरों को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, ॥६१॥

आववार शरौघेण नगेनेव जलाशयम् ।
तस्य बाणपथं प्राप्य न शेकुरतिवर्तितुम् ॥६२॥

१ रिरक्षिषन्तः—रक्षितुमिच्छन्तः। ( गो० )

कुम्भ ने बाणों की वर्षा कर उनको आगे बढ़ने से उसी प्रकार रोका; जिस प्रकार पर्वत जलाशय के जल को रोक देते हैं। उसके बाणों की मार के सामने पड़ कर, उन वानरों में से कोई भी फिर उसकी ओर वैसे ही आगे न बढ़ सका, ॥६२॥

वानरेन्द्रा महात्मानो वेलामिव महोदधिः ।
तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाञ्शरवृष्टिभिरर्दितान् ॥६३॥

जैसे महासागर का जल ( वेलाभूमि ) तक नहीं लाँघ सकता। उन प्रधान महाबली वानरों को कुम्भ की बाणवृष्टि से घायल हुआ देखा, ॥६३॥

अङ्गदं पृष्ठतः कृत्वा भ्रातृजं प्लवगेश्वरः ।
अभिदुद्राव वेगेन सुग्रीवः कुम्भमाहवे ॥६४॥

वानर सुग्रीव, अपने भतीजे अङ्गद को अपनी पीठ के पीछे कर ( अर्थात् अङ्गद के आगे जा ) समरभूमि में कुम्भ के ऊपर बड़े वेग से ही दौड़े ॥६४॥

शैलसानुचरं नागं वेगवानिव केसरी ।
उत्पाट्य च महाशैलानश्वकर्णान् धवान् बहून् ॥६५॥
अन्यांश्च विविधान् वृक्षांश्चिक्षेप च महाबलः ।
तां छादयन्तीमाकाशं वृक्षवृष्टिं दुरासदाम् ॥६६॥

जैसे पर्वत पर बिचरने वाले हाथी के ऊपर वेगवान् सिंह लपकता है। बड़े बड़े शैल, अश्वकर्ण, ढाक आदि विविध प्रकार के अन्य वृक्ष उखाड़ उखाड़ कर, महाबली सुग्रीव ने कुम्भ के ऊपर फैंके। किन्तु आकाश को छा लेने वाली उस दुर्धर्ष वृक्ष-वृष्टि को ॥६५॥६६॥

कुम्भकर्णात्मजः शीघ्रं चिच्छेद निशितैः शरैः ॥६७॥

कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ ने पैने बाणों से काट कर, तुरन्त नष्ट कर डाला ॥६७॥

अर्दितास्ते द्रुमा रेजुर्यथा घोराः शतघ्नयः ।
द्रुमवर्षं तु तच्छिन्नं दृष्ट्वा कुम्भेन वीर्यवान् ॥६८॥

उस समय वे कटे हुए और टूटे पेड़ ऐसे जान पड़ते थे, जैसी भयंकर शतघ्नियाँ। बलवान् कुम्भ द्वारा उस वृक्षवृष्टि को व्यर्थ हुआ देख ॥६८॥

वानराधिपतिः श्रीमान् महासत्त्वो न विव्यथे ।
निर्भिद्यमानः सहसा सहमानश्च ताञ्शरान् ॥६९॥

बड़े बलवान श्रीमान् वानरराज सुग्रीव घबड़ाए नहीं। वे कुम्भ के बाणों से घायल हो कर भी उस बाण पीड़ा को सह गए ॥६९॥

कुम्भस्य धनुराक्षिप्य बभञ्जेन्द्रधनुष्प्रभम् ।
अवप्लुत्य ततः शीघ्रं कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥७०॥

और इन्द्रधनुष की तरह कुम्भ के धनुष को उसके हाथ से छीन कर तोड़ डाला। फिर वे इस अत्यन्त दुष्कर कृत्य को कर उछल कर वहाँ से हट आए ॥७०॥

अब्रवीत्कुपितः कुम्भं भग्नशृङ्गमिव द्विपम् ।
निकुम्भाग्रज वीर्यं ते बाणवेगवदद्भुतम् ॥७१॥

और दाँत टूटे हुए हाथी की तरह कुम्भ से कुपित हो सुग्रीव ने कहा—हे निकुम्भ के बड़े भाई कुम्भ! तेरा बल पराक्रम और बाण चलाने की फुर्त्ती बड़ी अद्भुत है ॥७१॥

सन्नतिश्च[1] प्रभावश्च तव वा[2] रावणस्य वा ।
प्रह्लादबलिवृत्रघ्नकुबेरवरुणोपम ॥७२॥

तुझमें रावण अथवा प्रह्लाद, बलि, इन्द्र, कुबेर अथवा वरुण की तरह स्वजनों के प्रति विनय है और इन लोगों के समान ही तेरा प्रभाव भी है ॥७२॥

एकस्त्वमनुजातोऽसि पितरं बलवृत्ततः[3] ।
त्वमेवैकं महाबाहुं चापहस्तमरिन्दमम् ॥७३॥
त्रिदशा नातिवर्तन्ते जितेन्द्रियमिवाधयः ।
विक्रमस्व महाबुद्धे कर्माणि मम पश्यतः ॥७४॥

एक तू ही अपने पिता कुम्भकर्ण के समान बलवान है अथवा तू सब प्रकार से अपने पिता कुम्भकर्ण के अनुरूप है। हे अरिन्दम! ( शत्रुहन्ता ) हे महाबाहो! यदि तू अकेले ही हाथ में धनुष बाण ले कर खड़ा हो जाय, तो देवता भी तेरे सामने वैसे ही खडे नहीं रह सकते, जैसे इन्द्रियों के जीतने वाले के सामने मनःपीड़ा नहीं ठहर सकती। हे महाबुद्धिमान्! अब तू अपने बलविक्रम की परीक्षा कर ले, पीछे मेरा भी पराक्रम देखना ॥७३॥७४॥

वरदानात् पितृव्यस्ते सहते देवदानवान् ।
कुम्भकर्णस्तु वीर्येण सहते च सुरासुरान् ॥७५॥

---

१ सन्नतिः—राक्षसेषु विनयः राक्षसप्रावण्यं वा। (गो०) २ तव वा रावणस्य वा—रावणतुल्या तव सन्नतिरित्यर्थः। (गो०) ३ बलवृत्ततः—बलव्यापारेण। (गो०)

तेरे चचा रावण तो वरदान के बल देवताओं और दानवों को जीतते हैं, किन्तु कुम्भकर्ण ने अपने शारीरिक बल से देवताओं और दानवों को जीता था ॥७५॥

धनुषीन्द्रजितस्तुल्यः प्रतापे रावणस्य च ।
त्वमद्य रक्षसां लोके श्रेष्ठोसि बलवीर्यतः ॥७६॥

तू धनुषविद्या में अपने भाई इन्द्रजीत के समान और प्रताप में अपने चचा रावण के समान है। तू राक्षससंसार में इस समय सब राक्षसों से बलविक्रम में श्रेष्ठ है ॥७६॥

महाविमर्दं[1] समरे मया सह तवाद्भुतम् ।
अद्य भूतानि पश्यन्तु शक्रशम्बरयोरिव ॥७७॥

आज मेरे साथ तेरा वैसा ही युद्ध होगा, जैसा कि, इन्द्र के साथ शम्बरासुर का हुआ था और इस अद्भुत युद्ध को समस्त प्राणी देखेंगे ॥७७॥

कृतमप्रतिमं कर्म दर्शितं चास्त्रकौशलम् ।
पातिता हरिवीराश्च त्वया वै भीमविक्रमाः ॥७८॥

तूने अपनी असाधारण वीरता और अपना अस्त्रकौशल दिखलाया है। क्योंकि तूने इन भीम पराक्रमी जाम्बवानादि वानर यूथपतियों को बाणों की मार से मूर्छित कर भूमि पर गिरा दिया है ॥७८॥

उपालम्भ भयाच्चापि नासि वीर मया हतः ।
कृतकर्मा परिश्रान्तो विश्रान्तः पश्य मे बलम् ॥७९॥

---

१ महाविमर्दं—महाप्रहारं । ( गो० )

केवल उलहने के भय से मैंने तुझको अभी तक मार नहीं डाला है। अब तू लड़ते लड़ते थक गया होगा, सो कुछ देर आराम कर ले पीछे मेरा बल देखना ॥७९॥

तेन सुग्रीववाक्येन सावमानेन मानितः ।
अग्नेराज्याहुतस्येव तेजस्तस्याभ्यवर्धत ॥८०॥

सुग्रीव की इस प्रशंसा को उसने व्याजस्तुति (झूठी अपमानकारिणी प्रशंसा) समझा और अग्नि में आहुति पड़ने से अग्नि का तेज जैसा उत्तेजित होता है, वैसा ही सुग्रीव के इन वचनों से कुम्भ उत्तेजित अथवा भड़क उठा ॥८०॥

ततः कुम्भस्तु सुग्रीवं बाहुभ्यां जगृहे तदा ।
गजाविवाहितमदौ निश्वसन्तौ मुहुर्मुहुः ॥८१॥

तदनन्तर उसने सुग्रीव को अपनी दोनों भुजाओं से पकड़ लिया। वे दोनों मस्त, हाथियों को तरह लड़ते लड़ते हाँफ उठे ॥८१॥

अन्योन्यगात्रग्रथितौ कर्षन्तावितरेतरम् ।
सधूमां मुखतो ज्वालां विसृजन्तौ परिश्रमात् ॥८२॥

वे दोनों एक दूसरे को पकड़ कर, खींचातानी कर रहे थे। उस समय मारे परिश्रम के दोनों ही के मुखों से धुएँ सहित ज्वाला निकल रही थी ॥८२॥

तयोः पादाभिघाताच्च निमग्ना चाभवन् मही ।
व्याघूर्णिततरङ्गश्च चुक्षुभे वरुणालयः ॥८३॥

उन दोनों के पैरों की धमक से उस जगह को जमीन धसक गई थी; समुद्र क्षुब्ध हो बड़ी बड़ी लहरों से लहराने लगा था ॥८३॥

ततः कुम्भं समुत्क्षिप्य सुग्रीवो लवणाम्भसि ।
पातयामास वेगेन दर्शयन्नुदधेस्तलम् ॥८४॥

इसी बीच में सुग्रीव ने कुम्भ को उठा कर ऐसे जोर से समुद्र में फैंका कि, वह सीधा समुद्र की तली में चला गया ॥८४॥

ततः कुम्भनिपातेन जलराशिः समुत्थितः ।
विन्ध्यमन्दरसङ्काशो विससर्प समन्ततः ॥८५॥

समुद्र में कुम्भ के गिरने से समुद्र का जल चारों ओर उफना। उस समय समुद्र की उफती हुई जलराशि विन्ध्याचल और मन्दराचल की तरह (विशाल) दिखलाई दी ॥८५॥

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमभिपत्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगेन मुष्टिना ॥८६॥

कुछ ही देर के बाद कुम्भ ने समुद्र से निकल और सुग्रीव के निकट जा सुग्रीव की छाती में तान कर, एक घूँसा मारा ॥८६॥

तस्य चर्म च पुस्फोट बहु सुस्राव शोणितम् ।
स च मुष्टिर्महावेगः प्रतिजघ्नेऽस्थिमण्डले ॥८७॥

उस घूँसे की चोट से छाती की खाल फट गई और बहुत सा लोहू बह गया। तान कर मारे हुए उस घूँसे की चोट, सुग्रीव की छाती की हड्डियों तक पहुँची ॥८७॥

तदा वेगेन तत्रासीत्तेजः प्रज्वलितं मुहुः ।
वज्रनिष्पेषसञ्जाता ज्वाला मेरौ यथा गिरौ ॥८८॥

जिस तरह वज्र के प्रहार से सुमेरुपर्वत से आग निकली थी उसी तरह उस घूँसे की चोट से सुग्रीव की छाती की हड्डियों से अग्नि की ज्वाला निकली ॥८८॥

स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥८९॥

महाबली वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने इस प्रकार घायल हो, वज्र के समान अपना घूँसा ताना ॥८९॥

अर्चिः सहस्रविकचं रविमण्डलसप्रभम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥९०॥

हजार किरणों से चमकते हुए सूर्य की तरह, वह घूँसा बड़े ज़ोर से वीर्यवान सुग्रीव ने कुम्भ की छाती में मारा ॥९०॥

स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशताडितः ।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥९१॥

उस घूँसे की चोट से कुम्भ बहुत घायल हो मूर्छित हो गया और बुझी हुई आग की तरह वह भूमि पर गिर पड़ा ॥९१॥

मुष्टिनाऽभिहतस्तेन निपपाताशु राक्षसः ।
लोहिताङ्ग इवाकाशाद्दीप्तरश्मिर्यदृच्छया ॥९२॥

घूँसे की चोट खा कुम्भ राक्षस तुरन्त भूमि पर ऐसे गिरा मानों चमचमाता मंगल ग्रह अपने आप पृथिवी पर गिर पड़ा हो ॥९२॥

कुम्भस्य पततो रूपं भग्नस्योरसि मुष्टिना ।
बभौ रुद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गवां पतेः ॥९३॥

घूँसे की चोट से फटी हुई छाती वाले कुम्भ का रूप उस समय ऐसा देख पड़ा, जैसा कि रुद्र के मारे हुए सूर्य का रूप देख पड़ा था ॥६३॥

तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण
प्लवङ्गमानामृषभेण युद्धे ।
मही सशैला सवना चचाल
भयं च रक्षांस्यधिकं विवेश ॥६४॥

इस प्रकार भयङ्कर पराक्रमी वानरपति सुग्रीव के हाथ से समरभूमि में कुम्भ के मारे जाने पर, समस्त वनों और पर्वतों सहित पृथिवी हिल उठी और राक्षस और भी अधिक भयभीत हुए ॥६४॥

युद्धकाण्ड का छिहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## सप्तसप्ततितमः सर्गः

—:०:—

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमवैक्षत ॥१॥

सुग्रीव द्वारा अपने भाई कुम्भ का मारा जाना देख, कुम्भ का भाई निकुम्भ क्रोध से जलता हुआ सा वानरराज को घूरने लगा ॥१॥

ततः स्रग्दामसन्नद्धं दत्तपञ्चाङ्गुलं[1] शुभम् ।
आददे परिघं वीरो नगेन्द्रशिखरोपमम् ॥२॥

तदनन्तर उस वीर ने हाथ में एक परिघ लिया । उस परिघ के ऊपर पुष्प की मालाएँ पड़ी हुई थीं और चन्दन कुङ्कुम से हाथ के थापे लगे हुए थे, तथा वह पर्वतराज के शिखर के समान विशाल था ॥२॥

हेमपट्टपरिक्षिप्तं वज्रविद्रुमभूषितम् ।
यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥३॥

उस पर सोने के पत्र मढ़े हुए थे और हीरा और मूँगे जड़े हुए थे । वह यमराज के डंडे की तरह भयङ्कर था और राक्षसों का भय दूर करने वाला था ॥३॥

तमाविध्य महातेजाः शक्रध्वजसमं तदा ।
विननाद विवृत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥४॥

उस इन्द्रध्वजा की तरह परिघ को घुमा महातेजस्वी और भीम पराक्रमी निकुम्भ मुँह फाड़ कर बड़े जोर से गरजा ॥४॥

उरोगतेन निष्केण[2] भुजस्थैरङ्गदैरपि ।
कुण्डलाभ्यां च चित्राभ्यां मालया च विचित्रया ॥५॥

उसकी छाती के ऊपर हार झूल रहा था और उनकी भुजाओं पर बाजूबन्द शोभित हो रहे थे । उसके कानों में विचित्र कुण्डल थे और वह गले में विचित्र अर्थात् बहुत बढ़िया माला पहिने हुए था ॥५॥

---

१ दत्तपञ्चाङ्गुलं—चन्दनकुङ्कुमादिना अर्पितपञ्चाङ्गुलमुद्रामुद्रितं । (गो०) २ निष्कमुरोभूषणम् । (रा० )

निकुम्भो भूषणैर्भाति तेन स्म परिघेण च ।
यथेन्द्रधनुषा मेघः सविद्युत् स्तनयित्नुमान् ॥६॥

उस समय वह निकुम्भ उन आभूषणों और उस परिघ से ऐसा शोभायमान हो रहा था, जैसे कड़कड़ाती हुई बिजली और इन्द्रधनुष सहित गड़गड़ाता हुआ बादल ॥६॥

परिघाग्रेण पुस्फोट [1]वातग्रन्थिर्महात्मनः ।
प्रजज्वाल सघोषश्च विधूम इव पावकः ॥७॥

निकुम्भ का वह परिघ इतना लंबा था कि वह जब उसे ऊपर उठाता था तब उसकी ऊपर की नोंक से टकरा कर आवाह प्रवाह आदि पवन की सातों गाँठें खुल जाती थीं और बिना धुएँ की आग भभक उठती थी अर्थात् उससे आग की लपटें निकलने लगती थीं ॥७॥

नगर्याः विटपावत्या गन्धर्वभवनोत्तमैः ।
सह चैवामरावत्या सर्वैश्च भवनैः सह ॥८॥
[2]सतार[3]ग्रहनक्षत्रं[4]सचन्द्रं समहाग्रहम्[5] ।
निकुम्भपरिघाघूर्णं भ्रमतीव नभःस्थलम् ॥९॥

उस बार निकुम्भ ने जब उस परिघ को घुमाया तब ऐसा जान पड़ा, मानों विटपावती नगरी के गन्धर्वों के रहने के घरों समेत तथा अमरावतीवासी देवताओं के समस्त भवनों सहित,

---

१ वातग्रन्थि—आवाहादिसप्तवातस्कन्धाः । ( गो० ) २ ताराः—अश्विन्यादयः । ( गो० ) ३ ग्रहाः—बुधादयः । ( गो० ) ४ नक्षत्राणि—अश्वन्यादिभिन्नानि । (गो० ) ५ महाग्रहाः—शुक्रादयः । ( गो० )

तथा तारागण, ग्रहमण्डल, नक्षत्रमण्डल, चन्द्रमा एवं शुक्रादि बड़े बड़े ग्रहों समेत आकाशमण्डल घूम रहा हो ।।८।।९।।

[ टिप्पणी—नक्षत्र, तारा, ग्रह, चन्द्र आदि का नाम लेकर भी सूर्य का नाम यहाँ इसलिए नहीं लिखा गया कि, जिस समय की यह घटना है—उस समय रात का समय था । ]

दुरासदश्च संजज्ञे परिघाभरणप्रभः ।
कपीनां स निकुम्भाग्निर्युगान्ताग्निरिवोत्थितः ।।१०।।

उस समय वह राक्षस परिघ और आभूषणों की चमक से ऐसा दुर्धर्ष जान पड़ता था मानों क्रोधरूपी इंधन से भभकता हुआ प्रलयकालीन अग्नि हो ।।१०।।

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पन्दितुं भयात् ।
हनुमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ तस्याग्रतो बली ।।११।।

उस समय न तो कोई राक्षस और न कोई वानर ही ( अपनी जगह से ) हिल सकता था । किन्तु बलवान हनुमान जी अपनी छाती फुला कर उसके सामने जा खड़े हुए ।।११।।

परिघोपमबाहुस्तु परिघं भास्करप्रभम् ।
बली बलवतस्तस्य पातयामास वक्षसि ।।१२।।

परिघ के तुल्य बाहु वाले बलवान् वीर कुम्भ ने सूर्य के समान प्रभावाले परिघ को हनुमान् जी की छाती में मारा ।।१२।।

स्थिरे तस्योरसि व्यूढे परिघः शतधा कृतः ।
विशीर्यमाणः सहसा उल्काशतमिवाम्बरे ।।१३।।

हनुमान् जी की विशाल छाती से टकरा कर, उस परिघ के सौ टुकड़े हो गए और वे पृथिवी पर ऐसे बिखर गये, मानों सौ उल्का आकाश से टूट कर गिरे हों ॥१३॥

स तु तेन प्रहारेण न चचाल महाकपिः ।
परिघेण समाधूतो यथा भूमिचलेऽचलः ॥१४॥

भूडोल होने पर जैसे पर्वत अचल रहता है, वैसे ही हनुमान जी परिघ के प्रहार से भी अटल अचल खड़े रहे ॥१४॥

स तदाऽभिहतस्तेन हनुमान्प्लवगोत्तमः ।
मुष्टिं संवर्तयामास बलेनातिमहाबलः ॥१५॥

महाबलवान वानरोत्तम हनुमान जी ने उस परिघ के प्रहार को सह कर, तान कर मुट्ठी बाँधी ॥१५॥

तमुद्यम्य महातेजा निकुम्भोरसि वीर्यवान् ।
अभिचिक्षेप वेगेन वेगवान् वायुविक्रमः ॥१६॥

फिर पवन के समान वेगवान् हनुमान जी ने बलवान और तेजस्वी निकुम्भ की छाती में बड़े जोर से एक घूँसा मारा ॥१६॥

ततः पुस्फोट चर्मास्य प्रसुस्राव च शोणितम् ।
मुष्टिना तेन संजज्ञे मेघे विद्युदिवोत्थिता ॥१७॥

जिसकी चोट से उसकी खाल फट गई और लोहू बहने लगा तथा एक ज्वाला ऐसी भभकी, जैसे बादल में बिजली कौंधती हो ॥१७॥

स तु तेन प्रहारेण निकुम्भो विचचाल ह ।
स्वस्थश्चापि निजग्राह हनुमन्तं महाबलम् ॥१८॥

उस मूँके की चोट से निकुम्भ काँप उठा ; किन्तु कुछ ही देर बाद सावधान होने पर उसने महाबली हनुमान जी को पकड़ कर उठा लिआ ॥१८॥

विचुक्रुशुस्तदा संख्ये भीमं लङ्कानिवासिनः ।
निकुम्भेनोद्यतं[1] दृष्ट्वा हनुमन्तं महाबलम् ॥१९॥

उस समय उस युद्ध में हनुमान् जैसे अत्यन्त बलवान का निकुम्भ द्वारा पकड़ा जाना देख, लंकावासी राक्षस (प्रसन्न हो) कोलाहल करने लगे ॥१९॥

स तदा ह्रियमाणोऽपि कुम्भकर्णात्मजेन ह ।
आजघानानिलसुतो वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥२०॥

जिस समय निकुम्भ हनुमान जी को उठा कर ले चला, उस समय हनुमान् जी ने उसके, वज्र के समान एक घूँसा मारा ॥२०॥

आत्मानं मोचयित्वाऽथ क्षितावभ्यवपद्यत ।
हनुमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ॥२१॥

पवननन्दन हनुमान जी उसी समय अपने को राक्षस के हाथ से छुटा और कूद कर पृथिवी पर जा खड़े हुए और फिर निकुम्भ को (अपने काबू में कर) खूब रगड़ा ॥२१॥

निक्षिप्य परमायत्तो[2] निकुम्भं निष्पिपेष ह ।
उत्पत्य[3] चास्य वेगेन पपातोरसि वीर्यवान् ॥२२॥

---

१ उद्यतं—गृहीतं । (गो०) २ परमायत्तो—अतिप्रयासयुक्तो । (गो०)
३ उत्पत्य— ऊर्ध्वमुद्गत्य । (गो० )

उन्होंने निकुम्भ को धरती पर पटक अच्छी तरह मीसा। फिर आकाश की ओर उछल वे उसकी छाती पर बड़े जोर से कूद पड़े ॥२२॥

परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥२३॥

तदनन्तर अपने दोनों हाथों से उसका सिर खूब मरोड़ा। यहाँ तक कि, उसका सिर मरोड़ते मरोड़ते धड़ से अलग कर दिया। उस समय निकुम्भ बड़े जोर से चिल्लाया ॥२३॥

अथ विनदति सादिते निकुम्भे
पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ।
दशरथसुतराक्षसेन्द्रसून्वोः
भृशतरमागतरोषयोः सुभीमम् ॥२४॥

इस तरह जब हनुमान जी ने उस चिल्लाते हुए निकुम्भ को मार डाला, तब दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी और खरपुत्र मकराक्ष का अत्यन्त क्रोध में भर, बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ ॥२४॥

व्यपेते तु जीवे निकुम्भस्य हृष्टा
निनेदुः प्लवङ्गा दिशः सस्वनुश्च ।
चचालेव चोर्वी पफालेव च द्यौः
भयं राक्षसानां बलं चाविवेश ॥२५॥

इति सप्तसप्ततितमः सर्गः

निकुम्भ के मारे जाने पर वानर लोगों के आनन्दनाद से दसों दिशाएँ शब्दायमान हो उठीं, पृथिवी काँप उठी और ऐसा

जान पड़ने लगा! मानों आकाश टूट कर धरती पर गिरना ही चाहता है। (ये सब देख कर) राक्षसी सेना डर गई ॥२५॥

युद्धकाण्ड का सतहत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## अष्टसप्ततितमः सर्गः

—:०:—

निकुम्भं च हतं श्रुत्वा कुम्भं च विनिपातितम्।
रावणः परमामर्षी प्रजज्वालानलो यथा ॥१॥

(अपने भतीजों) कुम्भ और निकुम्भ के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, रावण अत्यन्त क्रुद्ध हो, अग्नि की तरह भभक उठा ॥१॥

नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्छितः[१]।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥२॥

रावण क्रोध और शोक से व्याप्त हो (अर्थात् क्रुद्ध और शोकान्वित हो) बड़ी बड़ी आँखों वाले खर के पुत्र मकराक्ष से बोला ॥२॥

गच्छ पुत्र मयाऽऽज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तांश्च वनौकसः ॥३॥

बेटा! तुम मेरा कहना मान, अपने साथ सेना लेकर जाओ और राम लक्ष्मण और समस्त वानरों को मार डालो ॥३॥

---

[१] परिमूर्छितः—व्याप्तः। (गो०)

रावणस्य वचः श्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः ।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरः ॥४॥

रावण के ये वचन सुन शूर और अभिमानी खर के पुत्र मकराक्ष राक्षस ने प्रसन्न हो कहा—" बहुत अच्छा " ॥४॥

सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥५॥

बलवान मकराक्ष रावण को प्रणाम कर तथा उसकी प्रदक्षिणा कर उसकी आज्ञानुसार वह उस शुभ्र ( सफेद रंग के ) भवन से निकला ॥५॥

समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रोऽब्रवीदिदम् ।
रथश्चानीयतां शीघ्रं सैन्यं चाहूयतां त्वरात् ॥६॥

पास खड़े हुए अपने सेनाध्यक्ष से खर के पुत्र मकराक्ष ने कहा—सेना को और मेरे रथ को ले आओ ॥६॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो निशाचरः ।
स्यन्दनं च बलं चैव समीपं प्रत्यपादयत् ॥७॥

प्रदक्षिणं रथं कृत्वा आरुरोह निशाचरः ।
सूतं संचोदयामास शीघ्रं मे रथमावह ॥८॥

( जब रथ आ गया तब ) मकराक्ष रथ की प्रदक्षिणा कर उस पर सवार हो गया और अपने सारथी से बोला कि, मेरा रथ शीघ्रतापूर्वक आगे बढ़ाओ ॥७॥८॥

अथ तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोऽब्रवीदिदम् ।
यूयं सर्वे प्रयुध्यध्वं पुरस्तात् मम राक्षसाः ॥९॥

फिर मकराक्ष ने अपने साथ चलनेवाली सेना के सैनिक राक्षसों से यह कहा कि, हे राक्षसो! तुम मेरे आगे रह कर (वानरों से) लड़ना ॥९॥

अहं राक्षसराजेन रावणेन महात्मना ।
आज्ञप्तः समरे हन्तुं तावुभौ रामलक्ष्मणौ ॥१०॥

क्योंकि मुझे तो महाबलवान् राक्षसराज रावण ने उन दोनों राजकुमार राम और लक्ष्मण से लड़ कर, उनका वध करने की आज्ञा दी है ॥१०॥

अद्य रामं वधिष्यामि लक्ष्मणं च निशाचराः ।
शाखामृगं च सुग्रीवं वानरांश्च शरोत्तमैः ॥११॥

हे निशाचरो! मैं आज अपने पैने बाणों से राम और लक्ष्मण सहित वानर सुग्रीव तथा अन्य वानरों का संहार कर डालूँगा ॥११॥

अद्य शूलनिपातैश्च वानराणां महाचमूम् ।
प्रदहिष्यामि सम्प्राप्तः शुष्केन्धनमिवानलः ॥१२॥

मैं आज उस बड़ी भारी वानरी सेना में पहुँच कर, उसे अपने सूल के प्रहार से उसी तरह जला कर भस्म कर डालूँगा जिस तरह आग सूखे इंधन को जला कर राख कर डालती है ॥१२॥

मकराक्षस्य तच्छ्रुत्वा वचनं ते निशाचराः ।
सर्वे नानायुधोपेता बलवन्तः *समाहिताः ॥१३॥

---

*पाठान्तरे—"समागताः ।"

मकराक्ष के इन वचनों को सुन, वे राक्षस लड़ने को तैयार हो गए। उनके हाथों में विविध प्रकार के आयुध थे और वे बड़े बलवान् और सावधानता पूर्वक लड़ने वाले थे ॥१३॥

ते कामरूपिणः सर्वे दंष्ट्रिणः पिङ्गलेक्षणाः ।
मातङ्गा इव नर्दन्तो ध्वस्तकेशा भयानकाः ॥१४॥

वे सब के सब इच्छानुरूप अपने रूप बदलने वाले और बड़े बड़े दाँतों वाले थे। उनकी आँखें पीली पीली थीं। उनके सिरों पर बाल न थे। वे बड़े भयङ्कर थे और हाथी की तरह चिंघाड़ते जाते थे ॥१४॥

परिवार्य महाकाया महाकायं खरात्मजम् ।
अभिजग्मुस्ततो हृष्टाश्चालयन्तो वसुन्धराम् ॥१५॥

वे विशाल शरीरधारी प्रसन्न होते हुए, विशाल वपुधारी मकराक्ष को घेर कर और पृथिवी कँपाते हुए चले ॥१५॥

शङ्खभेरीसहस्राणामाहतानां समन्ततः ।
क्ष्वेलितास्फोटितानां च ततः शब्दो महानभूत् ॥१६॥

चारों ओर सहस्रों शङ्ख और तुरही बज रही थीं। राक्षस सिंहनाद कर ताल ठोंक रहे थे। इन सब कारणों से उस समय बड़ा कोलाहल हुआ ॥१६॥

प्रभ्रष्टोऽथ करात्तस्य प्रतोदः सारथेस्तदा ।
पपात सहसा चैव ध्वजस्तस्य च रक्षसः ॥१७॥

परन्तु मकराक्ष के सारथी के हाथ से अचानक चाबुक छूट पड़ा और उसके रथ की ध्वजा ज़मीन पर गिर पड़ी ॥१७॥

तस्य ते रथयुक्ताश्च हया विक्रमवर्जिताः ।
चरणैराकुलैर्गत्वा दीनाः सास्रमुखा ययुः ॥१८॥

मकराक्ष के रथ में जो घोड़े जुते हुए थे, उनके शरीर में बल न रहा। वे लड़खड़ाती हुई चाल से दीन हो, आँसू टपकाते हुए चलने लगे ॥१८॥

प्रवाति पवनस्तस्मिन् सपांसुः खरदारुणः ।
निर्याणे तस्य रौद्रस्य मकराक्षस्य दुर्मतेः ॥१६॥

दुष्टबुद्धि एवं भयङ्कर मकराक्ष की यात्रा के समय धूल उड़ी और रूखी तथा भयङ्कर हवा चलने लगी ॥१६॥

तानि दृष्ट्वा निमित्तानि राक्षसा वीर्यवत्तमाः ।
अचिन्त्य निर्गताः सर्वे यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥२०॥

इन असगुनों को देखकर भी, वे बलवान समस्त राक्षस इनकी ओर ध्यान न देते हुए, चलते चलते वहाँ जा पहुँचे, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी थे ॥२०॥

घनगजमहिषाङ्गतुल्यवर्णाः
समरमुखेष्वसकृद्गदासिभिन्नाः ।
अहमहमिति युद्धकौशलास्ते
रजनिचराः परितः समुन्नदन्तः ॥२१॥

इति अष्टसप्ततितमः सर्गः

उन राक्षसों के शरीर का रंग मेघों, गजों और भैंसों के शरीर के रंग की तरह काला था। उनके शरीरों पर गदा, तलवार तथा

अन्य अस्त्रों के घावों की गूतें थीं। वे सब के सब युद्धविद्या में चतुर थे। "पहिले मैं लड़ूँगा, पहिले मैं लड़ूँगा" कह कह कर, सिंहनाद करते हुए वे ( समरभूमि में ) चारों ओर घूमने लगे ॥२६॥

युद्धकाण्ड का अठहत्तरवां सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## एकोनाशीतितमः सर्गः

—:o:—

निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरयूथपाः ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थिताः ॥१॥

मकराक्ष को लङ्का से निकलते हुए देख, समस्त वानरयूथपति उछलते कूदते उससे लड़ने के लिए तुरन्त तैयार हो गए ॥१॥

ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं रोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवङ्गानां देवानां दानवैरिव ॥२॥

तब देवता और दानवों की तरह राक्षसों और वानरों का बड़ा भयङ्कर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा ॥२॥

वृक्षशूलनिपातैश्च शिलापरिघपातनैः ।
अन्योन्यं मर्दयन्ति स्म तदा कपिनिशाचराः ॥३॥

वे वानर और राक्षस पेड़ों, शूलों, शिलाओं और परिघों से एक दूसरे को मारने लगे ॥३॥

शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च निर्घातैश्च समन्ततः ॥४॥

कोई कोई राक्षस तो शक्ति, तलवार, गदा, बर्छी, तोमर, पट्टा और भिन्दिपाल से चारों ओर से वानरों पर आक्रमण कर रहे थे ॥४॥

पाशमुद्गरदण्डैश्च निखातैश्चापरे तदा ।
कदनं कपिवीराणां चक्रुस्ते रजनीचराः ॥५॥

और कोई कोई राक्षस लोग पाश, मुगद्र दण्ड और निखात ( आयुध विशेष ) से वानरों का वध कर रहे थे ॥५॥

बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
सम्भ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥६॥

उधर मकराक्ष वानरों पर बाणों की वर्षा कर रहा था । इससे वे सब वानर घबड़ा कर और भयभीत हो भागने लगे ॥६॥

तान् दृष्ट्वा राक्षसाः सर्वे द्रवमाणान् वलीमुखान् ।
नेदुस्ते सिंहवद्धृष्टा राक्षसा जितकाशिनः ॥७॥

वे सब राक्षस वानरों को भागते देख और अपनी जीत समझ, प्रसन्न हुए और सिंह की तरह दहाड़ने लगे ॥७॥

विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समन्ततः ।
रामस्तान् वारयामास शरवर्षेण राक्षसान् ॥८॥

जब वानर चारों ओर भाग खड़े हुए, तब श्रीरामचन्द्रजी ने उन राक्षसों को उन पर बाणों की वर्षा कर रोका ( जो वानरों को खदेड़ रहे थे ॥८॥

वारितान् राक्षसान् दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
क्रोधानलसमाविष्टो वचनं चेदमब्रवीत् ॥९॥

(बाणवर्षा द्वारा) राक्षसों का रोका जाना देख, मकराक्ष राक्षस अत्यन्त कुपित हो मन ही मन यह बोला ॥९॥

क्वासौ रामः सुदुर्बुद्धिर्येन मे निहतः पिता ।
जनस्थानगतः पूर्वं सानुगः सपरिच्छदः ॥१०॥

जनस्थानवासी मेरे पिता को उसकी सेना और सगे संगातियों सहित मारने वाला दुष्टात्मा राम क्या यही है ? ॥१०॥

अद्य गन्तास्मि वैरस्य पारं वै रजनीचराः ।
सुहृदां चैव सर्वेषां निहतानां रणाजिरे ॥११॥
हत्वा रामं सुदुर्बुद्धिं लक्ष्मणं च सवानरम् ।
तेषां शोणितनिष्यन्दैः नेरिष्ये सलिलक्रियाम् ॥१२॥

जो राक्षस सैनिक और मेरे सुहृद अभी तक युद्ध में मारे गए हैं, उन सब के वैर का बदला, समस्त वानरों और लक्ष्मण सहित इस अत्यन्त दुष्ट राम को मार कर और इसके शरीर से निकले हुए रक्त से ( मृत राक्षसों का ) तर्पण कर मैं आज चुकाता हूँ ॥११॥१२॥

एवमुक्त्वा महाबाहुर्युद्धे स रजनीचरः ।
व्यलोकयत तत्सर्वं बलं रामदिदृक्षया ॥१३॥

यह कह कर वह महाबली मकराक्ष श्रीरामचन्द्र जी को ढूँढ़ता हुआ उस समस्त वानरी सेना को ध्यान से देखने लगा ॥१३॥

आहूयमानः कपिभिर्बहुभिर्बलशालिभिः ।
युद्धाय स महातेजा रामादन्यं न चेच्छति ॥१४॥

बड़े बड़े बलवान वानरों ने उसको अपने साथ लड़ने के लिए ललकारा भी; किन्तु उस महातेजस्वी ने श्रीराम को छोड़ अन्य किसी के साथ लड़ना ही न चाहा ॥१४॥

मार्गमाणस्तदा रामं बलवान् रजनीचरः।
रथेनाम्बुदघोषेण व्यचरत्तामनीकिनीम् ॥१५॥

वह बलवान राक्षस श्रीरामचन्द्र को ढूँढ़ता हुआ, मेघ की तरह गड़गड़ाहट करते हुए रथ में बैठ, वानरी सेना में विचरने लगा ॥१५॥

दृष्ट्वा राममदूरस्थं लक्ष्मणं च महारथम्।
सघोषं पाणिनाहूय ततो वचनमब्रवीत् ॥१६॥

अन्त में महारथी श्रीराम और लक्ष्मण के समीप पहुँच, उसने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर और हाथ के संकेत से श्रीराम को अपने निकट बुला कर यह कहा ॥१६॥

[टिप्पणी—१० से १६ तक की संख्या के श्लोक केवल वाणीविलास प्रेस के संस्करण ही में पाए जाते हैं।]

तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं ददामि ते।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान् धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥१७॥

हे राम! खड़ा रह! मैं तेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करूँगा। मैं अपने धनुष से पैने पैने बाण छोड़ कर, तेरे प्राण तेरे शरीर से अलग करूँगा ॥१७॥

यत्तदा दण्डकारण्ये पितरं हतवान् मम।
मदग्रतः [1]स्वकर्मस्थं दृष्ट्वा रोषोऽभिवर्धते ॥१८॥

---

[1] स्वकर्मस्थं—क्षात्रधर्मकर्मानुतिष्ठन्तमित्यर्थः। (गो०)

तू दण्डकवन में मेरे पिता को मार चुका है। सो तुझको क्षात्रधर्म पालने के लिए अर्थात् लड़ने के लिए अपने सामने खड़ा देख, मेरा क्रोध भड़क रहा है ॥१८॥

दह्यन्ते भृशमङ्गानि दुरात्मन् मम राघव ।
यत् मयासि न दृष्टस्त्वं तस्मिन् काले महावने ॥१९॥

हे दुरात्मन् राम ! मेरे अंग मारे क्रोध के जले जा रहे हैं। क्या करूँ उस समय दण्डकवन में मैं न हुआ ॥१९॥

दिष्ट्याऽसि दर्शनं राम मम त्वं प्राप्तवानिह ।
काङ्क्षितोऽसि क्षुधार्तस्य सिंहस्येवेतरो मृगः ॥२०॥

हे राम ! मेरे सौभाग्य से आज तू मुझे देख पड़ा है। मैं चाहता भी यही था। जैसे भूखा सिंह हिरन की खोज में रहता है, वैसे ही मैं तेरी खोज में था ॥२०॥

अद्य मद्बाणवेगेन प्रेतराड्विषयं गतः ।
ये त्वया निहता वीराः सह तैश्च समेष्यति ॥२१॥

आज तू मेरे बाणों के आघात से प्रेतराज (यमराज) की पुरी में पहुँच कर, उन वीरों से मिलेगा जिनको तूने मार डाला है ॥२१॥

बहुनाऽत्र किमुक्तेन शृणु राम वचो मम ।
पश्यन्तु सकला लोकास्त्वां मां चैव रणाजिरे ॥२२॥

हे राम ! इस समय बहुत कहने सुनने की आवश्यकता नहीं। आज सब लोग मेरा और तेरा युद्ध देखें ॥२२॥

अस्त्रैर्वा गदया वापि बाहुभ्यां वा [1]महाहवे ।
अभ्यस्तं येन वा राम तेनैव युधि वर्तताम् ॥२३॥

चाहे अस्त्र से, चाहे गदा से, चाहे हाथापाई से, जिसमें तुम्हें लड़ने का अभ्यास हो उसीसे निपट ले ॥२३॥

मकराक्षवचः श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत् प्रहसन् वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम्[2] ॥२४॥

मकराक्ष की बातें सुन, दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने मुसक्या कर उस बक्की से कहा ॥२४॥

कत्थसे किं वृथा रक्षो बहून्यसदृशानि तु ।
न रणे शक्यते जेतुं विना युद्धेन वाग्बलात् ॥२५॥

अरे निशाचर ! क्यों तू बहुत सी अनुचित बकवक कर रहा है । तू लड़े बिना युद्ध में इस बकवक के बल से तो जीत नहीं सकता ॥२५॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां त्वत्पिता च यः ।
त्रिशिरा दूषणश्चैव दण्डके निहता मया ॥२६॥

मैं अकेले ही तेरे बाप खर को, त्रिशिरा को, दूषण को और उनके साथी चौदह राक्षसों को दण्डकवन में मार चुका हूँ ॥२६॥

स्वाशितास्तव मांसेन गृध्रगोमायुवायसाः ।
भविष्यन्त्यद्य वै पाप तीक्ष्णतुण्डनखाङ्कुराः ॥२७॥

---

१ महाहवे—निमित्ते । (गो०) २ उत्तरोत्तरवादिनम्—बहुप्रलापिनम् । (गो०)

रे पापी ! आज तू भी मारा जायगा और तेरे माँस से पैनी चोंचों और पैने नखों से युक्त पंजे वाले गीध, शृगाल और कौए अघा जायँगे ॥२७॥

[ रुधिरार्द्रमुखा हृष्टा रक्तपक्षाः खगाश्च ये ।
खे* तथा वसुधायां च भ्रमिष्यन्ति समन्ततः ] ॥२८॥

लाल पखों वाले आकाश में उड़ने वाले जो पक्षी हैं, वे अपनी चोंचों को तेरे रक्त में तर कर प्रसन्न हो पृथिवी पर चारों ओर घूमेंगे ॥२८॥

राघवेणैवमुक्तस्तु खरपुत्रो निशाचरः ।
बाणौघानमुचत्तस्मै राघवाय रणाजिरे ॥२९॥

श्रीरामचन्द्रजी द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर खर का बेटा मकराक्ष राक्षस समरभूमि में श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा ॥२९॥

तान्शरान्शरवर्षेण रामश्चिच्छेदनैकधा ।
निपेतुर्भुवि ते छिन्ना रुक्मपुङ्खाः सहस्रशः ॥३०॥

उसके चलाए बाणों को श्रीरामचन्द्र जी टुकड़े टुकड़े कर के काटने लगे। वे सुवर्ण की फोंक लगे हजारों बाण कट कर भूमि पर गिरने लगे ॥३०॥

तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ।
रक्षसः खरपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥३१॥

इस प्रकार से खर का पुत्र मकराक्ष और दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी की दोनों ओर से बड़े वेग से लड़ाई आरम्भ हुई ॥३१॥

---

* पाठान्तरे—"गता"।

जीमूतयोरिवाकाशे शब्दो ज्यातलयोस्तदा ।
धनुर्मुक्तः स्वनोत्कृष्टः श्रूयते च रणाजिरे ॥३२॥

उन दोनों के धनुषों के रोदे की टंकार और बाणों के छूटने का ऐसा शब्द होता था, मानों आकाश में बादल गर्ज रहे हों ॥३२॥

देवदानवगन्धर्वाः किन्नराश्च महोरगाः ।
अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुकामास्तदद्भुतम् ॥३३॥

उस अद्भुत को देखने के लिए आकाश में देवता, दानव, गन्धर्व, किन्नर और महोरग जमा हो गए थे ॥३३॥

विद्धमन्योन्यगात्रेषु द्विगुणं वर्धते परम् ।
कृतप्रतिकृतान्योन्य कुरुतां तौ रणाजिरे ॥३४॥

जैसे जैसे वे दोनों योद्धा एक दूसरे के छोड़े बाणों से घायल होते थे ; वैसे ही वैसे उन दोनों का दूना दूना बल बढ़ता जाता था। वे दोनों लड़ते हुए शत्रु की मार से अपने को बचाते और शत्रु पर चोट करते थे। अथवा जब एक योद्धा दूसरे के किसी अंग विशेष में बाण मारता, तब दूसरे योद्धा भी उसके उत्तर में उसके उसी अङ्ग को घायल करता था ॥३४॥

राममुक्तांस्तु बाणौघान् राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे ।
रक्षोमुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः ॥३५॥

श्रीरामचन्द्र जी के छोड़े बाण मकराक्ष काट डालता था और मकराक्ष के छोड़े बाणों को, श्रीरामचन्द्र जी टुकड़े टुकड़े कर डालते थे ॥३५॥

बाणौघैर्विततः सर्वा दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
संछन्ना वसुधा *द्यौश्च समन्तान्न प्रकाशते ॥३६॥

उस बाणजाल से दिशा और विदिशाएँ ढक गईं। आकाश और पृथिवी ऐसी छिप गई कि, किधर भी कुछ सूझ नहीं पड़ता था ॥३६॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद रक्षसः ।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥३७॥

तब श्रीरामचन्द्र जी ने क्रोध में भर मकराक्ष का धनुष काट डाला और आठ नाराच ( तीर विशेष ) चला कर, मकराक्ष के रथ एवं सारथी को बेकाम कर दिआ ॥३७॥

भित्त्वा शरै रथं रामो रथाश्वान् समपातयत् ।
विरथो वसुधां तिष्ठन् मकराक्षो निशाचरः ॥३८॥

रथ को तोड़ कर श्रीरामचन्द्र जी ने मकराक्ष के रथ के घोड़ों को मार कर गिरा दिआ। तब रथ टूट जाने पर, राक्षस मकराक्ष धरती पर खड़ा हो गया ॥३८॥

तत्तिष्ठद्वसुधां रक्षः शूलं जग्राह पाणिना ।
त्रासनं सर्वभूतानां युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥३९॥

उसने धरती पर खड़े हो कर, हाथ में शूल ले लिया। वह प्रलयकालाग्नि की तरह चमचमाता था और प्राणिमात्र को डराने वाला था ॥३९॥

विभ्राम्य तु महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ।
स क्रोधात् प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महाहवे ॥४०॥

*पाठान्तरे--" चैव ।"

मकराक्ष ने उस विशाल और चमचमाते शूल को घुमाया और क्रोध में भर उसे श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर फेंका ॥४०॥

तमापतन्तं ज्वलितं खरपुत्रं कराच्च्युतम् ।
बाणैस्तु त्रिभिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥४१॥

मकराक्ष के हाथ से छूटे हुए और चमचमाते शूल को अपने ऊपर आते देख, श्रीरामचन्द्र जी ने आकाश ही में तीन बाण मार, उसको काट गिराया ॥४१॥

स च्छिन्नो नैकधा शूलो दिव्यहाटकमण्डितः ।
व्यशीर्यत महोल्केव रामबाणार्दितो भुवि ॥४२॥

उस दिव्य और सुवर्णभूषित शूल के कितने ही टुकड़े हो गए। श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से कटा हुआ वह शूल, पृथिवी पर गिर कर, एक बड़े उल्कापिण्ड की तरह बिखर गया ॥४२॥

तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
साधु साध्विति भूतानि व्याहरन्ति नभोगता ॥४३॥

अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी द्वारा, उस शूल को कटा हुआ देख, आकशस्थित समस्त जीव " वाह वाह " कहने लगे ॥४३॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूलं मकराक्षो निशाचरः ।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥४४॥

राक्षस मकराक्ष अपने चलाए उस शूल को नष्ट हुआ देख, घूँसा तान कर, श्रीरामचन्द्र जी की ओर यह कहता हुआ दौड़ा कि, खड़ा रह ! खड़ा रह !! ॥४४॥

स तं दृष्ट्वा पतन्तं वै प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः सन्दधे तु शरासने ॥४५॥

उसको अपने ऊपर इस प्रकार आक्रमण करते देख, श्रीरामचन्द्र जी ज़ोर से हँस पड़े और अपने धनुष पर पावकास्त्र नामक बाण चढ़ाया ॥४५॥

तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥ ४६॥

उस समर में श्रीरामचन्द्र जी के छोड़े पावकास्त्र के लगने पर मकराक्ष का कलेजा फट गया और वह पृथिवी पर गिर कर मर गया ॥४६॥

दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
लङ्कामेवाभ्यधावन्त रामबाणार्दितास्तदा ॥४७॥

मकराक्ष का मारा जाना देख, उसके साथी समस्त राक्षस श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से पीड़ित हो कर, लंका की ओर भाग गए ॥४७॥

दशरथनृपपुत्रबाणवेगै
रजनिचरं निहतं खरात्मजं तम् ।
ददृशुरथ सुरा भृशं प्रहृष्टा
गिरिमिव वज्रहतं यथा विकीर्णम् ॥४८॥

इति एकोनाशीतितमः सर्गः

महाराज दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी के बाणप्रहार से मरे हुए उस खरपुत्र मकराक्ष को, वज्र से टूटे हुए पर्वत की तरह

पृथिवी पर बिखरा पड़ा देख, देवता लोग बहुत ही प्रसन्न हुए ॥४८॥

युद्धकाण्ड का उन्नासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## अशीतितमः सर्गः

—❀—

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिञ्जयः।
क्रोधेन महताऽऽविष्टो दन्तान् कटकटापयन् ॥१॥

जब समरविजयी रावण ने मकराक्ष के मारे जाने का संवाद सुना; तब वह अत्यन्त कुपित हुआ और दाँत पीसने लगा ॥१॥

कुपितश्च तदा तत्र किं कार्यमिति चिन्तयन्।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥२॥

क्रुद्ध हो वह सोचने लगा कि, अब क्या करना चाहिए। अन्त में उसने अत्यन्त क्रुद्ध हो, लड़ने के लिए अपने पुत्र इन्द्रजीत को आज्ञा दी ॥२॥

जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥३॥

हे वीर! छिप कर या प्रत्यक्ष होकर, जैसे बने वैसे तुम उन दोनों महाबलवान् भाई राम और लक्ष्मण का वध करो। क्योंकि तुम सब प्रकार से उन दोनों से अधिक बलवान् हो ॥३॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे ।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यति संयुगे ॥४॥

तुम लड़ाई में अनुपम वीरता प्रदर्शित करने वाले इन्द्र को जीत चुके हो, फिर भला उन दो मनुष्यों को क्या तुम देखते ही न मार डालोगे अथवा तुम्हारे लिए दो मनुष्यों का मारना कौन बड़ी बात है ॥४॥

तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ।
यज्ञभूमौ स विधिवत् पावकं जुहुवेन्द्रजित् ॥५॥

इस प्रकार रावण के कहने पर, इन्द्रजीत ने लड़ने के लिए जाना स्वीकार किया और यज्ञशाला में जा वह विधिवत् हवन करने लगा ॥५॥

जुह्वतश्चापि तत्राग्निं रक्तोष्णीषधराः १ स्त्रियः ।
आजग्मुस्तत्र सम्भ्रान्ता २राक्षस्यो यत्र रावणिः ॥६॥

जब वह अग्नि में होम करने को तैयार था, तब वहाँ पर, जहाँ मेघनाद बैठा था, ऋत्विजों के लगाने के लिए लाल रंग की पगड़ियाँ लिए हुए और हड़बड़ाती हुई राक्षसियाँ आईं ॥६॥

[ टिप्पणी—ये राक्षसियाँ होम परिचारिकाएं थीं। रामाभिरामी टीकाकार ने लिखा है, "स्त्रियश्राजग्मुः होमपरिचारिका इतिशेषः" ]

शस्त्राणि शरपत्राणि समिधोऽथ विभीतिकाः ।
लोहितानि च वासांसि स्रुवं कार्ष्णायसं तथा ॥७॥

---

१ रक्तोष्णीषधराः—ऋत्विग्धारणार्थं रक्तोष्णीषाण्यानयन्त्य इत्यर्थः । "लोहितोष्णीषाऋत्विजः प्रचरन्ति" इतिश्रुतेः (गो०) २ सम्भ्रान्ताः—त्वरावत्यः समयातिक्रमो मा भूदिति उष्णीषाण्यानिन्युरित्यर्थः । (गो०)

सरपतों की जगह शस्त्र थे और होम की समिधाएँ बहेड़े की लकड़ी की थीं। इस होम में ( होम करने वाले के) लाल रंग के वस्त्र थे और स्रुवा लोहे का था ॥७॥

सर्वतोऽग्निं समस्तीर्य शरपत्रैः सतोमरैः।
छागस्य कृष्णवर्णस्य गलं जग्राह जीवतः ॥८॥
सकृदेव समिद्धस्य विधूमस्य महार्चिषः।
बभूवुस्तानि लिङ्गानि विजयं दर्शयन्ति च ॥९॥

सरपत और तोमर बिछा कर, उनके ऊपर अग्नि स्थापित की गई। फिर उसने काले रंग के एक जीते बकरे को गरदन से पकड़ा और उसको होम दिया। उसके होमते ही अग्नि से धुआँ का निकलना बन्द हो गया और दप्तीप्त अग्निशिखा निकलने लगी। ये सब चिह्न विजयसूचक थे ॥८॥९॥

प्रदक्षिणावर्तशिखस्तप्तहाटकसन्निभः।
हविस्तत्प्रतिजग्राह पावकः स्वयमुत्थितः ॥१०॥

दक्षिण, वर्ती अग्नि की शिखा थी जो सोने के समान दमक रही थी। अग्निदेव ने स्वयं उपस्थित हो, हवि ग्रहण किआ था ॥१०॥

हुत्वाऽग्निं तर्पयित्वा च देवदानवराक्षसान्।
आरुरोह रथश्रेष्ठमन्तर्धानगतं शुभम् ॥११॥

अग्नि में हवन कर और देवता, दानवों और राक्षसों को तृप्त कर, उसने छिप जाने वाला रथ पाया। उस पर वह सवार हुआ ॥११॥

[ टिप्पणी—उसके पूर्व भी मेघनाद उसी प्रयोग कर वानरी सेना को मृतप्राय कर चुका था—यह दूसरी बार का प्रयोग था। ]

स वाजिभिश्चतुर्भिश्च बाणैश्च निशितैर्युतः।
आरोपितमहाचापः शुशुभे स्यन्दनोत्तमः ॥१२॥

उस रथ में चार घोड़े जुते हुए थे और उसमें बड़े पैने पैने बाण भरे हुए थे तथा रोदा चढ़ा चढ़ाया एक बड़ा धनुष भी रखा हुआ था और वह रथ देखने में भी बड़ा सुन्दर था ॥१२॥

जाज्वल्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छदः ।
मृगैश्चन्द्रार्धचन्द्रैश्च सरथः समलङ्कृतः ॥१३॥

वह रथ चमचमा रहा था और उसका उथर सुनहला था । उस रथ को सुन्दर बनाने अथवा सजाने के लिए जगह जगह हिरन पूरे चन्द्रमा और आधे चन्द्रमा की मूर्त्तियाँ बनाई गई थीं ॥१३॥

जाम्बूनदमहाकम्बुर्दीप्तपावकसन्निभः ।
बभूवेन्द्रजितः केतुर्वैडूर्यसमलङ्कृतः ॥१४॥

इन्द्रजीत का अग्नि के समान चमचमाता सुवर्ण का शङ्ख था और ध्वजा वैदूर्य मणि से भलीभाँति अलङ्कृत थी ॥१४॥

तेन चादित्यकल्पेन ब्रह्मास्त्रेण च पालितः ।
स बभूव दुराधर्षो रावणिः सुमहाबलः ॥१५॥

सूर्य के समान प्रकाशित ब्रह्मास्त्र से रक्षित अत्यन्त बलवान मेघनाद दुर्धर्ष हो गया ॥१५॥

सोऽभिनिर्याय नगरादिन्द्रजित् समितिञ्जयः ।
हुत्वाऽग्निं १राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानमतोऽब्रवीत् ॥१६॥

वह समरविजयी इन्द्रजीत राक्षसों के देवताओं के मंत्रों से हवन कर, नगरी से निकल और अन्तर्धान होने की शक्ति प्राप्त कर कहने लगा ॥१६॥

---

१राक्षसैः—निऋृ तदेवताकैः । (गो०) २ अन्तर्धानगतः—अन्तर्धानशक्ति प्राप्तः।( गो० )

अद्य हत्वा रणे यौ तौ मिथ्या प्रव्राजितौ वने ।
जयं पित्रे प्रदास्यामि रावणाय रणार्जितम् ॥१७॥

झूठमूठ बन में घूमने वाले अथवा बने हुए तपस्वी उन दोनों भाइयों को मार कर, आज मैं अपने पिता को जयलाभ कराऊँगा ॥१७॥

अद्य निर्वानरामुर्वीं हत्वा रामं सलक्ष्मणम् ।
करिष्ये परमप्रीतिमित्युक्त्वाऽन्तरधीयत ॥१८॥

आज मैं वानरहीन पृथिवी कर तथा राम-लक्ष्मण को मार कर अपने पिता को अत्यानन्दित करूँगा। यह कह कर वह अन्तर्धान हो गया ॥१८॥

आपपाताथ संक्रुद्धो दशग्रीवेण चोदितः ।
तीक्ष्णकार्मुकनाराचैस्तीक्ष्णैस्त्विन्द्ररिपू रणे ॥१९॥

तदनन्तर मेघनाद, राक्षसराज रावण की प्रेरणा से क्रुद्ध हो समरभूमि में पहुँचा। इन्द्रजीत, प्रचण्ड धनुष और पैने बाणों को लेकर और भी अधिक प्रचण्ड हो गया ॥१९॥

स ददर्श महावीर्यौ नागौ त्रिशिरसाविव ।
सृजन्ताविषुजालानि वीरौ वानरमध्यगौ ॥२०॥

इन्द्रजीत ने देखा कि, वानरों के बीच, तीन फन वाले सर्प की तरह श्रीराम और लक्ष्मण खड़े हैं ( इनकी पीठ पर दो दो तरकस बंधे हुए थे, अत. मस्तकों सहित दोनों भाई तीन फन वाले सर्प जैसे देख पड़ते थे ) और वे दोनों वीर, राक्षसो का नाश करने के लिए बाण चला रहे हैं ॥२०॥

इमौ ताविति सञ्चिंत्य सज्यं कृत्वा च मुंकाकम्
सन्ततानेषुधाराभिः पर्जन्य इव वृष्टिमान् ॥२१॥

उन दोनों को पहिचान कर उसने अपने धनुष पर रोदा चढ़ाया और वह दोनों पर वैसे ही बाणों की वर्षा करने लगा; जैसे मेघ जल की वर्षा करते हैं ॥२१॥

स तु वैहायसं प्राप्य सरथौ रामलक्ष्मणौ।
अचक्षुर्विषये तिष्ठन् विव्याध निशितैः शरैः ॥२२॥

इन्द्रजीत आकाशचारी रथ में बैठा हुआ, अदृश्य हो, बड़े पैने बाणों से श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को घायल करने लगा ॥२२॥

तौ तस्य शरवेगेन२ परीतौ रामलक्ष्मणौ।
धनुषी सशरे कृत्वा दिव्यमस्त्रं३ प्रचक्रतुः ॥२३॥

जब श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण का सारा शरीर बाणों से बिंध गया, तब उन्होंने मंत्रों से अभिमंत्रित कर बाणों को धनुष पर रख छोड़ना आरम्भ किया ॥२३॥

प्रच्छादयन्तौ गगनं शरजालैर्महाबलौ।
तमस्त्रैः सूर्यसङ्काशैर्नैव पस्पृशतुः शरैः ॥२४॥

यद्यपि उन दोनों महाबलवान भाइयों ने इतने बाण छोड़े कि, आकाश ढक गया; तथापि सूर्य की तरह वे अस्त्र मेघनाद के शरीर को छू तक नहीं सके ॥२४॥

---

१ वैहायसंरथ:—आकाशगामीरथो यस्यसः। (रा०) २परीतौ—व्याप्तौ। (रा०) ३ अस्त्रैः— शस्त्रमन्त्राभिमंत्रितैः शरैः। (रा०)

स हि धूमान्धकारं च चक्रे प्रच्छादयन्नभः ।
दिशश्चान्तर्दधे श्रीमान्नीहारतमसावृतः ॥२५॥

मायावी इन्द्रजीत ने माया के बल से धुआँ प्रकट कर आकाश अन्धकारमय कर रखा था। उस समय समस्त दिशाएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानों उनमें कुहरा छाया हुआ हो ॥२५॥

नैवज्यातलनिर्घोषो न च नेमिखुरस्वनः ।
शुश्रुवे चरतस्तस्य न च रूपं प्रकाशते ॥२६॥

न तो इन्द्रजीत की प्रत्यञ्चा का शब्द सुनाई पड़ता और न रथ के पहियों का और न घोड़ों की टाप का और न उसके घूमने फिरने ही का शब्द सुन पड़ता था और न उसकी शक्ल ही देख पड़ती थी ॥२६॥

घनान्धकारे तिमिरे शिलावर्षमिवाद्भुतम् ।
स ववर्ष महाबाहुर्नाराचशरवृष्टिभिः ॥२७॥

उस निविड़ अन्धकार में अद्भुत ओलों की वर्षा की तरह, वह महाबली इन्द्रजीत नाराच बाणों की वर्षा कर रहा था ॥२७॥

स रामं सूर्यसङ्काशैः शरैर्दत्तवरो भृशम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु रावणिः ॥२८॥

इस युद्ध में मेघनाद ने क्रुद्ध हो, वरदान में प्राप्त सूर्य के समान चमकते हुए बाणों से श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण के शरीरों के समस्त अङ्गप्रत्यङ्ग घायल कर डाले ॥२८॥

तौ हन्यमानौ नाराचैर्धाराभिरिव पर्वतौ ।
हेमपुङ्खान्नरव्याघ्रौ तिग्मान् मुमुचतुः शरान् ॥२९॥

जिस तरह पहाड़ जलवृष्टि को सहते हैं, उसी तरह दोनों भाई मेघनाद के छोड़े बाणों की चोट को सहन करते हुए सुवर्ण फोंकों वाले पैने पैने बाण छोड़ रहे थे ॥२९॥

अन्तरिक्षे समासाद्य रावणिं कङ्कपत्रिणः
निकृत्य पतगा भूमौ पेतुस्ते शोणितोक्षिताः ॥३०॥

वे रुधिर में भीगे समस्त कङ्कपत्रयुक्त बाण आकाश में जा और मेघनाद के शरीर को घायल कर, भूमि पर गिर रहे थे ॥३०॥

अतिमात्रं शरौघेण पीड्यमानौ नरोत्तमौ ।
तानिषून् पततो भल्लैरनेकैर्निचकृन्ततुः ॥३१॥

बहुत से बाणों की चोट से व्यथित, वे दोनों, पुरुषसिंह, उन ऊपर से आते हुए बाणों को भाले के आकार के बाणों से काटते जाते थे ॥३१॥

यतो हि ददृशाते तौ शरान्निपततः शितान् ।
ततस्तु तौ दाशरथी ससृजातेऽस्त्रमुत्तमम् ॥३२॥

यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी इन्द्रजीत को देख नहीं पाते थे, वे दोनों जन उस ओर ही पैने बाण छोड़ते थे, जिस ओर से उसके बाण आते हुए देख पड़ते थे ॥३२॥

रावणिस्तु दिशः सर्वा रथेनातिरथः पतन् ।
विव्याध तौ दाशरथी लघ्वस्त्रो[1] निशितैः शरैः ॥३३॥

---

१ लघूनि—अल्पकालेन बहुदूरं प्रचलनशीलानि अस्त्राणि । (गो०)

इस पर अतिरथ इन्द्रजीत रथ में बैठा हुआ चारों ओर से घूम घूम कर श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण जी के छोटे किन्तु बहुत दूर जाने वाले बाण मार मार कर, घायल कर रहा था ॥३३॥

तेनातिविद्धौ तौ वीरौ रुक्मपुङ्खैः सुसंहितैः[१] ।
बभूवतुर्दाशरथी पुष्पिताविव किंशुकौ ॥३४॥

उन सुवर्ण की फोंक वाले और अच्छी तरह बने हुए बाणों की चोट से बहुत घायल होने के कारण और शरीर से रुधिर बहने के कारण ; वे दोनों भाई फूले हुए दो ढाक के वृक्षों की तरह जान पड़ते थे ॥३४॥

नास्य वेद गतिं कश्चिन्न च रूपं धनुः शरान् ।
न चान्यद्विदितं किञ्चित्सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥३५॥

मेघों में छिपे हुए सूर्य की तरह मेघनाद की चाल, उसका रूप, उसका धनुष और बाण दिखलाई नहीं पड़ते थे ॥३५॥

तेन विद्धाश्च हरयो निहताश्च गतासवः ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥३६॥

उसके घायल किए सैकड़ों वानर पीड़ित होने के कारण निर्जीव हो, भूमि पर लोट गए ॥३६॥

लक्ष्मणस्तु सुसंक्रुद्धो भ्रातरं वाक्यमब्रवीत् ।
ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्वरक्षसाम् ॥३७॥

---

१ सुसंहितैः— सुष्ठु निर्मितैः । ( गो० )

तब लक्ष्मण जी ने अत्यन्त कुपित हो, श्रीरामचन्द्र जी से कहा, भाई मैं तो अब समस्त राक्षसों का संहार करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ता हूँ ॥३७॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम् ।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥३८॥

इस पर सुन्दर लक्षणों से युक्त लक्ष्मण जी से श्रीरामचन्द्र जी बोले—एक राक्षस के पीछे, पृथिवी पर के समस्त राक्षसों का नाश करना तो उचित नहीं है ॥३८॥

अयुध्यमानं प्रच्छन्नं प्राञ्जलिं शरणागतम् ।
पलायन्तं प्रमत्तं वा नत्वं हन्तुमिहार्हसि ॥३९॥

अपने साथ न लड़ने वाले, युद्ध के डर से छिपे हुए, हाथ जोड़ शरण में आए हुए, रण छोड़कर भागे हुए, अथवा उन्मत्त को मारना उचित नहीं है ॥३९॥

अस्यैव तु वधे यत्नं करिष्यावो महाबल ।
आदेक्ष्यावो महावेगानस्त्रानाशीविषोपमान् ॥४०॥

हे महाबली ! अतः हम आज इसीके मारने के लिए यत्नवान होकर विषधर सर्प जैसे बाण अति वेग से छोड़ेंगे ॥४०॥

तमेनं मायिनं क्षुद्रमन्तर्हितरथं बलात् ।
राक्षसं निहनिष्यन्ति दृष्ट्वा वानरयूथपाः ॥४१॥

रथ गुप्त किए हुए उस क्षुद्र एवं मायावी के सामने आने पर तो वानर ही उसे मार डालेंगे ॥४१॥

यद्येष भूमिं विशते दिवं वा
रसातलं वाऽपि नभःस्थलं वा ।
एवं निगूढोऽपि ममास्त्रदग्धः
पतिष्यते भूमितले गतासुः ॥४२॥

यह दुष्ट भूमि, स्वर्ग, रसातल, आकाशादि स्थानों में कहीं भी क्यों न छिपे, तो भी मेरे अस्त्रों से भस्म हो, मरा हुआ यह पृथिवी पर अवश्य गिरेगा ॥४२॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
रघुप्रवीरः प्लवगर्षभैर्वृतः ।
वधाय रौद्रस्य नृशंसकर्मणः
तदा महात्मा त्वरितं निरीक्षते[१] ॥४३॥

अशीतितमः सर्गः ॥

इस प्रकार कह महात्मा श्रीरामचन्द्र जी वानरों सहित खड़े हुए; उस दुष्ट भयङ्कर और क्रूरकर्मा मेघनाद के वध का उपाय शीघ्र सोचने लगे ॥४३॥

युद्धकाण्ड का अस्सीवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



१ निरीक्षते—चिन्तयति । ( गो० )

# एकाशीतितमः सर्गः

—*—

विज्ञाय तु मनस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
सन्निवृत्याहवात्तस्मात् संविवेश पुरं ततः ॥१॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजी के मन की बात ताड़ कर, ( अर्थात् अब तो श्रीरामचन्द्र मेरे मारने के लिए कोई न कोई अमोघ अस्त्र छोड़ेंगे ) मेघनाद झटपट युद्ध बन्द कर, लङ्का में घुस गया ॥१॥

सोनुस्मृत्य वधं तेषां राक्षसानां तरस्विनाम् ।
क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगाम महाद्युतिः ॥२॥

किन्तु थोड़ी ही देर बाद उसने यह विचारा कि, रणभूमि से मेरे चले आने पर बेचारे राक्षस मार डाले जाँयगे, अतः क्रोध से लाल लाल नेत्र कर वह महाद्युतिमान शूर फिर निकला ॥२॥

स पश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ।
इन्द्रजित्तु महावीर्यः पौलस्त्यो देवकण्टकः ॥३

महाबलवान रावण का पुत्र जो देवताओं के लिए काँटा था वह इन्द्रजीत राक्षसों को साथ लिये हुए पश्चिम द्वार से निकला ॥३॥

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायाभ्युद्यतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥४॥

जब इन्द्रजीत ने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को लड़ने के लिए उद्यत देखा तब ( वह समझा कि प्रत्यक्ष लड़ कर इनसे जीतना कठिन है ) उसने माया रची अर्थात् एक चाल चली ॥४॥

इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं ततः ।
बलेन महताऽऽवृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥५॥

उसने एक बनावटी सीता को रथ में बिठाया और उस रथ को राक्षसी सेना से घिरवा कर, उस बनावटी सीता को मारने के लिए वह तैयार हुआ ॥५॥

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः ।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥६॥

उस बड़े दुष्ट ने यह कपटचाल इसलिए चली थी कि, जिससे सब की बुद्धि मोहित हो जाय । अतः वह उस मायामयी सीता का वध करने के लिए वानरों के सामने पहुँचा ॥६॥

तं दृष्ट्वा त्वभिनिर्यान्तं नगर्याः काननौकसः ।
उत्पेतुरभिसंक्रुद्धाः शिलाहस्ता युयुत्सवः ॥७॥

उसे लङ्का के बाहिर निकला हुआ देख अथवा उसे अपने सामने प्रत्यक्ष खड़ा देख, क्रोध में भर उससे लड़ने के लिए वानरगण हाथों में शिलाएँ ले ले कर कूदते हुए आगे बढ़े ॥७॥

हनुमान् पुरतस्तेषां जगाम कपिकुञ्जरः ।
प्रगृह्य सुमहच्छृङ्गं पर्वतस्य दुरासदम् ॥८॥

उन सब वानरों के आगे दुर्धर्ष हनुमान जी थे । वे एक बड़ा भारी पहाड़ का शिखर हाथ में लिए हुए थे ॥८॥

स ददर्श हतानन्दां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकवेणीधरां दीनामुपवासकृशाननाम् ॥९॥

हनुमान जी ने देखा कि, इन्द्रजीत के रथ पर आनन्दरहित अर्थात् उदास सीता बैठी हुई हैं। वह सिर के सब बाल एकत्र कर, एक जूड़ा बाँधे हुए हैं। उपवास करते करते उसका मुखमण्डल उतर गया है और वह दीनभाव से रथ पर बैठी हुई है ॥९॥

परिक्लिष्टैकवसनाममृजां[1] राघवप्रियाम् ।
रजोमलाभ्यामालिप्तैः सर्वगात्रैर्वरस्त्रियम् ॥१०॥

वह राम की प्यारी सीता केवल एक मैला कपड़ा पहिने हुए है। सुन्दरी होने पर भी उबटन न लगाने से शरीर चीकट हो रहा है और धूल और मैल सारे शरीर में चिपटा हुआ है ॥१०॥

तां निरीक्ष्य मुहूर्तं तु मैथिलीत्यध्यवस्य[2] तु ।
बभूवाचिरदृष्टा हि तेन सा जनकात्मजा ॥११॥

थोड़े ही दिनों पहले हनुमान् जी जानकी जी को देख चुके थे। अतः कुछ ही देर देखने से उन्होंने जान लिया कि, यह सीता हैं ॥११॥

तां दीनां मलदिग्धाङ्गीं रथस्थां दृश्य मैथिलीम् ।
बाष्पपर्याकुलमुखो हनुमान् व्यथितोऽभवत् ॥१२॥

मैले कुचैले शरीर वाली जानकी को उदास हो, रथ में बैठी हुई देख, हनुमान जी व्यथित हो गए और उनके नेत्रों से आँसू गिरने लगे, जिनसे उनका मुखमण्डल तर हो गया ॥१२॥

अब्रवीत्तां तु शोकार्तां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
सीतां रथस्थितां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रसुताश्रिताम् ॥१३॥

---

१ अमृजां—अनुद्वर्तनां। (गो०) २ अध्यवस्य—निश्चित्य। (शि०)

उस शोकविह्वला, आनन्दहीना और दुखियारी सीता को रथ पर बैठी हुई और रावणात्मज मेघनाद के बस में पड़ी हुई देख, हनुमान् जी ( अपने साथी वानरों से ) कहने लगे ॥१३॥

**किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः ।**
**सह तैर्वानरश्रेष्ठैरभ्यधावत रावणिम् ॥१४॥**

इस दुष्ट इन्द्रजीत का अब अभिप्राय क्या है ? उस समय वे तरह तरह की बातें विचार कर, उन श्रेष्ठ वानरों को अपने साथ ले मेघनाद के ऊपर दौड़े ॥१४॥

**तद्वानरबलं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ।**
**कृत्वा निकोशं निस्त्रिंशं मूर्ध्नि सीतां परामृशत् ॥१५॥**

वानरी सेना को अपने ऊपर आक्रमण करते देख, मेघनाद क्रोध के मारे विह्वल हो गया। वह म्यान से तलवार खींच कर सीता का सिर काटने को तैयार हुआ ॥१५॥

**तां स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास रावणिः ।**
**क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥१६॥**

वानरों की आँखों के सामने ही उस हा राम ! हा राम ! कह कर चिल्लाती हुई और रथ पर बैठी हुई बनावटी सीता को मारने लगा ॥१६॥

**गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनुमान् दैन्यमागतः ।**
**शोकजं वारि नेत्राभ्यामसृजन् मारुतात्मजः ॥१७॥**

जब मेघनाद ने सीता का जूड़ा पकड़ा, तब तो हनुमान् जी उदास हुए और पवनन्दन के दोनों नेत्रों से शोकाश्रु निकलने लगे ॥१७॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं रामस्य महिषीं प्रियाम् ।
अब्रवीत् परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥१८॥

श्रीरामचन्द्रजी की प्यारी भार्या उस सर्वाङ्गसुन्दरी सीता की ऐसी दुर्दशा होते देख, हनुमान् जी क्रोध में भर रावणात्मज मेघनाद से कठोर वचन बोले ॥१८॥

दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे[1] परामृशः[2] ।
ब्रह्मर्षीणां कुले जातो राक्षसीं योनिमाश्रितः ॥१९॥
धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ।
नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्र पापपराक्रम ॥२०॥

अरे दुष्ट ! तूने जो यह सीता की चोटी पकड़ी है, इससे तेरा सत्यानाश हो जायगा अथवा तू अपने नाश के लिए सीता की चोटी खींच रहा है । तू ब्रह्मर्षिकुल में उत्पन्न होकर भी राक्षसयोनि में उत्पन्न हुओं जैसा काम करता है । तुझको, जिसकी ऐसी बुद्धि है धिक्कार है । अरे निर्दयी, दुष्ट, दुराचारी, अल्पबुद्धि वाले और पाप करने में बहादुरी दिखाने वाले ! ॥१९॥२०॥

अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा[3] ते नास्ति निर्घृण ।
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ॥२१॥

अरे निर्दयी ! ऐसे असज्जनोचित कर्म को करने में क्या तुझे अपनी निन्दा का डर नहीं लगता ? देख, यह सीता तो अपना घर छूटने एवं राज्यरहित और श्रीराम के वियोग से वैसे ही दुखी है ॥२१॥

---

१ केशपक्षे—केशसमूहे । (गो०) २ परामृशः—अस्पृशः ३ घृणा—जुगुप्सा । (गो०)

किं तवैषापराद्धा हि यदेनां हन्तुमिच्छसि ।
सीतां च हत्वा न चिरं जीविष्यसि कथञ्चन ॥२२॥

इसने तेरा क्या बिगाड़ा है जो तू इसको मारना चाहता है। याद रख, सीता को मार कर तू भी किसी तरह भी बहुत दिनों तक जीता जागता न रह सकेगा ॥२२॥

वधार्हकर्मणाऽनेन मम हस्तगतो ह्यसि ।
ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्येषु कुत्सिताः ॥२३॥
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान् प्रतिपत्स्यसे ।
इति ब्रुवाणो हनुमान् सायुधैर्हरिभिर्वृतः ॥२४॥

हे वधार्ह ( मार डालने योग्य )! तू इस काम को कर, कभी जी नहीं सकता ( क्योंकि अब तो तू मेरे दृष्टिपथ में पड़ चुका है ) हे लोकवध्य। इन चौदहों लोकों में स्त्रीघातियों को जो कुत्सित लोक प्राप्त होता है, तू उसी लोक में इस शरीर को त्याग और यातना शरीर प्राप्त कर जायगा। हनुमान् जी यह कह आयुधधारी वानरों को साथ लिये हुए ॥२३॥ ॥२४॥

अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ।
आपतन्तं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ॥२५॥

क्रोध में भर इन्द्रजीत की ओर झपटे। उस महाबली वानरी सेना को अपने ऊपर आक्रमण करते देख ॥२५॥

रक्षसां भीमवेगानामनीकं तु न्यवारयत् ।
स तां बाणसहस्रेण विक्षोभ्य हरिवाहिनीम् ॥२६॥

अपनी भयङ्कर वेगवती राक्षसी सेना द्वारा उसको रोक दिआ और वह स्वयं भी सहस्रों बाणों से वानरी सेना को क्षुब्ध कर ॥२६॥

हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित् प्रत्युवाच ह ।
सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ॥२७॥

इन्द्रजीत ने कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी से कहा रामचन्द्र सुग्रीव और तू जिसके लिए यहाँ आया है ॥२७॥

तां हनिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ।
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ॥२८॥

उस सीता का, मैं आज तेरे सामने ही वध करूँगा। हे वानर! इसका वध करने के बाद मैं राम लक्ष्मण का, तेरा और अन्य सब वानरों का वध करूँगा ॥२८॥

सुग्रीवं च वधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम् ।
न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवङ्गम ॥२९॥

मैं सुग्रीव को और उस दुर्जन विभीषण को भी जान से मारूँगा। अरे वानर! तू जो यह कहता है कि, स्त्रीवध न करना चाहिए ॥२९॥

पीडाकरममित्राणां यत्स्यात् कर्तव्यमेव तत् ।*
तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं तदा ॥३०॥

---

* किसी किसी संस्करण में यह श्लोक भी पाया जाता है

ताटकाया वधं रामः किमर्थं कृतवान् पुरा ।
तदहं हन्मि रामस्य महिषीं जनकात्मजाम् ॥

तो फिर पहले राम ने ताटका का वध क्यों किआ था। इसलिए मैं राम की पटरानी सीता को मारे डालता हूँ।

सो यही क्यों, जिस किसी काम के करने से शत्रु को पीड़ा पहुँचे, वही काम अवश्य करना चाहिए। तदनन्तर यह कह कर रोती हुई मायामयी सीता को ॥३०॥

[1]शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम्।
यज्ञोपवीतमार्गेण भिन्ना तेन तपस्विनी ॥३१॥

इन्द्रजीत ने स्वयं तेज़ तलवार से काट डाला। उसने सीता के शरीर में तलवार बाएँ कंधे से दाहिनी कोख तक, जिस प्रकार जनेऊ पहिना जाता है, मारी ॥३१॥

सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना।
तामिन्द्रजित् स्वयं हत्वा हनुमन्तमुवाच ह ॥३२॥

वह बड़ी नितम्बवाली सुन्दरी सीता पृथिवी पर गिर पड़ी। इस प्रकार सीता को अपने हाथ से मार कर, इन्द्रजीत हनुमान जी से कहने लगा ॥३२॥

मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिषूदिताम्।
एषा विशस्ता वैदेही विफलो वः परिश्रमः ॥३३॥

देख, मैंने राम की प्यारी को तलवार से काट डाला। अब जब सीता ही नहीं रही; तब फिर तुम लोगों का अब परिश्रम करना व्यर्थ है ॥३३॥

ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित् स्वयम्।
हृष्टः स रथमास्थाय विननाद महास्वनम् ॥३४॥

अपने विशाल खड्ग से उस बनावटी सीता का स्वयं वध कर, इन्द्रजीत प्रसन्न हो रथ पर सवार हुआ और बड़े जोर से गर्जा ॥३४॥

---

१ मार्गशब्दः प्रकारवचनः। यज्ञोपवीत धारणप्रकारेण। ( गो० )

वानराः शुश्रुवुः शब्दमदूरे प्रत्यवस्थिताः ।
व्यादितास्यस्य नदतस्तद्दुर्गं[1] संश्रितस्य च ॥३५॥

उसके समीप खड़े हुए वानरों ने मुख फैलाए गर्जते हुए और राक्षसी सेना के व्यूह में स्थित मेघनाद के गर्जने का शब्द सुना ॥३५॥

तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः
प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः ।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा
विषण्णरूपाः सहसा प्रदुद्रुवुः ॥३६॥

इति एकाशीतितमः सर्गः ॥

दुष्टमति मेघनाद ( बनावटी ) सीता का इस प्रकार वध कर अत्यन्त आनन्दित हुआ । उसको हर्षित देख, वानरगण अत्यन्त दुखी हो, सहसा भाग खड़े हुए ॥३६॥

युद्धकाण्ड का इक्यासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—: ❀ :—

## द्व्यशीतितमः सर्गः

—: ० :—

श्रुत्वा तु भीमनिर्हादं शक्राशनिसमस्वनम् ।
वीक्षमाणा दिशः सर्वा दुद्रुवुर्वानरर्षभाः ॥१॥

इन्द्र के वज्र के शब्द के समान मेघनाद का भयंकर सिंहनाद सुन, चारों ओर देखते हुए वे वानरश्रेष्ठ भागने लगे ॥१॥

---

१ दुर्गम्—व्यूहीकृत राक्षस परिवेष्टन रूपं । (गो०)

तानुवाच ततः सर्वान् हनुमान् मारुतात्मजः ।
विषण्णवदनान् दीनांस्त्रस्तान् विद्रवतः पृथक् ॥२॥

तब उन तितर बितर हो भागते हुए, दुःखित तथा उदासीन मुख वानरों से पवननन्दन हनुमान जी बोले ॥२॥

कस्माद्विषण्णवदना विद्रवध्वे प्लवङ्गमाः ।
त्यक्तयुद्धसमुत्साहाः शूरत्वं क्व नु वो गतम् ॥३॥

हे वानरो ! तुम दुखी हो क्यों भागे जाते हो ? तुम तो शूर हो, फिर युद्ध को छोड़ तुम लोग कहाँ जा रहे हो अथवा तुम युद्धोत्साह क्यों त्यागते हो ? तुम्हारी वह शूरता कहाँ चली गई ? ॥३॥

पृष्ठतोऽनुव्रजध्वं मामग्रतो यान्तमाहवे ।
शूरैरभिजनोपेतैरयुक्तं हि निवर्तितुम् ॥४॥

अच्छा मैं लड़ने के लिए आगे बढ़ता हूँ । तुम सब मेरे पीछे पीछे चले आओ । शूरों और कुलीनों का यह काम नहीं हैं, कि युद्ध से मुख मोड़ें ॥४॥

एवमुक्ताः सुसंक्रुद्धा वायुपुत्रेण वानराः ।
शैलशृङ्गाण्यगांश्चैव जगृहुर्हृष्टमानसाः ॥५॥

इस प्रकार जब पवननन्दन हनुमान् जी ने उन सब को उत्साहित किया, तब उन सब वानरों ने उत्साहित हो और रोष में भर हाथों में शिलाओं और पेड़ों को ले लिया ॥५॥

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान् वानरर्षभाः ।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥६॥

तदन्तर वे समस्त वानरश्रेष्ठ हनुमान जी को घेरे हुए और गर्जते हुए उस महासमर में अग्रसर हुए ॥६॥

स तैर्वानरमुख्यैश्च हनुमान् सर्वतो वृतः ।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥७॥

हनुमान् जी प्रधान प्रधान वानरों के साथ वैसे ही शोभायमान होकर, जैसे अग्नि अपनी शिखाओं से शोभित होता है, शत्रु की सेना को भस्म करने लगे ॥७॥

स राक्षसानां कदनं चकार सुमहाकपिः ।
वृतो वानरसैन्येन कालान्तकयमोपमः ॥८॥

कालान्तक यमराज की तरह कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी ने, वानरी सेना की सहायता से बहुत से, राक्षसों को मार गिराया ॥८॥

स तु कोपेन चाविष्टः शोकेन च महाकपिः ।
हनुमान् रावणिरथेऽपातयन् महतीं शिलाम् ॥९॥

हनुमान जी ने रोष में भर और शोकाकुल हो, एक बड़ी भारी शिला इन्द्रजीत के रथ के ऊपर फेंकी ॥९॥

तामापतन्तीं दृष्ट्वैव रथः सारथिना तदा ।
विधेयाश्वसमायुक्तः* सुदूरमपवाहितः ॥१०॥

किन्तु उस शिला को रथ के ऊपर आते देख, सारथी के सङ्केत से रथमें जुते शिक्षित घोड़े रथ को खींच कर बहुत दूर ले गए ॥१०॥

तमिन्द्रजितमप्राप्य रथस्थं सहसारथिम् ।
विवेश धरणीं भित्त्वा सा शिला व्यर्थमुद्यता ॥११॥

---

पाठान्तरे—" विदूरमपवाहितः । "

अतः हनुमान जी की फेंकी हुई वह बड़ी भारी शिला सारथी सहित रथ पर सवार इन्द्रजीत के ऊपर न गिर कर और विफल होकर पृथिवी के ऊपर गिर कर धरती में समा गई ॥११॥

पातितायां शिलायां तु रक्षसां व्यथिता चमूः ।
निपतन्त्या च शिलया राक्षसा मथिता भृशम् ॥१२॥

उस शिला के गिरने से राक्षसी सेना व्यथित हुई और उसके गिरने पर उससे बहुत से राक्षस दब कर मर गए ॥१२॥

तमभ्यधावञ्छतशो नदन्तः काननौकसः ।
ते द्रुमाश्च महावीर्या गिरिशृङ्गाणि चोद्यताः ॥१३॥

उस समय बड़े बड़े बलवान् सैकड़ों वानर पर्वतशिखरों और वृक्षों को लिये हुए और गर्जते हुए ॥१३॥

क्षिपन्तीन्द्रजितः संख्ये वानरा भीमविक्रमाः ।
वृक्षशैलमहावर्षं विसृजन्तः प्लवङ्गमाः ॥१४॥

इन्द्रजीत के ऊपर टूट पड़े और उन भीम विक्रमी वानरों ने मेघनाद की सेना पर शिलाओं और वृक्षों की वर्षा की ॥१४॥

शत्रूणां कदनं चक्रुर्नेदुश्च विविधैः स्वरैः ।
वानरैस्तैर्महावीर्यैर्घोररूपा निशाचराः ॥१५॥

विविध प्रकार से सिंहनाद करते हुए भयङ्कर आकार वाले और महाबलवान् वानरों ने भयङ्कर रूपवाले शत्रु राक्षसों का बड़ा नाश किया ॥१५॥

वीर्यादभिहता वृक्षैर्व्यवेष्टन्त रणाजिरे ।
स्वसैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ॥१६॥

उन वीर वानरों के वृक्षों के प्रहार से समरभूमि में राक्षस छटपटाने लगे। इन्द्रजीत ने अपनी सेना का इस प्रकार वानरों द्वारा नाश किया जाना देख, ॥१६॥

प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ।
स शरौघानवसृजन् स्वसैन्येनाभिसंवृतः ॥१७॥

वह रोष में भर गया और अपना धनुष उठा शत्रुवानरों का सामना करने को आगे बढ़ा। वह अपनी राक्षस सेना से घिरा हुआ, असंख्य बाण छोड़ने लगा ॥१७॥

जघान कपिशार्दूलान् सुबहून् दृढविक्रमः ।
शूलैरशनिभिः खड्गैः पट्टिशैः कूटमुद्गरैः ॥१८॥

इस बार के युद्ध में इन्द्रजीत ने प्रधान प्रधान वानरों को शूल, वज्र, तलवार पटा और काँटेदार मुग्दरों से मारा ॥१८॥

ते चाप्यनुचरास्तस्य वानराञ्जघ्नुरोजसा ।
सस्कन्धविटपैः सालैः शिलाभिश्च महाबलः ॥१९॥

हनुमान् कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
स निवार्य परानीकमब्रवीत्तान् वनौकसः ॥२०॥

हनुमान् सन्निवर्तध्वं न नः साध्यमिदं बलम् ।
त्यक्त्वा प्राणान् विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षया ॥२१॥

वानरों ने भी उसके साथी राक्षसों को मारा। महाबलवान् हनुमान् जी ने भी स्कन्ध और शाखायुक्त शालवृक्ष और शिलाओं के प्रहार से क्रूरकर्मा राक्षसों का नाश किया। फिर शत्रुसैन्य को भगा कर हनुमान् जी ने वानरों से कहा, चलो अब लौट चलें,

क्योंकि यह सेना हमारे मान की नहीं है। हम लोग तो अपनी जानों को हथेलियों पर रख, श्रीरामचन्द्र जी का काम करते थे ॥१६॥२०॥२१॥

यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ।
इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च ॥२२॥

किन्तु जिनके लिए हम लड़ते थे वह जनकनन्दिनी तो मारी ही गई। चलो अब यह संवाद श्रीरामचन्द्र और सुग्रीव को सुनावें ॥२२॥

तौ यत् प्रतिविधास्येते तत् करिष्यामहे वयम् ।
इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन् सर्ववानरान् ॥२३॥

फिर जैसा वे कहेंगे वैसा किया जायगा। यह कह कर हनुमान् जी ने समस्त वानरों को लौटाया ॥२३॥

शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः सन्न्यवर्तत ।
ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं यत्र राघवः ॥२४॥

वे धीरे धीरे निर्भय हो सेना सहित लौट पड़े। हनुमान जी को श्रीरामचन्द्र जी के पास जाते देखे ॥२४॥

स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यनिकुम्भिलाम् ।
निकुम्भिलामधिष्ठाय पावकं जुहवेन्द्रजित् ॥२५॥

वह दुष्टात्मा इन्द्रजीत होम करने के लिए निकुम्भिलादेवी के मन्दिर में पहुँचा और वहाँ पहुँच वह अग्नि में होम करने लगा ॥२५॥

यज्ञभूम्यां तु विधिवत् पावकस्तेन रक्षसा ।
हूयमानः प्रजज्वालमांसशोणितभुक्तदा ॥२६॥

उसने विधिपूर्वक जब यज्ञशाला में जा अग्नि में हवन किया तब मांस और रुधिर की आहुति पा आग भभक उठी ॥२६॥

सोऽर्चिःपिनद्धो ददृशे होमशोणिततर्पितः ।
सन्ध्यागत इवादित्यः सुग्रीवोऽग्निमुत्थितः ॥२७॥

ज्वाला से युक्त एवं रक्त की आहुति से तृप्त हुआ वह अग्नि, सन्ध्याकालीन सूर्य की तरह ढका हुआ सा देख पड़ने लगा ॥२७॥

अथेन्द्रजिद्राक्षसभूतये तु
जुहाव हव्यं विधिना विधानवित् ।
दृष्ट्वा व्यतिष्ठन्त च राक्षसास्ते
महासमूहेषु नयानयज्ञाः ॥२८॥

इति द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

हवन की विधि जानने वाले मेघनाद ने फिर राक्षसों की ऐश्वर्यवृद्धि के लिए विधिवत् होम किया। उसको हवन करते देख, शास्त्रीय विधि को जानने वाले राक्षस भी वहाँ खड़े रहे ॥२८॥

युद्धकाण्ड का बयासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## त्र्यशीतितमः सर्गः

—❀—

राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम् ।
श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥१॥

उस ओर श्रीरामचन्द्र जी वानरों और राक्षसों के समर का बड़ा कोलाहल सुन कर, जाम्बवान् से बोले ॥१॥

सौम्य नूनं हनुमता क्रियते कर्म दुष्करम् ।
श्रूयते हि यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥२॥

हे जाम्बवान्! मैं समझता हूँ कि, हनुमान् ने युद्ध में कोई बड़ा भारी कठिन कार्य किआ है। क्योंकि यहाँ तक हथियारों की भयंकर झनकार सुन पड़ती है ॥२॥

तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥३॥

अतः हे ऋक्षपते ! तुम भी अपनी सेना सहित शीघ्र जा कर हनुमान जी की सहायता करो ॥३॥

ऋक्षराजस्तथोक्तस्तु स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत् पश्चिमं द्वारं हनुमान् यत्र वानरः ॥४॥

श्रीरामचन्द्र जी ने जब इस प्रकार आज्ञा दी तब जाम्बवान् बहुत अच्छा कह कर अपनी सेना लिये हुए लंका के पश्चिम द्वार की ओर जहाँ हनुमान् जी थे चल दिए ॥४॥

अथायान्तं हनूमन्तं ददर्शर्क्षपतिः पथि ।
वानरैः कृतसंग्रामैः श्वसद्भिरभिसंवृतम् ॥५॥

जाम्बवान् को रास्ते ही में हनुमान् जी मिल गए। हनूमान् जी के साथ जो वानरी सेना थी, वह लड़ते लड़ते थक जाने के कारण हाँफ रही थी ॥५॥

दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं सन्निवार्य न्यवर्तत ॥६॥

रास्ते में हनुमान् जी ने नीले बादल की तरह भयावनी रीछों की सेना को देख उसे युद्ध करने का निषेध कर, लौट चलने को कहा ॥६॥

स तेन हरिसैन्येन सन्निकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥

महायशस्वी हनुमान जी रीछों व वानरों की समस्त सेना को लिये हुए तुरन्त श्रीरामचन्द्र जी के पास गए और दुःखी हो कहने लगे ॥७॥

समरे युद्ध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां पुरः ।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥८॥

महाराज ! समरभूमि में लड़ते समय, हम लोगों की आँखों के सामने रावण के पुत्र इन्द्रजीत ने रुदन करती हुई सीता को जान से मार डाला ॥८॥

उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमागतः ॥९॥

हे अरिन्दम ! उस कार्य को देख मेरा चित्त विकल हो गया है और मैं दुःखी हो, उस वृत्तान्त को आपकी सेवा में निवेदन करने आया हूँ ॥९॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्छितः ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥१०॥

हनुमान् जी के मुख से सीता जी के मारे जाने का वाक्य निकलते ही, श्रीरामचन्द्र जी शोक से मूर्छित हो, जड़ से कटे हुए वृक्ष की तरह धरनी पर गिर पड़े ॥१०॥

तं भूमौ देवसङ्काशं पतितं प्रेक्ष्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥११॥

देवतुल्य श्रीरामचन्द्र जी को धरती पर गिरते देख, प्रधान प्रधान वानर चारों ओर से उन्हें घेर कर खड़े हो गए ॥११॥

असिञ्चन् सलिलैश्चैनं पद्मोत्पलसुगन्धिभिः ।
प्रदहन्तमनासाद्यं सहसाग्निमिवोच्छिखम् ॥१२॥

वे कमलों के फूलों की गन्धि से सुवासित जल को उनके शरीर पर वैसे ही छिड़कने लगे, जैसे बुझने के अयोग्य अचानक भड़की हुई आग की लौ को जलद्वारा बुझाते हैं ॥१२॥

तं लक्ष्मणोऽथ बाहुभ्यां परिष्वज्य सुदुःखितः ।
उवाच राममस्वस्थं वाक्यं हेत्वर्थसंयुतम् ॥१३॥

अत्यन्त दुःखी हो लक्ष्मण जी ने श्रीरामचन्द्र जी को दोनों भुजाओं से थाम कर गले लगा लिया और शोक से पीड़ित श्री रामचन्द्र जी से वह युक्तियुक्त यह वचन बोले ॥१३॥

शुभे वर्त्मनि तिष्ठन्तं त्वामार्य विजितेन्द्रियम् ।
अनर्थेभ्यो न शक्नोति त्रातुं धर्मो निरर्थकः ॥१४॥

हे भाई ! मुझको तो धर्म केवल एक ढकोसला ही जान पड़ता है । क्योंकि तुमने इन्द्रियों को जीत, राज्य के ऐश्वर्य को तृणवत् त्याग, पिता की आज्ञा पालनरूपी धर्म का अनुसरण किया । फिर भी यह धर्म ऐसे ऐसे अनर्थों से तुम्हारी रक्षा न कर सका ! ॥१४॥

भूतानां स्थावराणां च जङ्गमानां च दर्शनम् ।
यथास्ति न तथा धर्मस्तेन नास्तीति मे मतिः ॥१५॥

अचल और चल पदार्थ जिस प्रकार हमको (मूर्तिमान) दिखलाई पड़ते हैं, उस प्रकार धर्म अधर्म हमको मूर्तिमान नहीं देख पड़ते। फिर फल द्वारा भी उनका अस्तित्व सिद्ध नहीं होता, अतः मेरी समझ में तो धर्म नाम का कोई पदार्थ ही नहीं है ॥१५॥

यथैव स्थावरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् ।
नायमर्थस्तथा युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥१६॥

जिस प्रकार स्थावर पदार्थ हमारी आँखों के सामने मौजूद हैं वैसे ही जङ्गम भी प्रत्यक्ष देख पड़ते हैं, उस प्रकार धर्म का फल प्रत्यक्ष नहीं देख पड़ता। अतएव धर्म कोई वस्तु नहीं है। यदि धर्म नाम की कोई वस्तु वास्तव में होती, तो तुम जैसे धर्मात्मा के ऊपर ऐसी विपत्तियाँ क्यों पड़तीं ? ॥१६॥

यद्यधर्मो भवेद्भूतो रावणो नरकं व्रजेत् ।
भवांश्च धर्मयुक्तो वै नैवं व्यसनमाप्नुयात् ॥१७॥

यदि वह नियम ठीक होता कि, अधर्म का करने वाला दुःखी और धर्म का करने वाला सुखी होता है, तो अधर्मी रावण को नरक में जाना चाहिए था और आप जैसे धर्मात्मा पर कभी कोई विपत्ति आनी ही न चाहिए थी ॥१७॥

तस्य च व्यसनाभावाद्व्यसनं च गते त्वयि ।
धर्मो भवत्यधर्मश्च परस्परविरोधिनौ ॥१८॥

किन्तु जब रावण को कुछ भी कष्ट नहीं। (और वह सर्वथा सुखी है) और तुम कष्ट ही कष्ट भोग रहे हो, तब तो कहना

पड़ेगा कि, परस्पर विरोधी धर्म और अधर्म श्रुतिविरुद्ध फल देने वाले हैं ॥१८॥

धर्मेणोपलभेद्धर्ममधर्मं चाप्यधर्मतः ।
यद्यधर्मेण युज्येयुर्येष्वधर्मे प्रतिष्ठितिः ॥१९॥

यदि धर्म करने से सुख और अधर्म करने से दुःख मिलता होता, तो धर्म करने वालों को सुखी और अधर्मियों को दुःखी होना चाहिए। अतएव रावणादिकों को, जो बड़े भारी पापिष्ट हैं, दुःखी होना चाहिए था ॥१९॥

यदि धर्मेण युज्येरन्नधर्मरुचयो जनाः ।
धर्मेण चरतां धर्मस्तथा चैषां फलं भवेत् ॥२०॥

जिनमें अधर्म की रुचि का अभाव है, उनको तो कभी सुख से अलग होना ही न चाहिए। धर्माचरण में निरत रहने के कारण उनको तो सुखरूपफल की प्राप्ति अवश्य ही होनी चाहिए ॥२०॥

यस्मादर्था विवर्धन्ते येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ।
क्लिश्यन्ते धर्मशीलाश्च तस्मादेतौ निरर्थकौ ॥२१॥

परन्तु ऐसा होता हुआ देख नहीं पड़ता। क्योंकि जो सोलहो आने अधर्मी हैं, उनकी बढ़ती देख पड़ती है, वे धन धान्य से भरे पूरे देख पड़ते हैं, किन्तु जो धर्मपरायण हैं, वे कष्ट भोगते हैं, अतएव धर्म अधर्म कोरा ढकोसला है ॥२१॥

बध्यन्ते पापकर्माणो यद्यधर्मेण राघव ।
वधकर्महतोऽधर्मः स हतः कं वधिष्यति ॥२२॥

हे राघव ! यदि यह कहा जाय कि, अधर्मी अपने अधर्माचरण ही से मारे जाते हैं, तो यह कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि

कोई भी कर्म हो उसका अस्तित्व तभी तक है; जब तक वह किया जाता है। जब उस कर्म की क्रिया पूरी हो चुकी, तब वह कर्म अपने आप ही नष्ट हो जाता है। जब वह कर्म स्वयं ही नष्ट हो चुका, तब फिर वह मारेगा किसको ? ॥२२॥

अथवा विहितेनायं हन्यते हन्ति वा परम् ।
विधिरालिप्यते तेन न स पापेन कर्मणा ॥२३॥

यदि कोई मारणादि प्रयोग से किसी दूसरे को मारता है; तो हत्यारूपीफल प्रयोग को लगना चाहिए, न कि प्रयोगकर्त्ता को। इसका सारांश यह है कि, यदि सत्कर्मों से प्रसन्न अथवा असत्कर्मों से अप्रसन्न होने वाला ईश्वर ही धर्माधर्म शब्दवाची मान लिया जाय, तो वही प्रेरक होने के कारण, सुख दुःख भोगने वाला हुआ, धर्माधर्म करने वाला जीव इनके लिए उत्तरदायी नहीं हो सकता ॥२३॥

अदृष्टप्रतिकारेण त्वव्यक्तेनासता मना ।
कथं शक्यं परं प्राप्तुं धर्मेणारिविकर्शन ॥२४॥

हे अरिविकर्शन ! अपनी शक्ति से अनुभवजन्य और असत् कल्पना युक्त, अदृष्ट धर्म स्वयं जड़ है, अतः वह अपने कर्त्तव्य को अर्थात् शत्रुप्रतिकारादि कर्म को, स्वयं कुछ भी नहीं जानता। फिर उससे कल्याण या भलाई क्यों कर प्राप्त हो सकती है ? ॥२४॥

यदि सत् स्यात् सतां मुख्य नासत् स्यात्तव किञ्चन ।
त्वया यमीदृशं प्राप्तं तस्मात्तन्नोपपद्यते ॥२५॥

यदि सचमुच धर्म होता तो तुमको तिल भर भी दुःख नहीं होना चाहिए था। किन्तु यह बात नहीं हो रही है। अतः जब

तुम्हारे जैसे धर्मपरायण पुरुष ऐसा दुःख पा रहे हैं, तब यह सिद्ध होता है कि, धर्म का अस्तित्व है ही नहीं ॥२५॥

अथवा दुर्बलः क्लीबो बलं धर्मोऽनुवर्तते ।
दुर्बलो हृतमर्यादो न सेव्य इति मे मतिः ॥२६॥

अथवा यदि उसका कुछ अस्तित्व है भी, तो बड़ा दुर्बल और मन्द पुरुषार्थी है और वह अपने बलानुरूप वर्तता है। मेरी समझ में तो ऐसे दुर्बल और मर्यादाहीन का सेवन कभी करना ही न चाहिए ॥२६॥

बलस्य यदि चेद्धर्मो गुणभूतः पराक्रमे ।
धर्ममुत्सृज्य वर्तस्व यथा धर्मे तथा बले ॥२७॥

यदि यह माना जाय कि, धर्म तो बल ही का एक अंश है, तो अंशरूपी बल को त्याग कर अंशीरूपी बल और पुरुषार्थ का आश्रय ग्रहण करो। क्योंकि अंश अंशी-भाव से जैसे धर्म वैसा बल है ॥२७॥

अथ चेत्सत्यवचनं धर्मः किल परन्तप ।
अनृतस्त्वय्यकरुणः किं न बद्धस्त्वया पिता ॥२८॥

हे परन्तप ! यदि सत्य-वचन-पालन ही सचमुच धर्म है, तब यह बतलाओ कि, महाराज दशरथ ने जब तुमको युवराज पद देने को वचन दिश्रा और तुमने युवराज होना स्वीकार भी कर लिया, किन्तु पीछे तुमने अपनी युवराज-पद-ग्रहण करने की प्रतिज्ञा को मिथ्या कर, वनवास करना अंगीकार किश्रा, तब इस मिथ्या प्रतिज्ञा के लिए तुम अधर्म के भागी क्यों नहीं हुए ॥२८॥

यदि धर्मो भवेद्भूतो अधर्मो वा परन्तप।
न स्म हत्वा मुनिं वज्री कुर्यादिज्यां शतक्रतुः ॥२९॥

हे परन्तप! धर्म और अधर्म के अस्तित्व को मान लेने पर भी राजा के लिए यह उचित नहीं कि, वह सदा इनमें से एक ही के भरोसे रहे। यदि ऐसा होता तो विश्वरूप मुनि को मार कर इन्द्र पीछे से यज्ञ क्यों करते? ॥२९॥

अधर्मसंश्रितो धर्मो विनाशयति राघव।
सर्वमेतद्यथाकामं काकुत्स्थ कुरुते नर ॥३०॥

हे राघव! इससे तो यह सिद्ध होता है कि, अधर्म मिला हुआ धर्म शत्रु का नाश करता है। हे काकुत्स्थ! इसीसे लोग समय समय पर अपनी रुचि और आवश्यकतानुसार ऐसा करते भी हैं ॥३०॥

मम चेदं मतं तात धर्मोऽयमिति राघव।
धर्ममूलं त्वया छिन्नं राज्यमुत्सृजता तदा ॥३१॥

हे राघव! हे तात! मेरी समझ में भी वही धर्म है। तुमने राज्य का त्याग नहीं किया; बल्कि धर्म को जड़ से काट डाला। (अर्थात् धर्मक्रियाओं का आधारभूत धन है, बिना धन के कोई धर्मक्रिया हो नहीं सकती। राज्यत्याग से जब धर्म के आधारभूत धन का आय ही नष्ट हो गया; तब धम तो जड़ से कट ही गया) ॥३१॥

अर्थेभ्यो हि विवृद्धेभ्यः संवृत्तेभ्यस्ततस्ततः।
क्रियाः सर्वाः प्रवर्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥३२॥

जब इधर उधर से जोड़ बटोर कर धन सम्पत्ति एकत्र की जाती है और जब वह बढ़ती है; तभी उसके द्वारा धर्मकर्म वैसे ही पैदा होते हैं (अर्थात् हो सकते हैं) जैसे पर्वत से नदियाँ उत्पन्न होती हैं ॥३२॥

अर्थेन हि वियुक्तस्य पुरुषस्याल्पतेजसः ।
व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वा ग्रीष्मे [1]कुसरितो यथा ॥३३॥

जिसके पास धन नहीं रहता, उस मनुष्य का तेज बहुत घट जाता है। उस समय उसके सभी काम वैसे ही नष्ट हो (बिगड़) जाते हैं ; जैसे ग्रीष्मऋतु में थोड़े जल वाली नदियाँ सूख जाती हैं ॥३३॥

सोऽयमर्थं परित्यज्य सुखकामः सुखैधितः ।
पापमारभते कर्तुं ततो दोषः प्रवर्तते ॥३४॥

जो मनुष्य आरम्भ से सुख में पलता है, वह जब धनत्याग कर सुख चाहता है, तब ( धनाभाव के कारण सुख की प्राप्ति न होने से, विवश हो सुख की प्राप्ति के लिए ) उसे पाप करने के लिए उद्यत होना पड़ता है। तभी तरह तरह की बुराइयाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं ॥३४॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥३५॥

जिसके पास धन है, उसीके मित्र और उसीके बन्धु भी होते हैं। इस संसार में धनी पुरुष ही पुरुषार्थी माना जाता है और धनी पुरुष ही पण्डित ( अर्थात बुद्धिमान ) भी समझा जाता है ॥३५॥

---

१ कुसरितः—अल्पतोयाः । (गो०)

यस्यार्थाः स च विक्रान्तो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स महागुणः ॥३६॥

जिसके पास धन है वही पराक्रमी है, वही बुद्धिमान् है। जिसके पास धन है वही बड़ा भाग्यवान् है और वही बड़ा गुणवान् है ॥३६॥

अर्थस्यैते परित्यागे दोषाः प्रव्याहृता मया ।
राज्यमुत्सृजता वीर येन बुद्धिस्त्वया कृता ॥३७॥

हे वीर! धन त्याग में जो दोष थे वे मैंने कहे। किन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि, क्या समझ कर तुमने राज्य त्याग दिया ॥३७॥

यस्यार्था धर्मकामार्थास्तस्य सर्वं प्रदक्षिणम् ।
अधनेनार्थकामेन नार्थः शक्यो विचिन्वता ॥३८॥

जिसके पास धर्म और काम के लिए धन है, उसके लिए सभी बातें अनुकूल हैं। किन्तु जो धनहीन होकर कोई काम करना चाहता है, वह कोई भी काम पूरा नहीं कर सकता ॥३८॥

हर्षः कामश्च दर्पश्च धर्मः क्रोधः शमो दमः ।
अर्थादेतानि सर्वाणि प्रवर्तन्ते नराधिप ॥३९॥

हे राजन्! हर्ष, काम, दर्प, धर्म, क्रोध, शम, दम इन सब की प्रवृत्ति धन ही से होती है अर्थात् ये सब धन ही से चरितार्थ होते हैं ॥३९॥

येषां नश्यत्ययं लोकश्चरतां धर्मचारिणाम् ।
तेऽर्थास्त्वयि न दृश्यन्ते दुर्दिनेषु यथा ग्रहाः ॥४०॥

धन का अनादर कर केवल धर्माचरण में तत्पर होने वालों का सांसारिक पुरुषार्थ नष्ट हो जाता है, वह धन तुम्हारे पास वैसे ही नहीं देख पड़ता जैसे बदली में सूर्यचन्द्रादि ग्रह ॥४०॥

त्वयि प्रव्राजिते वीर गुरोश्च वचने स्थिते ।
रक्षसाऽऽहृता भार्या प्राणैः प्रियतरा तव ॥४१॥

हे वीर! पिता की आज्ञा मान, वन में आने से तुम्हारी प्राणों से भी अधिक बढ़ कर पत्नी को रावण ने हरा ॥४१॥

तदद्य विपुलं वीर दुःखमिन्द्रजिता कृतम् ।
कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मादुत्तिष्ठ राघव ॥४२॥

हे वीर! उससे भी बढ़ कर बहुत अधिक दुःखदायी काम इन्द्रजीत ने कर डाला है। किन्तु मैं अपने पुरुषार्थ से इस दुःख को दूर कर दूँगा। अतः हे राघव! अब तुम उठ बैठो ॥४२॥

नरशार्दूल दीर्घबाहो दृढव्रत ।
किमात्मानं[1] महात्मान[2]मात्मानं नावबुध्यसे* ॥४३॥

हे नरशार्दूल, हे महाबाहो, हे दृढ़व्रत तुम उठो! हे महात्मन्! तुम अपने सर्वप्रवर्त्तक रूप को क्यों भूले हुए हो? अर्थात् तुम सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा होकर इस प्रकार क्यों पड़े हो? ॥४३॥

अयमनघ तवोदितः प्रियार्थं
जनकसुतानिधनं निरीक्ष्य रुष्टः ।

---

१ आत्मानं—स्वं। (गो०) २ महात्मानं—महाबुद्धिं। (गो०)
३ आत्मानं—परमात्मानं। (गो०)

* हे महात्मन् सर्वप्रवर्तकं स्वस्वरूपं कुतोवानावबुध्यसे? (शि०)

सहयगजरथां सराक्षसेन्द्रां
भृशमिषुभिर्विनिपातयामि लङ्काम् ॥४४॥
॥ इति त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

हे पापरहित! सीता जी के मारे जाने का संवाद सुन और रोष में भर जाने के कारण तुम्हारी हितकामना के उद्देश्य से, मैंने यह बातें कही हैं। मैं रथ, हाथियों और घोड़ों (की सेनाओं) रावण, प्रमुख राक्षसों सहित लङ्कापुरी को बहुत से बाणों को मार से उजाड़ दूँगा ॥४४॥

युद्धकाण्ड का तिरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—※—

## चतुरशीतितमः सर्गः

—:०:—

राममाश्वासयाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले।
निक्षिप्य गुल्मान् स्वस्थाने तत्रागच्छद्विभीषणः ॥१॥

भ्रातृस्नेहवश हो लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्र जी को समझा ही रहे थे कि, इतने में विभीषण मोर्चों पर सेना को नियत कर, वहाँ आ पहुँचे ॥१॥

नाना प्रहरणैर्वीरैश्चतुर्भिः सचिवैर्वृतः।
नीलाञ्जनचयाकारैर्मातङ्गैरिव यूथपः ॥२॥

जिस प्रकार हाथियों से घिरे हुए यूथपति हाथी की शोभा होती है, उसी प्रकार नीले बादलों जैसे, विविध प्रकार के आयुधधारी चार राक्षस मंत्रियों के बीच में, उनकी शोभा हो रही थी ॥२॥

सोऽभिगम्य महात्मानं राघवं[1] शोकलालसम् ।
वानरांश्चैव ददृशे वाष्पपर्याकुलेक्षणान् ॥३॥

उन्होंने वहाँ जा कर देखा कि, लक्ष्मण तो शोकग्रस्त हैं और वानर खड़े खड़े रो रहे हैं ॥३॥

राघवं च महात्मानमिक्ष्वाकुकुलनन्दनम् ।
ददर्श मोहमापन्नं लक्ष्मणस्याङ्कमाश्रितम् ॥४॥

और इक्ष्वाकुकुलनन्दन महात्मा श्रीरामचन्द्र मूर्च्छित हो लक्ष्मण की गोद में पड़े हुए हैं ॥४॥

व्रीडितं शोकसन्तप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
अन्तर्दुःखेन दीनात्मा किमेतदिति सोऽब्रवीत् ॥५॥

श्रीरामचन्द्र जी को लज्जित और शोकसन्तप्त देख, मन ही मन दुःखी ( किन्तु प्रकट न कर ) और उदास हो विभीषण बोले—यह क्या है ॥५॥

विभीषणमुखं दृष्ट्वा सुग्रीवं तांश्च वानरान् ।
लक्ष्मणोवाच [2]मन्दार्थमिदं वाष्पपरिप्लुतः ॥६॥

तब लक्ष्मण जी ने विभीषण, सुग्रीव तथा अन्य वानरों की ओर देख कर और आँखों में आँसू भर थोड़े शब्दों में कहा ॥६॥

हतामिन्द्रजिता सीतामिह श्रुत्वैव राघवः ।
हनुमद्वचनात् सौम्य ततो मोहमुपागतः ॥७॥

हे सोम्य ! हनुमान् जी के मुख से इन्द्रजीत द्वारा सीता का वध सुन कर ही श्रीरामचन्द्र जी मूर्च्छित हो गए हैं ॥७॥

---

१ राघवं—राघवपद लक्ष्मणपर । २ मन्दार्थं—अल्पार्थम् । (गो०)

कथयन्तं तु सौमित्रिं सन्निवार्य विभीषणः ।
१पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥८॥

जब लक्ष्मण जी इस प्रकार से कह रहे थे तब विभीषण उनको रोक कर, ( रोका इसलिए कि उन्हें वस्तुस्थिति मालूम हो चुकी थी ) चेतनाशून्य श्रीरामचन्द्र जी से यह पक्की बातें कहने लगे ॥८॥

मनुजेन्द्रार्तरूपेण यदुक्तं च हनूमता ।
तदयुक्तमहं मन्ये सागरस्येव शोषणम् ॥९॥

हे नरेन्द्र ! दुःखी हो कर हनुमान् जी ने तुमसे जो बात कही है, उसे मैं उसी प्रकार अनहोनी मानता हूँ जिस प्रकार कोई कहे कि, समुद्र सूख गया ॥९॥

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मन
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करि ॥१०॥

मैं उस दुष्ट रावण का जो अभिप्राय सीता के विषय में है, अच्छी तरह जानता हूँ । हे महाबाहो ! वह सीता का वध कभी न करेगा ( और न वह किसी दूसरे को करने ही देगा ) ॥१०॥

याच्यमानस्तु बहुशो मया हितचिकीर्षुणा
वैदेहीमुत्सृजस्वेति न च तत् कृतवान् वचः ॥११॥

क्योंकि मैंने रावण की ही भलाई के लिए बहुत प्रार्थना की कि, सीता को छोड़ दे किन्तु उसने मेरी बात नहीं मानी ॥११॥

नैव साम्ना न दानेन न भेदेन कुतो युधा ।
स द्रष्टुमपि शक्येत नैव चान्येन केनचित् ॥१२॥

---

१ पुष्कलो—दृढो । ( शि० )

हे राम ! सीता को न तो कोई खुशामद बरामद से देख सकता है, न लालच दे कर ही कोई देख सकता है, न कोई वहाँ आपस में भेदभाव डाल कर ही सीता को देख सकता है, और न कोई युद्ध कर के या डरा धमका कर ही सीता को देख सकता है ॥१२॥

वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
चैत्यं निकुम्भिलां नाम यत्र होमं करिष्यति ॥१३॥

(तब इन्द्रजीत ने क्यों कर सीता को मारा ? इस शङ्का का समाधान करते हुए विभीषण कहते हैं ) वह वानरों को धोखा दे कर ( अर्थात् बनावटी सीता का सिर काट कर ) लौट गया है। वह निकुम्भिला देवी के मन्दिर में बैठ कर, होम करेगा। (ऐसा उसने क्यों किया ? इसके समाधान में यह कहा जा सकता है कि लङ्का में रावण और इन्द्रजीत को छोड़, श्रीरामचन्द्र से लड़ने योग्य अब कोई राक्षस वीर रह ही नहीं गया था ) ॥१३॥

हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ।
दुराधर्षो भवत्येव सङ्ग्रामे रावणात्मजः ॥१४॥

जब वह होम करके लड़ने आता है, तब युद्ध में इन्द्रादि देवताओं से भी वह दुर्जेय हो जाता है ॥१४॥

तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ।
विघ्नमन्विच्छता [1]तत्र वानराणां पराक्रमे ॥१५॥

उसने निश्चय ही वानरों को धोखा देने के लिए यह माया रची है। क्योंकि उसने विचारा कि, ऐसा करने से वानरों का

---

१ अन्विच्छता—चिन्तयता । ( गो० )

पराक्रम हीन हो जायगा। (अर्थात् वानर हताश हो बैठ रहेंगे और मेरे हवन में विघ्न न डाल सकेंगे ॥१५॥

ससैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ।
त्यजैनं नरशार्दूल मिथ्यासन्तापमागतम् ॥१६॥

उसका हवन समाप्त होने के पूर्व ही ससैन्य हमको वहाँ पहुँच जाना है। हे नरशार्दूल ! तुम वृथा सन्ताप मत करो ॥१६॥

सीदते हि बलं सर्वं दृष्ट्वा त्वां शोककर्शितम् ।
इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठ [1]सत्वसमुच्छ्रितः ॥१७॥

क्योंकि तुमको दुखी देख समस्त वानरी सेना के हाथ पैर ढीले पड़ गए हैं। अतः तुम तो धीरज धर और सावधान हो यहीं विराजो ॥१७॥

लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह [2]सैन्यानुकर्षिभिः ।
एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः ।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो वध्यो भविष्यति ॥१८॥

किन्तु वानर सेनापतियों सहित लक्ष्मण जी को हम लोगों के साथ भेज दो। यह पुरुषसिंह लक्ष्मण पैने पैने बाण चला कर उसके हवनकार्य में विघ्न डाल देंगे और वह हवनकर्म को अधूरा छोड़ जब उठ खड़ा होगा तभी वह मारने योग्य हो जायगा ॥१८॥

तस्यैते निशितास्तीक्ष्णाः पत्रिपत्राङ्गवाजिनः ।
पतत्रिण इवासौम्याः शराः पास्यन्ति शोणितम् ॥१९॥

---

१ सत्वसमुच्छ्रितः—सत्वेन धैर्यबलेन प्रवृद्धः। (शि०) २ सैन्यानुकार्षिभिः—सैन्यपालैः। (शि०)

देवता और क्या असुर ; कोई भी नहीं देख पावेगा। जब वह होम पूरा कर लड़ने आता है, तब देवताओं को भी जीवित रहने में सन्देह उत्पन्न हो जाता है ॥२२॥

युद्धकाण्ड का चौरासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## पञ्चाशीतितमः सर्गः

—:०:—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोककर्शितः।
नोपधारयते व्यक्तं यदुक्तं तेन रक्षसा ॥१॥

विभीषण के इन वचनों को सुन शोक से विकल होने के कारण श्रीरामचन्द्र जी के गले में विभीषण की यह यथार्थ बातें न उतरीं ॥१॥

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपिसन्निधौ ॥२॥

शत्रुनाशकारी श्रीरामचन्द्र जी धीरज धारण कर वानरों के समीप बैठे हुए विभीषण से बोले ॥२॥

नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण।
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥३॥

हे राक्षसराज विभीषण! तुमने अभी जो कुछ मुझसे कहा— उसे फिर से तो कहो, मैं उसे पुनः सुनना चाहता हूँ ॥३॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ।
यत्तत् पुनरिदं वाक्यं बभाषे स विभीषणः ॥४॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, वाक्यविशारद विभीषण ने फिर वही कहा; जो वह अभी अभी कह चुके थे ॥४॥

यथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्मनिवेशनम् ।
तत्तथाऽनुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ॥५॥

हे महावीर! तुमने जिस प्रकार मोरचों पर सेना नियुक्त करने की आज्ञा दी थी, उसी प्रकार मैंने सेना नियत कर दी ॥५॥

तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ।
विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ॥६॥

मैंने समस्त सेना के कई दल करके उन्हें चारों ओर नियत कर दिया है। फिर उन सैन्य दलों के ऊपर अलग अलग (युद्धविद्या के नियमानुसार) यथायोग्य सेनापति भी नियुक्त कर दिए हैं ॥६॥

भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महायशः ।
त्वय्यकारणसन्तप्ते सन्तप्तहृदया वयम् ॥७॥

हे महायशस्वी! मुझे तुमसे (इसके अतिरिक्त) और भी कुछ कहना है। उसे भी सुन लो तुमको सन्तप्त देख, हम लोगों का हृदय भी बड़ा सन्तप्त हो रहा है ॥७॥

त्यज राजन्निमं शोकं मिथ्यासन्तापमागतम् ।
तदियं त्यज्यतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥८॥

हे राजन्! यह तुम्हारा व्यर्थ का सन्ताप है। अतः तुम इसे त्याग दो। यह तुम्हारी चिन्ता तुम्हारे शत्रुओं का हर्ष बढ़ाने वाली है, अतः तुम इसे त्याग दो ॥८॥

उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः ॥९॥

हे वीर! शत्रुवध के लिए उद्योग करना चाहिए और (विषाद को त्याग कर) हर्षित हो जाना चाहिये। यदि तुमको समस्त शत्रु राक्षसों को मार कर सीता का उद्धार करना है ॥९॥

रघुनन्दन वक्ष्यामि श्रूयतां मे हितं वचः ।
साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महता वृतः ॥१०॥

तो हे रघुनन्दन! जो कुछ मैं तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ, उसे ध्यान देकर सुनो। वह यह कि, लक्ष्मण जी एक बड़ी वानरों की सेना लेकर चलें ॥१०॥

निकुम्भिलायां सम्प्राप्य हन्तुं रावणिमाहवे ।
धनुर्मण्डलनिर्मुक्तैराशीविषविषोपमैः ॥११॥
शरैर्हन्तुं महेष्वासो रावणिं समितिञ्जयः ।
तेन वीरेण तपसा वरदानात् स्वयंभुवः ॥१२॥

और निकुम्भिला देवी के स्थान पर पहुँच, उसको मारें। अपने धनुष से विषधारी सर्पों की तरह फनफनाते बाणों को छोड़, समरविजयी लक्ष्मण युद्ध में उस विशाल छाती वाले इन्द्रजीत को मारें। क्योंकि उस वीर ने घोर तपस्या द्वारा ब्रह्मा जी से वरदान में ॥११॥१२॥

अस्त्रं ब्रह्मशिरः प्राप्तं कामगाश्च तुरङ्गमाः ।
स एष सह सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ॥१३॥

ब्रह्मशिर नामक अस्त्र और इच्छाचारी घोड़े प्राप्त किए हैं इस समय निश्चय ही वह अपनी सेना सहित निकुम्भिला देवी स्थान पर है ॥१३॥

यद्युत्तिष्ठेत्कृतं कर्म हतान् सर्वांश्च विद्धि नः ।
निकुम्भिलामसम्प्राप्तमहुताग्नि च यो रिपुः ॥१४॥

त्वामाततायिनं हन्यादिन्द्रशत्रोः स ते वधः ।
वरो दत्तो महाबाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ॥१५॥

हे महाबाहो ! यदि कहीं वह हवन समाप्त कर उठ बैठा, तो तुमहम सब को मरा हुआ ही जानो। क्योंकि सर्वलोकेश्वर ब्रह्मा जी ने उसे वर देते समय उससे कहा था कि, हे इन्द्रशत्रो ! जिस समय तुम निकुम्भिला के स्थान में न पहुँच पाओगे अथवा हवन समाप्त न कर सकोगे, उस समय जो शत्रु तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेगा, वही तुमको मार सकेगा ॥१४॥१५॥

इत्येवं विहितो राजन् वधस्तस्यैष धीमतः ।
वधायेन्द्रजितो राम सन्दिशस्व महाबल ॥१६॥

हे राजन् ! अतः उस बुद्धिमान को इसी प्रकार मारना चाहिए। अथवा इस प्रकार उसका मारा जाना निश्चित है। अतः हे राम ! महाबली लक्ष्मण को उसके मारने की आज्ञा दो ॥१६॥

हते तस्मिन् हतं विद्धि रावणं ससुहृज्जनम् ।
विभीषणवचः श्रुत्वा राघवो वाक्यमब्रवीत् ॥१७॥

यदि मेघनाद मार डाला गया तो समझ लो कि रावण भी अपने सुहृदों के साथ मारा जा चुका है। विभीषण की इन बातों को सुन श्रीरामचन्द्र जी बोले ॥१७॥

जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ।
स हि ब्रह्मास्त्रवित् प्राज्ञो महामायो महाबलः ॥१८॥

हे सत्यपराक्रमी! मैं उस घोर निशाचर की माया को भली भाँति जानता हूँ। वह ब्रह्मास्त्र का चलाना जानता है। वह बड़ा बलवान है और बड़ा मायावी है ॥१८॥

करोत्यसंज्ञां संग्रामे देवान् सवरुणानपि ।
तस्यान्तरिक्षे चरतो रथस्थस्य महायशः ॥१९॥

न गतिर्ज्ञायते तस्य सूर्यस्येवाभ्रसंप्लुवे ।
राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ॥२०॥

जब वह युद्ध करता है, तब वह सब देवताओं और वरुण तक को मूर्च्छित कर डालता है। हे महायशस्वी! जिस प्रकार मेघ के पीछे छिपे हुए सूर्य की गति नहीं जान पड़ती, वैसे ही जब वह वीर रथ पर सवार हो आकाश में घूमता है; तब उसकी चाल का भी पता नहीं चलता। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी भी उस दुरात्मा राक्षस की माया और पराक्रम का विचार कर ॥१९॥२०॥

लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ।
यद्वानरेन्द्रस्य बलं तेन सर्वेण संवृतः ॥२१॥

हनुमत् प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मण ।
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः ॥२२॥

कीर्तिमान लक्ष्मण जी से बोले। तुम कपिराज की समस्त सेना को तथा हनुमानादि प्रमुख यूथपतियों को और भालुओं की सेनासहित जाम्बवान् को अपने साथ ले कर जाओ ॥२१॥२२॥

जहि तं राक्षससुतं मायाबलविशारदम् ।
अयं त्वां सचिवैः सार्धं महात्मा रजनीचरः ॥२३॥
अभिज्ञस्तस्य देशस्य पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः सविभीषणः ॥२४॥

और उस मायावी रावणात्मज इन्द्रजीत को मारो। अपने चारों मन्त्रियों को लिये हुए यह महात्मा विभीषण, जो उस स्थान को ( निकुम्भिला ) जानते हैं, तुम्हारे पीछे पीछे जाँयगे श्रीरामचन्द्र जी की इन बातों को सुन, लक्ष्मण जी विभीषण के साथ हो लिए ॥२३॥२४॥

जग्राह कार्मुकश्रेष्ठमत्यद्भुतपराक्रमः ।
१सन्नद्धः कवची खड्गी सशरो वामचापधृत् ॥२५॥

जाने के पहिले अद्भुत पराक्रमी लक्ष्मण ने युद्ध की सामग्री ली। एक दृढ़ धनुष तो बाएं हाथ में लिआ। कवच धारण किआ। कमर में तलवार बाँधी और पीठ पर तीरों से भरा तरकस कसा ॥२५॥

रामपादावुपस्पृश्य हृष्टः सौमित्रिरब्रवीत् ।
अद्य मत्कार्मुकोन्मुक्ताः शरा निर्भिद्य रावणिम् ॥२६॥

---

१ संनद्धः—गृहीतयुक्त सामग्रीकः। ( शि० )

लङ्कामभिपतिष्यन्ति हंसाः पुष्करिणीमिव ।
अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ॥२७॥
विधमिष्यन्ति भित्त्वा तं महाचापगुणच्युताः ।
स एवमुक्त्वा द्युतिमान् वचनं भ्रातुरग्रतः ॥२८॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी के चरणों को छूकर वे हर्षित हो बोले। आज मेरे धनुष से छूटे हुए बाण रावणतनय इन्द्रजीत के शरीर को फोड़ कर, लङ्का में वैसे ही जा जाकर गिरेंगे, जैसे हंस पुष्करिणी में जाते हैं। आज ही उस भयानक राक्षस के शरीर को, मेरे विशाल धनुष के रोदे से छूटे हुए बाण, फोड़ कर ध्वस्त कर डालेंगे। अपने बड़े भाई से इस प्रकार के वचन कह कर, कान्तिमान ॥२६॥२७॥२८॥

स रावणिवधाकांक्षी लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ।
सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥२९॥

और इन्द्रजीत के वध करने की अभिलाषा रखने वाले लक्ष्मण जी तुरन्त चल दिए। ( चलने के पूर्व ) उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम कर, उनकी प्रदक्षिणा की ॥२९॥

निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम् ।
विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ॥३०॥

तदनन्तर प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण, विभीषण के साथ उस निकुम्भिला के स्थान की ओर, जिसकी रक्षा, इन्द्रजीत करता था, गए ॥३०॥

कृतस्वस्त्ययनो भ्राता लक्ष्मणस्त्वरितो ययौ ।
वानराणां सहस्रैस्तु हनुमान् बहुभिर्वृतः ॥३१॥

श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण का स्वस्त्यवाचन ( वैदिक मंत्रों से मङ्गलाभिषेक किया ) और वे शीघ्र चल दिए। इनके साथ कई सहस्र वानरों सहित हनुमान् ॥३१॥

विभीषणश्च सामात्यस्तदा लक्ष्मणमन्वगात् ।
महता हरिसैन्येन स वेगमभिसंवृतः ॥३२॥

और अपने मंत्रियों के साथ विभीषण चले। ( सारांश यह कि ) अपने साथ वानरों की एक विशाल सेना ले जाते हुए लक्ष्मण जी ने ॥३२॥

ऋक्षराजबलं चैव ददर्श पथि विष्ठितम्[१] ।
स गत्वा दूरमध्वानं सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ॥३३॥

रास्ते में तैयार खड़ी जाम्बवान् की सेना को भी देखा। शत्रु को सन्तापित करने वाले लक्ष्मण जी ने बहुत दूर जाने के बाद ॥३३॥

राक्षसेन्द्रबलं दूरादपश्यद्व्यूहमस्थितम् ।
स तं प्राप्य धनुष्पाणि[२]र्मायायोगमरिन्दमः ।
तस्थौ ब्रह्मविधानेन[३] विजेतुं रघुनन्दनः ॥३४॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रतापवान् ।
अङ्गदेन च वीरेण तथानिलसुतेन च ॥३५॥

१ विष्ठितम्—संस्थितम्। (शि०) २ मायायोगं—मायारूपोपायं। ( गो० ) ३ ब्रह्म विधानेन—ब्रह्मवरदानप्रकारेण। ( गो० )

दूर ही से इन्द्रजीत को, अपनी सेना का व्यूह बनाए खड़ा हुआ देखा। फिर शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी उसे देख और हाथ में धनुष ले, ब्रह्मा के वरदानानुसार मायारूपी उपाय से वध करने के लिए वहीं ठहरे रहे। प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण के साथ महावीर अङ्गद, पवननन्दन हनुमान और राक्षसराज विभीषण भी ठहर गए ॥३४॥३५॥

विविधममलशस्त्रभास्वरं
तद्ध्वजगहनं विपुलं महारथैश्च
[1]प्रतिभयतममप्रमेयवेगं
तिमिरमिव द्विषतां बलं विवेश ॥३६॥

इति पंचाशीतितमः सर्गः ॥

राक्षसों की सेना विविध प्रकार से चमचमाते शस्त्र लिये हुए शोभायमान हो रही थी। वह सेना रथों और ध्वजदण्डों से बहुत बड़ी और दुर्गम हो रही थी। उसका बड़ा ही भयङ्कर वेग था। लोग जिस प्रकार निबिड़ अन्धकार में घुसते हैं, उसी प्रकार महावीर लक्ष्मण जी ने उस सेना में प्रवेश किया ॥३६॥

युद्धकाण्ड का पचासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

१ प्रतिभयतमं—अतिशयेन भयंकरं। ( गो० )

## षडशीतितमः सर्गः

—❋—

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः ।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥१॥

जिस समय लक्ष्मण जी ने शत्रुसैन्य में प्रवेश किया, उस समय विभीषण ने लक्ष्मण जी से कुछ ऐसी बातें कहीं जो शत्रुपक्ष के लिए अहितकर अपने पक्ष के लिए हितकर थीं ॥१॥

यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ।
एतदायोध्यतां शीघ्रं कपिभिः पादपायुधैः ॥२॥

( विभीषण ने कहा ) मेघ के समान काली यह जो राक्षसी सेना देख पड़ती है इसके साथ वानरों को पेड़ ले लेकर शीघ्र भिड़ जाना चाहिए ॥२॥

अस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मण ।
राक्षसेन्द्रसुतोऽप्यत्र भिन्न दृश्यो भविष्यति ॥३॥

हे लक्ष्मण! तुम भी इसीको तितर बितर करने का यत्न करो ! जब यह सेना तितर बितर हो जायगी तभी इन्द्रजीत तुमको दिखलाई पड़ेगा ॥३॥

स त्वमिन्द्राशनिप्रख्यैः शरैरवकिरन् परान् ।
अभिद्रवाशु यावद्वै नैतत् कर्म समाप्यते ॥४॥

तुम इन्द्र के वज्र के समान और सूर्य की किरणों की तरह चमचमाते तीरों से मार कर, इस सेना को, इन्द्रजीत का होम पूर्ण होने के पूर्व ही, शीघ्र तितर बितर कर डालो ॥४॥

जहि वीर दुरात्मानं मायापरमधार्मिकम् ।
रावणिं क्रूरकर्माणं सर्वलोकभयावहम् ॥५॥

हे वीर ! इस दुरात्मा, मायावी, परम अधार्मिक, निष्ठुर कर्म करने वाले और समस्त लोकों को भय देने वाले इन्द्रजीत को मारो ॥५॥

विभीषणवचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
ववर्ष शरवर्षाणि राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥६॥

शुभ लक्षणयुक्त अङ्गों से युक्त लक्ष्मण जी ने विभीषण के वचन सुन कर, इन्द्रजीत की ओर बाणों की वर्षा करनी आरम्भ की ॥६॥

ऋक्षाः शाखामृगाश्चापि द्रुमाद्रिनखयोधिनः ।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥७॥

साथ ही पेड़ों, पत्थरों और नखों से लड़ने वाले रीछों और वानरों ने उस खड़ी हुई राक्षसी सेना पर धावा किया ॥७॥

राक्षसाश्च शितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
उद्यतैः समवर्तन्त कपिसैन्यजिघांसवः ॥८॥

तब राक्षसों ने भी पैने बाणों, तलवारों, शक्तियों और तोमरों से वानरी सेना को नष्ट करने की अभिलाषा से शत्रुसैन्य का सामना किया ॥८॥

स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
शब्देन महता लङ्कां नादयन् वै समन्ततः ॥९॥

अब वानरों और राक्षसों का ऐसा घोर समर आरम्भ हुआ कि, इस युद्ध का कोलाहल लंकापुरी में चारों ओर व्याप्त हो गया ॥९॥

शस्त्रैश्च बहुधाकारैः शितैर्बाणैश्च पादपैः ।
उद्यतैर्गिरिशृङ्गैश्च घोरैराकाशमावृतम् ॥१०॥

तरह तरह के शस्त्रों, पैने पैने तीरों, बड़े बड़े वृक्षों और पर्वत शृङ्गों से आकाशमण्डल ढक गया ॥१०॥

ते राक्षसा वानरेषु विकृताननबाहवः ।
निवेशयन्तः शस्त्राणि चक्रुस्ते सुमहद्भयम् ॥११॥

विकटाकार मुखवाले राक्षस, वानरश्रेष्ठों के शरीरों में शस्त्रों का प्रहार कर, उनको दारुणभय उपजाने लगे—अर्थात् डराने लगे ॥११॥

तथैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिशृङ्गैश्च वानराः ।
अभिजघ्नुर्निजघ्नुश्च समरे राक्षसर्षभान् ॥१२॥

इसी प्रकार वानर भी उस समर में उन सब वृक्षों और पर्वत-शिखरों के प्रहार से, उन प्रधान राक्षसों को, जो उनको मार रहे थे, मारने लगे ॥२२॥

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।
रक्षसां वध्यमानानां महद्भयमजायत ॥१३॥

जब बड़े बड़े शरीरधारी एवं महाबली प्रधान प्रधान रीछों और वानरों ने राक्षसों का वध करना आरम्भ किया, तब राक्षस भी बहुत डरे ॥१३॥

स्वमनीकं विषण्णं तु श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षस्तत्कर्मण्यननुष्ठिते ॥१४॥

जब मेघनाद ने वानरों द्वारा अपनी सेना का ध्वस्त होना सुना, तब वह दुर्धर्ष उस हवन कर्म को अधूरा ही छोड़, उठ खड़ा हुआ ॥१४॥

वृक्षान्धकारान्निर्गत्य जातक्रोधः स रावणिः ।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं स राक्षसः ॥१५॥

क्रोध में भरा हुआ इन्द्रजीत वृक्षों की झुरमुट से बाहिर निकला और पहिले से अस्त्रशस्त्रों से सुसज्जित और जुते हुए (तैयार) रथ पर सवार हुआ ॥१५॥

स भीमकार्मुकधरः कालमेघसमप्रभः ।
रक्तास्यनयनः क्रुद्धो बभौ मृत्युरिवान्तकः ॥१६॥

उस समय वह बड़ा भयानक धनुष हाथ में लिये हुए, प्रलय-कालीन मेघ की तरह और क्रोध में भर लाल लाल आँखें किए हुए दूसरे सहारकारी मृत्यु जैसा जान पड़ता था ॥१६॥

दृष्ट्वैव तु रथस्थं तं [1]पर्यवर्तत तद्बलम् ।
रक्षसां भीमवेगानां लक्ष्मणेन युयुत्सताम् ॥१७॥

मेघनाद को रथ पर सवार हुआ देख, लक्ष्मण के साथ लड़ती हुई भयङ्कर वेगवाली राक्षसी सेना मेघनाद के रथ के चारों ओर हो गई अर्थात् मेघनाद की रक्षा के लिए उसके रथ को घेर लिअ ॥१७॥

तस्मिन् काले तु हनुमानुद्यम्य सुदुरासदम् ।
धरणीधरसङ्काशो महावृक्षमरिन्दमः ॥१८॥

उस समय शत्रुहन्ता एवं पर्वत के समान शरीरधारी हनुमान् जी एक बड़ा भारी अत्यन्त दुर्धर्ष पेड़ उखाड़ कर, ॥१८॥

---

१ पर्यवर्तत—परितोतिष्ठत् । ( गो० )

स राक्षसानां तत्सैन्यं कालाग्निरिव निर्दहन् ।
चकार बहुभिर्वृक्षैर्निःसंज्ञं युधि वानर ॥१९॥

जो राक्षसी सेना मेघनाद के रथ को घेरे खड़ी थी उस राक्षसी सेना को कालाग्नि की तरह जलाते हुए उस समर में बहुत से वृक्षों के प्रहार से मूर्छित करने लगे ॥१९॥

विध्वंसयन्तं तरसा दृष्ट्वैव पवनात्मजम् ।
राक्षसानां सहस्राणि हनुमन्तमवाकिरन् ॥२०॥

पवननन्दन हनुमान जी को राक्षसी सेना का इस प्रकार नाश करते देख, सहस्रों राक्षस मिल कर, हनुमान जी के ऊपर आक्रमण करने लगे ॥२०॥

शितशूलधराः शूलैरसिभिश्चासिपाणयः ।
शक्तिभिः शक्तिहस्ताश्च पट्टिशैः पट्टिशायुधाः ॥२१॥

पैने पैने शूलों को धारण करने वाले राक्षस शूलों से, तलवारधारी राक्षस तलवारों से, शक्तिधारी राक्षस शक्तियों से, पटाधारी राक्षस पटों से ॥२१॥

परिघैश्च गदाभिश्च चक्रैश्च शुभदर्शनैः ।
शतशश्च शतघ्नीभिरायसैरपि मुद्गरैः ॥२२॥

तथा अन्य राक्षस परिघ, गदा और पैने पैने चक्रों से, सैकड़ों शतघ्नियों से और लोहे के मुगदरों से ॥२२॥

घोरैः परश्वधैश्चैव भिन्दिपालैश्च राक्षसाः ।
मुष्टिभिर्वज्रकल्पैश्च तलैरशनिसन्निभैः ॥२३॥

भयङ्कर फरसों से, भिन्दिपालों से, वज्र के समान घूँसों से, बिजली के समान चपेटों से ॥२३॥

अभिजघ्नुः समासाद्य समन्तात् पर्वतोपमम् ।
तेषामपि च संक्रुद्धाश्चकार कदनं महत् ॥२४॥

पर्वत के समान विशाल शरीरधारी हनुमान् जी के ऊपर, उन्हें चारों ओर से घेर कर प्रहार करने लगे। हनुमान् जी भी अत्यन्त क्रोध में भर उन राक्षसों का भली भाँति संहार करने लगे ॥२४॥

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ।
सूदयन्तममित्रघ्नममित्रान् पवनात्मजम् ॥२५॥

इन्द्रजीत ने देखा कि, पर्वताकार शत्रुदमनकारी पवननन्दन हनुमान् तो अपने समस्त शत्रुओं का अर्थात् राक्षसों का नाश ही किए डालता है ॥२५॥

स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः ।
क्षयमेष हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥२६॥

तब उसने अपने सारथि को आज्ञा दी कि, मेरा रथ वहाँ ले चलो जहाँ हनुमान् जी राक्षसों का नाश कर रहे हैं। यदि थोड़ी देर और मैं उसकी उपेक्षा करूँगा, तो वह मेरे सब राक्षसों को मार डालेगा ॥२६॥

इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः ।
वहन् परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रथे ॥२७॥

इन्द्रजीत के यह कहते ही सारथि ने वह रथ, जिसमें परम दुर्धर्ष इन्द्रजीत बैठा हुआ था, हाँक कर, वहाँ पहुँचा दिया, जहाँ हनुमान जी लड़ रहे थे ॥२७॥

सोऽभ्युपेत्य शरान् खड्गान् पट्टिशांश्च परश्वधान् ।
अभ्यवर्षत दुर्धर्षः कपिमूर्ध्नि स राक्षसः ॥२८॥

वहाँ पहुँच कर उस दुर्धर्ष राक्षस इन्द्रजीत ने हनुमान् जी के सिर पर तलवारों, पट्टों, फरसों और बाणों की वर्षा की ॥२८॥

तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः ।
रोषेण महताऽऽविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥२९॥

हनुमान् जी उसके उन भयङ्कर शस्त्रों के प्रहार को सह कर और अत्यन्त रोष में भर, उससे यह बोले ॥२९॥

युध्यस्व यदि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते ।
वायुपुत्रं समासाद्य जीवन्न प्रतियास्यसि ॥३०॥

अरे दुर्बुद्धि रावण के पुत्र ! यदि तुझे वीर होने का गर्व है तो आ लड़ । अब तू पवननन्दन के सामने पड़ कर, जीता हुआ लौट कर नहीं जाने पावेगा ॥३०॥

बाहुभ्यां प्रतियुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे ।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसां वरः ॥३१॥

यदि तेरे शरीर में बल हो तो आकर मुझसे मल्लयुद्ध कर (कुश्ती) लड़ । यदि तू मेरे बल को सह गया, तो मैं तुझे बड़ा बलवान् राक्षस समझूँगा ॥३१॥

हनुमन्तं जिघांसन्तं समुद्यतशरासनम् ।
रावणात्मजमाचष्टे लक्ष्मणाय विभीषणः ॥३२॥
यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः ।
स एष रथमास्थाय हनुमन्तं जिघांसति ॥३३॥

हनुमान् को मारने के लिए इन्द्रजीत को धनुष उठाए देख कर, लक्ष्मण से विभीषण बोले—हे लक्ष्मण ! देखो, जिस रावणपुत्र ने इन्द्र को परास्त किया है वही रथ में चढ़ा हुआ, हनुमान् को मारना चाहता है ॥३२॥३३॥

१तमप्रतिमसंस्थानैः शरैः शत्रुविदारणैः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥३४॥

अतः हे लक्ष्मण ! अब तुम कनैर वृक्ष के पत्तों के आकार वाले, शत्रुविदीर्णकारी और शत्रुनाशकारी भयङ्कर बाणों से, इन्द्रजीत का वध करो ॥३४॥

इत्येवमुक्तस्तु तदा महात्मा
विभीषणेनारिविभीषणेन ।
ददर्श तं पर्वतसन्निकाशं
रणे स्थितं भीमबलं नदन्तम् ॥३५॥

इति षडशीतितमः सर्गः ॥

जब शत्रु को भयभीत करने वाले विभीषण ने लक्ष्मण जी से यह कहा तब उन्होंने पर्वत की तरह विशाल शरीरधारी महाबलवान इन्द्रजीत को समरभूमि में रथ में बैठ कर, सिंहनाद करते हुए देखा ॥३५॥

युद्धकाण्ड का छियासीवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

१ अप्रतिमसंस्थानैः—करवीरपत्राद्याकारैः । (गो०)

## सप्ताशीतितमः सर्गः

—❀—

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षो विभीषणः ।
धनुष्पाणिनमादाय त्वरमाणो जगाम ह ॥१॥

तदनन्तर हर्षित होकर विभीषण जो धनुषधारी लक्ष्मण जी को साथ लिए हुए अति शीघ्रता से आगे बढ़े ॥१॥

अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य च महद्वनम् ।
दर्शयामास [1]तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥२॥

थोड़ी ही दूर चल कर विभीषण ने उस वन में घुस कर, लक्ष्मण को, मेघनाद के होमकर्म करने का स्थान दिखलाया ॥२॥

नीलजीमूतसङ्काशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ।
तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥३॥

उस स्थान पर काली मेघघटा जैसा बड़ का एक विशाल भयङ्कराकार वृक्ष था। उसे दिखा कर तेजस्वी विभीषण ने लक्ष्मण जी से कहा ॥३॥

[2]इहोपहारं भूतानां बलवान् रावणात्मजः ।
[3]उपहृत्य ततः पश्चात्सङ्ग्राममभिवर्तते ॥४॥

वह बली रावणतनय इन्द्रजीत यहीं पर पशुओं का बलिदान करके, पीछे लड़ने को जाता है ॥४॥

---

१ तत्कर्म—होमकर्मस्थानं । २ उपहारं—बलिं । (गो०) ३ उपहृत्य-कृत्वा । (गो०)

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून् बध्नाति च शरोत्तमैः ॥५॥

और फिर ऐसा छिप जाता है कि, उसे कोई भी नहीं देख सकता (छिपे छिपे) वह पैने पैने बाणों से शत्रुओं को (बाण-पाश से) बाँध लेता और मार भी डालता है ॥५॥

तमप्रविष्टन्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ।
विध्वंसय शरैस्तीक्ष्णैः सरथं साश्वसारथिम् ॥६॥

हे लक्ष्मण ! जब तक इन्द्रजीत बरगद के पेड़ के नीचे नहीं पहुँचता, उससे पूर्व ही घोड़ों सारथी और रथ सहित उसको अपने चमचमाते पैने बाणों से मार डालो ॥६॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन् धनुः ॥७॥

मित्रों को हर्षित करने वाले महातेजस्वी लक्ष्मण जी ने कहा—बहुत अच्छा । तदनन्तर वे अपने अद्भुत धनुष को टङ्कार कर, वहाँ खड़े हो गए ॥७॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान् रावणात्मजः ।
इन्द्रजित्कवची धन्वी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥८॥

इतने में अग्नि की तरह ध्वजा से युक्त चमचमाते रथ पर सवार, कवच पहिने हुए बलवान् रावणतनय इन्द्रजीत देख पड़ा ॥८॥

तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥९॥

उसे देख तेजस्वी लक्ष्मण जी उस अजेय रावणात्मज इन्द्रजीत से बोले—हे राक्षस! मैं तुझे युद्ध के लिए आमंत्रित करता हूँ। आ, मेरे साथ सम्हल कर लड़ ॥६॥

**एवमुक्तो महातेजा [1]मनस्वी रावणात्मजः।**
**अब्रवीत् परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१०॥**

महातेजस्वी और दृढ़ मनवाला इन्द्रजीत, लक्ष्मण के वचन सु और उनके साथ विभीषण को देख, विभीषण से कठोर वचन कहने लगा ॥१०॥

**इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम।**
**कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥११॥**

अरे विभीषण! तू इसी कुल में जन्मा। तू मेरे बड़े और मेरे पिता का भाइ है। तू मेरा चचा हो कर, अपने पुत्र के तुल्य भतीजे से (ऐसा) बैर क्यों कर रहा है? ॥११॥

**न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते।**
**प्रमाणं न च सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥१२॥**

अरे दुर्मते! अरे धर्म को दूषित करने वाले! तनिक देख तो, न तो तू इन लोगों की बिरादरी का है, न इनका मित्र है, न जाति वाला है, न इनका साथ देने से तेरी मर्यादा ही की रक्षा होती है और न तू और यह एक माँ के पेट ही से उत्पन्न हुए हैं। इनके साथ देने में और अपने सहोदर के साथ बैरभाव करने से कोई धर्म का कार्य भी ता नहीं होता है ॥१२॥

**शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः।**
**यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥१३॥**

---

[1] मनस्वी—दृढमनस्कः। (गो०)

हे दुर्बुद्धे ! तू ही बतला, फिर तूने अपने लोगों को त्याग कर अपने सहोदर के शत्रु की दासता ( गुलामी ) अङ्गीकार की है सो क्यों ? साधु लोग तेरे इस कृत्य की निन्दा करते हैं। तेरी समझ पर और तेरे इस कृत्य पर मुझे बड़ा शोक है ॥१३॥

नैतच्छिथिलया बुद्धया त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीचपराश्रयः ॥१४॥

कहाँ तो अपने लोगों के बीच रहना और कहाँ यह नीचों का सहारा ! ( किन्तु किया क्या जाय ) तेरी बुद्धि पर तो पत्थर पड़े हैं। इसीसे तो मुझे इन बातों में कुछ भी तारतम्य नहीं सूझ पड़ता ॥१४॥

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥१५॥

भले ही परजन में गुण ही गुण क्यों न हों और स्वजन में दोष ही दोष क्यों न हों, किन्तु गुणवान् परजन की अपेक्षा निर्गुण स्वजन ही श्रेयस्कर है। फिर अपना अपना ही है और पराया पराया ही है ॥१५॥

यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्षं निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं प्राप्ते पश्चात्तैरेव हन्यते ॥१६॥

जो आत्मीयजनों का पक्ष त्याग कर, शत्रुपक्ष ग्रहण करता है, वह अपने पक्ष के अर्थात् आत्मीयजनों के नाश होने पर, स्वयं भी मारा जाता है ॥१६॥

निरनुक्रोशता चेयं यादृशी ते निशाचर ।
स्वजनेन त्वया शक्यं परुषं रावणानुज ॥१७॥

अरे राक्षस ! तू रावण का सगा छोटा भाई हो कर जैसा निर्दयीपन कर रहा है, वैसा निर्दयीपन कोई भी सगा जन नहीं कर सकता ॥१७॥

इत्युक्तो भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥१८॥

जब भतीजे ने इस प्रकार कहा, तब उसकी बातों का उत्तर देते हुए विभीषण ने कहा—अरे राक्षस ! जब तू मेरे स्वभाव को ही नहीं जानता, तब तू क्यों बकबक कर रहा है ॥१८॥

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पारुष्यं त्यज गौरवात्[१] ।
कुले यद्यप्यहं जातो रक्षसां क्रूरकर्मणाम् ॥१९॥

हे असाधु राक्षसपुत्र ! तू यदि मुझको चचा कह कर मेरा गौरव करता है, तो ऐसे कठोर वचन मत कह । यद्यपि मैं क्रूर-कर्मा राक्षसों के कुल में उत्पन्न हुआ अवश्य हूँ ॥१९॥

गुणोऽयं प्रथमो नृणां तत् मे शीलमराक्षसम् ।
न रमे दारुणेनाहं न चाधर्मेण वै रमे ॥२०॥

तथापि पुरुषों में जो सर्वप्रधानगुण (अर्थात् प्राणिमात्र में दया) होना चाहिए और जो राक्षसों में नहीं होता, वही मुझमें है, अर्थात् न तो मुझे कोई निष्ठुर कार्य करना पसंद है अथवा न ऐसे निष्ठुर कर्म करने वालों का साथ करना मुझे अच्छा लगता है और न अधर्म ही में मेरी रुचि है ॥२०॥

भ्रात्रा विषमशीलेन कथं भ्राता निरस्यते ।
धर्मात् प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ॥२१॥

---

१ गौरवात्—पितृव्यत्वादि (गो०)

भले ही भाई दुष्टस्वभाव ही का क्यों न हो क्यों कोई सगा भाई अपने उस सगे भाई को घर से निकाल देता है ? हे इन्द्र-जीत ! जो धर्म से पतित है, वह निश्चय ही पापी है ॥२१॥

त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ।
हिंसापरस्वहरणे परदाराभिमर्शनम् ॥२२॥

ऐसे को त्यागने से वैसा ही सुख प्राप्त होना है, जैसे हाथ से विषधर सर्प को छोड़ देने से प्राण बचते हैं । जो हिंसा करता हो, दूसरों का धन छीनता हो और पराई स्त्री को हरता हो ॥२२॥

त्याज्यमाहुर्दुराचारं वेश्म प्रज्वलितं यथा ।
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ॥२३॥

उस दुराचारी को जलते हुए घर की तरह त्याग देना ही बुद्धि-मान् नीतिज्ञों का मत है । दूसरे का धन छीनना, पराई स्त्री पर हाथ डालना ॥२३॥

सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ।
महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्च विग्रहः ॥२४॥

और मित्रों के ऊपर सन्देह करना ; ये तीनों पापकर्म नाश करने वाले हैं । महर्षियों का घोर वधकर्म, समस्त देवताओं से बिगाड़ ॥२४॥

अभिमानश्च कोपश्च वैरित्वं प्रतिकूलता ।
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ॥२५॥

अभिमान, क्रोध वैर और दूसरे की भलाई के काम में बाधा डालना, ये समस्त दोष मेरे बड़े अर्थात् तुम्हारे पिता में हैं

और ये समस्त दोष जीते जी उसके ऐश्वर्य को नष्ट करने वाले हैं ॥२५॥

गुणान् प्रच्छादयामासुः पर्वतानिव तोयदाः ।
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ॥२६॥

जैसे मेघ पर्वत को ढक लेते हैं, वैसे ही इन दोषों ने उसके गुणों को छिपा दिया है। इन्हीं बुराइयों के कारण मैंने अपने भाई और तुम्हारे पिता का त्याग दिया है ॥२६॥

नेयमस्ति पुरी लङ्का न च त्वं न च ते पिता ।
अतिमानी च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ॥२७॥

हे इन्द्रजीत ! अब न तो यह लङ्का ही रहैगी, न तू रहैगा और न मेरा पिता ही बच पावेगा। हे राक्षस तू अभी छोकड़ा है, इसीसे गर्वित होने के कारण तू अत्यन्त दुर्विनीत अर्थात् निपट असभ्य है ॥२७॥

बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ।
अद्य ते व्यसनं प्राप्तं किं मां त्वमिह वक्ष्यसि ॥२८॥

तेरे सिर पर तो अब काल खेल रहा है। सो जो तू चाहे सो मुझसे कह ले। एक बार तूने मुझसे जो कठोर वचन कहे थे उसके कारण तो तुझ पर वह विपत्ति पड़ रही है, फिर भी तू क्यों मुझसे कठोर वचन कहता है ॥२८॥

प्रवेष्टुं न त्वया शक्यो न्यग्रोधो राक्षसाधम ।
धर्षयित्वा च काकुत्स्थौ न शक्यं जीवितुं त्वया ॥२९॥

अरे राक्षसाधम! अब तू उस बरगद के वृक्ष के नीचे जा नहीं सकता। श्रीरामचन्द्र जी का तिरस्कार कर, तू जीता नहीं रह सकता ॥२९॥

युध्यस्व नरदेवेन लक्ष्मणेन रणे सह।
हतस्त्वं देवताकार्यं[1] करिष्यसि यमक्षये ॥३०॥

अब तू नरदेव लक्ष्मण के साथ लड़ और जब तू मारा जाय तब यमलोक में जा कर तू देवताओं को सन्तुष्ट करना ॥३०॥

निदर्शय स्वात्मबलं समुद्यतं
कुरुष्व सर्वायुधसायकव्ययम्।
न लक्ष्मणस्यैत्य हि बाणगोचरं
त्वमद्य जीवन् सबलो गमिष्यसि ॥३१॥

इति सप्ताशीतितमः सर्गः ॥

हे इन्द्रजीत! तू अपने समस्त धनुषादि आयुधों से काम ले कर अपना बल दिखला। क्योंकि अब तू लक्ष्मण जी के बाणों के निशाने के भीतर आ कर, सेना सहित जीता जागता घर लौट कर, न जाने पावेगा ॥३१॥

युद्धकाण्ड का सत्तासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

---

१ देवताकार्यं—सन्तोषं। (शि०)

## अष्टाशीतितमः सर्गः

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं वेगेनाभ्युत्पपात[1] ह ॥१॥

विभीषण के वचन सुन, इन्द्रजीत अत्यन्त कुपित हुआ और बड़ी तेजी से उनके सामने जा कठोर बचन कहने लगा ॥१॥

उद्यतायुधनिस्त्रिंशो रथे सुसमलंकृते ।
कालाश्वयुक्ते महति स्थितः कालान्तकोपमः ॥२॥

फिर वह तलवार उठाए हुए और काले घोड़े जुते हुए और सजे सजाये एक विशाल रथ पर बैठा हुआ, सर्वप्राणिनाशक काल के समान जान पड़ता था ॥२॥

[2]महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम् ।
धनुर्भीमं परामृश्य शरांश्चामित्रशातनान् ॥३॥

उस समय उसके हाथ में बड़ा लंबा और दृढ़ (मजबूत) और बड़ी तेजी के साथ बाण फेंकने वाला, बड़ा भयङ्कर धनुष था तथा शत्रुनाशकारी बाण थे ॥३॥

तं ददर्श महेष्वासो रथे सुसमलंकृतः ।
अलंकृतममित्रघ्नं राघवस्यानुजं बली ॥४॥

---

१ अभ्युत्पपात—अभिमुखमुज्जगाम । ( गो० ) महाप्रमाणं—महादीर्घम् । (गो०)

भली भाँति अलंकृत रथ पर सवार बड़ा धनुष लिये हुए बलवान इन्द्रजीत ने भूषणों से अलंकृत और शत्रुहन्ता श्रीरामचन्द्र जी के छोटे भाई अर्थात् लक्ष्मण जी को देखा ॥४॥

हनुमत् पृष्ठमासीनमुदयस्थरविप्रभम् ।
उवाचैनं समारब्धः सौमित्रिं सविभीषणम् ॥५॥
तांश्च वानरशार्दूलान् पश्यध्वं मे पराक्रमम् ।
अद्य मत् कार्मुकोत् सृष्टं शरवर्षं दुरासदम् ॥६॥

लक्ष्मण जी हनुमान जी की पीठ पर सवार थे और उदयकालीन सूर्य की तरह वे प्रभावान् थे। उनको और उनके पास खड़े हुए विभीषण को तथा अन्य वानरश्रेष्ठों से इन्द्रजीत ने कहा कि, तुम लोग आज मेरे पराक्रम को और मेरे धनुष से छूटे हुए बाणों की दुर्धर्ष बाणवृष्टि को देखना ॥५॥६॥

मुक्तं वर्षमिवाकाशे वारयिष्यथ संयुगे ।
अद्य वो मामका बाणा महाकार्मुकनिःसृताः ॥७॥
विधमिष्यन्ति गात्राणि तूलराशिमिवानलः ।
तीक्ष्णसायकनिर्भिन्नाञ्शूलशक्त्यष्टितोमरैः ॥८॥

जो आकाश से गिरती हुई जलधारा के समान, दिखलाई पड़ेगी। रणक्षेत्र में उसको तुम लोग रोक कर देखना। आज मेरे विशाल धनुष से छूटे हुए बाण, तुम लोगों के शरीरों को रुई की तरह धुनकेंगे। पैने बाणों से, शूल, शक्ति, ऋष्टि तथा पटा से ॥७॥८॥

अद्य वो गमयिष्यामि सर्वानेव यमक्षयम् ।
क्षिपतः शरवर्षाणि क्षिप्रहस्तस्य मे युधि ॥९॥

घायल कर तुम सब को मैं यमराज के घर भेज दूँगा। जब मैं संग्राम में फुर्ती के साथ बाणों की वर्षा करूँगा ॥९॥

जीमूतस्येव नदतः कः स्थास्यति ममाग्रतः ।
रात्रियुद्धे मया पूर्वं वज्राशनिसमैः शरैः ॥१०॥
शायितौ स्थो मया भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ।
स्मृतिर्न तेऽस्ति वा मन्ये व्यक्तं वा यमसादनम् ॥११॥

और बादल की तरह गजूँगा, तब तुममें ऐसा कौन है जो मेरे सामने खड़ा रह सके। यह तो तुम्हे मालूम ही है कि, उस दिन रात की लड़ाई में मैंने वज्र के समान तीरों से समस्त वानरी सेना सहित तुम दोनों भाइयों को मूर्छित कर, भूमि पर सुला दिया था। मैं समझता हूँ उसको तू भूल गया। भूल क्यों न जाएगा, क्योंकि तुम सब लोग तो अब यमपुर में महमान होने वाले हो ॥१०॥११॥

आशीविषमिव क्रुद्धं यत् मां योद्धुं व्यवस्थितः ।
तच्छ्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य गर्जितं लक्ष्मणस्तदा ॥१२॥

और तभी तुम लोग क्रुद्ध हुए विषधर के समान मुझसे लड़ने को आए हो। इन्द्रजीत की इस प्रकार की डींगें सुन, लक्ष्मण जी ने ॥१२॥

अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं वाक्यमब्रवीत् ।
उक्तश्च [1]दुर्गमः पारः[2] कार्याणां राक्षस त्वया ॥१३॥
कार्याणां कर्मणा पारं यो गच्छति स बुद्धिमान् ।
स त्वमर्थस्य हीनार्थो दुरवापस्य केनचित् ॥१४॥

---

1 दुर्गमः—दुर्लभः। (गो०) 2 पारः—निर्वाहः। (गो०)

क्रोध में भर और निर्भीक हो इद्रजीत से कहा—हे राक्षस! किसी दुर्लभ कार्य को न कर जीभमात्र हिला कर कह देना एक बात है और उसे करके दिखाना दूसरी बात है। बुद्धिमान् वही है जो काम करने की एक बार बात कह कर, उस काम को करके दिखा दे। तू तो निषिद्ध वक्ता और निर्बुद्धि है। तू कुछ नहीं कर सकता। जिस काम को (अर्थात् हम लोगों को परास्त करने के काम को) कोई कर नहीं सकता ॥१३॥१४॥

वचो व्याहृत्य जानीषे कृतार्थोऽस्मीति दुर्मते ।
अन्तर्धानगतेनाजौ यस्त्वयाऽऽचरितस्तदा ॥१५॥

तस्कराचरितो मार्गो नैष वीरनिषेवितः ।
यथा बाणपथं प्राप्य स्थितोऽहं तव राक्षस ॥१६॥

दर्शयस्वाद्य तत्तेजो वाचा त्वं किं विकत्थसे ।
एवमुक्तो धनुर्भीमं परामृश्य महाबलः ॥१७॥

उसे तू वाणी से कह कर, अपने को कृतार्थ मानता है। अरे दुर्बुद्धे! उस दिन रात की लड़ाई में तूने छिप कर जो करतूत की थी, यह करतूत चोरी जैसी है। जो वीरलोग होते हैं, वे ऐसी करतूतें नहीं किआ करते अथवा ऐसे पथ पर पदार्पण नहीं करते। हे राक्षस! जैसे मैं तेरे बाणों की मार के भीतर तेरे सामने खड़ा हूँ; वैसे ही तू भी मेरे सामने खड़ा रह कर, अपना पराक्रम दिखा, वृथा डींगे मारने से क्या लाभ? लक्ष्मण जी की इन बातों को सुन, उस महाबली इन्द्रजीत ने अपना भयानक धनुष उठाया ॥१५॥१६॥१७॥

ससर्ज निशितान् बाणानिन्द्रजित्समितिञ्जयः ।
ते निसृष्टा महावेगाः शराः सर्पविषोपमाः ॥१८॥

और वह समरविजयी इन्द्रजीत पैने पैने बाण छोड़ने लगा। वे बड़े वेगवान् और सर्प के विष की तरह बाण ॥१८॥

सम्प्राप्य लक्ष्मणं पेतुः श्वसन्त इव पन्नगाः ।
शरैरतिमहावेगैर्वेगवान् रावणात्मजः ॥१९॥

सौमित्रिमिन्द्रजिद्युद्धे विव्याध शुभलक्षणम् ।
स शरैरतिविद्धाङ्गो रुधिरेण समुक्षितः ॥२०॥

लक्ष्मण जी के शरीर पर गिरते ही साँपों की तरह फुँसकारते हुए भूमि पर गिरने लगे। इस प्रकार इस युद्ध में वह फुर्तीला इन्द्रजीत महावेगवाले बाणों से शुभलक्षणों युक्त अँगों वाले लक्ष्मण जी को घायल करने लगा। बाणों के लगने से लक्ष्मण जी घायल हो गए। उनके शरीर से रक्त बहने लगा ॥१९॥२०॥

शुशुभे लक्ष्मणः श्रीमान् विधूम इव पावकः ।
इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म प्रसमीक्ष्याधिगम्य[1] च ॥२१॥

तिस पर भी कान्तिमान लक्ष्मण जी बिना धूएँ की आग की तरह शोभित हो रहे थे। कुछ देर बाद इन्द्रजीत अपने पुरुषार्थ का फल देख, ॥२१॥

विनद्य सुमहानादमिदं वचनमब्रवीत् ।
पत्रिणः शितधारास्ते शरा मत्कार्मुकच्युताः ॥२२॥

आदास्यन्तेऽद्य सौमित्रे जीवितं जीवितान्तगाः ।
अद्य गोमायुसङ्घाश्च श्येनसङ्घाश्च लक्ष्मण ॥२३॥

---

१ अधिगम्य—फलवत्त्वेन दृष्ट्वा (गो०)

गृध्राश्च निपतन्तु त्वां गतासुं निहतं मया ।
अद्य यास्यति सौमित्रे कर्णगोचरतां तव ॥२४॥
तर्जनं यमदूतानां सर्वभूतभयावहम् ।
क्षत्रबन्धुः सदानार्यो रामः परमदुर्मतिः ॥२५॥

बड़े ज़ोर से गर्ज कर यह वचन बोला—हे लक्ष्मण ! आज मेरे धनुष से छुटे हुए बड़े पैने बाण, जो तेरा वध करने वाले हैं, तेरे जीवन को समाप्त कर देंगे । हे लक्ष्मण ! आज गीदड़, बाजों और गिद्धों के झुण्ड के झुण्ड मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर तेरी लोथ के ऊपर टूटेंगे । हे लक्ष्मण ! आज तुझको सब प्राणियों को डराने वाला यमदूतों का तर्जन गर्जन सुनाई पड़ेगा । परम दुर्मति, क्षत्रियाधम और नीच राम ॥२२॥२३॥२४॥२५॥

भक्तं भ्रातरमद्यैव त्वां द्रक्ष्यति मया हतम् ।
विशस्तकवचं भूमौ व्यपविद्धशरासनम् ॥२६॥
हृतोत्तमाङ्गं सौमित्रे त्वामद्य निहतं मया ।
इति ब्रुवाणं संरब्धं परुषं रावणात्मजम् ॥२७॥

आज ही तुझ सरीखे अपने भाई को मेरे हाथ से मरा हुआ देखेगा । आज जब मैं तेरा वध करूँगा, तब तेरा यह कवच टूट फूट कर भूमि पर गिर पड़ेगा और टूक टूक हो जायगा, तथा सिर कट अलग गिर जायगा । क्रोध में भर इस प्रकार कठोर वचन कहते हुए रावणात्मज इन्द्रजीत से ॥२६॥२७॥

हेतुमद्वाक्यमत्यर्थं लक्ष्मणः प्रत्युवाच ह ।
वाग्बलं त्यज दुर्बुद्धे क्रूरकर्मासि राक्षस ॥२८॥

लक्ष्मण जी ने युक्तियुक्त एवं सारगर्भित वचन कहे—अरे निशाचर, अरे दुर्बुद्धे ! तू बहुत सी बकवाद मत कर। मैं जानता हूँ तू निष्ठुर कर्म करने वाला है अर्थात् निर्दयी है ॥२८॥

अथ कस्माद्वदस्येतत् सम्पादय सुकर्मणा ।
अकृत्वा कत्थसे कर्म किमर्थमिह राक्षस ॥२९॥

इतनी बकवाद करने से लाभ ही क्या। जो कुछ कहता है उसे भली भाँति करके दिखला दे। अरे राक्षस ! बिना कुछ किए ही क्यों बकबक कर रहा है ? ॥२९॥

कुरु तत्कर्म येनाहं श्रद्दध्यां तव कत्थनम् ।
अनुक्त्वा परुषं वाक्यं किञ्चिदप्यनवक्षिपन् ॥३०॥

अरे कुछ करके दिखा, जिससे मुझे तेरे कथन पर विश्वास तो हो। मैं न तो तुझसे कठोर वचन कहूँगा, न तुझे धिक्का-रूँगा ॥३०॥

अविकत्थन् वधिष्यामि त्वां पश्य पुरुषाधम ।
इत्युक्त्वा पञ्च नाराचानाकर्णापूरिताञ्शितान् ॥३१॥

और न तो अपनी बड़ाई ही करूँगा। किन्तु हे पुरुषाधम ! देखना मैं तेरा वध करूँगा। यह कह कर और पाँच पैने नाराचों को धनुष पर रख और रोदे को कान तक खींच, ॥३१॥

निजघान महावेगाँल्लक्ष्मणो राक्षसोरसि ।
सुपत्रवाजिता बाणा ज्वलिता इव पन्नगाः ॥३२॥

नैर्ऋतोरस्यभासन्त सवितू रश्मयो यथा ।
स शरैराहतस्तेन सरोषो रावणात्मजः ॥३३॥

लक्ष्मण ने बड़े जोर से इन्द्रजीत की छाती में मारे। अच्छे परों से युक्त बड़े वेग से जाने वाले, चमचमाते और सर्प की तरह वे बाण इन्द्रजीत की छाती में चुभे हुए ऐसे शोभित हुए; जैसे सूर्य की किरणें। इन बाणों की चोट से क्रोध में भर इन्द्रजीत ने ॥३२॥३३॥

सुप्रयुक्तैस्त्रिभिर्बाणैः प्रतिविव्याध लक्ष्मणम् ।
स बभूव तदा भीमो नरराक्षससिंहयोः ॥३४॥

भी बड़ी सावधनी से तीर बाण चला लक्ष्मण जी को घायल किया। तब तो इन दोनों नरसिंह और राक्षससिंह का बड़ा भयानक युद्ध होने लगा ॥३४॥

विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ।
उभौ हि बलसम्पन्नावुभौ विक्रमशालिनौ ॥३५॥

दोनों ही एक दूसरे को जीतना चाहते थे और बड़ा तुमुल युद्ध कर रहे थे। दोनों ही बड़े बलवान् थे और दोनों ही विक्रमशाली थे ॥३५॥

उभावपि सुविक्रान्तौ सर्वशस्त्रास्त्रकोविदौ ।
उभौ परमदुर्जयावतुल्यबलतेजसौ ॥३६॥

दोनों ही बड़े पराक्रमी थे और दोनों ही सब प्रकार के अस्त्रों और शस्त्रों को चलाने और रोकने में निपुण थे। दोनों ही परम दुर्जेय और अतुलित बलवान् एवं तेजस्वी थे ॥३६॥

युयुधाते तदा वीरौ ग्रहाविव नभोगतौ ।
[1]बलवृत्राविवाभीतौ युधि तौ दुष्प्रधर्षणौ ॥३७॥

---

१ बलशब्दो बलशत्रिवन्द्रपरः। (गो०)

वे दोनों ऐसे लड़ रहे थे, जैसे दो ग्रह आकाश में लड़ रहे हों, वे दोनों दुर्धर्ष योद्धा निर्भीक हो, इन्द्र और वृत्रासुर की तरह लड़ रहे थे ॥३७॥

युयुधाते महात्मानो तदा केसरिणाविव ।
बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ।
नरराक्षससिंहौ तौ प्रहृष्टावभ्युयुध्यताम् ॥३८॥

दो सिंहों की तरह युद्ध करते हुए वे दोनों बलवान लड़ रहे थे। वे दोनों अर्थात् नरश्रेष्ठ लक्ष्मण और राक्षसश्रेष्ठ इन्द्रजीत, अत्यन्त उत्साहित हो, युद्ध करते हुए, एक दूसरे पर असंख्य बाणों की वृष्टि वैसे ही कर रहे थे; जैसे बादल जल की वृष्टि करते हैं ॥३८॥

सुसंप्रहृष्टौ नरराक्षसोत्तमौ
जयैषिणौ मार्गणचापधारिणौ ।
परस्परं तौ प्रववर्षतुर्भृशं
शरौघवर्षेण बलाहकाविव ॥३९॥

वे दोनों अत्यन्त उत्साही और जयाभिलाषी नरश्रेष्ठ वीर हाथों में धनुष लिये हुए एक दूसरे के वध का अवसर ढूँढते हुए एक दूसरे के ऊपर वैसे ही असंख्य बाणों की वर्षा कर रहे थे जैसे मेघ जल की वर्षा किया करते हैं ॥३९॥

अभिप्रवृद्धौ युधि युद्धकोविदौ
शरासिचण्डौ शितशस्त्रधारिणौ ।
अभीक्ष्णमाविव्यधतुर्महाबलौ
महाहवे शम्बरवासवाविव ॥४०॥

इति अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

दोनों ही युद्धविविद्या में निपुण थे। अतः दोनों ही बड़े ज़ोरों से लड़ रहे थे। दोनों ही के पास बड़े बड़े प्रचण्ड बाण, खड्ग और पैने पैने शस्त्र थे। वे दोनों महाबली एक दूसरे को घायल करते हुए वैसे ही लड़ रहे थे, जैसे शम्बरासुर और इन्द्र लड़े थे ॥४०॥

युद्धकाण्ड का अट्ठासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—✻—

## एकोननवतितमः सर्गः

—✻—

ततः शरं दाशरथिः सन्धायामित्रकर्शनः ।
ससर्ज राक्षसेन्द्राय क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ॥१॥

तदनन्तर शत्रुहन्ता दशरथनन्दन लक्ष्मण जी ने क्रुद्ध सर्प की तरह फुँफकारते हुए धनुष पर बाण रख कर, मेघनाद के ऊपर छोड़े ॥१॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं स श्रुत्वा रावणात्मजः ।
विवर्णवदनो भूत्वा लक्ष्मणं समुदैक्षत ॥२॥

लक्ष्मण के धनुष के रोदे के टंकार को सुन, इन्द्रजीत के मुखमंडल की रंगत बदल गई और वह लक्ष्मण जी के मुख को ताकने लगा ॥२॥

तं विवर्णमुखं दृष्ट्वा राक्षसं रावणात्मजम् ।
सौमित्रिं युद्धसंयुक्तं प्रत्युवाच विभीषणः ॥३॥

रावणपुत्र इन्द्रजीत के मुख की रंगत बदली हुई देख, युद्ध में उद्यत लक्ष्मण से विभीषण कहने लगे ॥३॥

निमित्तान्यनुपश्यामि यान्यस्मिन् रावणात्मजे ।
त्वर तेन महाबाहो भग्न एष न संशयः ॥४॥

हे लक्ष्मण ! इस समय इन्द्रजीत के मुख की रंगत का बदलना आदि जैसे बुरे लक्षण मुझे उसमें देख पड़ रहे हैं, उससे तो हे बलवान ! मुझे जान पड़ता है कि, वह निस्संशय मारा जायगा। अतः इसका आप शीघ्र बध कीजिये ॥४॥

ततः सन्धाय सौमित्रिर्बाणानग्निशिखोपमान् ।
मुमोच निशितांस्तस्मिन् सर्पानिव महाविषान् ॥५॥

तब तो लक्ष्मण जी ने अग्निशिखा के समान दीप्तिमान बाण निकाल कर धनुष पर रखे और महाविषधर सर्प की तरह उन महाभयङ्कर बाणों को छोड़ा ॥५॥

शक्राशनिसमस्पर्शैर्लक्ष्मणेनाहतः शरैः ।
मुहूर्तमभवन् मूढः सर्वसंक्षुभितेन्द्रियः ॥६॥

लक्ष्मण के छोड़े हुए बाण, इन्द्रजीत के शरीर में इन्द्र के वज्र की तरह लगने से, इद्रजीत एक मुहूर्त्त तक मूर्छित रहा और उसकी समस्त इन्द्रियाँ बिकल हो गईं ॥६॥

उपलभ्य मुहूर्तेन संज्ञां प्रत्यागतेन्द्रियः ।
ददर्शावस्थितं वीरं वीरो दशरथात्मजम् ॥७॥

एक मुहूर्त बाद ही सचेत और सावधान हो उस वीर ने देखा कि, वीरश्रेष्ठ दशरथनन्दन लक्ष्मण उसके सामने खड़े हैं ॥७॥

सोऽभिचक्राम सौमित्रिं रोषात् संरक्तलोचनः ।
अब्रवीच्चैनमासाद्य पुनः स परुषं वचः ॥८॥

तब वह क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र कर और लक्ष्मण जी के निकट जा फिर कठोर वचन कहने लगा ॥८॥

किं न स्मरसि तद्युद्धे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।
निबद्धस्त्वं सह भ्रात्रा यदा भुवि विवेष्टसे ॥९॥

अरे लक्ष्मण! तू मेरे उस दिन के पराक्रम को क्यों याद नहीं करता जब मैंने तुझको और रामचन्द्र को नागफाँस में बाँधा था और तुम दोनों पृथिवी पर पड़े छटपटा रहे थे ॥९॥

युवां-खलु महायुद्धे शक्राशनिसमैः शरैः ।
शायितौ प्रथमं भूमौ विसंज्ञौ सपुरःसरौ ॥१०॥

पहिली ही बार मैंने वज्रतुल्य बाणों से उस महासमर में तुम दोनों भाइयों को व तुम्हारी सेना को ऐसा मारा था कि तुम सब के सब मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़े थे ॥१०॥

स्मृतिर्वा नास्ति ते मन्ये [1]व्यक्तं वा यमसादनम् ।
गन्तुमिच्छसि यस्मात्त्वं मां धर्षयितुमिच्छसि ॥११॥

जान पड़ता है इसे तू भूल गया। (क्यों न भूलेगा) क्योंकि तू तो निश्चय ही यमराज का महमान होने वाला है। तभी तो (तुझको अब इतना साहस हो गया है कि,) मुझको परास्त करना चाहता है ॥११॥

---

१ व्यक्तं—नूनं। (गो०)

यदि ते प्रथमे युद्धे न दृष्टो मत्पराक्रमः ।
अद्य ते दर्शयिष्यामि तिष्ठेदानीं व्यवस्थितः ॥१२॥

अगर तूने प्रथमवार के युद्ध में मेरा पराक्रम नहीं देखा, तो खड़ा रह, अब मैं तुझे अपना पराक्रम दिखलाए देता हूँ ॥१२॥

इत्युक्त्वा सप्तभिर्बाणैरभिविव्याध लक्ष्मणम् ।
दशभिस्तु हनूमन्तं तीक्ष्णधारैः शरोत्तमैः ॥१३॥

यह कह कर उसने सात बाण मार कर लक्ष्मण को और बड़े पैने और श्रेष्ठ दस बाण मार कर हनुमान् को घायल किया ॥१३॥

ततः शरशतेनैव सुप्रयुक्तेन वीर्यवान् ।
क्रोधाद्द्विगुणसंरब्धो निर्बिभेद विभीषणम् ॥१४॥

तदनन्तर उस पराक्रमी ने दूना क्रोध कर और कान तक खींच कर, सौ बाण मार कर विभीषण को घायल किया ॥१४॥

तद्दृष्ट्वेन्द्रजिता कर्म कृतं रामानुजस्तदा ।
अचिन्तयित्वा प्रहसन्नैतत् किञ्चिदिति ब्रुवन् ॥१५॥

इन्द्रजीत की इस वीरता को देख और इसकी कुछ भी चिन्ता न कर, हँसते हुए लक्ष्मण जी ने इन्द्रजीत से कहा—"यह तो कुछ भी नहीं है।" ॥१५॥

मुमोच स शरान् घोरान् संगृह्य नरपुङ्गवः ।
अभीतवदनः क्रुद्धो रावणिं लक्ष्मणो युधि ॥१६॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने क्रोध में भर और निर्भय हो, बड़े बड़े भयानक बाण निकाल कर, उस युद्ध में इन्द्रजीत के ऊपर छोड़े ॥१६॥

नैवं रणगताः शूराः प्रहरन्ते निशाचर ।
लघवश्चाल्पवीर्याश्च सुखा हीमे शरास्तव ॥१७॥

तदनन्तर उन्होंने कहा—अरे राक्षस समरभूमि में जा कर जो शूर होते हैं, वे इस प्रकार का प्रहार नहीं करते। तेरे बाण तो हल्के, अल्पशक्ति वाले हैं। मुझे तो तेरे इन बाणों से कुछ भी पीड़ा नहीं जान पड़ी, बल्कि इनका प्रहार तो सहज में सहा जा सकता है ॥१७॥

नैवं शूरास्तु युध्यन्ते समरे जयकाङ्क्षिणः ।
इत्येवं तं ब्रुवाणस्तु शरवर्षैरवाकिरत् ॥१८॥

जयाभिलाषी शूर इस प्रकार का हीन युद्ध नहीं लड़ते। इन्द्रजीत से यह कह कर लक्ष्मण जी पुनः उसके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे ॥१८॥

तस्य बाणैः सुविध्वस्तं कवचं हेमभूषितम् ।
व्यशीर्यत रथोपस्थे ताराजालमिवाम्बरात् ॥१९॥

लक्ष्मण जी की बाणवर्षा से इन्द्रजीत का कवच टुकड़े टुकड़े हो, रथ में गिर कर ऐसे बिखर गया, जैसे आकाश से च्युत हो बहुत से तारागण भूमि पर गिर बिखर जाते हैं ॥१९॥

विधूतवर्मा नाराचैर्बभूव स कृतव्रणः ।
इन्द्रजित् समरे वीरः प्रत्यूषे भानुमान् इव ॥२०॥

इन्द्रजीत का कवच नष्ट हो जाने पर, बाणों के आघात से उसका सारा शरीर घायल हो, ऐसा देख पड़ा, मानों प्रातःकालीन सूर्य हो ॥२०॥

ततः शरसहस्रेण संक्रुद्धो रावणात्मजः ।
बिभेद समरे वीरं लक्ष्मणं भीमविक्रमः ॥२१॥

तदनन्तर इस समर में भीम-विक्रमी रावणात्मज ने भी क्रोध में भर, वीर लक्ष्मण के ऊपर एक सहस्र बाण छोड़ कर, उनको घायल किया ॥२१॥

व्यशीर्यत महादिव्यं कवचं लक्ष्मणस्य च ।
कृतप्रतिकृतान्योन्यं बभूवतुरभिद्रुतौ ॥२२॥

इससे लक्ष्मण जी का भी कवच टूट गया। इस प्रकार वे दोनों एक दूसरे की मार का बदला लेते देते हुए ॥२२॥

अभीक्ष्णं निःश्वसन्तौ तौ युद्ध्येतां तुमुलं युधि ।
शरसंकृत्तसर्वाङ्गौ सर्वतो रुधिरोक्षितौ ॥२३॥

और बार बार हाँफते हुए दोनों वीर तुमुल युद्ध कर रहे थे। दोनों के शरीरों में बाणों के घाव हो गए थे और दोंनों ही रक्त से नहा गये ॥२३॥

सुदीर्घकालं तौ वीरावन्योन्यं निशितैः शरैः ।
ततक्षतुर्महात्मानौ रणकर्मविशारदौ ॥२४॥

बहुत देर तक ये दोनों बलवान रणविद्या में निपुण वीर एक दूसरे के ऊपर पैने पैने बाण छोड़ एक दूसरे को घायल करते रहे ॥२४॥

बभूवतुश्चात्मजये यत्तौ भीमपराक्रमौ ।
तौ शरौघैस्तदा कीर्णौ निकृत्तकवचध्वजौ ॥२५॥

दोनों ही जयाभिलाषी और भयानक पराक्रमी थे। वे एक दूसरे के बाणों से घायल हो गए थे। उनके शरीरों के कवच और उनकी ध्वजाएँ नष्ट हो चुकी थीं ॥२५॥

स्रवन्तौ रुधिरं चोष्णं जलं प्रस्रवणाविव ।
शरवर्षं ततो घोरं मुञ्चतोर्भीमनिःस्वनम् ॥२६॥

उनके घावों से गर्म गर्म लोहू वैसे ही बह रहा था जैसे झरने से जल। वे भयंकर सिंहनाद करते हुए भयंकर शरवर्षा कर रहे थे ॥२६॥

[1]सासारयोरिवाकाशे नीलयोः कालमेघयोः ।
तयोरथ महान् कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः ॥२७॥

आकाश में वर्षा करते हुए नीले रंग के काले दो बादलों की तरह, एक दूसरे पर बाणों की वृष्टि करते हुए और लड़ते लड़ते, उन दोनों वीरों का बहुत सा समय व्यतीत हो गया ॥२७॥

न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ।
अस्त्राण्यस्त्रविदां श्रेष्ठौ दर्शयन्तौ पुनः पुनः ॥२८॥

तो भी न तो किसी ने पीठ दिखाई और न कोई थका। अस्त्र-विद्या जानने वालों में श्रेष्ठ दोनों ही वीर बारंबार अपने अपने शरों की उत्कृष्टता दिखला रहे थे ॥२८॥

शरानुच्चावचाकारानन्तरिक्षे बबन्धतुः ।
[2]व्यपेतदोषमस्यन्तौ[3] लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥२९॥

---

१ सासारयोः—सधारापातयोः। ( गो० ) २ व्यपेतदोषं—व्यपगतमोहत्वदोषं। ( गो० ) ३ अस्यन्तौ—बाणान्क्षिपन्तौ। ( गो० )

यहाँ तक कि, दोनों ने मारे बाणों के आकाश ढक दिया। वे दोनों दोषरहित, बड़ी फुर्ती व सुन्दरता से, बाण छोड़ रहे थे अथवा युद्ध कर रहे थे ॥२९॥

उभौ तौ तुमुलं घोरं चक्रतुर्नरराक्षसौ ।
तयोः पृथक् पृथक् भीमः शुश्रुवे तुमुलस्वनः ॥३०॥

दोनों, लक्ष्मण और इन्द्रजीत तुमुल युद्ध कर रहे थे। दोनों के भयंकर सिंहनाद का शब्द पृथक् पृथक् सुन पड़ता था ॥३०॥

प्रकम्पयज्जनं घोरो निर्घात इव दारुणः ।
स तयोर्भ्राजते शब्दस्तदा समरसक्तयोः ॥३१॥
सुघोरयोर्निष्टनतोर्गगने मेघयोर्यथा ।
सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैर्बलवन्तौ कृतव्रणौ ॥३२॥

वज्रपात की तरह उस घोर दारुण सिंहनाद कोसुन, सुनने वालों के हृदय काँप उठे। उन रणोन्मत्त दोनों वीरों के गर्जन का शब्द, ऐसा जान पड़ता था, मानों आकाश में बड़े ज़ोर से बादलों की भयंकर गड़गड़ाहट हो रही हो। सुवर्ण पुंख वाले नाराचों से दोनों बलवानों के शरीर घायल हो जाने पर, ॥३१॥३२॥

प्रसुस्रुवाते रुधिरं कीर्तिमन्तौ जये धृतौ ।
ते गात्रयोर्निपतिता रुक्मपुङ्खाः शरा युधि ॥३३॥

विजय और कीर्ति पाने के लिए यत्न करते हुए उन बलशालियों के घावों से रुधिर की धाराएँ बह रही

उस समय सुवर्ण पुंख वाले बाण उन दोनों के शरीर का भेदन कर ॥३३॥

असृङ्नद्धा विनिष्पत्य विविशुर्धरणीतलम् ।
अन्ये सुनिशितैः शस्त्रैराकाशे संजघट्टिरे ॥३४॥

रुधिर से तर हो, धरती में घुस जाते थे। दोनों वीरों के छोड़े हुए बहुत पैने पैने शस्त्र आकाश में एक दूसरे से टकर खा कर ॥३४॥

बभञ्जुश्चिच्छिदुश्चान्ये तयोर्बाणाः सहस्रशः ।
स बभूव रणे घोरस्तयोर्बाणमयश्चयः ॥३५॥

टूट जाते थे और उनके सहस्रों टुकड़े हो जाते थे। उस युद्ध में बड़े बड़े भयंकर बाणों का ऐसा ढेर लग गया ॥३५॥

अग्निभ्यामिव दीप्ताभ्यां सत्रे कुशमयश्चयः ।
तयोः कृतव्रणौ देहौ शुशुभाते महात्मनोः ॥३६॥

जैसा किसी यज्ञ में प्रज्वलित दो अग्नियों के बीच में कुशों का ढेर लग जाता है। उन दोनों बलवानों के शरीर घायल हो कर ऐसे शोभायमान हो रहे थे ॥६६॥

सपुष्पाविव निष्पत्रौ वने शाल्मलिकिंशुकौ ।
चक्रतुस्तुमुलं घोरं सन्निपातं मुहुर्मुहुः ॥६७॥

जैसे बिना पत्र के और फूले हुए टेसू और सैंमर के वृक्ष किसी बन में खड़े हों बार बार एक दूसरे के बाण मारते हुए वे दोनों तुमुल युद्ध कर रहे थे ॥३७॥

इन्द्रजिल्लक्ष्मणश्चैव परस्परवधैषिणौ ।
लक्ष्मणो रावणिं युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ॥३८॥

इन्द्रजीत और लक्ष्मण दोनों ही एक दूसरे का वध करना चाहते थे। इस युद्ध में लक्ष्मण इन्द्रजीत के ऊपर और इन्द्रजीत, लक्ष्मण के ऊपर ॥३८॥

अन्योन्यं तावभिघ्नन्तौ न श्रमं प्रत्यपद्यताम् ।
बाणजालैः शरीरस्थैरवगाढैस्तरस्विनौ ॥३९॥

शुशुभाते महावीर्यौ प्ररूढाविव पर्वतौ ।
तयो रुधिरसिक्तानि संवृतानि शरैर्भृशम् ॥४०॥

परस्पर प्रहार कर रहे थे, किन्तु दो में से एक भी थकता न था। अंगोंमें गड़े हुए बाणों से उन दोनों बलवान् वीरों की ऐसी शोभा हो रही थी, जैसी वृक्षों से युक्त दो पर्वतों की शोभा होती है। वे दोनों रक्त से नहाए हुए थे और बाणों से उनके शरीर ढके हुए थे ॥३९॥४०॥

बभ्राजुः सर्वगात्राणि ज्वलन्त इव पावकाः ।
तयोरथ महान् कालो व्यत्ययाद्युध्यमानयोः ।
न च तौ युद्धवैमुख्यं श्रमं वाप्युपजग्मतुः ॥४१॥

दोनों ऐसे जान पड़ते थे, मानों जलती हुई आग हो इस प्रकार लड़ते लड़ते उन दोनों को बहुत देर हो गई। किन्तु दो में से न तो कोई थका और न कोई हारा ही ॥४१॥

अथ समरपरिश्रमं निहन्तुं
समरमुखेष्वजितस्य लक्ष्मणस्य ।

प्रियहितमुपपादयन्महौजाः
समरमुपेत्य विभीषणोऽवतस्थे ॥४२॥

इति एकोननवतितमः सर्गः॥

इतने में महात्मा विभीषण, युद्ध में अपराजित लक्ष्मण जी के रणश्रम को दूर करने के लिए, तथा उनका प्रिय और हितसाधन करने के उद्देश्य से उनके पास जा खड़े हुए ॥४२॥

युद्धकाण्ड का नवासीवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## नवतितमः सर्गः

—:o:—

युध्यमानौ तु तौ दृष्ट्वा प्रसक्तौ नरराक्षसौ ।
प्रभिन्नाविव मातङ्गौ परस्परवधैषिणौ ॥१॥

परस्पर वध करने की इच्छा कर मद से अंधे, दो हाथियों के समान भिड़े हुए लक्ष्मण जी और इन्द्रजीत को देख ॥१॥

तौ द्रष्टुकामः संग्रामे परस्परगतौ बली ।
शूरः स रावणभ्राता तस्थौ संग्राममूर्धनि ॥२॥

उन दोनों का युद्ध देखने के लिए, रावण के भाई शूर विभीषण समरभूमि में जा खड़े हुए ॥२॥

ततो विस्फारयामास महद्धनुरवस्थितः ।
उत्ससर्ज च तीक्ष्णाग्रान् राक्षसेषु महाशरान् ॥३॥

तदनन्तर अपने विशाल धनुष को टंकोर कर, वे राक्षसों के ऊपर पैने पैने और बड़े बड़े तीर छोड़ने लगे ॥३॥

ते शराः शिखिसङ्काशा निपतन्तः समाहिताः ।
राक्षसान् दारयामासुर्वज्राणीव महागिरीन् ॥४॥

जैसे वज्र पहाड़ को चूर चूर कर डालता है वैसे ही अग्नि के समान उन बाणों ने निशाने पर लग, राक्षसों के शरीरों को छिन्न भिन्न कर डाला ॥४॥

विभीषणस्यानुचरास्तेऽपि शूलासिपट्टिशैः ।
चिच्छिदुः समरे वीरान् राक्षसान् राक्षसोत्तमाः ॥५॥

विभीषण के चारों राक्षसश्रेष्ठ मंत्री भी शूल और पट्टों से बड़े बड़े वीर राक्षसों का संहार कर रहे थे ॥५॥

राक्षसैस्तैः परिवृतः स तदा तु विभीषणः ।
बभौ मध्ये प्रहृष्टानां कलभानामिव द्विपः ॥६॥

उस समय विभीषण उन अपने चारों मंत्रियों के बीच शोभायमान हो रहे थे, मानों हाथियों के चार बच्चों के बीच में गजराज शोभित हो रहा हो ॥६॥

ततः सञ्चोदयानो वै हरीन् रक्षोरणप्रियान् ।
उवाच वचनं काले कालज्ञो रक्षसां वरः ॥७॥

उचित समय को पहिचानने वाले राक्षसश्रेष्ठ विभीषण रणप्रिय वानरों को उत्साहित करते हुए, उस समय के अनुरूप यह वचन बोले ॥७॥

एकोऽयं राक्षसेन्द्रस्य [1]परायणमिव स्थितः ।
एतच्छेषं बलं तस्य किं तिष्ठत हरीश्वराः ॥८॥

---

१ परायणं—गतिः । ( गो० )

हे वानरो ! यह इन्द्रजीत ही रावण का अब एकमात्र सहारा रह गया है और अब यही थोड़ी सी सेना बच रही है। सो तुम खड़े खड़े क्या करते हो ? ॥८॥

अस्मिन् विनिहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि ।
रावणं वर्जयित्वा तु शेषमस्य हतं बलम् ॥९॥

युद्ध में इस पापी राक्षस इन्द्रजीत के मारे जाते ही, फिर रावण को छोड़ और कोई लड़ने वाला नहीं रह जायगा । ( सो इन सब को मार गिराओ जिससे बच कर एक भी लौट कर लङ्का में न जाने पावे ) ॥९॥

प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः ।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धूम्राक्षश्च निशाचरः ॥१०॥
जम्बुमाली महामाली तीक्ष्णवेगोऽशनिप्रभः ।
सुप्तघ्नो यज्ञकोपश्च वज्रदंष्ट्रश्च राक्षसः ॥११॥
संह्रादी विकटो निघ्नस्तपनो दम एव च ।
प्रघासः प्रघसश्चैव प्रजङ्घो जङ्घ एव च ॥१२॥
अग्निकेतुश्च दुर्धर्षो रश्मिकेतुश्च वीर्यवान् ।
विद्युज्जिह्वो द्विजिह्वश्च सूर्यशत्रुश्च राक्षसः ॥१३॥
अकम्पनः सुपार्श्वश्च चक्रमाली च राक्षसः ।
कम्पनः सत्त्ववन्तौ तौ देवान्तकनरान्तकौ ॥१४॥
एतान्निहत्यातिबलान् बहून् राक्षससत्तमान् ।
बाहुभ्यां सागरं तीर्त्वा लङ्घ्यतां गोष्पदं लघु ॥१५॥

देखो वीर प्रहस्त, बलवान निकुम्भ, कुम्भकर्ण, कुम्भ, धूम्राक्ष, जम्बुमाली, महामाली, तीक्ष्णवेग, अशनिप्रभ, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, वज्रदंष्ट्र, संह्रादी, विकट, निघ्न तपनः, दम, प्रघास, प्रघस, प्रजंघ, जंघ, अग्निकेतु, पराक्रमी रश्मिकेतु, विद्युज्जिह्व, द्विजिह्व, सूर्यशत्रु, अकम्पन, सुपार्श्व, चक्रमाली, कम्पन, बलवान देवान्तक, नरान्तक आदि इन अत्यन्त बलवान् एवं बहुत से राक्षसों को मार कर ; तुम सारा समुद्र पैर चुके हो, सो इस गाय के खुर के समान छोटे जल के गढ़े को नाँघना तुम्हारे लिए कौन बड़ी बात है ॥१०॥ ११॥१२॥१३॥१४॥१५॥

एतावदेव शेषं वो जेतव्यमिह वानराः ।
हताः सर्वे समागम्य राक्षसा बलदर्पिताः ॥१६॥

बस अब इतने ही तो बच रहे हैं, सो हे वानरो ! इनको भी समाप्त कर डालो । समरभूमि में जो बल के अहंकारी राक्षसगण आए, उनमें से एक भी जीता जागता लौट कर नहीं जा सका अर्थात् मारा गया ॥१६॥

अयुक्तं निधनं कर्तुं पुत्रस्य [1]जनितुर्मम ।
घृणामपास्य रामार्थे निहन्यां भ्रातुरात्मजम् ॥१७॥

यद्यपि मेरे लिए यह उचित नहीं है कि, मैं चचा हो कर पुत्र स्थानीय अपने भतीजे का वध करूँ ; तथापि मैं श्रीरामचन्द्र जी के लिए ( इस निन्द्य कार्य को कर ) निन्दा होने का कुछ भी विचार न कर, अपने बड़े भाई के पुत्र अर्थात् अपने भतीजे को मारता हूँ ॥१७॥

---

१ जनितुः जनयितुः—पितृव्यस्येत्यर्थः । ( गो० )

हन्तुकामस्य मे बाष्पं चक्षुश्चैव निरुध्यति ।
तमेवैष महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥१८॥

क्या करूँ मैं जब इसे मारना चाहता हूँ ; तब मेरी आँखों में आँसू भर आते हैं । सो इसको, महाबलवान् लक्ष्मण जी ही शान्त करेंगे अर्थात् इन्द्रजीत का वध करेंगे ॥१८॥

वानरा घ्नत सम्भूय भृत्यानस्य समीपगान् ।
इति तेनातियशसा राक्षसेनाभिचोदिताः ॥१९॥

हे वानरो ! तुम लोग आगे बढ़ कर, इन्द्रजीत के समीप खड़े हुए राक्षसों को मार डालो । जब इस प्रकार यशस्वी विभीषण ने उन वानरों को उत्साहित अथवा उत्तेजित किआ ॥१९॥

वानरेन्द्रा जहृषिरे लङ्गूलानि च विव्यधुः ।
ततस्ते कपिशार्दूलाः क्ष्वेलन्तश्च मुहुर्मुहुः ॥२०॥

तब वानर यूथपति हर्षित हो, पूँछें फटकारने लगे और वे कपिशार्दूल बार बार सिंहनाद करने लगे ॥२०॥

मुमुचुर्विविधान्नादान् मेघान् दृष्ट्वेव बर्हिणः ।
जाम्बवानपि तैः सर्वैः स्वयूथैरपि संवृतः ॥२१॥

वे वानर वीर उसी प्रकार विविध प्रकार की बोलियाँ बोल रहे थे, जिस प्रकार मोर बादलों को देख बोला करते हैं । उन वानरों के साथ अपनी भालुओं की सेना लिये हुये जाम्बवान भी आ मिले ॥२१॥

अश्मभिस्ताडयामास नखैर्दन्तैश्च राक्षसान् ।
निघ्नन्तमृक्षाधिपतिं राक्षसास्ते महाबलाः ॥२२॥

परिवव्रुर्भयं त्यक्त्वा तमनेकविधायुधाः ।
शरैः परशुभिस्तीक्ष्णैः पट्टिशैर्यष्टितोमरैः ॥ २३ ॥

वे रीछ भालुओं सहित पत्थरों नखों और दाँतों से राक्षसों का संहार करने लगे। महाबली राक्षसों ने भी पैने पैने बाणों, फरसों, पटाओं, यष्टियों ( लोहे के डंडों ) और तोमरादि विविध प्रकार के आयुधों से निर्भय हो, ॥२२॥२३॥

जाम्बवन्तं मृधे जघ्नुर्निघ्नन्तं राक्षसीं चमूम् ।
स सम्प्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥२४॥

युद्ध में उस राक्षसी सेना का संहार करते हुए जाम्बवान् पर प्रहार किया। वानरों और राक्षसों का भयानक युद्ध हुआ ॥२४॥

देवासुराणां क्रुद्धानां यथा भीमो महास्वनः ।
हनुमानपि संक्रुद्धः सालमुत्पाट्य वीर्यवान् ॥२५॥

उन युद्ध करते हुए राक्षस और वानरों का वैसा ही सिंहनाद हो रहा था; जैसा कि, क्रुद्ध हो कर लड़ने वाले देवताओं और असुरों के युद्ध में हुआ था। उधर बलवान् हनुमान् जी ने भी ( लक्ष्मण को अपनी पीठ से नीचे उतार ) अत्यन्त कुपित हो, एक साल का पेड़ उखाड़ लिया ॥२५॥

रक्षसां कदनं चक्रे समासाद्य सहस्रशः ।
स दत्त्वा तुमुलं युद्धं पितृव्यस्येन्द्रजिद्युधि ॥२६॥

और उससे उन्होंने सहस्रों राक्षसों को मार डाला। उधर इन्द्रजीत अपने चचा विभीषण के साथ कुछ समय तक युद्ध कर, ॥२६॥

लक्ष्मणं परवीरघ्नं पुनरेवाभ्यधावत ।
तौ प्रयुद्धौ तदा वीरौ मृधे लक्ष्मणराक्षसौ ॥२७॥

फिर शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी की ओर मुड़ा। उस संग्राम में युद्ध करते हुए दोनों वीर इन्द्रजीत और लक्ष्मण ॥२७॥

शरौघानभिवर्षन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ।
अभीक्ष्णमन्तरर्दधतुः शरजालैर्महाबलौ ॥२८॥

एक दूसरे पर बाणवर्षा कर प्रहार करने लगे। वे दोनों महाबली योद्धा कभी कभी शरजाल से ऐसे ढक जाते थे ॥२८॥

चन्द्रादित्याविवोष्णान्ते यथा मेघैस्तरस्विनौ ।
न ह्यादानं न सन्धानं धनुषो वा परिग्रहः ॥२९॥

न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ।
न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ॥३०॥

अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ।
चापवेगविनिर्मुक्तबाणजालैः समन्ततः ॥३१॥

जैसे वर्षाकाल में शीघ्रगामी सूर्य और चन्द्र मेघजाल में छिप जाते हैं। वे दोनों ऐसी फुर्ती से बाण चला रहे थे कि, यह नहीं देख पड़ता था कि, कब उन्होंने बाण तरकस से निकाला, कब उसे रोदे पर रखा, कब दाहिने बाएँ हाथ में ( घुमा फिरा कर ) धनुष पकड़ा, कब कान तक रोदा तान कर बाण छोड़ा, कब धनुष टूटने पर दूसरा धनुष लिया। कब वे मुट्ठी बाँधते हैं और कब लक्ष्य ( निशाना ) बेधते हैं। इस प्रकार वे अदृश्य रह कर, अपना

अपना हस्तलाघव दिखा, दोनों वीर लड़ रहे थे, तब उनके धनुष से बड़े वेग से छूटे हुए बाणों से चारों ओर ॥२६॥३०॥३१॥

अन्तरिक्षे हि संछन्ने न रूपाणि चकाशिरे ।
लक्ष्मणो रावणिं प्राप्य रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ॥३२॥

आकाश ढक गया था जिससे कोई भी वस्तु देख नहीं पड़ती थी । केवल लक्ष्मण जी इन्द्रजीत को और इन्द्रजीत लक्ष्मण को ताक कर बाण चला रहे थे ॥३२॥

अव्यवस्था भवत्युग्रा ताभ्यामन्योन्यविग्रहे ।
ताभ्यामुभाभ्यां तरसा विसृष्टैर्विशिखैः शितैः ॥३३॥

उन दोनो की लड़ाई में ऐसी गड़बड़ी हुई कि, यह अपनी ओर का है और यह शत्रु की ओर का है—यह पहचानने की व्यवस्था न रह सकी । वे दोनों वीर योद्धा बड़े वेग से पैने पैने बाण छोड़ रहे थे ॥३३॥

निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसावृतम् ।
तैः पतद्भिश्च बहुभिस्तयोः शरशतैः शितैः ॥३४॥

उन बाणों के चलने से, आकाश बिल्कुल ढक गया और अँधेरा छा गया । उन दोनों के चलाए हुए सैकड़ों हजारों पैने बाणों से ॥३४॥

दिशश्च प्रदिशश्चैव बभूवुः शरसङ्कुलाः ।
तमसा संवृतं सर्वमासीद्भीमतरं महत् ॥३५॥

समस्त दिशाएँ और विदिशाएँ बाणमयी हो गई चारों ओर अन्धकार छा कर बड़ा भयङ्कर जान पड़ने लगा ॥३५॥

अस्तं गते सहस्रांशौ संवृतं तमसेव हि ।
रुधिरौघमहानद्यः प्रावर्तन्त सहस्रशः ॥३६॥

थोड़ी ही देर बाद सूर्य के अस्त होने पर और भी अँधेरी छा गई । हज़ारों प्रवाहों से लोहू की नदियाँ बह निकलीं ॥३६॥

क्रव्यादा दारुणा वाग्भिश्चिक्षिपुर्भीमनिःस्वनम् ।
न तदानीं ववौ वायुर्न च जज्वाल पावकः ॥३७॥

माँसाहारी क्रूर पक्षीगण चारों ओर विकट चीत्कार कर उठे । न तो उस समय हवा चल रही थी और न आग ही जलती थी ॥३७॥

स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति जजल्पुश्च महर्षयः ।
सम्पेतुश्चात्र सम्प्राप्ता गन्धर्वाः सह चारणैः ॥३८॥

यह देख कर ( युद्ध देखने के लिए आए हुए आकाशस्थित ) महर्षि, यह कह ही रहे थे कि, सब लोगों का मङ्गल हो कि, इसी बीच में चारणों सहित गन्धर्व भी वहाँ आ गए ॥३८॥

अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान् ।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥३९॥

इतने में लक्ष्मण जी ने चार बाण छोड़ कर, इन्द्रजीत के रथ के काले रंग के और सुवर्ण के आभूषणों से भूषित, चारों घोड़ों को वेध डाला ॥३९॥

ततोऽपरेण भल्लेन शितेन निशितेन च ।
सम्पूर्णायतमुक्तेन सुपत्रेण सुवर्चसा ॥४०॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने पीले रंग के, पैने, कान तक खींच कर छोड़े हुए, सुन्दर पुंखों से युक्त और चमचमाते भल्लक बाण से ॥४०॥

**महेन्द्राशनिकल्पेन सूतस्त विचरिष्यतः ।**
**स तेन बाणाशनिना तलशब्दानुनादिना ॥४१॥**

जो इन्द्र के वज्र के समान था और जिसके रोदे से छोड़ते समय वज्रपात के समान शब्द हुआ, लक्ष्मण जी ने समरभूमि में रथ पर घूमते हुए इन्द्रजीत के सारथी का ॥४१॥

**लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत् ।**
**स यन्तरि महातेजा हते मन्दोदरीसुतः ॥४२॥**

सिर, बड़ी सफाई से धड़ से काट डाला। सारथी के मारे जाने पर महातेजस्वी मन्दोदरी का पुत्र इन्द्रजीत ॥४२॥

**स्वयं सारथ्यमकरोत् पुनश्च धनुरस्पृशत् ।**
**तदद्भुतमभूत्तत्र सामर्थ्यं पश्यतां युधि ॥४३॥**

स्वयं ही रथ हाँकता था और धनुष भी चलाता था। इस युद्ध में उसका सारथीपन का काम ( और साथ ही साथ बाण चलाने का काम ) देख कर, लोगों को उसके सामर्थ्य पर बड़ा आश्चर्य हुआ ॥४३॥

**हयेषु व्यग्रहस्तं तं विव्याध निशितैः शरैः ।**
**धनुष्यथ पुनर्व्यग्रे हयेषु मुमुचे शरान् ॥४४॥**

जब मेघनाद रथ हाँकता, तब लक्ष्मण उसके ऊपर बाणों की वर्षा करते और जब वह फिर घबड़ाकर धनुष बाण लेता ; तब वे घोड़ों के बाण मारते थे ॥४४॥

छिद्रेषु तेषु बाणेषु सौमित्रिः शीघ्रविक्रमः ।
अर्दयामास बाणौघैर्विचरन्तमभीतवत् ॥४५॥

वार करने का अवसर पा, फुर्तीले लक्ष्मण जी उसे बाणों की वर्षा से भलीभाँति घायल कर रहे थे। तो भी वह निर्भय हो समरभूमि में विचर रहा था ॥४५॥

निहतं सारथिं दृष्ट्वा समरे रावणात्मजः ।
प्रजहौ समरोद्धर्षं विषण्णः स बभूव ह ॥४६॥

लड़ाई में सारथी को मरा हुआ देख, इन्द्रजीत हतोत्साह हो गया और विषाद ने उसे आ घेरा ॥४६॥

विषण्णवदनं दृष्ट्वा राक्षसं हरियूथपाः ।
ततः परमसंहृष्टा लक्ष्मणं चाभ्यपूजयन् ॥४७॥

इन्द्रजीत को विषादयुक्त देख, वानरयूथपति परम हर्षित हो, लक्ष्मण जी की प्रशंसा करने लगे ॥४७॥

ततः प्रमाथी शरभो रभसो गन्धमादनः ।
अमृष्यमाणाश्चत्वारश्चक्रुर्वेगं हरीश्वराः ॥४८॥

तदनन्तर प्रमाथी, शरभ, रभस और गन्धमादन ये चार वानरयूथपति, इन्द्रजीत का वीरत्व सह्य न कर बड़े ज़ोर से ॥४८॥

ते चास्य हयमुख्येषु तूर्णमुत्प्लुत्य वानराः ।
चतुर्षु सुमहावीर्या निपेतुर्भीमविक्रमाः ॥४९॥

ऊपर को उछल कर, फुर्ती के साथ इन्द्रजीत के चारों घोड़ों पर अपना सम्पूर्ण बल लगा अति भयङ्कर विक्रम से कूदे ॥४९॥

तेषामधिष्ठितानां तैर्वानरैः पर्वतोपमैः ।
मुखेभ्यो रुधिरं रक्तं हयानां समवर्तत ॥५०॥

उन पर्वताकार वानरों के, घोड़ों की पीठ पर कूदने से चारों घोड़ों के मुख से रक्त बहने लगा ॥५०॥

ते हया मथिता भग्ना व्यसवो धरणीं गताः ।
ते निहत्य हयांस्तस्य प्रमथ्य च महारथम् ।
पुनरुत्पत्य वेगेन तस्थुर्लक्ष्मणपार्श्वतः ॥५१॥

वे घोड़े पिस गए उनके शरीर चूर हो गए और वे निर्जीव हो, भूमि पर गिर पड़े । वे बानर उन घोड़ों को इस प्रकार मार और रथ को चकनाचूर कर, पुनः उछल कर बड़ी फुर्ती से लक्ष्मण जी के पास जा खड़े हुए ॥५१॥

स हताश्वादवप्लुत्य रथान् मथितसारथेः ।
शरवर्षेण सौमित्रिमभ्यधावत रावणिः ॥५२॥

घोड़ों और सारथी के मारे जाने पर, इन्द्रजीत रथ से कूद पड़ा और बाणों की वर्षा करता हुआ, लक्ष्मण जी के ऊपर दौड़ा ॥५२॥

ततो महेन्द्रप्रतिमः स लक्ष्मणः
पदातिनं तं निशितैः शरोत्तमैः ।
सृजन्तमाजौ निशिताञ्शरोत्तमान्
भृशं तदा बाणगणैर्न्यवारयत् ॥५३॥

इति नवतितमः सर्गः ॥

यह देख, इन्द्र की समान लक्ष्मण जी ने पैदल दौड़ते हुए और पैने और चोखे बाणों को छोड़ते हुए इन्द्रजीत को बहुत से पैने और चोखे बाण वर्षा कर (जहाँ का तहाँ) रोक दिआ ॥५३॥

युद्धकाण्ड का नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## एकनवतितमः सर्गः

—❀—

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः।
इन्द्रजित् परमक्रुद्धः सम्प्रजज्वाल तेजसा ॥१॥

घोड़ों के मारे जाने से महातेजस्वी इन्द्रजीत धरती पर खड़ा हुआ अत्यन्त कुपित था और तेज (क्रोध) से प्रज्वलित हो रहा था ॥१॥

तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम्।
विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने [1]गजवृषाविव ॥२॥

वन में युद्ध करते हुए, दो श्रेष्ठ हाथियों की तरह वे दो धनुषधारियों में श्रेष्ठ योद्धा, एक दूसरे का संहार करने के उद्देश्य से, एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे ॥२॥

निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः।
भर्तारं न जहुर्युद्धे [2]सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥३॥

वानर और निशाचर भी अपने अपने स्वामियों को त्याग कर अपने अपने स्वामियों के चारों ओर घूम फिर रहे थे ॥३॥

---

१ गजवृषाविव—गजश्रेष्ठाविव। (गो०) २ सम्पतंतस्ततः—परितः सञ्चरन्तः। (गो०)

ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः ।
१स्तुवानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥४॥

तब इन्द्रजीत उन सब राक्षसों को उत्साहित करने के लिए, हर्षित हो उनकी बड़ाई कर यह बोला ॥४॥

तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥५॥

हे राक्षसश्रेष्ठो ! रात हो जाने के कारण सब ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ है । अतः इस समय अपना और पराया नहीं जान पड़ता ॥५॥

धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगम् ॥६॥

अतः वानरों को धोखा देने के लिए आप लोग ढिठाई के साथ अर्थात् दृढ़तापूर्वक लड़े । मैं दूसरे रथ में बैठ कर, अभी समरभूमि में लौट कर आता हूँ ॥६॥

तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे काननौकसः ।
न युध्येयुर्दुरात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥७॥

आप लोग तब तक कोई ऐसा उपाय करना कि, मेरे नगरी में जाने पर ये दुष्ट वानर युद्ध ही न करें ॥७॥

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥८॥

---

१ स्तुवानः—स्तुवन् । आर्षः शानच् । ( गो० )

यह देख, इन्द्र की समान लक्ष्मण जी ने पैदल दौड़ते हुए और पैने और चोखे बाणों को छोड़ते हुए इन्द्रजीत को बहुत से पैने और चोखे बाण वर्षा कर (जहाँ का तहाँ) रोक दिया ॥५३॥

युद्धकाण्ड का नब्बेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## एकनवतितमः सर्गः

—❀—

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः।
इन्द्रजित् परमक्रुद्धः सम्प्रजज्वाल तेजसा ॥१॥

घोड़ों के मारे जाने से महातेजस्वी इन्द्रजीत धरती पर खड़ा हुआ अत्यन्त कुपित था और तेज (क्रोध) से प्रज्वलित हो रहा था ॥१॥

तौ धन्विनौ जिघांसन्तावन्योन्यमिषुभिर्भृशम्।
विजयेनाभिनिष्क्रान्तौ वने [1]गजवृषाविव ॥२॥

वन में युद्ध करते हुए, दो श्रेष्ठ हाथियों की तरह वे दो धनुषधारियों में श्रेष्ठ योद्धा, एक दूसरे का संहार करने के उद्देश्य से, एक दूसरे पर बाणों की वर्षा कर रहे थे ॥२॥

निबर्हयन्तश्चान्योन्यं ते राक्षसवनौकसः।
भर्तारं न जहुर्युद्धे [2]सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥३॥

वानर और निशाचर भी अपने अपने स्वामियों को त्याग कर अपने अपने स्वामियों के चारों ओर घूम फिर रहे थे ॥३॥

---

१ गजवृषाविव—गजश्रेष्ठाविव। (गो०) २ सम्पतंतस्ततः—परितः सञ्चरन्तः। (गो०)

ततस्तान् राक्षसान् सर्वान् हर्षयन् रावणात्मजः ।
१स्तुवानो हर्षमाणश्च इदं वचनमब्रवीत् ॥४॥

तब इन्द्रजीत उन सब राक्षसों को उत्साहित करने के लिए, हर्षित हो उनकी बड़ाई कर यह बोला ॥४॥

तमसा बहुलेनेमाः संसक्ताः सर्वतो दिशः ।
नेह विज्ञायते स्वो वा परो वा राक्षसोत्तमाः ॥५॥

हे राक्षसश्रेष्ठो ! रात हो जाने के कारण सब ओर अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ है । अतः इस समय अपना और पराया नहीं जान पड़ता ॥५॥

धृष्टं भवन्तो युध्यन्तु हरीणां मोहनाय वै ।
अहं तु रथमास्थाय आगमिष्यामि संयुगम् ॥६॥

अतः वानरों को धोखा देने के लिए आप लोग ढिठाई के साथ अर्थात् दृढ़तापूर्वक लड़े । मैं दूसरे रथ में बैठ कर, अभी समरभूमि में लौट कर आता हूँ ॥६॥

तथा भवन्तः कुर्वन्तु यथेमे काननौकसः ।
न युध्येयुर्दुरात्मानः प्रविष्टे नगरं मयि ॥७॥

आप लोग तब तक कोई ऐसा उपाय करना कि, मेरे नगरी में जाने पर ये दुष्ट वानर युद्ध ही न करें ॥७॥

इत्युक्त्वा रावणसुतो वञ्चयित्वा वनौकसः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां रथहेतोरमित्रहा ॥८॥

---

१ स्तुवानः—स्तुवन् । आर्षः शानच् । ( गो० )

शत्रुहन्ता इन्द्रजीत नगरी के बाहिर पहुँच, बड़ो तेजी से चलने वाले घोड़ों को हँकवा वहाँ गया ; जहाँ विभीषण सहित लक्ष्मण जी थे ॥१२॥

ततो रथस्थमालोक्य सौमित्री रावणात्मजम् ।
वानराश्च महावीर्या राक्षसश्च विभीषणः ॥१३॥

तब लक्ष्मण, विभीषण तथा अन्य वानरगण इन्द्रजीत को दूसरे रथ में बैठा हुआ देख, ॥१३॥

विस्मयं परमं जग्मुर्लाघवात्तस्य धीमतः ।
रावणिश्चापि संक्रुद्धो रणे वानरयूथपान् ॥१४॥
पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिञ्जयः ॥१५॥

उन बुद्धिमान इन्द्रजीत की फुर्ती पर बड़े विस्मित हुए। अब तो इन्द्रजीत क्रोध में भर युद्ध करता हुआ सैकड़ों सहस्रों वानरयूथपतियों को बाण मार कर गिराने लगा। समरविजयी इन्द्रजीत ऐसी फुर्ती से लड़ रहा था कि, उसका धनुष सदा मण्डलाकार ही देख पड़ता था ॥१४॥१५॥

हरीनभ्यहनत् क्रुद्धः परं लाघवमास्थितः ।
ते वध्यमाना हरयो नाराचैर्भीमविक्रमाः ॥१६॥

वह क्रोध में भर बड़ी फुर्ती के साथ वानरों को मार रहा था। उस भीमविक्रमी इन्द्रजीत के नाराचों से मारे जाने पर, वानरगण ॥१६॥

सौमित्रिं शरणं प्राप्ताः प्रजापतिमिव प्रजाः ।
ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ॥१७॥

लक्ष्मण जी के शरण में वैसे ही गए; जैसे प्रजागण, प्रजापति (ब्रह्मा) के शरण में जाते हैं। तब तो समरकोप से प्रज्वलित हो लक्ष्मण जी ने ॥१७॥

चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन् पाणिलाघवम्।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्यं चक्रे त्वरन्निव ॥१८॥

अपने हाथ की सफाई दिखलाते हुए, इन्द्रजीत का धनुष काट डाला। इन्द्रजीत ने दूसरा धनुष लिया और बहुत जल्दी से उस पर रोदा चढ़ाया ॥१८॥

तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणो निरकृन्तत।
अथैनं छिन्नधन्वानमाशीविषविषोपमैः ॥१९॥

उस धनुष को भी लक्ष्मण जी ने तीन बाण चला कर काट डाला। इस प्रकार इन्द्रजीत का दूसरा धनुष काट, तब लक्ष्मण जी ने विषधर सर्प की तरह विषैले ॥१९॥

विव्याधोरसि सौमित्री रावणिं पञ्चभिः शरैः।
ते तस्य कायं निर्भिद्य महाकार्मुकनिःसृताः ॥२०॥

पाँच बाण इन्द्रजीत की छाती में मार कर उसे घायल किया। लक्ष्मण जी के विशाल धनुष से छूटे हुए वे पाँचों बाण मेघनाद के शरीर को फोड़ कर ॥२०॥

निपेतुर्धरणीं बाणा रक्ता इव महोरगाः।
स भिन्नवर्मा रुधिरं वमन् वक्त्रेण रावणिः ॥२१॥

रक्त में सने हुए लाल रंग के साँपों की तरह, पृथिवी पर जा गिरे। इन्द्रजीत का कवच टूट गया और उसके मुख से लोहू निकलने लगा ॥२१॥

जग्राह कार्मुकश्रेष्ठं दृढज्यं बलवत्तरम् ।
स लक्ष्मणं समुद्दिश्य परं लाघवमास्थितः ॥२२॥

तब उसने बड़ी मज़बूत प्रत्यञ्चा वाला एक उत्तम धनुष ले, बड़ी सफाई के साथ लक्ष्मण को निशाना बना ॥२२॥

ववर्ष शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः ।
मुक्तमिन्द्रजिता तत्तु शरवर्षमरिन्दमः ॥२३॥
अवारयदसम्भ्रान्तो लक्ष्मणः सुदुरासदम् ।
दर्शयामास[1] च तदा राविणिं रघुनन्दनः ॥२४॥

उनके ऊपर वैसे ही बाणवृष्टि की जैसे इन्द्र जलवृष्टि करते हैं। इन्द्रजीत के छोड़े बाणों का वृष्टि को, जिसे कोई दूसरा नहीं रोक सकता था, शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी सहज में रोक कर, मेघनाद को अपना पराक्रम दिखला रहे थे ॥२३।२४॥

असम्भ्रान्तो महातेजास्तदद्भुतमिवाभवत् ।
ततस्तान् राक्षसान् सर्वांस्त्रिभिरेकैकमाहवे ॥२५॥
अविध्यत् परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं[2] सम्प्रदर्शयन् ।
राक्षसेन्द्रसुतं चापि बाणौघैः समताडयत् ॥२६॥

उस समय महातेजस्वी और धैर्ययुक्त लक्ष्मण जी का पराक्रम देख, सब लोग विस्मित हुए। इस युद्ध में अपना, शीघ्र बाण चलाने का सामर्थ्य दिखला कर, वहाँ जितने राक्षस थे, उन सब के (लक्ष्मण जी ने) तीन तीन बाण मारे और मेघनाद को भो मारे बाणों के ध्वस्त कर दिश्रा ॥२५॥२६॥

---

१ दर्शयामास—पराक्रममिति शेषः। (गो०) २ शीघ्रास्त्रं—अस्त्र-विषयकशीघ्रप्रयोग सामर्थ्यं (रा०)

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुघातिना ।
१असक्तं प्रेषयामास लक्ष्मणाय बहूञ्शरान् ॥२७॥

रावणपुत्र मेघनाद भी, शत्रुघाती शत्रु द्वारा अत्यन्त घायल हो लक्ष्मण जी पर अविरल बाणवृष्टि करने लगा ॥२७॥

तानप्राप्ताञ्शितैर्बाणैश्चिच्छेद रघुनन्दनः ।
सारथेरस्य च रणे रथिनो २रथसत्तमः ॥२८॥
शिरो जहार धर्मात्मा भल्लेनानतपर्वणा ।
असूतास्ते हयास्तत्र रथमूहुरविक्लवाः३ ॥२९॥
मण्डलान्यभिधावन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ।
अमर्षवशमापन्नः सौमित्रिर्दृढविक्रमः ॥३०॥

किन्तु लक्ष्मण जी उसके छोड़े समस्त बाणों को बीच ही में अपने पैने बाणों से काट डालते थे । इतने में रथियों में श्रेष्ठ रथी धर्मात्मा लक्ष्मण जी ने इन्द्रजीत के सारथी का सिर एक पैने और सीधे पोरुओं वाले भल्लक बाण से काट डाला । सारथी के न रहने पर भी घोड़े शिक्षित होने के कारण भड़के नहीं और रथ लेकर भागते हुए चक्कर काटने लगे । यह भी एक आश्चर्य ही की बात थी । ऐसा होना भी उचित न जान, दृढ़पराक्रमी लक्ष्मण जी ने ॥२८॥२९॥३०॥

---

१ असक्तं—अव्यासंगं, अविलम्बितं वा । ( गो० ) २ रथसत्तमो—लक्ष्मणः । (रा०) ३ अविक्लवाः—अनाकुलाः । शिक्षापाटवातिशयादिति मन्तव्यं । ( गो० )

प्रत्यविद्धयद्धयांस्तस्य शरैर्विन्नासयन् रणे ।
अमृष्यमाणस्तत्कर्म रावणस्य सुतो बली ॥३१॥

उसके घोड़ों के बाण मार कर, उनको समरभूमि में भड़का दिआ। रावण के पुत्र बलवान इन्द्रजीत को यह सहन न हुआ ॥३१॥

विव्याध दशभिर्बाणैः सौमित्रिं तममर्षणम् ।
ते तस्य वज्रप्रतिमाः शराः सर्पविषोपमाः ॥३२॥
विलयं जग्मुराहत्य कवचं काञ्चनप्रभम् ।
अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणात्मजः ॥३३॥

उसने असहनशील लक्ष्मण के दस बाण मार कर, उन्हें घायल किआ। उसके छोड़े वे वज्र के समान विषधर सर्प की तरह बाण, लक्ष्मण जी सुवर्ण की तरह चमचमाते कवच से टकरा कर नष्ट हो गए। तब इन्द्रजीत ने यह जानकर कि, लक्ष्मण का कवच अभेद्य है, ॥३२॥३३॥

ललाटे लक्ष्मणं बाणैः सुपुङ्खैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ।
अविध्यत् परमक्रुद्धः शीघ्रास्त्रं च प्रदर्शयन् ॥३४॥

इन्द्रजीत ने सुन्दर फोंक से युक्त तीन बाण लक्ष्मण जी के माथे में मारे। इस प्रकार इन्द्रजीत ने क्रुद्ध हो, शीघ्र बाण चलाने का अपना सामर्थ्य प्रकट किआ ॥३४॥

तैः पृषत्कैर्ललाटस्थैः शुशुभे रघुनन्दनः ।
रणाग्रे १समरश्लाघी त्रिशृङ्ग इव पर्वतः ॥३५॥

---

१ समरश्लाघी—समरप्रियः। (गो०)

माथे में चुभे हुए उन तीन बाणों से समरप्रिय लक्ष्मण जी की समरभूमि में वैसी ही शोभा हुई, जैसी शोभा तीन शृंगवाले पर्वत की हो ॥३५॥

स तथा ह्यर्दितो बाणै राक्षसेन महामृधे ।
तमाशु प्रतिविव्याध लक्ष्मणः पञ्चभिः शरैः ॥३६॥

उस महायुद्ध में इन्द्रजीत द्वारा उन बाणों से घायल हो, लक्ष्मण जी ने भी उसके पाँच बाण मार कर, उसको घायल कर दिया ॥३६॥

विकृष्येन्द्रजितो युद्धे वदने शुभकुण्डले ।
लक्ष्मणेन्द्रजितौ वीरौ महाबलशरासनौ ॥३७॥

अन्योन्यं जघ्नतुर्बाणैर्विशिखैर्भीमविक्रमौ ।
ततः शोणितदिग्धाङ्गौ लक्ष्मणेन्द्रजितावुभौ ॥३८॥

ये बाण, सुन्दर कुण्डलों से शोभित इन्द्रजीत के मुखमण्डल में लगे। इस प्रकार भयङ्कर विक्रमकारी महाबलवान एवं विशाल धनुषधारी वीर लक्ष्मण और इन्द्रजीत, बड़े पैने पैने बाणों से एक दूसरे को घायल करने लगे। इससे लक्ष्मण और इन्द्रजीत दोनों ही लोहू से नहा गये ॥३७॥३८॥

रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।
तौ परस्परमभ्येत्य सर्वगात्रेषु धन्विनौ ॥३९॥

घोरैर्विव्यधतुर्बाणैः कृतभावावुभौ जये ।
ततः समरकोपेन संयुक्तो रावणात्मजः ॥४०॥

उस समय समरभूमि में वे दोनों ऐसे जान पड़े, जैसे फूले हुए टेसू के दो वृक्ष। वे दोनों धनुषवारा एक दूसरे से भिड़ कर, विजय प्राप्त करने की अभिलाषा कर के, एक दूसरे को बाणों से घायल करने लगे। समरकोप से युक्त हो, रावणपुत्र इन्द्रजीत ने ॥३६॥४०॥

विभीषणं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध वदने शुभे।
अयोमुखैस्त्रिभिर्विद्ध्वा राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ॥४१॥

तीन बाण विभीषण के मुख पर मारे। लोहे की नोंकों वाले तीन बाणों से राक्षसेन्द्र विभीषण को घायल कर ॥४१॥

एकैकेनाभिविव्याध तान् सर्वान् हरियूथपान्।
तस्मै दृढतरं क्रुद्धो जघान गदया हयान् ॥४२॥
विभीषणो महातेजा रावणेः स दुरात्मनः।
स हताश्वादवप्लुत्य रथान्निहतसारथेः ॥४३॥

समस्त वानरयूथपतियों के एक एक बाण मार कर उनको घायल किया। इससे और भी अधिक क्रुद्ध हो, महातेजस्वी विभीषण ने उस दुरात्मा इन्द्रजीत के घोड़ों को गदा के प्रहार से मार डाला। रथ का सारथी तो पहिले ही मारा जा चुका था, अब घोड़ों के भी मारे जाने पर, इन्द्रजीत रथ से कूद पड़ा ॥४२॥४३॥

अथ शक्तिं महातेजाः पितृव्याय मुमोच ह।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य सुमित्रानन्दवर्धनः ॥४४॥

तब उस महातेजस्वी इन्द्रजीत ने एक शक्ति विभीषण के ऊपर फैंकी। उसको आते हुए देख लक्ष्मण जी ने ॥४४॥

चिच्छेद निशितैर्बाणैर्दशधा साऽपतद्भुवि ।
तस्मै दृढधनुः क्रुद्धो हताश्वाय विभीषणः ॥४५॥
वज्रस्पर्शसमान् पञ्च ससर्जोरसि मार्गणान् ।
ते तस्य कायं निर्भिद्य रुक्मपुङ्खा [1]निमित्तगाः ॥४६॥

पैने बाणों से काट डाला। उसके दस टूक हो गये और वह भूमि पर गिर पड़ी धनुषधारियों में श्रेष्ठ.विभीषण ने भी क्रोध में भर अश्वविहीन उस इन्द्रजीत की छाती में वज्र के समान पाँच बाण मारे। वे सुवर्ण पुङ्ख वाले लक्ष्यवेधी बाण, इन्द्रजीत के शरीर को फोड़ कर ॥४५॥४६॥

बभूवुर्लोहिता दिग्धा रक्ता इव महोरगाः ।
स पितृव्याय संक्रुद्ध इन्द्रजिच्छरमाददे ॥४७॥
उत्तमं रक्षसां मध्ये यमदत्तं महाबलः ।
तं समीक्ष्य महातेजा महेषुं तेन संहितम् ॥४८॥

लाल रंग के सर्पों की तरह, रक्त में तर हो गए। तब महाबली इन्द्रजीत ने क्रोध में भर राक्षसों में श्रेष्ठ अपने चचा विभीषण के ऊपर यम का दिया हुआ एक बाण चलाया। उस महाबाण को चलाते देख, महातेजस्वी ॥४७॥४८॥

लक्ष्मणोऽप्याददे बाणमन्यं भीमपराक्रमः ।
कुबेरेण स्वयं स्वप्ने स्वस्मै दत्तं महात्मना ॥४९॥

और भीम पराक्रमी लक्ष्मण जी ने भी एक बाण धनुष पर रखा। यह बाण स्वप्न में महात्मा कुबेर जी ने स्वयं लक्ष्मण जी को दिया था ॥४९॥

---

१ निमित्तगाः—लक्ष्यगाः। ( गो० )

दुर्जयं दुर्विषह्यं च सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तयोस्ते धनुषी श्रेष्ठे बाहुभिः परिघोपमैः ॥५०॥

यह बाण जैसा दुर्जेय था वैसा ही सुरों और असुरों में से किसी के सहने योग्य नहीं था—अथवा इसके प्रहार को कोई सह नहीं सकता था। जब उन दोनों ने अपनी अपनी परिघ समान भुजाओं से अपने अपने बाण अपने अपने धनुषों पर रख, ॥५०॥

विकृष्यमाणे बलवत् क्रौञ्चाविव चुकूजतुः ।
ताभ्यां तौ धनुषी श्रेष्ठे संहितौ सायकोत्तमौ ॥५१॥

बड़े ज़ोर से धनुषों के रोदों को कान तक खींचा, तब वे दोनों धनुष क्रौंच पक्षी की तरह ( चूँ चूँ ) शब्द करने लगे। धनुषों पर रखे हुए उन उत्तम बाणों को ॥५१॥

विकृष्यमाणौ वीराभ्यां भृशं जज्वलतुः श्रिया ।
तौ भासयन्तावाकाशं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ॥५२॥

मुखेन मुखमाहत्य सन्निपेततुरोजसा ।
सन्निपातस्तयोरासीच्छरयोर्घोररूपयोः ॥५३॥

( छोड़ने के लिए रोदे को ) जब उन दोनों वीरों ने कान तक खींचा, तब वे ( बाण ) अग्नि से प्रज्वलित हो गए। धनुषों से छूट कर वे दोनों आकाश में जा और प्रकाश करते हुए, आपस में टकरा कर बड़े ज़ोर से धरती पर गिर पड़े। उन भयंकर बाणों के आपस में टकरा कर भूमि पर गिरने से ॥५२॥५३॥

सधूमविस्फुलिङ्गश्च तज्जोऽग्निर्दारुणोऽभवत् ।
तौ महाग्रहसङ्काशावन्योन्यं सन्निपत्य च ॥५४॥

धुर के साथ साथ चिनगारियाँ निकलीं। फिर उससे बड़ी भयानक आग प्रकट हुई। वे दोनों दो महाग्रहों की तरह आपस में टकरा कर ॥५४॥

संग्रामे शतधा यान्तौ मेदिन्यां विनिपेततुः ।
शरौ प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्धनि ॥५५॥

उस समरभूमि में वे सौ सौ टुकड़े होकर धरती पर गिर पड़े समरभूमि में आपस में टकरा कर. उन दोनों शरों को व्यर्थ जाते देख ॥५५॥

व्रीडितौ जातरोषौ च लक्ष्मणेन्द्रजितौ तदा ।
सुसंरब्धस्तु सौमित्रिरस्त्रं वारुणमाददे ॥५६॥

लक्ष्मण और इन्द्रजीत केवल लज्जित ही नहीं हुए, बल्कि वे दोनों बहुत क्रुद्ध भी हुए। तब लक्ष्मण ने कुपित हो इन्द्रजीत के ऊपर वरुणास्त्र छोड़ा ॥५६॥

रौद्रं महेन्द्रजिद्युद्धेप्यसृजद्युधि निष्ठितः ।
तेन तद्विहतं त्वस्त्रं वारुणं परमाद्भुतम् ॥५७॥

तब समरप्रिय इन्द्रजीत ने रौद्रास्त्र छोड़ा। तब परमाद्भुत-रौद्रास्त्र द्वारा वरुणास्त्र के नष्ट होने पर ॥५७॥

ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिञ्जयः ।
आग्नेयं सन्दधे दीप्तं स लोकं संक्षिपन्निव ॥५८॥

समरविजयी एवं महातेजस्वी इन्द्रजीत ने क्रोध में भर मानों लोकों का संहार करने के लिये दीप्तिमान् आग्नेयास्त्र छोड़ा ॥५८॥

---

१ संक्षिपन्निव । संहरन्निव । ( रा० )

सौरेणास्त्रेण तद्वीरो लक्ष्मणः प्रत्यवारयत् ।
अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥५६॥

इस आग्नेयास्त्र को वीर लक्ष्मण ने सूर्यास्त्र से रोक दिआ। या व्यर्थ कर दिआ। आग्नेयास्त्र का रोका जाना देख, इन्द्रजीत अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥५६॥

असुरं शत्रुनाशाय घोरमस्त्रं समाददे ।
तस्माच्चापाद्विनिष्पेतुर्भास्वराः कूटमुद्गराः ॥६०॥
शूलानि च भुशुण्ड्यश्च गदाः खड्गाः परश्वधाः ।
तद्दृष्ट्वा लक्ष्मणः संख्ये घोरमस्त्रमथासुरम् ॥६१॥
अवार्यं सर्वभूतानां सर्वशत्रुविनाशनम् ।
महेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥६२॥

और शत्रु को नष्ट करने के लिए उसने भयङ्कर आसुरास्त्र को धनुष पर रखा। उसे धनुष पर रखते ही उससे चमचमाते काँटेदार मुद्गर, शूल, भुशुण्डी, गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे। जब समर में प्रवृत्त लक्ष्मण जी ने उस भयङ्कर आसुरास्त्र को, जो किसी प्राणी से रोका नहीं जा सकता था और समस्त शत्रुओं का नाश करने वाला था, देखा; तब उन कान्तिवान लक्ष्मण जी ने उस आसुरास्त्र को माहेश्वर से व्यर्थ कर दिआ ॥६०॥६१॥६२॥

तयोः सुतुमुलं युद्धं संबभूवाद्भुतोपमम् ।
गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन्[1] ॥६३॥

इस प्रकार जब उन दोनों का अभूतपूर्व युद्ध हुआ; तब

---

[1] पर्यवारयन्—स्वस्वरक्षार्थं तत्रतस्थुः। (शि०)

आकाशस्थित प्राणियों ने अपनी अपनी रक्षा के लिए लक्ष्मण जी को घेर लिया ॥६३॥

भैरवाभिरुते भीमे युद्धे वानररक्षसाम् ।
भूतैर्बहुभिराकाशं विस्मितैरावृतं बभौ ॥६४॥

उस समय वानरों और राक्षसों का बड़े भयङ्कर शब्द के साथ भयानक युद्ध होने पर आकाशस्थित बहुत से प्राणी चकित हो गए ॥६४॥

ऋषयः पितरो देवा गन्धर्वा गरुडोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ॥६५॥

उस समय समरभूमि में, ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़, सर्प, इन्द्र की अध्यक्षता में, लक्ष्मण की रक्षा करने लगे ॥६५॥

अथान्यं मार्गणश्रेष्ठं सन्दधे राघवानुजः ।
हुताशनसमस्पर्शं रावणात्मजदारणम् ॥६६॥
सुपत्रमनुवृत्ताङ्गं सुपर्वाणं सुसंस्थितम् ।
सुवर्णविकृतं वीरः शरीरान्तकरं शरम् ॥६७॥
दुरावारं दुर्विषह्यं राक्षसानां भयावहम् ।
आशीविषविषप्रख्यं देवसङ्घैः समर्चितम् ॥६८॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने एक ऐसा उत्तम बाण धनुष पर चढ़ाया जो छूने पर अग्नि की तरह जलाने वाला, इन्द्रजीत का नाश करने वाला, अच्छे पुङ्खों से युक्त, वर्तुलस्वरूप, अच्छी तरह बना हुआ, अच्छी गांसियों वाला, सुवर्णभूषित, शरीर को नष्ट करने वाला अथवा मृत्युदायी, कठिनता से रोका जाने वाला, दुस्सह, राक्षसों को डराने वाला, महाविषधर सर्प के विष के समान विषैला और देवताओं द्वारा पूजित (प्रशंसित) था ॥६६॥६७॥६८॥

**येन शक्रो महातेजा दानवानजयत्प्रभुः ।**
**पुरा दैवासुरे युद्धे वीर्यवान् हरिवाहनः ॥६९॥**

पूर्वकाल में वीर्यवान् हरिवाहन इन्द्र ने देवासुर-युद्ध में इसी बाण से दानवों को जीता था ॥६९॥

**तदैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।**
**शरश्रेष्ठं धनुःश्रेष्ठे नरश्रेष्ठोऽभिसन्दधे ॥७०॥**

युद्ध में कभी व्यर्थ न जाने वाले उसी ऐन्द्रास्त्र नामक उत्तम बाण को, नरों में श्रेष्ठ लक्ष्मण जी ने, अपने श्रेष्ठ धनुष पर रखा ॥७०॥

**सन्धायामित्रदलनं विचकर्ष शरासनम् ।**
**सज्यमायम्य दुर्धर्षं कालो[1] लोकक्षये यथा ॥७१॥**

लक्ष्मण जी ने उस दुर्धर्ष शत्रुदलनकारी एव लोकक्षयकारी यम के समान बाण को धनुष पर रखा ॥७१॥

[ टिप्पणी— उत्तर भारत के संस्करणो में यह श्लोक नही पाया जाता । ]

**सन्धाय धनुषि श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ।**
**लक्ष्मीवाँल्लक्ष्मणो वाक्यमर्थसाधकमात्मनः ॥७२॥**

अपने श्रेष्ठ धनुष पर उस बाण को रख और रोदे को खींच कान्तिवान् लक्ष्मण जी ने, अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए, यह कहा ॥७२॥

**धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि ।**
**पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वः शरैनं जहि रावणिम् ॥७३॥**

---

१ कालः—यमः ( गो० )

यदि दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा और सत्यवादी एवं अद्वितीय पराक्रमी हों, तो यह बाण इन्द्रजीत का वध करे ॥७३॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितं प्रति ॥७४॥

यह कह कर समर में वीरता दिखाने वाले लक्ष्मण जी ने उस सीधा जानेवाले बाण को कान तक खींच उसे इन्द्रजीत पर छोड़ा ॥७४॥

ऐन्द्रास्त्रेण समायोज्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
सशिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ॥७५॥

शत्रुहन्ता लक्ष्मण जी ने उस बाण को छोड़ते समय, उसे ऐन्द्रास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर दिया था। उसने पगड़ी और कुण्डलों से भूषितइन्द्रजीत का सिर ॥७५॥

प्रमथ्येन्द्रजितः कायात् पातयामास भूतले ।
तद्राक्षसतनूजस्य छिन्नस्कन्धं शिरो महत् ॥७६॥

शरीर से काट कर धरती पर गिरा दिया। उस राक्षसपुत्र का धड़ के कटा हुआ बड़ा भारी सिर ॥७६॥

तपनीयनिभं भूमौ ददृशे रुधिरोक्षितम् ।
हतस्तु निपपाताशु धरण्यां रावणात्मजः ॥७७॥
कवची सशिरस्त्राणो[1] विध्वस्तः सशरासनः ।
चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणाः ॥७८॥

भूमि पर पड़ा हुआ और रक्त से सना हुआ होने के कारण, सोने की तरह देख पड़ता था। इस प्रकार से कवच पगड़ी और,

---

१ शिरस्त्राण—शरीर को ढकने वाले कवच या वर्म की तरह सिर की रक्षा करने वाली लोहे की टोपी Steel Helmet

धनुषधारी रावणपुत्र इन्द्रजीत के मारे जाने और झट धरती पर गिर पड़ने पर, विभीषण सहित समस्त वानर चिल्ला उठे। (अर्थात् हर्षनाद करने लगे) ॥७७॥७८॥

हृष्यन्तो निहते तस्मिन् देवा वृत्रवधे यथा।
अथान्तरिक्षे देवानामृषीणां च महात्मनाम् ॥७९॥

जज्ञेऽथ जयसन्नादो गन्धर्वाप्सरसामपि।
पतितं तमभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः ॥८०॥

इन्द्रजीत के मारे जाने पर वे सब वैसे ही हर्षित हुए, जैसे वृत्रासुर के मारे जाने पर देवता प्रसन्न हुए थे। उधर आकाश में देवताओं, ऋषियों, महात्माओं, गन्धर्वों और अप्सराओं का जय जयकार का शब्द हो उठा। इस प्रकार इन्द्रजीत को मरा हुआ जान, राक्षसों की महती सेना ॥७९॥८०॥

वध्यमाना दिशो भेजे हरिभिर्जितकाशिभिः।
वानरैर्वध्यमानास्ते शस्त्राण्युत्सृज्य राक्षसाः ॥८१॥

विजई वानरों द्वारा मृतप्राय हो चारों ओर भाग खड़ी हुई। वानरों द्वारा मार खाते हुए राक्षस, हथियार पटक पटक कर ॥८१॥

लङ्कामभिमुखाः सस्रुर्नष्टसंज्ञाः प्रधाविताः।
दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ॥८२॥

और चेतनाशून्य हो (होशहवास गँवा) लङ्का की ओर भाग गए। वानरों से भयभीत हो सैकड़ों राक्षस इधर उधर भाग ॥८२॥

त्यक्त्वा प्रहरणान् सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ।
केचिल्लङ्कां परित्रस्ताः प्रविष्टा वानरार्दिताः ॥८३॥

वे पटा, तलवार, फरसा आदि हथियारों को छोड़ छोड़ कर भागे। उनमें से कोई कोई तो वानरों से पीड़ित और भयभीत हो लङ्का में घुस गए, ॥८३॥

समुद्रे पतिताः केचित्केचित्पर्वतमाश्रिताः ।
हतमिन्द्रजितं दृष्ट्वा शयानं समरक्षितौ ॥८४॥

कोई कोई समुद्र में गिर पड़े और कोई कोई पर्वतों के ऊपर चढ़ गए। समरभूमि में इन्द्रजीत को मरा पड़ा देख ॥८४॥

राक्षसानां सहस्रेषु न कश्चित् प्रत्यदृश्यत ।
यथास्तंगत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ॥८५॥

सहस्रों राक्षसों में से किसी एक ने भी समरभूमि की ओर एक बार भी मुड़कर न देखा। जिस प्रकार सूर्य के अस्त होने पर उसकी किरणें नहीं ठहरतीं; ॥८५॥

तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गता दिशः ।
शान्तरश्मिरिवादित्यो निर्वाण इव पावकः ॥८६॥

स बभूव महातेजा [१]व्यपास्तगतजीवितः ।
प्रशान्तपीडाबहुलो विनष्टारिः प्रहर्षवान् ॥८७॥

उसी प्रकार इन्द्रजीत के लड़ाई में गिरते ही राक्षस भी समरभूमि में न ठहर सके और चारो ओर भाग गए जिस प्रकार बिना

१ व्यपास्तगतजीवितः—विक्षिप्तागौगतजीवितश्च । ( गो० )

किरणों का सूर्य और बुझी हुई आग दिखलाई पड़ती है, उसी प्रकार मरा हुआ इन्द्रजीत जिसके कटे हुए अङ्ग प्रत्यङ्ग बिखर पड़े थे, देख पड़ता था। जिनको वह दुःख देता था, उनकी पीड़ा दूर हो गई और अपने शत्रु के मारे जाने से, वे सब अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥८६॥८७॥

बभूव लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते तदा ।
हर्षं च शक्रो भगवान् सह सर्वैः सुरर्षभैः ॥८८॥
जगाम निहते तस्मिन् राक्षसे पापकर्मणि ।
आकाशे चापि देवानां शुश्रुवे दुन्दुभिस्वनः ॥८९॥

राक्षसेन्द्र रावण के इस पुत्र के मारे जाने से लोकपाल भी प्रसन्न हुए। महर्षियों सहित भगवान् इन्द्र को तो इस पापी राक्षस के मारे जाने से बड़ी प्रसन्नता प्राप्त हुई। आकाश में देवताओं के बजाये हुए नगाड़ों की ध्वनि सुन पड़ी ॥८८॥८९॥

नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ।
ववृषुः पुष्पवर्षाणि तदद्भुतमभूत्तदा ॥९०॥

तथा अप्सराएँ नाचने लगीं और बड़े बड़े गन्धर्व गाने लगे। आकाश से पुष्पों की वृष्टि हुई। ये सभी काम विस्मयकारी थे ॥९०॥

प्रशशंसुर्हते तस्मिन् राक्षसे क्रूरकर्मणि ।
शुद्धा आपो दिशश्चैव जहृषुर्दैत्यदानवाः ॥९१॥

उस निष्ठुर कर्म करनेवाले राक्षस के मारे जाने पर, देवताओं ने लक्ष्मण जी के पराक्रम की बड़ी प्रशंसा की। जल और दिशाएँ

निर्मल हो गईं। समस्त दैत्यों और दानवों ने प्रसन्नता प्रकट की ॥६१॥

आजग्मुः पतिते तस्मिन् सर्वलोकभयावहे ।
ऊचुश्च सहिताः सर्वे देवगन्धर्वदानवाः ॥६२॥

समस्त लोकों को भयभीत करने वाले, उस इन्द्रजीत के मारे जाने पर, समस्त देवता, गन्धर्व और दानव वहाँ आए और वे सब मिल कर बोले ॥६२॥

विज्वराः शान्तकलुषा ब्राह्मणा विचरन्त्विति ।
ततोऽभ्यनन्दन् संहृष्टाः समरे हरियूथपाः ॥६३॥

तमप्रतिबलं दृष्ट्वा हतं नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ॥६४॥

इन्द्रजीत के मारे जाने से मानों (शरीरधारी) पाप ही दूर हो गया। अब ब्राह्मण लोग निश्चिन्त अर्थात् निर्भय हो बिचरेंगे अथवा अब अत्याचारों और पापों से रहित हो, ब्राह्मण बिचरेंगे। वानरयूथपति, उस अनुपम बलवाले राक्षसश्रेष्ठ को मरा हुआ देख, हर्षित हो, लक्ष्मण जी की प्रशंसा करने लगे। विभीषण, हनुमान् और भालुओं की सेना के यूथपति जाम्बवान् ॥६३॥६४॥

विजयेनाभिनन्दन्तस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ।
क्ष्वेलन्तश्च नदन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ॥६५॥

जयजयकार कह कह कर, लक्ष्मण जी की प्रशंसा कर रहे थे। वानर सिंहनाद करते थे, पूँछे ऊँची कर करके या पूँछें भूमि पर पटक पटक कर उच्च स्वर से चिल्लाते थे और गरजते थे ॥६५॥

[1]लब्धलक्षा रघुसुतं परिवार्योपतस्थिरे ।
लाङ्गूलानि प्रविध्यन्तः स्फोटयन्तश्च वानराः ॥६६॥
लक्ष्मणो जयतीत्येवं वाक्यं विश्रावयंस्तदा ।
अन्योन्यं च समाश्लिष्य कपयो हृष्टमानसाः ।
चक्रुरुच्चावचगुणा राघवाश्रयजाः कथाः ॥६७॥

यह हर्ष का अवसर प्राप्त कर वे सब वानर लक्ष्मण जी को घेरे हुए खड़े थे और अपनी पूँछों को घुमाते और फटकारते थे। वे सब लक्ष्मण जी का जय, लक्ष्मण जी का जय का जयकारा उच्च स्वर से लगा कर, सब को सुना रहे थे। वे वानर हर्षित हो एक दूसरे के गले लग कर परस्पर मिल भेंट रहे थे और लक्ष्मण जी की शूरवीरता की चर्चा, उन सब को जिह्वा पर थी अथवा वे उच्चस्वर से लक्ष्मण जी का गुणगान कर रहे थे ॥६६॥६७॥

तद्[2]सुकरमथाभिवीक्ष्य हृष्टाः
प्रियसुहृदो युधि लक्ष्मणस्य कर्म ।
परममुपलभन्मनःप्रहर्षं
विनिहतमिन्द्ररिपुं निशम्य देवाः ॥६८॥

इति एकनवतितमः सर्गः ॥

उस युद्ध में सर्वप्रिय एवं सर्वहितैषी लक्ष्मण के हाथ से इन्द्रजीत के मारे जाने का दुष्कर कर्म देख, समस्त देवता अपने मनों में अत्यन्त हर्षित हुए ॥६८॥

युद्धकाण्ड का एक्यानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

१ लब्धलक्षाः—प्राप्तहर्षावसराः। (रा०) २ असुकरं—दुष्करं। (गो०)

## द्विनवतितमः सर्गः

—:o:—

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शक्रजेतारमाहवे ॥१॥

इस युद्ध में घायल होने के कारण शुभ लक्षणों से युक्त लक्ष्मण का सारा शरीर रक्तरञ्जित हो गया था। युद्ध में उस इन्द्रजीत का वध कर वे प्रसन्न हुए ॥१॥

ततः स जाम्बवन्तं च हनुमन्तं च वीर्यवान् ।
*सन्निवर्त्य महातेजास्तांश्च सर्वान् वनौकसः ॥२॥

तदनन्तर वे जाम्बवान् और बलवान हनुमान् तथा समस्त वानरों को लौटा कर, महातेजस्वी लक्ष्मण जी (युद्ध में घायल हो जाने के कारण) ॥२॥

आजगाम ततस्तीव्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥३॥

हनुमान और विभीषण का सहारा ले, वहाँ पहुँचे, जहाँ सुग्रीवसहित श्रीरामचन्द्र जी थे ॥३॥

ततो राममभिक्रम्य सौमित्रिरभिवाद्य च ।
तस्थौ भ्रातृसमीपस्थ †शक्रस्येन्द्रानुजो यथा ॥४॥

श्रीरामचन्द्र जी के समीप पहुँच लक्ष्मण जी ने उनको प्रणाम किया और वे श्रीरामचन्द्र जी के पास खड़े हो गए, मानों इन्द्र के पास उनके छोटे भाई खड़े हों ॥४॥

---

* पाठान्तरे—"सन्निहत्य।" † पाठान्तरे—"इन्द्रस्येव बृहस्पतिः।"

निष्टनन्निव चागम्य राघवाय महात्मने ।
आचचक्षे तदा वीरो घोरामिन्द्रजितो वधम् ॥५॥
रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥६॥

तदनन्तर हर्षित हो वीर विभीषण ने, इन्द्रजीत के मारे जाने का संवाद कहा। वे बोले—महाराज! महाबलवान लक्ष्मण जी ने इन्द्रजीत का सिर काट कर गिरा दिया ॥५॥६॥

श्रुत्वा तत्तु महावीर्यो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्वधम् ।
प्रहर्षमतुलं लेभे रामो वाक्यमुवाच ह ॥७॥

महापराक्रमी श्री रामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी द्वारा मेघनाद का मारा जाना सुन, अत्यन्त हर्षित हो, लक्ष्मण जी से बोले ॥७॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्मणा सुकृतं कृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥८॥

हे लक्ष्मण! तुम धन्य हो! तुम्हारे इस उत्तम कर्म को देख मैं बड़ा सन्तुष्ट हुआ हूँ। क्योंकि जब इन्द्रजीत मारा जा चुका, तब अपनी जीत ही समझनी चाहिए ॥८॥

स तं शिरस्युपाघ्राय लक्ष्मणं लक्ष्मिवर्धनम् ।
लज्जमानं बलात्स्नेहादङ्कमारोप्य वीर्यवान् ॥९॥

श्रीरामचन्द्र जी ने यह कह कर शोभा बढ़ाने वाले श्रीलक्ष्मण जी का सिर सूँघा और लज्जित होते हुए लक्ष्मण जी को बरजोरी अपनी गोदी में बैठा लिया ॥९॥

उपवेश्य तमुत्सङ्गे परिष्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनःपुनरुदैक्षत ॥१०॥

श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण जी को गोदी में बैठा, उनको ज़ोर से अपनी छाती से लिपटाया तथा बारंबार उनको स्नेहभरी दृष्टि से निहारा ॥१०॥

शल्यसम्पीडितं शस्तं निःश्वसन्तं तु लक्ष्मणम् ।
रामस्तु दुःखसन्तप्तस्तदा निःश्वसितो भृशम् ॥११॥

बाणों की चोट से पीड़ित, घाव खाए हुए और हाँफते हुए लक्ष्मण को देख, श्रीरामचन्द्र जी दुःखी और सन्तापित हुए तथा बार बार उसाँसे लेने लगे ॥११॥

मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्य पुरुषर्षभः ॥१२॥

पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी ने पुनः लक्ष्मण का सिर सूँघा और वे उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए उनको ढाढ़स बँधा, उनसे कहने लगे ॥१२॥

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥१३॥

इस दुष्करकर्म को कर, तुमने परम कल्याणकारी कर्म किया है। इन्द्रजीत के मारे जाने से मैं तो समझता हूँ कि, आज युद्ध में रावण मारा गया। अथवा पुत्र के मारे जाने से रावण को भी मारा हुआ ही मैं समझता हूँ ॥१३॥

अद्याहं विजयी शत्रौ हते तस्मिन् दुरात्मनि ।
रावणस्य नृशंसस्य दिष्ट्या वीर त्वया रणे ॥१४॥

आज उस दुष्ट बैरी के मारे जाने से मैं अपने को समर-विजयी समझता हूँ। हे वीर! यह सौभाग्य की बात है कि, तुमने आज युद्ध में उस निष्ठुर को ॥१४॥

छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य १व्यपाश्रयः।
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥१५॥

दहिनी भुजा, जो उसका बड़ा सहारा थी, काट डाली विभीषण और हनुमान् ने भी इस लड़ाई में बड़ा काम किया ॥१५॥

अहोरात्रैस्त्रिभिर्वीरः कथञ्चिद्विनिपातितः।
निरमित्रः कृतोऽस्म्यद्य निर्यास्यति हि रावणः ॥१६॥
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम्।
तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ॥१७॥
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम्।
त्वया लक्ष्मण नाथेन सीता च पृथिवी च मे ॥१८॥

तीन दिन और तीन रात में वह किसी तरह मारा गया। इस समय मैं बैरीहीन हो गया। अपने पुत्र का मारा जाना सुन, बड़ी भारी सेना का साथ ले, रावण अब निकलेगा। पुत्रवध से सन्तप्त, साथ में बड़ी सेना लिये हुए राक्षसराज रावण के बाहिर निकलने पर, उस दुर्जेय का मैं वध करूँगा। हे लक्ष्मण! तुम्हारी सहायता से सीता और क्या (इस समूची) पृथिवी का राज्य ॥१६॥१७॥१८॥

न दुष्प्रापा हते त्वद्य शक्रजेतरि चाहवे।
स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ॥१९॥

१ व्यपाश्रयः—आलम्बनं। (गो०)

मेरे लिए अब दुष्प्राप्य नहीं है। क्योंकि लड़ाई में इन्द्रजीत आज तुम्हारे हाथ से मारा ही जा चुका है। इस प्रकार लक्ष्मण को ढाढ़स बँधाते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने, पुनः उनको अपने हृदय से लगाया ॥१६॥

रामः सुषेणं मुदितः [1]समाभाष्येदमब्रवीत् ।
सशल्योऽयं महाप्राज्ञ सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ॥२०॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी ने प्रसन्न हो और सुषेण को बुला कर उनसे कहा—हे महाप्राज्ञ ! मित्रवत्सल लक्ष्मण जी बाणों की चोट से पीड़ित हैं ॥२०॥

[टिप्पणी—सुषेण श्रीरामचन्द्र जी की सेना के एक वानरयूथपति थे। वह लंका के राजवैद्य न थे। जैसा कि उनके सम्बन्ध में एक प्रवाद प्रचलित है। इस सर्ग का श्लोक २३ देखो।]

यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं [2]समुपाचर ।
विशल्यः क्रियतां क्षिप्रं सौमित्रिः सविभीषणः ॥२१॥

सो तुम ऐसी कोई चिकित्सा करो, जिससे इनकी पीड़ा दूर हो कर यह स्वस्थ हो जायँ। लक्ष्मण और विभीषण की बाण-पीड़ा तुरन्त दूर हो जानी चाहिए ॥२१॥

ऋक्षवानरसैन्यानां शूराणां द्रुमयोधिनाम् ।
ये चाप्यन्येऽत्र युध्यन्ति सशल्या व्रणिनस्तथा ॥२२॥

रीछों और वानरों की सेनाओं के पेड़ों से लड़ने वाले, जो वीर तथा अन्य योद्धा तीरों से घायल हो गए हैं ॥२२॥

---

१ समाभाष्य आमन्त्र्य। (गो०) २ समुपाचर—चिकित्सांकुरु (गो०)

तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन क्रियन्तां सुखिनस्त्वया ।
एवमुक्तस्तु रामेण महात्मा हरियूथपः ॥२३॥

उन सब को भी यत्नपूर्वक तुम चंगा कर दो। जब महात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने वानरयूथपति सुषेण से इस प्रकार कहा ॥२३॥

लक्ष्मणाय ददौ नस्तः[१] सुषेणः परमौषधिम् ।
स तस्या गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ॥२४॥

तब सुषेण ने लक्ष्मण को एक उत्तम औषधि का नास दिया। उसको सूँघते ही लक्ष्मण जी के घावों में जो बाणों की नोंके गड़ी हुई थीं, वे अपने आप बाहिर निकल पड़ीं ॥२४॥

तथा निर्वेदनश्चैव संरूढव्रण एव च ।
बिभीषणमुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सां स तदाकरोत् ॥२५॥

सारे घाव पुर गए और पीड़ा भी दूर हो गई । तदनन्तर सुषेण ने श्रीरामचन्द्र जी के आज्ञानुसार बिभीषण प्रमुख, हितैषियों का तथा समस्त मुख्य मुख्य वानरों की भी चिकित्सा की ॥२५॥

ततः प्रकृतिमापन्नो हृतशल्यो गतव्यथः ।
सौमित्रिर्मुदितस्तत्र क्षणेन विगतज्वरः ॥२६॥

उस चिकित्सा से उन सब के शरीरों में धँसे हुए बाण निकल गए, घाव पुर गए और पीड़ा दूर हो गई। वे सब स्वस्थ हो

---

१ नस्तः—नासिकयाँ ( गो० )

गए। क्षण भर में सारी वेदना दूर हो जाने से लक्ष्मण जी हर्षित हुए ॥२६॥

तथैव रामः प्लवगाधिपस्तदा
विभीषणश्चर्क्षपतिश्च जाम्बवान्।
अवेक्ष्य सौमित्रिमरोगमुत्थितं
मुदा ससैन्याः सुचिरं जहर्षिरे ॥२७॥

लक्ष्मण जी को चंगे हो कर उठ बैठते देख, समस्त वानरी सेना सहित श्रीरामचन्द्र जी, वानरराज सुग्रीव, राक्षसराज बिभीषण और ऋक्षपति जाम्बवान् बहुत देर तक आनन्द मनाते रहे ॥२७॥

अपूजयत् कर्म स लक्ष्मणस्य
सुदुष्करं दाशरथिर्महात्मा।
हृष्टा बभूवुर्युधि यूथपेन्द्रा
निपातितं शक्रजितं निशम्य ॥२८॥

इति द्विनवतितमः सर्गः

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने, लक्ष्मण जी के उस अत्यन्त दुष्कर कर्म की बहुत प्रशंसा की और वानरयूथपतियों के राजा सुग्रीव, लड़ाई में इन्द्रजीत का मारा जाना सुन, हर्षित हुए ॥२८॥

[ टिप्पणी— तुलसीदास ने अपने रामचरितमानस में सुषेण को रावण का गृहचिकित्सक (Family.Doctor) बतलाया है, किन्तु इस आदिकाव्यसे उनके इस कथन का मिलान नहीं होता। क्योंकि २३ वें

श्लोक में सुषेण का विशेषण " हरियूथपः " आया है। इससे स्पष्ट जान पड़ता है कि, सुषेण वानरी सेना के एक सेनापति थे और वे युद्ध सम्बन्धी घावों की चिकित्सा करने में बड़े निपुण थे। महात्मा तुलसीदास जी की इतिहासविरुद्ध उक्त कल्पना किस आधार पर अवलम्बित है—यह बतलाना कठिन है। ]

युद्धकाण्ड का बानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ।



## त्रिणवतितमः सर्गः



**ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितं हतम्।**
**आचचक्षुरवज्ञाय[1] दशग्रीवाय सत्वराः ॥१॥**

( युद्ध छोड़ कर भागे हुए राक्षसों से ) इन्द्रजीत के मारे जाने का वृत्तान्त सुन, रावण के मंत्रिओं ने समस्त सत्पुरुषों का अनादर करने वाले दशग्रीव को, तुरन्त वह समस्त वृत्तान्त कह सुनाया ॥१॥

**युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः।**
**बिभीषणसहायेन [2]मिषतां नो महाद्युतिः ॥२॥**

महाराज ! लक्ष्मण ने लड़ाई में, विभीषण की सहायता से हम लोगों के देखते देखते तुम्हारे महाद्युतिमान इन्द्रजीत को मार डाला ॥२॥

---

१ अवज्ञाय—सर्वसत्पुरुषानादरकर्त्रे दशग्रीवाय। ( शि० ) २ मिषतांनः—अस्मासु पश्यत्सु। ( गो० )

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते [1]विबुधेन्द्रजित् ॥३॥

हे राजन्! जो वीर रणभूमि में कभी किसी से नहीं हारा था, तुम्हारा वही शूर पुत्र इन्द्रजीत वीर लक्ष्मण के साथ लड़ कर, लक्ष्मण द्वारा मार डाला गया ॥३॥

गतः स परमाँल्लोकाञ्शरैः सन्तर्प्य लक्ष्मणम् ।
स तं [2]प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ॥४॥
[3]घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं[4] चाविशत् महत् ।
उपलभ्य चिरात् संज्ञां राजा राक्षसपुङ्गवः ॥५॥

लक्ष्मण को बाणों से तृप्त कर, वह उत्कृष्ट लोकों में चला गया। युद्ध में इस प्रकार अपने पुत्र इन्द्रजीत के मारे जाने का दारुण और अति भयङ्कर वृत्तान्त सुन, रावण को एक साथ बड़ी भारी मूर्च्छा आ गई। तदनन्तर बहुत देर बाद, जब उसकी मूर्च्छा दूर हुई, तब राक्षसों में श्रेष्ठ राजा रावण ॥४॥५॥

पुत्रशोकार्दितो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ।
हा राक्षसचमूमुख्य मम वत्स महारथ ॥६॥

पुत्रशोक से विकल, व्यथित और दुःखी हो विलाप कर, कहने लगा—हाँ राक्षससेना के सेनापति! हा मेरे पुत्र! हे महारथी! ॥६॥

जित्वेन्द्रं कथमद्य त्वं लक्ष्मणस्य वशं गतः ।
ननु त्वमिषुभिः क्रुद्धो भिन्द्याः कालान्तकावपि ॥७॥

---

१ विबुधेन्द्रजित्—देवेन्द्रजित् (गो०) २ प्रतिभय—अति-भयङ्करम्। (रा०) ३ घोरं—तीक्ष्णं। (गो०) ४ कश्मलं—मूर्च्छाम्। (गो०)

तू तो इन्द्र तक को जीतने वाला था, सो तू आज क्यों कर लक्ष्मण के फंदे में फँस गया। बेटा! तू तो क्रुद्ध होने पर चाहता तो बाणों से काल को भी छिन्न भिन्न कर सकता था ॥७॥

मन्दरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्लक्ष्मणं युधि ।
अद्य वैवस्वतो राजा भूयो बहुमतो मम ॥८॥

तू तो मन्दराचल के शिखरों को भी ध्वस्त कर सकता था। फिर लड़ाई में तेरे सामने लक्ष्मण की बिसाँत ही क्या थी? मैंने आज उन यमराज का अतिशय महत्व समझा ॥८॥

येनाद्य त्वं महाबाहो संयुक्तः कालधर्मणा ।
एष पन्थाः सुयोधानां सर्वामरगणेष्वपि ॥९॥

जिन्होंने आज तुझ जैसे महाबलवान् को भी मारडाला। केवल बड़े बड़े वीर नर, राक्षस, दानवादि योद्धाओं ही के लिए नहीं; प्रत्युत समस्त देवताओं के लिए भी यही मार्ग है ॥९॥

[ टिप्पणी—अर्थात् देवता तक यही अभिलाषा रखते हैं कि, हम युद्ध में वीरगति को प्राप्त हों, अतः मुझे तेरी वीरगतिप्राप्ति के लिए दुःख नहीं है। ( रा० ) ]

यः कृते हन्यते भर्तुः स पुमान् स्वर्गमृच्छति ।
अद्य देवगणाः सर्वे लोकपालास्तथर्षयः ॥१०॥

हतमिन्द्रजितं श्रुत्वा सुखं स्वप्स्यन्ति निर्भयाः ।
अद्य लोकास्त्रयः कृत्स्ना पृथिवी च सकानना ॥११॥

जो अपने मालिक के लिए प्राण गँवाता है, उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है! आज समस्त देवता, लोकपाल और महर्षिगण,

इन्द्रजीत का वध सुन, निर्भय हो सुख से सोवेंगे। आज तीनों लोक और वनों सहित सारी पृथिवी ॥१०॥११॥

एकेनेन्द्रजिता हीना शून्येव प्रतिभाति मे।
अद्य नैर्ऋतकन्यानां श्रोष्याम्यन्तःपुरे रवम् ॥१२॥

एक इन्द्रजीत के बिना मुझे सूनी सी जान पड़ती है। हा! आज मैं लङ्का के अन्तःपुर (रनवास) में राक्षसकन्याओं का वैसा ही विलाप सुनूँगा ॥१२॥

करेणुसङ्घस्य यथा निनादं गिरिगह्वरे।
यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परन्तप ॥१३॥
मातरं मां च भार्यां च क्व गतोऽसि विहाय नः।
मम नाम त्वया वीर गतस्य यमसादनम् ॥१४॥

जैसे कि, हथिनियों का चीत्कार पर्वतकन्दरा में सुनाई पड़ता है। हे शत्रुदमनकारी! युवराज पद को, लङ्का को, राक्षस को, अपनी माता को, मुझको, अपनी भार्या को तथा हम सभी को छोड़, तू कहाँ चला गया? हे वीर! तेरे लिए तो यही उचित था कि, मेरे मरने पर ॥१३॥१४॥

प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे।
स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणे च सराघवे ॥१५॥
मम शल्यमनुद्धृत्य क्व गतोऽसि विहाय नः।
एवमादिविलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ॥१६॥

तू मेरा और्ध्वदेहिक कृत्य करता; किन्तु यहाँ तो उल्टी ही बात हो रही है। अर्थात् मुझे तेरा और्ध्वदेहिक कृत्य करना पड़ता

है। हा! सुग्रीव, लक्ष्मण और राम—इन तीनों को जीवित छोड़ और मेरे काँटे को निकाले बिना, हम सब को छोड़, तू कहाँ चला गया? राक्षसराज रावण इस प्रकार विलाप कर रहा था ॥१५॥१६॥

आविवेश महान् कोपः पुत्रव्यसनसम्भवः।
प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः[१] ॥१७॥

कि, पुत्र के मारे जाने के कारण वह अत्यन्त कुपित हुआ। एक तो वह स्वभाव ही से क्रोधी था, तिस पर पुत्रवध का शोक ॥१७॥

दीप्तं सन्दीपयामासुर्घर्मेऽर्कमिव रश्मयः।
ललाटे भ्रुकुटीभिश्च सङ्गताभिर्व्यरोचत ॥१८॥

सो क्रोध ने उसे वैसे ही प्रज्वलित कर दिया, जैसे गर्मी की ऋतु में सूर्य को उसकी किरणें प्रज्वलित कर देती हैं। (क्रोध के कारण) ललाट में उसकी मिली हुई भौंहें, वैसे ही शोभायमान हुईं ॥१८॥

युगान्ते सह नक्रैस्तु महोर्मिभिरिवोदधिः।
कोपाद्विजृम्भमाणस्य वक्त्राद्व्यक्तमभिज्वलन् ॥१९॥
उत्पपात स धूमोऽग्निर्वृत्रस्य वदनादिव।
स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ॥२०॥

जैसे प्रलयकाल में नाकों और लहरों से महासागर शोभायमान होता है। क्रोध से जब उसने जँभाई ली, तब उसके मुख से धूम सहित आग की लपट वैसे ही निकली; जैसे वृत्रासुर के मुख से

१ आधयः—शोकाः। (गो०)

निकली थी। वह शूर रावण, पुत्र के मारे जाने से सन्तप्त हो क्रोध के वशवर्ती हो गया ॥१६॥२०॥

समीक्ष्य रावणो बुद्धया वैदेह्या रोचयद्वधम्।
तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनाऽपि च ॥२१॥

(उस समय उस क्रोधावेश में उससे और तो कुछ करते धरते बन न पड़ा; किन्तु) बहुत सोच विचार के बाद उसे जानकी जी का वध करना ठीक जान पड़ा। उसके नेत्र वैसे ही स्वभाव से लाल थे, तिस पर इस समय मारे क्रोध के और भी लाल हो रहे थे ॥२१॥

रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः।
घोरं प्रकृत्या रूपं तत्तस्य क्रोधाग्निमूर्च्छितम् ॥२२॥

बभूव रूपं क्रुद्धस्य रुद्रस्येव दुरासदम्।
तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नस्रबिन्दवः ॥२३॥

रावण की आँखें आग के समान दहकती हुई भयङ्कर जान पड़ने लगीं। अतएव क्रुद्ध रावण का स्वभावतः भयङ्कर रूप, रुद्र की तरह दुर्धर्ष हो गया। उस क्रोधी रावण के नेत्रों से आँसू की बूँदें वैसे ही टपकीं ॥२२॥२३॥

दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः।
दन्तान् विदशतस्तस्य श्रूयते दशनस्वनः ॥२४॥

जैसे जलते हुए दीपकों से चिनगारियों के साथ तेल की बूँदें टपक पड़ी हैं। दाँतों को पीसते हुए उसकी दाँती पीसने का शब्द ऐसा सुन पड़ा ॥२४॥

१यन्त्रस्यावेष्ट्यमानस्य२ महतो दानवैरिव३ ।
कालाग्निरिव संक्रुद्धो यां यां दिशमवैक्षत ॥२५॥

जैसे कि, दानवी बल से घूमते हुए कोल्हू का शब्द होता है । प्रलयकाल के अग्नि की तरह अत्यन्त क्रुद्ध रावण जिस जिस ओर देखने लगता ।२५॥

तस्यां तस्यां भयत्रस्ता राक्षसाः संविलिल्यिरे ।
तमन्तकमिव क्रुद्धं चराचरचिखादिषुम् ॥२६॥

उस उस ओर बैठे या खड़े हुए राक्षसों में सन्नाटा छा जाता था । उस समय मृत्यु की तरह क्रोध में भर, मानों चराचर को भक्षण करने की इच्छा रखता हुआ रावण ॥२६॥

वीक्षमाणं दिशः सर्वा राक्षसा नोपचक्रमुः ।
ततः परमसंक्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥२७॥

जब इधर उधर देखने लगता था, तब उसके समीप जाने का किसी भी राक्षस को साहस नहीं होता था । तदनन्तर अत्यन्त कोपमें भरे राक्षसराज रावण ने ॥२७॥

अब्रवीद्रक्षसां मध्ये ४संस्तम्भयिषुराहवे ।
मया वर्षसहस्राणि चरित्वा दुश्चरं तपः ॥२८॥

राक्षसों के बीच, युद्ध से डरे हुए राक्षसों को युद्ध में पुनः प्रवृत्त करने की कामना से, कहा । मैंने एक एक सहस्र वर्षों तक

१ यन्त्रस्य—तिलपीडनयन्त्रस्य । (गो० ) २ आवेष्ट्यमानस्य—भ्राम्यमाणस्य । (गो० ) ३ दानवैर्बलवद्भिरित्यर्थः । (गो०) ४ संस्तम्भयिषुराहवे—युद्धभीतान् राक्षसान् युद्धे स्थापयितुकामः । (गो०)

ऐसा कठोर तप किया है कि, जिसे कोई दूसरा सहज में नहीं कर सकता ॥२८॥

तेषु तेष्ववकाशेषु[1] स्वयंभूः परितोषितः ।
तस्यैव तपसो व्युष्ट्या[2] प्रसादाच्च स्वयंभुवः ॥२९॥

और एक एक सहस्र वर्षों बाद तप की समाप्ति के समय मैंने ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया है। उसी तपस्या के फल से और ब्रह्मा जी के अनुग्रह से ॥२९॥

नासुरेभ्यो न देवेभ्यो भयं मम कदाचन ।
कवचं ब्रह्मदत्तं मे यदादित्यसमप्रभम् ॥३०॥

मुझे न तो कभी असुरों से और न कभी सुरों से भय उत्पन्न हुआ। ब्रह्मा जी ने सूर्य की तरह चमचमाता जो कवच मुझे दिया है ॥३०॥

देवासुरविमर्देषु न भिन्नं वज्रशक्तिभिः ।
तेन मामद्य संयुक्तं रथस्थमिह संयुगे ॥३१॥

वह कवच वज्र से भी उस समय भी नहीं टूटा ; जिस समय कि मुझसे और देवताओं से युद्ध हुआ था। उसी कवच को पहिन और रथ पर सवार हो, मैं जब युद्धभूमि में जाऊँगा ॥३१॥

प्रतीयात् कोऽद्य मामाजौ साक्षादपि पुरन्दरः ।
यत्तदाऽभिप्रसन्नेन सशरं कार्मुकं महत् ॥३२॥

---

१ अवकाशेषु—तपःसमाप्तिषु । ( गो० ) २ व्युष्टा—समृद्ध्या । ( गो० )

देवासुरविमर्देषु मम दत्तं स्वयंभुवा ।
अद्य तूर्यशतैर्भीमं धनुरुत्थाप्यतां मम ॥३३॥
रामलक्ष्मणयोरेव वधाय परमाहवे ।
स पुत्रवधसन्तप्तः शूरः क्रोधवशं गतः ॥३४॥

तब किसमें इतनी शक्ति है जो मेरा सामना करे। और की बात ही क्या; स्वयं इन्द्र भी मेरा सामना नहीं कर सकता। देवासुरसंग्राम के समय ब्रह्मा ने प्रसन्न हो जो बाणों सहित विशाल धनुष मुझे दिया है, महायुद्ध में राम और लक्ष्मण के वध के लिए, आज सैकड़ों तुरहियाँ बजाते हुए, हे राक्षसो! तुम उस मेरे भयङ्कर धनुष को उठा लाओ। इस प्रकार पुत्रवध के शोक से सन्तप्त, वह शूर रावण, क्रोध के वशवर्ती हो गया ॥३२॥३३॥३४॥

समीक्ष्य रावणो बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत ।
प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो[१] घोरदर्शनः ॥३५॥

बहुत सोच विचार कर रावण, सीता का वध करने को उद्यत हुआ। भयङ्कर स्वभाव वाला और भयानक रूपवाला रावण, लाल लाल नेत्रों से राक्षसों की ओर देख, ॥३५॥

दीनो दीनस्वरान् सर्वान् स्वानुवाच निशाचरान् ।
मायया मम वत्सेन वञ्चनार्थं वनौकसाम् ॥३६॥
किञ्चिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ।
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ॥३७॥

---

१ सुघोरः—सुघोरप्रकृतिः। ( गो० )

दीन दुःखी हो, दीनस्वर से बोलने वाले उन सब राक्षसों से बोला। हे राक्षसो! मेरे प्रियपुत्र ने (वानरों को धोका देने के लिए) किसी वस्तु पर खड्ग का प्रहार कर वानरों को सीता के मारे जाने का निश्चय कराया था। मैं उसे इस समय सत्य करूँगा ॥३६॥३७॥

वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम्।
इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ॥३८॥
उद्धृत्य [१]गुणसम्पन्नं [२]विमलाम्बरवर्चसम्।
निष्पपात स वेगेन सभार्यः सचिवैर्वृतः ॥३९॥

क्षत्रियाधम राम की अनुगामिनी वैदेही को नष्ट कर डालूँगा। यह कह कर रावण ने पुष्पमाला से अलंकृत निर्मल आकाश की तरह चमचमाती तलवार तुरन्त उठा ली। फिर वह अपनी पत्नियों और मंत्रियों को साथ ले, बड़ी फुर्ती से राजभवन से निकाला ॥३८॥३९॥

रावणः पुत्रशोकेन भृशमाकुलचेतनः।
संक्रुद्धः खड्गमादाय सहसा यत्र मैथिली ॥४०॥

उस समय रावण पुत्रवध के शोक से विकल हो रहा था और तिस पर क्रोध में भरा हुआ था। सो वह नगी तलवार लिए हुए अचानक वहाँ जा पहुँचा जहाँ सीता जी थीं ॥४०॥

व्रजन्तं राक्षसं प्रेक्ष्य सिंहनादं प्रचुक्रुशुः।
ऊचुश्चान्योन्यमाश्लिष्य संक्रुद्धं प्रेक्ष्य राक्षसाः ॥४१॥

---

१ गुणसम्पन्नं—माल्यालङ्कृतम्। (गो०) २ विमलाम्बरवर्चसम्—विमलाकाश सदृशं। (गो०)

उसे झपट कर जाते देख, राक्षसों ने सिंहनाद किया। फिर रावण को क्रुद्ध देख, वे परस्पर एक दूसरे को गले लगा कहने लगे ॥४१॥

अद्यैनं तावुभौ दृष्ट्वा भ्रातरौ प्रव्यथिष्यतः।
लोकपाला हि चत्वारः क्रुद्धेनानेन निर्जिताः ॥४२॥

आज इसे देख वे दोनों भाई राम और लक्ष्मण अवश्य ही व्यथित होंगे। क्योंकि क्रोध में भर ये चारों लोकपालों को जीत चुका है ॥४२॥

बहवः शत्रवश्चापि संयुगेषु निपातिताः।
त्रिषु लोकेषु रत्नानि भुङ्क्ते चाहृत्य रावणः ॥४३॥

इनके अतिरिक्त रावण अन्य बहुत से शत्रुओं को भी मार कर संग्रामभूमि में लुटा चुका है। यह तीनों लोकों की श्रेष्ठ वस्तुओं को हरण कर, उनका भोग करता है ॥४३॥

विक्रमे च बले चैव नास्त्यस्य सदृशो भुवि।
तेषां सञ्जल्पमानानामशोकवनिकां गताम् ॥४४॥

इस पृथिवीतल पर तो इसके समान बलवान् और पराक्रमी कोई है नहीं। वे लोग इस प्रकार आपस में बातचीत कर ही रहे थे कि, रावण अशोकवाटिका में जा पहुँचा ॥४४॥

अभिदुद्राव वैदेहीं रावणः क्रोधमूर्च्छितः।
वार्यमाणः सुसंक्रुद्धः सुहृद्भिर्हितबुद्धिभिः ॥४५॥

यद्यपि अत्यन्त क्रुद्ध रावण के हितैषी मित्रों और भला चाहने वालों ने उसे बहुत मना किया; तथापि रावण क्रोध में भर सीता जी की ओर झपटा ॥४५॥

अभ्यधावत संक्रुद्धः खे ग्रहो[1] रोहिणीमिव ।
मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ॥४६॥

क्रोध में भर रावण, सीता जी पर वैसे ही लपका ; जैसे आकाश में मंगलग्रह रोहिणी के ऊपर लपकता है। उस समय भी राक्षसियाँ जानकी जी की रखवाली कर रही थीं। अनिन्दिता ( अर्थात् सर्वाङ्गसुन्दरी ) सीता जी ने ॥४६॥

ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
तं निशाम्य सनिस्त्रिंशं व्यथिता जनकात्मजा ॥४७॥

देखा कि, रावण क्रोध में भरा हाथ में तलवार लिये उनकी ओर लपका आ रहा है। उसको नंगी तलवार हाथ में लिये आते देख, सीता जी व्यथित हुईं ॥४७॥

निवार्यमाणं बहुशः सुहृद्भिरनुवर्तितम् ।
सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् ॥४८॥

रावण के साथ उसके जो बहुत से हितैषी मित्र गए थे ; उन्होंने रावण को बहुत हटका ; किन्तु जब वह न माना, तब सीता जी अत्यन्त दुःखी हो तथा विलाप करती हुई यह बोलीं ॥४८॥

यथाऽयं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ।
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ॥४९॥

जब कि यह दुष्ट क्रोध में भर स्वयं मेरी ओर दौड़ा चला आ रहा है, तब यह अवश्य ही मुझ सनाथिनी को अनाथिनी की तरह मार डालेगा ॥४९॥

---

१ ग्रहः—अंगारकः । ( गो० )

बहुशश्चोदयामास भर्तारं मामनुव्रताम् ।
भार्या भव रमस्वेति प्रत्याख्यातो ध्रुवं मया ॥५०॥

क्योंकि इसने मुझ पतिव्रता से कई बार कहा कि, तू मेरी स्त्री बन जा; किन्तु मैंने सदा इसका निश्चय ही तिरस्कार किया है ॥५०॥

सोऽयं ममानुपस्थाने१ व्यक्तं नैराश्यमागतः ।
क्रोधमोहसमाविष्टो निहन्तुं मां समुद्यतः ॥५१॥

सो जान पड़ता है कि, इसका कहना न मानने के कारण अब यह मेरी ओर से हताश हो गया है और क्रोध एवं मोह के वश हो, मुझे मार डालने को तैयार हुआ है ॥५१॥

अथवा तौ नरव्याघ्रौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
मन्निमित्तमनार्येण समरेऽद्य निपातितौ ॥५२॥

अथवा इस दुष्ट ने मेरे पीछे उन पुरुषसिंह दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को युद्ध में मार डाला है ॥५२॥

अहो धिङ्मन्निमित्तोऽयं विनाशो राजपुत्रयोः ।
अथवा पुत्रशोकेन अहत्वा रामलक्ष्मणौ ॥५३॥

हा! मुझे धिक्कार है। मेरे ही पीछे दोनों राजपुत्र मारे गए। अथवा केवल पुत्रवधजन्यशोक के कारण, श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण को न मार सक कर, ॥५३॥

---

१ अनुपस्थानेसति अनंगीकारेसति। (रा०)

विधमिष्यति मां रौद्रो राक्षसः पापनिश्चयः ।
हनूमतोऽपि यद्वाक्यं न कृतं क्षुद्रया[1] मया ॥५४॥

यह पापी भयङ्कर राक्षस मुझे ही मारने के लिए आता हो। क्या कहूँ उस समय मुझ अल्प बुद्धिवाली की बुद्धि पर ऐसे पत्थर पड़े कि, मैंने हनुमान् जी की बात न मानी ॥५४॥

यद्यहं तस्य पृष्ठेन तदा यायामनिन्दिता ।
नाद्यैवमनुशोचेयं भर्तुरङ्कगता सती ॥५५॥

यदि उस समय, निष्कलङ्किनी मैं, हनुमान जी की पीठ पर बैठ चली गई होती, तो आज मैं अपने पति की गोद में बैठी होती और इस प्रकार मुझे शोक न करना पड़ता ॥५५॥

मन्ये तु हृदयं तस्याः कौसल्यायाः फलिष्यति[2] ।
एकपुत्रा यदा पुत्रं विनष्टं श्रोष्यते युधि ॥५६॥

एक पुत्र वाली कौसल्या जब सुनेंगी कि मेरा पुत्र युद्ध में मारा गया, तब मैं समझती हूँ कि, उसका कलेजा दरक या फट जायगा ॥५६॥

सा हि जन्म च बाल्यं च यौवनं च महात्मनः ।
धर्मकार्यानुरूपं च रुदन्ती संस्मरिष्यति ॥५७॥

हा! वह रोते रोते महात्मा श्रीरामचन्द्र के जन्मकाल के, बाल्यकाल के, यौवनावस्था के और उनके धर्मकृत्यों को अथवा उनके धर्मात्मा-पन को स्मरण करेगी ॥५७॥

---

१ क्षुद्रया—विचारमूढया। ( गो० ) २ फलिष्यति—विपरिष्यति। ( शि० )

निराशा निहते पुत्रे दत्त्वा श्राद्धमचेतना ।
अग्निमारोक्ष्यते नूनमपो वापि प्रवेक्ष्यति ॥५८॥

पुत्र के मारे जाने पर वह हताश हो और श्राद्धादिक कर्म कर, या तो मूर्च्छित हो निश्चय ही आग में जल मरेगी अथवा पानी में डूब कर मर जायगी ॥५८॥

धिगस्तु कुब्जामसतीं मन्थरां पापनिश्चयाम् ।
यन्निमित्तमिदं दुःखं कौसल्या प्रतिपत्स्यते ॥५९॥

धिक्कार है उस कुल्टा, पापिनी और कुबड़ा मन्थरा को, जिसके कारण महारानी कौसल्या को ये दुःख झेलने पड़ेंगे ॥५९॥

इत्येवं मैथिलीं दृष्ट्वा विलपन्तीं तपस्विनीम् ।
रोहिणीमिव चन्द्रेण विना ग्रहवशं गताम् ॥६०॥

चन्द्रमा की अनुपस्थिति में मङ्गलग्रह के फंदे में फँसी रोहिणी की तरह, दुखियारी सीता जी को इस प्रकार विलाप करते देख ॥६०॥

एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यो बुद्धिमाञ्शुचिः ।
सुपार्श्वो नाम मेधावी राक्षसो राक्षसेश्वरम् ॥६१॥

इसी बीच में रावण के बुद्धिमान, शुद्धचरित्र और मेधावी मंत्री सुपार्श्व ने रावण को ॥६१॥

निवार्यमाणं सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ।
कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ॥६२॥

बर्जते हुए उससे यह कहा—हे दशग्रीव ! तुम साक्षात् कुबेर के छोटे भाई हो कर भी ॥६२॥

हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य हि ।
वेदविद्या व्रतस्नातः स्वकर्मनिरतः सदा ॥६३॥

क्रोध के वशवर्ती हो और धर्म को त्याग कर, सीता का वध करना चाहते हो। तुमने यथाविधि वेदाध्ययन किया है और तदनुसार अग्निहोत्रादि कर्त्तव्यकर्मों में तुम सदा निरत रहते हो ॥६३॥

स्त्रियाः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वर ।
मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ॥६४॥

तो भी हे वीर! तुम स्त्री वध को क्योंकर उचित समझते हो? हे पृथिवीपाल! तुम इस सुन्दरी मैथिली को क्षमा करो ॥६४॥

त्वमेव तु सहास्माभी राघवे क्रोधमुत्सृज ।
अभ्युत्थानं[1] त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशीम् ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥६५॥

और अपना यह क्रोध हम लोगों के साथ चल कर, राम के ऊपर उतारो। आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है। सो आज ही युद्ध की तैयारी कर अर्थात् सेना आदि सजा कर और कल अमावास्या की विजययात्रा करो ॥६५॥

शूरो धीमान् रथी खड्गी रथप्रवरमास्थितः ।
हत्वा दाशरथिं रामं भवान् प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥६६॥

१ अभ्युत्थानं—युद्धनिर्माण प्रारंभं। ( गो० )

आप शूर हैं, बुद्धिमान् हैं और महारथी हैं। (कल) उत्तम रथ पर सवार हो और हाथ में तलवार ले, आप युद्धभूमि में चलिए और वहाँ दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी को मारिए। तब आप को सीता (अपने आप) मिल जायगी ॥६६॥

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं
वचः सुधर्म्यं प्रतिगृह्य रावणः ।
गृहं जगामाथ ततश्च वीर्यवान्
पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥६७॥

इति त्रिणवतितमः सर्गः ॥

इस पर दुरात्मा एवं बलवान रावण अपने मंत्री सुपार्श्व के इन धर्मयुक्त वचनों को मान, अपने भवन को लौट गया और वहाँ से फिर वह अपने हितैषियों के साथ सभाभवन में गया ॥६७॥

युद्धकाण्ड का तिरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## चतुर्नवतितमः सर्गः

—❀—

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
निषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥१॥

उदास और परम दुःखी रावण सभाभवन में जा और सिंहासन पर बैठ, क्रुद्धसिंह की तरह उसाँसे लेने लगा ॥१॥

अब्रवीच्च स तान् सर्वान् बलमुख्यान् महाबलः ।
रावणः प्राञ्जलिर्वाक्यं पुत्रव्यसनकर्शितः ॥२॥

तदनन्तर उस महाबलवान रावण ने पुत्रशोक से विकल होने के कारण, हाथ जोड़ कर, उन समस्त राक्षससेनापतियों से कहा ॥२॥

सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ।
निर्यान्तु रथसङ्घैश्च पदातैश्चोपशोभिताः ॥३॥

आप सब लोग हाथियों पर चढ़ कर लड़ने वाले सैनिकों को, घुड़सवार सेना को तथा रथ में बैठ कर लड़ने वाले सैनिकों को एवं पैदल योद्धाओं को साथ ले, लड़ने के लिए निकलिए ॥३॥

एकं रामं परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
वर्षन्तः शरवर्षेण प्राविट्काल इवाम्बुदाः ॥४॥

अकेले राम को घेर कर, वर्षाकाल के मेघों की तरह, उसके ऊपर बाणवृष्टि कर, उसे मार डालने का प्रयत्न कीजिए ॥४॥

अथवाऽहं शरैस्तीक्ष्णैर्भिन्नगात्रं महारणे ।
भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः ॥५॥

अथवा मैं ही कल आप लोगों के साथ चल कर, अपने पैने बाण से उसके शरीर को चलनी बना, सब के सामने उसे मारूँगा ॥५॥

इत्येतद्राक्षसेन्द्रस्य वाक्यमादाय राक्षसाः ।
निर्ययुस्ते रथैः शीघ्रैर्नानानीकैः सुसंवृताः ॥६॥

रावण की इस आज्ञा को मान, वे राक्षसगण तुरन्त विविध प्रकार की रथादि की चतुङ्गिनी सेना को साथ ले, निकले ॥६॥

**परिघान् पट्टिशांश्चैव शरखड्गपरश्वधान् ।**
**शरीरान्तकरान् सर्वे चिक्षिपुर्वानरान् प्रति ॥७॥**

युद्धक्षेत्र में पहुँच वे शरीरों को नष्ट कर डालने वाले परिघों, पटों, बाणों, तलवारों और परश्वधों को वानरों के ऊपर चलाने लगे ॥७॥

**वानराश्च द्रुमाञ्शैलान् राक्षसान् प्रति चिक्षिपुः ।**
**स संग्रामो महान् भीमः सूर्यस्योदयनं प्रति ॥८॥**

इसके उत्तर में वानरों ने उन राक्षसों के ऊपर वृक्षों और शिलाओं को फैंका। सूर्योदय होते ही युद्ध आरम्भ हुआ और वह युद्ध बड़ा भयङ्कर हुआ ॥८॥

**रक्षसां वानराणां च तुमुलः समपद्यत ।**
**ते गदाभिर्विचित्राभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ॥९॥**

राक्षसों और वानरों का तुमुल युद्ध हुआ। चित्रविचित्र गदाओं, प्रासों, खड्गों और परश्वधों से ॥९॥

**अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तदा वानरराक्षसाः ।**
**एवं प्रवृत्ते संग्रामे ह्युद्भूतं सुमहद्रजः ॥१०॥**

लड़ते हुए वानर और राक्षस, एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। इस प्रकार युद्ध होने पर समरभूमि में बड़ी धूल उड़ी ॥१०॥

**रक्षसां वानराणां च शान्तं शोणितविस्रवैः ।**
**मातङ्गरथकूलाश्च वाजिमत्स्या ध्वजद्रुमाः ॥११॥**

किन्तु ( मरे और घायल हुए ) वानरों के खून के बहने से वह धूल दब गई। इस युद्ध में इतना रक्त बहा कि, नदियाँ बह निकलीं। इन नदियों के, हाथी और रथ तो करारे थे, घोड़े मत्स्य थे और ध्वजाएँ नदीतटवर्ती वृक्ष थीं ॥११॥

शरीरसङ्घाटवहाः प्रसस्रुः शोणितापगाः ।
ततस्ते वानराः सर्वे शोणितौघपरिप्लुताः ॥१२॥
ध्वजवर्मरथानश्वान् नानाप्रहरणानि च ।
आप्लुत्याप्लुत्य समरे राक्षसानां बभञ्जिरे ॥१३॥

इन रक्त की नदियों में लोथें बरनई समान उतरा रही थीं। रुधिर में तराबोर, वे समस्त वानर उछल उछल कर राक्षसों की ध्वजाओं, कवचों, रथों, घोड़ों तथा विविध प्रकार के आयुधों को तोड़ फोड़ रहे थे ॥१२॥१३॥

केशान् कर्णललाटांश्च नासिकाश्च प्लवङ्गमाः ।
राक्षसां दशनैस्तीक्ष्णैर्नखैश्चापि न्यकर्तयन् ॥१४॥

वानर लोग, राक्षसों के सिर के बालों, कानों, ललाटों और नाकों को अपने पैने पैने दाँतों और नखों से बकोट रहे थे ॥१४॥

एकैकं राक्षसं संख्ये शत वानरपुङ्गवाः ।
अभ्यधावन्त फलिनं वृक्षं शकुनयो यथा ॥१५॥

जिस प्रकार किसी फले हुए वृक्ष के ऊपर सैकड़ों पक्षी टूटते हैं उसी प्रकार कहीं कहीं एक एक राक्षस के ऊपर सौ सौ वानर टूट पड़ते थे ॥१५॥

तथा गदाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः खड्गैः परश्वधैः ।
निजघ्नुर्वानरान् घोरान् राक्षसाः पर्वतोपमाः ॥१६॥

जब पर्वताकार राक्षसों ने भारी भारी गदाओं, प्रासों, खड्गों और परश्वधों से बड़े बड़े वानरों को मारा ॥१६॥

**राक्षसैर्युध्यमानानां वानराणां महाचमूः ।**
**शरण्यं शरणं याता रामं दशरथात्मजम् ॥१७॥**

तब राक्षसों से युद्ध करती हुई वानरों की महती सेना सर्वलोक शरण्य दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी के शरण में गयी ॥१७॥

**ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान् ।**
**प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष ह ॥१८॥**

तब महातेजस्वी बलवान् श्रीरामचन्द्र जी हाथ में धनुष ले राक्षसी सेना में घुस गए और राक्षसों के ऊपर बाणवृष्टि करने लगे ॥१८॥

**प्रविष्टं तु तदा रामं मेघाः सूर्यमिवाम्बरे ।**
**नाधिजग्मुर्महाघोरं निर्दहन्तं शराग्निना ॥१९॥**

श्रीरामचन्द्र जी राक्षसी सेना में वैसे ही घुसे ; जैसे सूर्य मेघ मण्डल में घुस जाते हैं। बाणों की आग से जलाते हुए, श्रीरामचन्द्र जी के सामने राक्षस लोग नहीं ठहर सके ॥१६॥

**कृतान्येव सुघोराणि रामेण रजनीचराः ।**
**रणे रामस्य ददृशुः कर्माण्यसुकराणि च ॥२०॥**

श्रीरामचन्द्र जी इस युद्ध में बड़े बड़े भयङ्कर कर्म कर रहे थे। वे ऐसे कर्म थे, जिन्हें अन्य कोई वीर नहीं कर सकता था। राक्षस लोग अपनी सेना का नाश होना देखते थे, ( किन्तु नाश करने वाले श्रीरामचन्द्रजी किस कर्म द्वारा अथवा किस प्रकार नाश कर रहे थे ; यह उनको नहीं दिखलाई पड़ता था। अर्थात् बड़ी फुर्ती से श्रीरामचन्द्र जी बाणवृष्टि कर रहे थे। ) ॥२०॥

एष हन्ति गजानीकमेष हन्ति महारथान् ।
एष हन्ति शरैस्तीक्ष्णैः पदातीन् वाजिभिः सह ॥२४॥

यह देखो राम हाथियों की सेना का संहार कर रहा है यह देखो, राम हाथियों को नष्ट किए डालता है, यह देखो, पैने पैने तीरों से राम घुड़सवारों और पैदल राक्षस योद्धाओं को मारे डालता है ॥२४॥

इति ते राक्षसाः सर्वे रामस्य सदृशान् रणे ।
अन्योन्यं कुपिता जघ्नुः सादृश्याद्राघवस्य ते ॥२५॥

इस प्रकार बकझक करते राक्षस आपस में एक दूसरे को श्रीरामचन्द्र जान, क्रोध में भर आपस ही में लड़ कर, कटने मरने लगे ॥२५॥

न ते ददृशिरे रामं दहन्तमरिवाहिनीम् ।
मोहिताः परमास्त्रेण गान्धर्वेण महात्मनः ॥२६॥

शत्रुसैन्य को भस्म करते हुए श्रीरामचन्द्र जी को वे राक्षस नहीं देख सके। क्योंकि महाबली श्रीरामचन्द्र जी ने परमास्त्र गान्धर्वास्त्र से उन सब को मोहित कर दिया था ॥२६॥

ते तु रामसहस्राणि रणे पश्यन्ति राक्षसाः ।
पुनः पश्यन्ति काकुत्स्थमेकमेव महाहवे ॥२७॥

कभी तो उन राक्षसों को युद्धभूमि में हजारों श्रीरामचन्द्र दिखलाई पड़ते और कभी वे एक ही श्रीरामचन्द्र जी को देखते थे ॥२७॥

भ्रमन्तीं काञ्चनीं कोटिं कार्मुकस्य महात्मनः ।
अलातचक्रप्रतिमां ददृशुस्ते न राघवम् ॥२८॥

वे राक्षस लोग, महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी के सुवर्णमय धनुष का अग्रभाग, अधजली और घूमती हुई, बनैटी की तरह सदा मण्डलाकार ही देखते थे ; किन्तु उन्हें श्रीरामचन्द्र जी नहीं देख पड़ते थे ॥२८॥

[अब आगे श्रीरामचन्द्र जी के धनुष की उपमा सर्वशत्रुनाशकारी सुदर्शनचक्र से दे कर आदिकाव्यकार लिखते हैं—]

**शरीरनाभि सत्त्वार्चिः शरीरं नेमिकार्मुकम् ।**
**ज्याघोषतलनिर्घोषं तेजोबुद्धि गुणप्रभम्[1] ॥२९॥**

श्रीरामचन्द्र जी का शरीर ही मानों उस धनुषरूपी चक्र की नाभि (मध्यप्रदेश) है। उनका बल उस धनुषरूपी चक्र की ज्वाला है, बाण उसके आरे हैं और धनुष नेमी है। प्रत्यञ्चा और तल का शब्द ही उसका (धनुषरूपी चक्र का) शब्द है, पराक्रम और ज्ञान ही उसकी धुरी (नेमि) है। श्रीरामचन्द्र जी के शरीर की कान्ति उस धनुषरूपी चक्र की प्रभा है ॥२९॥

**दिव्यास्त्रगुणपर्यन्तं निघ्नन्तं युधि राक्षसान् ।**
**ददृशू रामचक्रं तत् कालचक्रमिव प्रजाः ॥३०॥**

उस दिव्यास्त्र की शक्ति रूपी पैनी धार है। इस प्रकार के रण में घूमते हुए श्रीरामचन्द्र जी के धनुषरूपी चक्र को उस समय कालचक्र की तरह योद्धाओं ने देखा ॥३०॥

**अनीकं दशसाहस्रं रथानां वातरंहसाम् ।**
**अष्टादशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥३१॥**
**चतुर्दशसहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।**
**पूर्णे शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पदातिनाम् ॥३२॥**

---

१ गुणः शरीरकान्तिः सएव प्रभा यस्य तत्तथोक्तं । (गो०)

दिवसस्याष्टमे भागे शरैरग्निशिखोपमैः ।
हतान्येकेन रामेण रक्षसां कामरूपिणाम् ॥३३॥

वायु के वेग की तरह वेग से चलने वाले दस सहस्र रथों ( और उनमें बैठे योद्धाओं ) को, अठारह सहस्र वेगवान् हाथियों ( और उन पर बैठ कर लड़ने वाले योद्धाओं ) को, चौदह सहस्र घोड़ों और उन पर सवार योद्धाओं को और पूरे दो लाख पैदल कामरूपी राक्षस सैनिकों को, अकेले श्रीरामचन्द्र जी ने पौने चार घड़ियों में अपने अग्निशिखा के समान चमकते हुए बाणों से मार डाला ॥३१॥३२॥३३॥

ते हताश्वा हतरथाः शान्ता विमथितध्वजाः ।
अभिपेतुः पुरीं लङ्कां हतशेषा निशाचराः ॥३४॥

लड़ने के लिए आई हुई उस राक्षसी सेना में थोड़े ही राक्षस रह गए थे, उनमें कितनों ही के तो घोड़े मारे गए थे और कितनों ही के रथ टुकड़े टुकड़े हो गये थे ; ध्वजाएँ कट गई थीं । उनका रणोत्साह एकदम शान्त हो गया था । मरने से बचे हुए ऐसे राक्षस लङ्कापुरी में पहुँचे ॥३४॥

हतैर्गजपदात्यश्वैस्तद्बभूव रणाजिरम् ।
आक्रीडमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्य सुमहात्मनः ॥३५॥

मरे हुए हाथियों, पैदल सैनिकों और घोड़ों से पट कर, रण-भूमि ऐसी जान पड़ती थी, मानों वह कुपित महाबलवान् भगवान् रुद्र की क्रीडास्थली हो ॥३५॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु साध्विति रामस्य तत् कर्म समपूजयन् ॥३६॥

देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि श्रीरामचन्द्र जी के इस पराक्रम को देख, और "धन्य धन्य" कह कर, उनकी बड़ी प्रशंसा कर रहे थे ॥३६॥

अब्रवीच्च तदा रामः सुग्रीवं [1]प्रत्यनन्तरम् ।
विभीषणं च धर्मात्मा हनूमन्तं च वानरम् ॥३७॥
जामवन्तं हरिश्रेष्ठं मैन्दं द्विविदमेव च ।
एतदस्त्रबलं दिव्यं मम वा त्र्यम्बकस्य वा ॥३८॥

तब पास खड़े हुए सुग्रीव से विभीषण, हनुमान, जाम्बवान, कपिश्रेष्ठ मैन्द और द्विविद से धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने कहा—इस प्रकार की अस्त्रप्रयोगशक्ति तो मुझमें है या शिव जी में है ॥३७॥३८॥

निहत्य तां राक्षसवाहिनीं तु
रामस्तदा शक्रसमो महात्मा ।
अस्त्रेषु शस्त्रेषु जितक्लमश्च
संस्तूयते देवगणैः प्रहृष्टैः ॥३९॥

इति चतुर्नवतितमः सर्गः

अस्त्रशस्त्र के चलाने में कभी न थकने वाले, इन्द्र के समान बलवान् श्रीरामचन्द्र जी, जब उस राक्षसी सेना का संहार कर चुके; तब देवता लोगों ने अत्यन्त हर्षित हो उनकी स्तुति की ॥३९॥

युद्धकाण्ड का चौरानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

१ प्रत्यनन्तरं—समीपस्थं । (गो०)

## पञ्चनवतितमः सर्गः

—※—

तानिनागसहस्राणि सारोहाणां च वाजिनाम् ।
रथानां त्वग्निवर्णानां सध्वजानां सहस्रशः ॥१॥

राक्षसानां सहस्राणि गदापरिघयोधिनाम् ।
काञ्चनध्वजचित्राणां शूराणां कामरूपिणाम् ॥२॥

निहतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
रावणेन प्रयुक्तानि रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥३॥

रावण के भेजे हुए सवारों सहित सहस्रों हाथियों, घोड़ों और सहस्रों ही अग्नि की तरह चमचमाते और ध्वजाओं से शोभित रथों और उनमें बैठ कर गदा एवं परिघ से लड़ने वाले सहस्रों राक्षसों को तथा सुवर्णमयी चित्रविचित्र ध्वजाओं से युक्त, कामरूपी वीरयोद्धा राक्षसों को, अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी ने सुवर्णभूषित पैने बाणों से नष्ट कर डाला ॥१॥२॥३॥

दृष्ट्वा श्रुत्वा च सम्भ्रान्ता हतशेषा निशाचराः ।
राक्षसीश्च समागम्य दीनाश्चिन्तापरिप्लुताः ॥४॥

इन सब राक्षसों को मरा हुआ देख व सुन कर, मारे जाने से बचे हुए राक्षस बहुत ही घबड़ा गए। उनकी राक्षसियाँ दुःख और चिन्ता में डूब वहाँ जमा हो गईं ॥४॥

विधवा हतपुत्राश्च क्रोशन्त्यो हतबान्धवाः ।
राक्षस्यः सह सङ्गम्य दुःखार्ताः पर्यदेवयन् ॥५॥

उन एकत्रित हुई राक्षसियों में बहुत सी तो विधवाएँ थीं और बहुत स्त्रियों के पुत्र और बन्धुबान्धव लड़ाई में मारे गये थे। वे सब राक्षसियाँ दुःखी हो और मिलकर तथा चिल्ला चिल्ला कर विलाप करने लगीं ॥५॥

**कथं शूर्पणखा वृद्धा कराला निर्णतोदरी ।**
**आससाद वने रामं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥६॥**

वे विलाप करती हुई कह रही थीं कि, विकट वदना, बूढ़ी और थलथलाती थोंद वाली सूपनखा की न मालूम किस कुघड़ी में, कामदेव के समान रूपवान श्रीरामचन्द्र जी से वन में भेंट हुई थी ॥६॥

**सुकुमारं महासत्त्वं सर्वभूतहिते रतम् ।**
**तं दृष्ट्वा *लोकवध्या सा हीनरूपा [1]प्रकामिता ॥७॥**

श्रीरामचन्द्र जी तो सुकुमार होने पर भी महाबलवान् हैं और महाबलवान् होने पर भी प्राणिमात्र की भलाई में तत्पर रहने वाले हैं। वह लोकवध्या ( लोगों से मार डालने योग्य ) जलमुँही सूर्पनखा उनको देखते ही उनको चाहने लगी ॥७॥

**कथं सर्वगुणैर्हीना गुणवन्तं महौजसम् ।**
**सुमुखं दुर्मुखी रामं कामयामास राक्षसी ॥८॥**

सब गुणों से रहित और जलमुँही सूपनखा ने ऐसे गुणवन्त, महाबलवान् और सुमुख श्रीरामचन्द्र जी को क्यों चाहा ? अथवा उनसे क्यों प्रेम करना चाहा ? ॥८॥

**जनस्यास्याल्पभाग्यत्वाद्वलिनी श्वेतमूर्धजा ।**
**अकार्यमपहास्यं च सर्वलोकविगर्हितम् ॥९॥**

---

१ प्रकामिता—कामयामास । (गो०) * पाठान्तरे—"लोकनिन्द्या" ।

हाय ! राक्षसों के दुर्भाग्यवश उस पके बालों वाली, जराजीर्ण ( बुड्ढी ) सूपनखा ने यह बड़ा भारी कुकर्म किया, जिससे सब लोगों ने उसकी निन्दा की और उसकी जगहँसाई हुई ॥९॥

राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ।
चकाराप्रतिरूपा सा राघवस्य प्रधर्षणम् ॥१०॥

खरदूषण का तथा अन्य समस्त राक्षसों का नाश कराने के लिए ही, सूर्पनखा ने ऐसा ऊटपटाँग काम कर, श्रीरामचन्द्र जी का तिरस्कार किया था ॥१०॥

तन्निमित्तमिदं वैरं रावणेन कृतं महत् ।
वधाय सीता सानीता दशग्रीवेण रक्षसा ॥११॥

इसी कारण रावण ने यह बड़ा भारी बैर बाँधा और अपने वध के लिए राक्षस रावण सीता को हर लाया ॥११॥

न च सीतां दशग्रीवः प्राप्नोति जनकात्मजाम् ।
बद्धं बलवता वैरमक्षयं राघवेण च ॥१२॥

किन्तु दशग्रीव जनकात्मजा सीता को कभी न पावेगा । बड़े बलवान श्रीरामचन्द्र जी के साथ रावण ने घोर बैर कर लिया है ॥१२॥

वैदेहीं प्रार्थयानं तं विराधं प्रेक्ष्य राक्षसम् ।
हतमेकेन रामेण पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१३॥

देखो, विराध ने भी तो सीता को लेना चाहा था, परन्तु उसे भी अकेले राम ही ने मार डाला । यही एक दृष्टान्त श्रीरामचन्द्र जी के बलवान् होने का भरपूर दृष्टान्त या प्रमाण है ॥१३॥

चतुर्दशसहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
निहतानि जनस्थाने शरैरग्निशिखोपमैः ॥१४॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी ने अपने अग्निशिखा के समान चमचमाते बाणों से जनस्थान में भयानक कर्म करने वाले चौदह हजार राक्षसों को मार डाला ॥१४॥

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा ।
शरैरादित्यसङ्काशैः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१५॥

फिर लड़ाई में सूर्य की तरह चमचमाते बाणों से खरदूषण और त्रिशिरा का मारा जाना भी श्रीरामचन्द्र के बलवान् होने का पर्याप्त दृष्टान्त है ॥१५॥

हतो योजनबाहुश्च कबन्धो रुधिराशनः ।
क्रोधान्नादं नदन् सोऽथ पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१६॥

फिर, श्रीरामचन्द्र जी द्वारा योजन योजन लंबी भुजाओं वाले रुधिरपान करने वाले और क्रोध से गरजते हुए कबन्ध का मारा जाना, श्रीरामचन्द्र जी की वीरता का पर्याप्त दृष्टान्त है ॥१६॥

जघान वालिनं रामः सहस्रनयनात्मजम् ।
वालिनं मेरुसङ्काशं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१७॥

फिर श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से मेरुपर्वत की तरह विशाल शरीरधारी इन्द्रपुत्र महाबलवान वालि का मारा जाना ही श्रीरामचन्द्र जी के अमित बलशाली होने का पर्याप्त प्रमाण है ॥१७॥

ऋष्यमूके वसञ्शैले दीनो भग्नमनोरथः ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१८॥

फिर ऋष्यमूक पर्वत पर टिके हुए, दीनभावापन्न और भग्न-मनोरथ होने पर भी श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सुग्रीव का वानरराज्य के राजसिंहासन पर स्थापित किया जाना भी उनके अक्षय्यबल-सम्पन्न होने का भरपूर प्रमाण है ॥१८॥

[ एको वायुसुतः प्राप्य लङ्कां हत्वा च राक्षसान् ।
दग्ध्वा तां च पुनर्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥१९॥

फिर, अकेले पवनन्दन का लङ्का में आकर राक्षसों का मारना, फिर लङ्का को फूँकना, श्रीरामचन्द्र जी के अटल प्रताप का पर्याप्त दृष्टान्त है ॥१९॥

निगृह्य सागरं तस्मिन् सेतुं बध्वा प्लवङ्गमैः ।
वृतोऽतरत्तं यद्रामः पर्याप्तं तन्निमदर्शनम् ॥२०॥ ]

फिर समुद्र को अपने वश कर और उसके ऊपर पुल बाँध समस्त वानरी सेना सहित समुद्र पार कर, लङ्का में आना श्रीरामचन्द्र जी के साधारण पुरुष होने का पर्याप्त दृष्टान्त है ॥२०॥

धर्मार्थसहितं वाक्यं सर्वेषां रक्षसां हितम् ।
युक्तं विभीषणेनोक्तं मोहात्तस्य न रोचते ॥२१॥

धर्म अर्थ सहित और समस्त राक्षसों के हित से युक्त बातें, विभीषण ने रावण से कही थीं, किन्तु हाय ! मोहवश विभीषण की बातें रावण को अच्छी ही नलगीं ॥२१॥

विभीषणवचः कुर्याद्यदि स्म धनदानुजः ।
श्मशानभूता दुःखार्ता नेयं लङ्कापुरी भवेत् ॥२२॥

यदि कहीं कुबेर का छोटा भाई रावण, विभीषण के कथनानुसार चलता तो, यह लंका दुःख से विकल हो, श्मशान की तरह आज कभी न हुई होती ॥२२॥

कुम्भकर्णं हतं श्रुत्वा राघवेण महाबलम् ।
अतिकायं च दुर्धर्षं लक्ष्मणेन हतं पुनः । ॥२३॥
प्रियं चेन्द्रजितं पुत्रं रावणो नावबुध्यते ।
मम पुत्रो मम भ्राता मम भर्ता रणे हतः ॥२४॥

देखो, महाबलवान कुम्भकर्ण को श्रीरामचन्द्र जी ने मारा दुर्धर्ष अतिकाय को तथा रावण के प्यारे पुत्र इन्द्रजीत को लक्ष्मण ने मारा, तिस पर भी रावण को चेत न हुआ अर्थात् रावण ने श्रीरामचन्द्र जी का प्रभाव न जान पाया। ( उन एकत्र हुई राक्षसियों में से ) कोई कहती थी हाय मेरा पुत्र मारा गया, कोई कहती थी हाय ! मेरा भाई मारा गया, कोई कहती थी, हाय , मेरा पति मारा गया ॥२३॥२४॥

इत्येवं श्रूयते शब्दो राक्षसानां कुले कुले[१] ।
रथाश्चाश्वाश्च नागाश्च हताः शतसहस्रशः ॥२५॥
रणे रामेण शूरेण राक्षसाश्च पदातयः ।
रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ॥२६॥

१ कुले कुले—गृहे गृहे । ( गो० )

हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तकः ।
हतप्रवीरा रामेण निराशा जीविते वयम् ॥२७॥

इस प्रकार का विलाप लङ्कावासी राक्षसों के घर घर में सुनाई पड़ता था। राक्षसियाँ कहने लगीं देखो, शूरवीर राम ने सैकड़ों सहस्रों हाथियों, घोड़ों ( जीनअवारी के घोड़ों ) रथों ( रथ में जुते हुए घोड़ों ) और पैदल सेना को काट डाला। जान पड़ता है रुद्र, विष्णु, इन्द्र अथवा स्वय यमराज, रामरूप धर कर हम लोगों का नाश कर रहे हैं। बड़े बड़े वीर राक्षसों के राम द्वारा मारे जाने से अब तो हमें अपने जीवन की भी आशा नहीं रही ॥२५॥२६॥२७॥

अपश्यन्तो भयस्यान्तमनाथा विलपामहे ।
रामहस्ताद्दशग्रीवः शूरो दत्तमहावरः ॥२८॥

इदं भयं महाघोरमुत्पन्नं नावबुध्यते ।
न देवा न च गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ॥२९॥

[1]उपसृष्टं परित्रातुं शक्ता रामेण संयुगे ।
उत्पाताश्चापि दृश्यन्ते रावणस्य रणे रणे ॥३०॥

( विना हम सब का नाश हुए ) अब इस उपस्थित भय का अन्त होता हुआ हमें नहीं देख पड़ता। इसीसे हम सब विलाप कर रही हैं। दशग्रीव रावण अपनी शूरवीरता और महावर-प्राप्ति के अभिमान में चूर हो रहा है। उसे यह नहीं सूझता कि, राम के हाथ से यह महाभयानक भय उपस्थित हुआ है। ( जब

१ उपसृष्टं—हन्तुम् आरब्धम्। ( रा० )

कि राम ) युद्ध में रावण के मारने का निश्चय कर चुके हैं; तब न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही उसकी रक्षा कर सकते हैं। प्रत्येक युद्ध में रावण के लिए अपशकुन ही होते हुए देखे जाते हैं ॥२८॥२९॥३०॥

कथयिष्यन्ति रामेण रावणस्य निबर्हणम् ।
पितामहेन प्रीतेन देवदानवराक्षसैः ॥३१॥

रावणस्याभयं दत्तं मानुषेभ्यो न याचितम् ।
तदिदं मानुषं मन्ये प्राप्तं निःसंशयं भयम् ॥३२॥

इन उत्पातों से यह बात जान पड़ती है कि, रावण, श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से मारा जायगा। ( रावण के माँगने पर ) ब्रह्मा जी ने प्रसन्न हो रावण को देवता, दानवों और राक्षसों से तो अभय होने का वर दिया; किन्तु रावण ने मनुष्यों की ओर से अभय होने का वर ही ब्रह्मा जी से न माँगा। सो जान पड़ता है कि, निस्सन्देह अब यह मनुष्यभय राक्षसों के लिए उपस्थित हुआ है ॥३१॥३२॥

जीवीतान्तकरं घोरं रक्षसां रावणस्य च ।
पीड्यमानास्तु बलिना वरदानेन रक्षसा ॥३३॥

दीप्तैस्तपोभिर्विबुधाः पितामहपूमजयन् ।
देवतानां हितार्थाय महात्मा वै पितामहः ॥३४॥

इस भय से रावण और राक्षसों का नाश होगा। जब वरदान से बली हो रावण ने देवताओं को सताया; तब देवताओं ने घोर तप कर ब्रह्मा जी को प्रसन्न किया। तब देवताओं के हित के लिये सर्वलोकपितामह महात्मा ब्रह्मा जी ने ॥३३॥३४॥

उवाच देवताः सर्वा इदं तुष्टो महद्वचः ।
अद्यप्रभृति लोकांस्त्रीन् सर्वे दानवराक्षसाः ॥३५॥
भयेन प्रावृता नित्यं विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ।
दैवतैस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ॥३६॥
वृषभध्वजस्त्रिपुरहा महादेवः प्रसादितः ।
प्रसन्नस्तु महादेवो देवानेतद्वचोऽब्रवीत् ॥३७॥

समस्त देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए यह गौरवयुक्त वचन कहा—आज से समस्त दानव और राक्षस भय से विह्वल हो, त्रिभुवन में सदा घूमा फिरा करेंगे। तदनन्तर इन्द्रादि देवताओं ने मिल कर वृषभध्वज, त्रिपुरान्तकारी महादेव जी को प्रसन्न किया। तब महादेव जी ने प्रसन्न हो देवताओं से यह कहा ॥३५॥ ॥३६॥३७॥

उत्पत्स्यति हितार्थं वो नारी रक्षःक्षयावहा ।
एषा देवैः प्रयुक्ता तु क्षुद्यथा दानवान् पुरा ॥३८॥
भक्षयिष्यति नः सीता राक्षसघ्नी सरावणान् ।
रावणस्यापनीतेन दुर्विनीतस्य दुर्मतेः ॥३९॥

तुम्हारा हितसाधन करने को तथा राक्षसों का नाश करने के लिए एक स्त्री उत्पन्न होगी। सो वह सीता देवताओं की भेजी आई है। जैसे पूर्वकाल में देवताओं की भेजी क्षुधा ने दानवों को खा डाला था; वैसे ही राक्षसों का नाश करने वाली वह सीता भी रावण और उनके परिवार सहित, हम को खा डालेगी। इस दुर्विनीत और दुर्मति रावण के अन्याय ही से ॥३८॥३९॥

अयं [1]निष्ठानको घोरः शोकेन समभिप्लुतः ।
तं नः पश्यामहे लोके यो नः शरणदो भवेत् ॥४०॥

यह घोर शोक युक्त विनाश उपस्थित हुआ है। इस समय हमें कोई भी ऐसा नहीं देख पड़ता, जो हमको इस सङ्कट से बचा ले ॥४०॥

राघवेणोपसृष्टानां कालेनेव युगक्षये ।
नास्ति नः शरणं कश्चिद्भये महति तिष्ठताम् ॥४१॥

जैसे प्रलयकाल में मृत्यु के पंजे से प्राणियों की कोई रक्षा नहीं कर सकता, वैसे ही इस बड़े भारी सङ्कट में फँसी हुई हम सब की राम के ग्रास से कोई रक्षा नहीं कर सकता ॥४१॥

दवाग्निवेष्टितानां हि करेणूनां यथा वने ॥४२॥

इस समय हमारी वही दशा है, जो हथनियों की वन में दावानल से घिर जाने पर होती है ॥४२॥

प्राप्तकालं कृतं तेन पौलस्त्येन महात्मना ।
यत एव भयं दृष्टं तमेव शरणं गतः ॥४३॥

पुलस्त्यवंशोद्भव महात्मा विभीषण तो जिससे भय की आशङ्का थी, उसीके शरण में यथासमय चले गए ॥४३॥

इतीव सर्वा रजनीचरस्त्रियः
परस्परं सम्परिरभ्य बाहुभिः ।

---

१ निष्ठानकः—नाश इत्याहुः । ( गो० )

विषेदुरार्ता भयभारपीडिता
विनेदुरुच्चैश्च तदा सुदारुणम् ॥४४॥

इति पञ्चनवतितमः सर्गः ॥

इस प्रकार समस्त राक्षसों की स्त्रियाँ एक दूसरे को कोरिया कर ( बाहों में दबा कर ) भयभीत और दुःखी हो, उच्चस्वर से अत्यन्त दारुण विलाप करने लगीं ॥४४॥

युद्धकाण्ड का पञ्चानवेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## षण्णवतितमः सर्गः

—:o:—

आर्तानां राक्षसीनां तु लङ्कायां वै कुले कुले।
रावणः करुणं शब्दं शुश्राव परिदेवितम्[1] ॥१॥

रावण ने लंका के प्रत्येक घर में दुखियारी राक्षसियों का करुणाक्रन्दन सुना ॥१॥

स तु दीर्घं विनिःश्वस्य मुहूर्तं ध्यानमास्थितः।
बभूव परमक्रुद्धो रावणो भीमदर्शनः ॥२॥

उसे सुन वह लंबी साँसें ले कुछ देर तक तो कुछ सोचता विचारता रहा, फिर क्रोध के मारे उसकी शक्ल बड़ी भयानक जान पड़ने लगी ॥२॥

---

१ परिदेवितम्—उच्चारितं। ( शि० )

सन्दश्य दशनैरोष्ठं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
राक्षसैरपि दुर्दर्शः कालाग्निरिव [1]मूर्छितः ॥३॥

वह दांतों से अपने ओठ चबाने लगा और मारे क्रोध के उसके नेत्र लाल लाल हो गए। वह उस समय कालाग्नि की तरह (क्रोध से) धधक रहा था। और तो और, उसके पास जो राक्षस सदा रहते थे, उनसे भी मारे डर के उसकी ओर नहीं निहारा जाता था ॥३॥

उवाच च समीपस्थान् राक्षसान् राक्षसेश्वरः ।
*क्रोधाव्यक्तकथस्तत्र निर्दहन्निव चक्षुषा ॥४॥

राक्षसराज रावण पास खड़े हुए राक्षसों से बोला । यद्यपि उस समय क्रोध के आवेश में होने के कारण उसके मुख से साफ साफ बात नहीं निकलती थी ; तथापि वह अपने नेत्रों से मानों भस्म करता हुआ सा बोला ॥४॥

महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ।
शीघ्रं वदत सैन्यानि निर्यातेति ममाज्ञया ॥५॥

महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष से कह दो कि, मेरी आज्ञा से वे राक्षस सैनिकों से कह दें कि, सब लोग तैयार हो कर शीघ्र निकलें ॥५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राक्षसास्ते भयार्दिताः ।
चोदयामासुरव्यग्रान् राक्षसांस्तान्नृपाज्ञया ॥६॥

---

१ मूर्छितः—अभिवृद्धः । ( गो० ) * पाठान्तरे—"मया" ।

रावण के ये वचन सुन, भयपीड़ित राक्षसों ने उसके आज्ञानुसार निर्भय राक्षस सैनिकों को शीघ्र तैयार होने के लिए कहा ॥६॥

ते तु सर्वे तथेत्युक्त्वा राक्षसा घोरदर्शनाः ।
कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे रणायाभिमुखा ययुः ॥७॥

भयङ्कर राक्षस सैनिक भी " बहुत अच्छा " कह कर तथा विविध प्रकार के मङ्गलाचार कर, समरभूमि की ओर जाने को तैयार हुए ॥७॥

प्रतिपूज्य यथान्यायं रावणं ते निशाचराः ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणः ॥८॥

फिर उन निशाचरों ने रावण के पास जा, यथाविधि उसका पूजन किया और उसका विजय मना, वे सब हाथ जोड़ कर, उसके सामने खड़े हो गए ॥८।

अथोवाच प्रहस्यैतान्रावणः क्रोधमूर्च्छितः ।
महोदरमहापार्श्वौ विरूपाक्षं च राक्षसम् ॥९॥

तब क्रोध में भरा हुआ रावण, अट्टहास करता हुआ, महोदर, महापार्श्व और विरूपाक्ष से बोला ॥९॥

अद्य बाणैर्धनुर्मुक्तैर्युगान्तादित्यसन्निभैः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव नेष्यामि यमसादनम् ॥१०॥

आज मैं अपने धनुष से प्रलयकालीन सूर्य की तरह चमचमाते बाणों को छोड़ कर, रामचन्द्र और लक्ष्मण को यमालय पहुँचा दूँगा ॥१०॥

खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा ।
करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम् ॥११॥

आज मैं अपने शत्रु का वध कर; खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त तथा इन्द्रजीत के वध का बदला लूँगा ॥११॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो न नद्यो नापि सागराः ।
प्रकाशत्वं गमिष्यन्ति मद्बाणजलदावृताः ॥१२॥

मेरे छोड़े हुए बाणरूपी बादलों से आकाश, दिशाएँ, नदियाँ और सागर ढक जाँयगे और दिखलाई न पड़ेंगे ॥१२॥

अद्य वानरमुख्यानां तानि यूथानि भागशः ।
धनुषा शरजालेन विधमिष्यामि पत्रिणा ॥१३॥

आज मैं प्रधान प्रधान वानरों तथा वानरी सेनाओं के यूथपतियों को विभक्त कर अपने धनुष और बाणों से नष्ट कर डालूँगा ॥१३॥

अद्य वानरसैन्यानि रथेन पवनौजसा ।
धनुःसमुद्राद्दुद्भूतैर्मथिष्यामि शरोर्मिभिः ॥१४॥

आज पवन के समान वेग से चलने वाले रथ पर सवार हो, धनुषरूपी समुद्र से उत्पन्न हुई, बाणरूपी लहरों द्वारा वानरी सेना को मथ डालूँगा ॥१४॥

आकोशपद्मवक्त्राणि पद्मकेसरवर्चसाम् ।
अद्य यूथतटाकानि मजवत्प्रमथाम्यहम्॥१५॥

जिन वानरों के शरीरों का रंग कमल-केसर जैसा है और जिनके मुख खिले हुए कमल जैसे हैं उन वानरों के यूथरूपी तालावों को आज मैं हाथी की तरह मथ डालूँगा ॥१५॥

सशरैरद्य वदनैः संख्ये वानरयूथपाः ।
मण्डयिष्यन्ति वसुधां सनालैरिव पङ्कजैः ॥१६॥

समरभूमि में आज वानरी सेना के यूथपति मेरे बाणों से बिधे हुए अपने मुखों से सनाल ( डंडी सहित ) कमलपुष्प की तरह भूमि को भूषित करेंगे ॥१६॥

अद्य युद्धप्रचण्डानां हरीणां द्रुमयोधिनाम् ।
मुक्तेनैकेषुणा युद्धे भेत्स्यामि च शतं शतम् ॥१७॥

युद्ध करने में प्रचण्ड और पेड़ रूपी आयुधों से लड़ने वाले सौ सौ वानरों को मैं एक एक बाण से वेध डालूँगा ॥१७॥

हतो हर्ता हतो भ्राता यासां च तनया हताः ।
वधेनाद्य रिपोस्तासां करोम्यस्रप्रमार्जनम् ॥१८॥

जिन राक्षसियों के पति और पुत्र युद्ध में मारे गए हैं, आज उनके शत्रु को मार कर, मैं उनके आँसुओं को पोंछूँगा ॥१८॥

अद्य मद्बाणनिर्भिन्नैः प्रकीर्णैर्गतचेतनैः ।
करोमि वानरैर्युद्धे यत्नावेक्ष्यतलां महीम् ॥१९॥

आज अपने बाणों से छिन्नभिन्न और छितरे हुए मरे वानरों से मैं समरभूमि को ऐसा ढक दूँगा कि तिल रखने को भी स्थान न रह जायगा ॥१९॥

१ यत्नावेक्ष्यतलां—नैरन्ध्र्येण भूमौ वानरान्पातयिष्यामि । ( गो० )

अद्यगोमायवो गृध्रा ये च मांसाशिनोऽपरे ।
सर्वास्तांस्तर्पयिष्यामि शत्रुमांसैः शरार्पितैः ॥२०॥

आज शृगाल, गिद्ध तथा अन्य जो माँसभक्षी पशु पक्षी हैं, उन सब को बाणों से मारे हुए शत्रुओं के माँस से अघा दूँगा ॥२०॥

कल्प्यतां मे रथः शीघ्रं क्षिप्रमानीयतां धनुः ।
अनुप्रयान्तु मां सर्वे येऽवशिष्टा निशाचराः ॥२१॥

अब शीघ्र मेरा रथ तैयार करो और तुरन्त मेरा धनुष ले आओ। जो राक्षस बचे हुए हैं, वे सब मेरे पीछे पीछे चलें ॥२१॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा महापार्श्वोऽब्रवीद्वचः ।
बलाध्यक्षान् स्थितांस्तत्र बलं सन्त्वर्यतामिति ॥२२॥

रावण की इन बातों को सुन, महापार्श्व ने वहाँ उपस्थित सेनापतियों से कहा—सेना को शीघ्र तैयार होने को कहो ॥२२॥

बलाध्यक्षास्तु संरब्धा राक्षसांस्तान् गृहाद्गृहात् ।
चोदयन्तः परिययुर्लङ्कां लघुपराक्रमाः ॥२३॥

उन फुर्तीले सेनापतियों ने सारी लङ्कापुरी में घूम फिर कर और क्रोध में भर (इसलिए कि बहुत से राक्षस डर के मारे बुलाने पर भी घर से नहीं निकलते थे) घर घर में जा कर और राक्षसों को राजाज्ञा सुना कर शीघ्र तैयार हो कर निकलने को कहा ॥२३॥

ततो मुहूर्तान्निष्पेतू राक्षसा भीमदर्शनाः ।
नदन्तो भीमवदना नानाप्रहरणैर्भुजैः ॥२४॥

तब एक मुहूर्त्त भर में बड़े बड़े भयानक आकृति वाले और भयङ्कर शरीरधारी राक्षस, हाथों में विविध प्रकार के हथियार ले तथा सिंहनाद करते हुए अपने अपने घरों से निकले ॥२४॥

असिभिः पट्टिशैः शूलैर्गदाभिर्मुसलैर्हुलैः[१] ।
शक्तिभिस्तीक्ष्णधाराभिर्महद्भिः कूटमुद्गरैः ॥२५॥
यष्टिभिर्विमलैश्चक्रैर्निशितैश्च परश्वधैः ।
भिन्दिपालैः शतघ्नीभिरन्यैश्चापि वरायुधैः ॥२६॥

तलवारों, पटों, शूलों, गदाओं, मूसलों, दुधारा खाड़ों, पैनी धारों वाली शक्तियों, काँटेदार मुग्दरों, लोहे के डंडों, चमचमाते चक्रों, पैने पैने परश्वधों, भिन्दिपालों (गदा विशेष), शतघ्नियों तथा अन्य श्रेष्ठ श्रेष्ठ आयुधों से युद्ध करने वाले राक्षस योद्धाओं को ॥२५॥२६॥

अथानयद्बलाध्यक्षाः सत्वरा रावणाज्ञया ॥२७॥

रावण के आज्ञानुसार सेनापति तुरन्त बुला लाए ॥२७॥

द्रुतं सूतसमायुक्तं युक्ताष्टतुरगं रथम् ।
आरुरोह रथं भीमो दीप्यमानं स्वतेजसा ॥२८॥

आठ घोड़े जुते हुए सारथी सहित रथ पर भयङ्कर रावण तुरन्त सवार हुआ। वह रथ अपनी चमक से दमक रहा था ॥२८॥

ततः प्रयातः सहसा राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।
रावणः सत्त्वगाम्भीर्याद्दारयन्निव मेदिनीम् ॥२९॥

---

१ हुलैः—द्विफलपत्राग्रायुधविशेषैः। (गो०) २ सत्त्वगाम्भीर्यात्—बलातिशयात्। (गो०)

तदनन्तर बहुत से राक्षसों को साथ लिए हुए रावण अपने महाबल से भूमि को विदीर्ण करता हुआ चला ॥२९॥

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥३०॥

रावण द्वारा आज्ञा पा कर, महापार्श्व महोदर; विरूपाक्ष और दुर्धर्ष भी अपने अपने रथों पर बैठ कर चले ॥३०॥

ते तु हृष्टा विनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकाङ्क्षिणः ॥३१॥

वे सब के सब हर्षित हो ऐसे गरज रहे थे, मानों भूमि को विदीर्ण कर डालेंगे। वे सब भयङ्कर सिंहनाद करते हुए जयप्राप्ति की आकांक्षा रखे हुए लंका से निकले ॥३१॥

ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगणबलैर्वृतः ।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥३२॥

सर्वभूतक्षयकारी कालान्तक यमराज की तरह तेजस्वी रावण राक्षसों की सेना साथ लिये तथा हाथ में रोदा चढ़ा चढ़ा (तैयार) धनुष लिए हुए निकला ॥३२॥

ततः प्रजवनाश्वेन रथेन स महारथः ।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥३३॥

बड़े वेगवान् घोड़ों के रथ पर सवार वह महारथी रावण लंका के उस द्वार से निकला, जहाँ जिसके सामने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण थे ॥३३॥

ततो नष्टप्रभः सूर्यो दिशश्च तिमिरावृताः ।
द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च सञ्चचालेव मेदिनी ॥३४॥

उस समय सूर्य का प्रकाश मंद पड़ गया । दिशाओं में अन्धकार छा गया । पक्षीगण भयंकर बोलियाँ बोलने लगे । पृथिवी काँप उठी ॥३४॥

ववर्ष रुधिरं देवश्चस्खलुस्तुरगाः पथि ।
ध्वजाग्रे न्यपतद्गृध्रो विनेदुश्चाशिवं शिवाः ॥३५॥

दैव ने आकाश से रक्त की वर्षा की । रास्ते में रावण के रथ के घोड़े लड़खड़ा कर गिर पड़े । रथ ध्वजा के ऊपर गीध आ कर बैठ गया और सियारिनें रोने लगीं ॥३५॥

नयनं चास्फुरद्वामं सव्यो बाहुरकम्पत ।
विवर्णवदनं चासीत् किञ्चिदभ्रश्यत स्वरः ॥३६॥

रावण की बाँयी आँख और बाँयी भुजा फड़कने लगी । उसके चेहरे का रंग फीका पड़ गया और कण्ठस्वर भी कुछ कुछ बिगड़ गया ॥३६॥

ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः ।
रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे ॥३७॥

दशग्रीव रावण की इस युद्धयात्रा के समय ये समस्त असगुन देख पड़े जो उसका युद्ध में मारा जाना प्रकट कर रहे थे ॥३७॥

अन्तरिक्षात् पपातोल्का निर्घातसमनिःस्वना ।
विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरनुनादिताः ॥३८॥

आकाश से उल्कापात हुआ, जिसके गिरते समय वज्र गहराने जैसा भयंकर शब्द हुआ। कौए के साथ स्वर मिला कर, गीध अमङ्गल-सूचक, बोलियाँ बोलने लगे ॥३८॥

एतानचिन्तयन् घोरानुत्पातान् समुपस्थितान् ।
निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थी कालचोदितः ॥३९॥

सामने उपस्थित इन समस्त असगुनों अथवा उत्पातों की ज़रा भी परवाह न कर, मृत्यु का भेजा हुआ रावण, शत्रु के वध के लिए, भ्रमवश लंका से निकला ॥३९॥

तेषां तु रथघोषेण राक्षसानां महात्मनाम् ।
वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ॥४०॥

इतने में राक्षसी सेना के रथों की गड़गड़ाहट सुन कर, वानरी सेना भी लड़ने के लिए तैयार हो गई ॥४०॥

तेषां तु तुमुलं युद्धं बभूव कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥४१॥

फिर तो वानरों और राक्षसों का घमासान युद्ध होने लगा। दोनों ओर के योद्धा क्रोध में भर एक दूसरे को ललकारने लगे और दोनों ही दलों के सैनिक अपनी अपनी जीत के लिए लालायित हुए ॥४१॥

ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥४२॥

तदनन्तर क्रोध में भर रावण ने अपने सुवर्णभूषित शरों से वानरी सेना का बड़ा नाश किया ॥४२॥

निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन वलीमुखाः ।
केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचिच्छ्रोत्रविवर्जिताः ॥४३॥

रावण के चलाए बाणों से किसी वानर का तो सिर कट कर धड़ से अलग जा गिरा, किसी किसी का हृदय विदीर्ण हो गया और किसी के दोनों कान ही कट गए॥४३॥

निरुच्छ्वासा हताः केचित् केचित् पार्श्वेषु दारिताः ।
केचिद्विभिन्नशिरसः केचिच्चक्षुर्विवर्जिताः ॥४४॥

कोई साँस बंद हो जाने के कारण गिर कर मर गया। किसी की कोखें विदीर्ण हो गईं किसी का सिर और किसी की आँखें ही फूट गईं ॥४४॥

दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो
यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये ।
ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं
सोढुं न शेकुर्हरिपुङ्गवास्ते ॥४५॥

इति षरणवतितमः सर्गः ॥

क्रोध में भर तिरछी आँखें किए हुए और रथ पर सवार रावण समरभूमि में जिस ओर जा निकलता था, उस ओर मोर्चे पर खड़ी वानरी सेना के कपिश्रेष्ठ उनके तीरों की मार को नहीं सह सकते थे अर्थात् मोर्चा छोड़ भाग जाते थे ॥४५॥

युद्धकाण्ड का छियानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—:❀:—

## सप्तनवतितमः सर्गः

—:o:—

तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥१॥

इस प्रकार रावण द्वारा छोड़े हुए बाणों के आघात से मरे और घायल हो कर गिरे हुए वानरों से समरभूमि परिपूर्ण हो गई ॥१॥

रावणस्याप्रसह्यं तं शरसम्पातमेकतः ।
न शेकुः सहितं दीप्तं पतङ्गा ज्वलनं यथा ॥२॥

जैसे पतंगे जलती हुई आग की लपट को नहीं सह सकते, वैसे ही रणभूमि में किसी भी मोर्चे के वानर रावण की असह्य बाणवर्षा के सामने नहीं ठहर सकते थे ॥२॥

तेऽर्दिता निशितैर्बाणैः क्रोशन्तो विप्रदुद्रुवुः ।
पावकार्चिःसमाविष्टा दह्यमाना यथा गजाः ॥३॥

वानरगण पैने पैने बाणों से घायल हो कर चिल्लाते हुए भागने लगे। जैसे जलती हुई आग में भूल से घुस जाने पर हाथी चिल्ला कर भागने लगते हैं ॥३॥

प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ।
स ययौ समरे तस्मिन् विधमन् रावणः शरैः ॥४॥

उस युद्ध में रावण उन वानरों को बाणों से ऐसे विध्वस्त कर रहा था, जैसे मेघों को घटाओं की पवन (उड़ा कर) विध्वस्त कर डालता है ॥४॥

कदनं तरसा कृत्वा राक्षसेन्द्रो वनौकसाम् ।
आससाद ततो युद्धे राघवं त्वरितस्तदा ॥५॥

राक्षसराज रावण बड़ी फुर्त्ती से वानरों की सेना को नष्ट करता हुआ, तुरन्त समरभूमि में वहाँ पहुँचा, जहाँ श्रीरामचन्द्र जी थे ॥५॥

सुग्रीवस्तान् कपीन् दृष्ट्वा भग्नान् विद्रवतो रणे ।
[1]गुल्मे सुषेणं निक्षिप्य चक्रे युद्धेऽद्रुतं मनः ॥६॥

उधर जब सुग्रीव ने देखा कि, वानर लोग, व्यूह भङ्ग कर रणभूमि से भाग रहे हैं, तब वे सुषेण को (वानरों की रक्षा के लिए) सैन्यशिविर में नियत कर, स्वयं लड़ने को तैयार हुए ॥६॥

आत्मनः सदृशं वीरः स तं निक्षिप्य वानरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुखः शत्रुं प्रतस्थे पादपायुधः ॥७॥

अपने समान शूरवीर सुषेण को शिबिर में नियत कर, सुग्रीव हाथ में वृक्ष लेकर, रावण का सामना करने का चल दिए ॥७॥

पार्श्वतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे यूथाधिपाः स्वयम् ।
अनुजह्रुर्महाशैलान् विविधांश्च महाद्रुमान् ॥८॥

अन्य वानरयूथपति बड़े भारी भारी पत्थरों और बड़े बड़े वृक्षों को ले ले कर, सुग्रीव के अगल बगल और पीछे हो लिये ॥८॥

स नर्दयन् युधि सुग्रीवः स्वरेण महता महान् ।
पातयन् विविधांश्चान्याञ्जघानोत्तमराक्षसान् ॥९॥

---

१ गुल्मे—सेनासन्निवेशे । (रा०)

सुग्रीव समरभूमि में बड़े जोर से गर्जते हुए तथा बड़े बड़े प्रधान राक्षसों को मार कर गिराते हुए चले जाते थे ॥९॥

ममन्थ च महाकायो राक्षसान् वानरेश्वरः ।
युगान्तसमये वायुः प्रवृद्धानगमानिव ॥१०॥

वानरराज सुग्रीव ने विशाल शरीरधारी राक्षसों को वैसे ही मर्दन किया, जैसे प्रलयकालीन पवन, बड़े बड़े पर्वतों को चूर चूर कर डालता है ॥१०॥

राक्षसानामनीकेषु शैलवर्षं ववर्ष ह ।
अश्मवर्षं यथा मेघः पक्षिसंघेषु कानने ॥११॥

जिस प्रकार वन में पक्षियों के ऊपर आकाश से ओले बरसें उसी प्रकार वे राक्षसी सेना के ऊपर पत्थर बरसाने लगे ॥११॥

कपिराजविमुक्तैस्तैः शैलवर्षैस्तु राक्षसाः ।
विकीर्णशिरसः पेतुर्निकृत्ता इव पर्वताः ॥१२॥

उस समय कपिराज सुग्रीव के फैंके हुए वृक्षों और पत्थरों से शत्रुराक्षसों के सिर चकनाचूर हो जाते थे और वे वैसे ही भूमि पर गिर पड़ते थे, जैसे टूटे हुए पर्वत ॥१२॥

अथ संक्षीयमाणेषु राक्षसेषु समन्ततः ।
सुग्रीवेण प्रभग्नेषु पतत्सु निनदत्सु च ॥१३॥

सुग्रीव के प्रहार से चारों ओर राक्षसों की सेना का नाश होने लगा। वे चिल्ला चिल्ला कर भूमि पर गिरने लगे ॥१३॥

विरूपाक्षः स्वकं नाम धन्वी विश्राव्य राक्षसः ।
रथादाप्लुत्य दुर्धर्षो गजस्कन्धमुपारुहत् ॥१४॥

यह देख धनुषधारी दुर्धर्ष विरूपाक्ष अपना नाम सुना कर और रथ से उतर, हाथी की पीठ पर सवार हुआ ॥१४॥

स तं द्विरदमारुह्य विरूपाक्षो महारथः ।
विनदन् भीयनिह्लादं वानरानभ्यधावत ॥१५॥

महारथी विरूपाक्ष हाथी के ऊपर सवार हो, भयंकर सिंहनाद करता हुआ वानरों के ऊपर दौड़ा ॥१५॥

सुग्रीवे स शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ।
स्थापयामास चोद्विग्नान् राक्षसान् संप्रहर्षयन् ॥१६॥

उसने वानरी सेना के सामने जा, सुग्रीव के ऊपर बाणवृष्टि कर और घबराये हुए राक्षसों को हर्षित कर, उन्हें पुनः युद्ध में प्रवृत्त किया ॥१६॥

स तु विद्धः शितैर्बाणैः कपीन्द्रस्तेन रक्षसा ।
चुक्रोध स महाक्रोधो वधे चास्य मनो दधे ॥१७॥

विरूपाक्ष द्वारा पैने बाणों से घायल हो, महाक्रोधी सुग्रीव क्रुद्ध हुए और उन्होंने उस राक्षस को मार डालने की अपने मन में ठानी ॥१७॥

ततः पादपमुद्धृत्य शूरः [1]सम्प्रधनो हरिः ।
अभिपत्य जघानास्य प्रमुखे तु महागजम् ॥१८॥

तदनन्तर शूरवीर सुग्रीव ने एक पेड़ उखाड़ कर और झपट कर उस हाथी के सिर पर मारा, जिस पर विरूपाक्ष बैठा हुआ था ॥१८॥

---

[1] सम्प्रधनः—प्रहर्तेत्यर्थः । ( गो० )

स तु प्रहाराभिहतः सुग्रीवेण महागजः ।
अपासर्पद्धनुर्मात्रं निषसाद ननाद च ॥१६॥

सुग्रीव के वृक्षप्रहार की चोट से वह गजराज एक धनुष ( अर्थात् चार हाथ ) पीछे हट गया और चिग्घाड़ता हुआ बैठ गया ॥१६॥

गजात्तु मथितात्तूर्णमपक्रम्य स वीर्यवान् ।
राक्षसोऽभिमुखः शत्रुं प्रत्युद्गम्य ततः कपिम् ॥२०॥

जब गज को बेकाम हुआ जान, बलवान विरूपाक्ष उस हाथी से तुरन्त नीचे कूद पड़ा और अपने शत्रु वानरराज सुग्रीव के सामने हुआ ॥२०॥

आर्षभं चर्म खड्गं च प्रगृह्य लघुविक्रमः ।
भर्त्सयन्निव सुग्रीवमाससाद व्यवस्थितम् ॥२१॥

बैल के चमड़े की ढाल और तलवार ले कर, विरूपाक्ष सामने खड़े हुए सुग्रीव को ललकारता हुआ उनके ऊपर लपका ॥२१॥

स हि तस्याभिसंक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ।
विरूपाक्षाय चिक्षेप सुग्रीवो जलदोपमाम् ॥२२॥

इस पर सुग्रीव ने भी क्रोध में भर एक बड़ी भारी शिला उठाई और उस बादल के समान बड़ी शिला को विरूपाक्ष के ऊपर फैंका ॥२२॥

स तां शिलामापतन्तीं दृष्ट्वा राक्षसपुङ्गवः ।
अपक्रम्य सुविक्रांतः खड्गेन प्राहरत्तदा ॥२३॥

जब राक्षसश्रेष्ठ विरूपाक्ष ने उस शिला को अपनी ओर आते देखा ; तब अत्यन्त पराक्रमी विरूपाक्ष पैंतरे बदल, उस शिला के वार को बचा गया और उसने सुग्रीव के ऊपर तलवार चलाई ॥२३॥

तेन खड्गप्रहारेण रक्षसा बलिना हतः ।
मुहूर्तमभवद्वीरो विसंज्ञ इव वानरः ॥२४॥

उस बलवान राक्षस विरूपाक्ष के खड्ग की चोट खा कर, सुग्रीव मुहूर्त्त भर के लिए कुछ कुछ मूर्च्छित से हो गए ॥२४॥

स तदा सहसोत्पत्य राक्षसस्य महाहवे ।
मुष्टिं संवर्त्य वेगेन पातयामास वक्षसि ॥२५॥

जब वे सावधान हुए, तब उन्होंने इस महायुद्ध में सहसा उछल और मुट्ठी बाँध, एक घूँसा बड़े जोर से विरूपाक्ष की छाती में मारा ॥२५॥

मुष्टिप्रहाराभिहतो विरुपाक्षो निशाचरः ।
तेन खड्गेन संक्रुद्धः सुग्रीवस्य चमूमुखे ॥२६॥

राक्षस विरूपाक्ष, घूँसे के प्रहार को सह और क्रोध में भर, सेना के आगे खड़े सुग्रीव के ऊपर पुनः खड्ग का प्रहार कर, ॥२६॥

कवचं पातयामास [1]पद्भ्यामभिहतोऽपतत् ।
स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य व्यसर्जयत् ॥२७॥
तलप्रहारमशनेः समानं भीमनिःस्वनम् ।
तलप्रहारं तद्रक्षः सुग्रीवेण समुद्यतम् ॥२८॥

---

१ पद्भ्यामभिहतोपतत्—आकुञ्चितजानुरभवादित्यर्थः । ( रा० )

उनका कवच काट कर गिरा दिया। उस खड्गप्रहार से सुग्रीव ने ज़मीन पर घुटने टेक दिए। घुटने टेके हुए सुग्रीव ने सहसा उठ कर और भयङ्कर नाद करते हुए; वज्र के समान एक चपेटा उसके मारना चाहा ; ॥२७॥२८॥

नैपुण्यात् मोचयित्वैनं मुष्टिनोरस्यताडयत् ।
ततस्तु संक्रुद्धतरः सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥२९॥

मोक्षितं चात्मनो दृष्ट्वा प्रहारं तेन रक्षसा ।
स ददर्शान्तरं तस्य विरूपाक्षस्य वानरः ॥३०॥

किन्तु वह शत्रु पर वार करने और शत्रु का वार बचाने में बड़ा निपुण था। अतः वह उस प्रहार को बचा गया और फिर उसने सुग्रीव के एक घूँसा मारा। अपने प्रहार को व्यर्थ जाते देख (और उसके प्रहार से पीड़ित होने के कारण) वानरराज सुग्रीव और भी अधिक क्रुद्ध हुए और विरूपाक्ष पर प्रहार करने की घात में रहे ॥२९॥३०॥

ततो न्यपातयत् क्रोधाच्छङ्खदेशे महत्तलम् ।
महेन्द्राशनिकल्पेन तलेनाभिहतः क्षितौ ॥३१॥

पपात रुधिरक्लिन्नः शोणितं च समुद्वमन् ।
स्रोतोभ्यस्तु विरूपाक्षो जलं प्रस्रवणादिव ॥३२॥

(अवसर पा) उन्होंने एक चपेटा उसके माथे में मारा। उस वज्रसमान चपेटे की चोट से वह धरती पर गिर लोटपोट हो गया। वह लोहू से नहा उठा और उसने रक्त की वमन की।

---

१ स्रोतोभ्यः—नासादिनवद्वारेभ्यः। (गो०)

उसकी नाक, कान आदि शरीर के नव द्वारों से रक्त उसी प्रकार बहने लगा; जिस प्रकार पर्वत के झरने से जल बहता है ॥३१॥३२॥

विवृत्तनयनं क्रोधात् सफेनं रुधिराप्लुतम् ।
ददृशुस्ते विरूपाक्षं विरूपाक्षतरं कृतम् ॥३३॥

वानरों ने क्रोध में भर आँखें घुमाते हुए और झागों सहित रुधिर से सने विरूपाक्ष को, जो उस समय सचमुच अपने "विरूपाक्ष" नाम को चरितार्थ कर रहा था, देखा ॥३३॥

स्फुरन्तं परिवर्तन्तं पार्श्वेन रुधिरोक्षितम् ।
करुणं च विनर्दन्तं ददृशुः कपयो रिपुम् ॥३४॥

उस समय वह धरती पर छटपटाता हुआ करवटें बदल रहा था और रक्त से सराबोर था। वानरों ने उसके निकट जा देखा कि उनका शत्रु विरूपाक्ष करुणस्वर से आर्तनाद कर रहा है ॥३४॥

तथा तु तौ संयति संप्रयुक्तौ
तरस्विनौ वानरराक्षसानाम् ।
बलार्णवौ सस्वनतुः सुभीमं
बलार्णवौ द्वाविव भिन्नवेलौ ॥३५॥

उस समय वेगवान् और युद्ध में नियुक्त वानरों और राक्षसों की समुद्ररूपी दोनों सेनाएँ वैसा ही अत्यन्त भयानक गर्जन शब्द करने लगीं ; जैसे तटों के टूटने पर दो समुद्रों के गर्जन का शब्द होता है ॥३५॥

विनाशितं प्रेक्ष्य विरूपनेत्रं
महाबलं तं हरिपार्थिवेन ।

बलं समस्तं कपिराक्षसानाम्
[1]उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं बभूव ॥३६॥

इति सप्तनवतितमः सर्गः ॥

सुग्रीव द्वारा महाबली विरूपाक्ष का मारा जाना देख, वानरों और राक्षसों की दोनों सेनाएँ ( यथाक्रम ) हर्ष और विषाद से गङ्गा की तरह तरङ्गित हो उठीं ॥३६॥

युद्धकाण्ड का सत्तानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—※—

## अष्टनवतितमः सर्गः

—:०:—

हन्यमाने बले तूर्णमन्योन्यं ते महामृधे ।
सरसीव महाघर्मे सूपक्षीणे बभूवतुः ॥१॥

उस समय उस घोर संग्राम में परस्पर प्रहार से मारे गए सैनिकों के कारण दोनों ओर की सेनाएँ वैसे ही क्षीण हो गईं जैसे ग्रीष्मऋतु में छोटी छोटी तलैयाँ हो जाती हैं ॥१॥

स्वबलस्य विघातेन विरूपाक्षवधेन च ।
बभूव द्विगुणं क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ॥२॥

अपनी सेना का नाश और विरूपाक्ष का मारा जाना देख, राक्षसराज रावण दूना क्रुद्ध हुआ ॥२॥

---

१ उन्मत्त—उद्वेल । ( गो० )

प्रक्षीणं तु बलं दृष्ट्वा बध्यमानं वलीमुखैः ।
बभूवास्य व्यथा युद्धे प्रेक्ष्य दैवविपर्ययम् ॥३॥

वानरों द्वारा वध किए जाने के कारण अपनी सेना को अत्यन्तक्षीण हुआ देख, रावण ने समझा कि, इस समय मेरा भाग्य ही लौट गया है, अतः समरभूमि में स्थित रावण व्यथित हुआ ॥३॥

उवाच च समीपस्थं महोदरमरिन्दमम् ।
अस्मिन् काले महाबाहो जयाशा त्वयि मे स्थिता ॥४॥

उसने पास खड़े हुए शत्रुनाशकारी महोदर से कहा—हे महा बलवान ! इस समय मेरे विजय की आशा तुम्हारे ऊपर ही निर्भर करती है ॥४॥

जहि शत्रुचमूं वीर दर्शयाद्य पराक्रमम् ।
[1]भर्तृपिण्डस्य कालोऽयं निर्देष्टुं साधु युध्यताम् ॥५॥

हे वीर ! तुम शत्रुसैन्य को नाश कर आज अपना पराक्रम दिखला दो । स्वामी का खाया हुआ निमक हलाल कर के दिखाने का यही अवसर है । अतः तुम भलीभाँति युद्ध करो ॥५॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा राक्षसेन्द्रो महोदरः ।
प्रविवेशारिसेनां तां पतङ्ग इव पावकम् ॥६॥

रावण के यह कहने पर महोदर ने उससे कहा "बहुत अच्छा" और वह शत्रुसेना में उसी प्रकार कूद पड़ा, जैसे पतंगा आग में कूद पड़ता है ॥६॥

---

१ भर्तृपिण्डस्य—स्वामिकृतान्तादिप्रदानोपकारस्य । ( रा० )

ततः स कदनं चक्रे वानराणां महाबलः ।
भर्तृवाक्येन तेजस्वी स्वेन वीर्येण चोदितः ॥७॥

रावण के कहने से तथा अपने बल का आश्रय ग्रहण कर, महाबली एवं तेजस्वी महोदर ने वानरी सेना में घुस बड़ी मार काट मचाई ॥७॥

वानराश्च महासत्त्वाः प्रगृह्य विपुलाः शिलाः ।
प्रविश्यारिबलं भीमं जघ्नुस्ते रजनीचरान् ॥८॥

बड़े बड़े बलवान वानरों ने भी बड़ी बड़ी शिलाएँ ले और शत्रुओं (राक्षसों) की भयंकर सेना में घुस, राक्षसों का संहार किआ ॥८॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
चिच्छेद पाणिपादोरून् वानराणां महाहवे ॥९॥

महोदर ने क्रोध में भर सुवर्णभूषित बाणों से उस महासमर में, अनेक वानरों के हाथ पैर काट डाले ॥९॥

ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्दिता भृशम् ।
दिशो दश द्रुताः केचित् केचित् सुग्रीवमाश्रिताः ॥१०॥

महोदर की मार से समस्त वानर अत्यन्त पीड़ित हुए और उनमें से कुछ तो इधर उधर भाग गए और कुछ ने जा सुग्रीव का आश्रय ग्रहण किया ॥१०॥

प्रभग्नां समरे दृष्ट्वा वानराणां महाचमूम् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवो महोदरमनन्तरम्[1] ॥११॥

---

१ अनन्तरं—समीपस्थं । ( गो० )

महती वानरी सेना की मोर्चाबंदी को छिन्नभिन्न हुआ देख, सुग्रीव समापत्य महोदर के ऊपर झपटे ॥११॥

प्रगृह्य विपुलां घोरां महीधरसमां शिलाम् ।
चिक्षेप च महातेजास्तद्वधाय हरीश्वरः ॥१२॥

महातेजस्वी कपिराज सुग्रीव ने, पर्वत के समान एक बड़ी भारी शिला उठा, महोदर के वध के लिए फैंकी ॥१२॥

तामापतन्तीं सहसा शिलां दृष्ट्वा महोदरः ।
असम्भ्रान्तस्ततो बाणैर्निर्बिभेद दुरासदाम् ॥१३॥

अचानक उस शिला को अपने ऊपर आते हुए देख, महोदर घबड़ाया नहीं और उसने बाणों से उस दुर्धर्ष शिला के टुकड़े टुकड़े कर डाले ॥१३॥

रक्षसा तेन बाणौघैर्निकृत्ता सा सहस्रधा ।
निपपात शिला भूमौ [1]गृध्रचक्रमिवाकुलम् ॥१४॥

महोदर ने बाणों से उस विशाल शिला के सहस्रों टुकड़े कर डाले और उस शिला के टुकड़े भूमि पर ऐसे गिरे, मानों गिद्धों का झुंड पृथिवी पर गिरा हो ॥१४॥

तां तु भिन्नां शिलां दृष्ट्वा सुग्रीवः क्रोधमूर्च्छितः ।
सालमुत्पाट्य चिक्षेप राक्षसे रणमूर्धनि ॥१५॥

शिला का वार खाली जाते देख, सुग्रीव अत्यन्त क्रुद्ध हुए और उन्होंने समरभूमि में से एक साखू का पेड़ उखाड़, उसे महोदर के ऊपर फैंका ॥१५॥

---

१ गृध्रचक्रं—गृध्रसमूहः । ( गो०

शरैश्च विददारैनं शूरः परपुरञ्जयः ।
स ददर्श ततः क्रुद्धः परिघं पतितं भुवि ॥१६॥

उस शूरवीर और शत्रुओं के पुरों को जीतने वाले महोदर ने बाणों से उस पेड़ को भी काट डाला । यह देख सुग्रीव क्रुद्ध हुए। उन्हें उस समय पृथिवी पर पड़ा एक परिघ देख पड़ा ॥१६॥

आविध्य तु स तं दीप्तं परिघं तस्य दर्शयन् ।
परिघाग्रेण वेगेन जघानास्य हयोत्तमान् ॥१७॥

उन्होंने उस चमचमाते परिघ को अच्छी तरह घुमा और उस राक्षस को दिखाया । तदनन्तर बड़े ज़ोर से उसके अग्रभाग से महोदर के घोड़ों का मार डाला ॥१७॥

तस्माद्धतहयाद्वीरः सोऽवप्लुत्य महारथात् ।
गदां जग्राह संक्रुद्धो राक्षसोऽथ महोदरः ॥१८॥

घोड़ों के मारे जाने पर वीर महोदर अपने विशाल रथ से कूद पड़ा और क्रोध में भर उसने एक गदा उठा ली ॥१८॥

गदापरिघहस्तौ तौ युधि वीरौ समीयतुः ।
नर्दन्तौ गोवृषप्रख्यौ घनानिव सविद्युतौ ॥१६॥

सुग्रीव परिघ ले और महोदर गदा ले लड़ने के लिए आमने सामने हुए। दो साँड़ों की तरह वे आपस में भिड़ गए। बिजली सहित बादलों की तरह गर्जते हुए दोनों लड़ने लगे ॥१६॥

ततः क्रुद्धो गदां तस्मै चिक्षेप रजनीचरः ।
ज्वलन्तीं भास्कराभासां सुग्रीवाय महोदरः ॥२०॥

राक्षस महोदर ने क्रोध में भर सूर्य की तरह चमचमाती गदा सुग्रीव के ऊपर फैंकी ॥२०॥

गदां तां सुमहाघोरामापतन्तीं महाबलः ।
सुग्रीवो रोषताम्राक्षः समुद्यम्य महाहवे ॥२१॥

क्रोध में भरे हुए लाल लाल नेत्र किए महाबली वानरराज सुग्रीव ने गदा को अपने ऊपर आते देख, उस महासागर में परिघ उठा ॥२१॥

आजघान गदां तस्य परिघेण हरीश्वरः ।
पपात स गदोद्भिन्नः परिघस्तस्य भूतले ॥२२॥

कपिराज ने उस गदा में मारा । किन्तु वह परिघ उस गदा से टकरा कर और टूट कर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥२२॥

ततो जग्राह तेजस्वी सुग्रीवो वसुधातलात् ।
आयसं मुसलं घोरं सर्वतो हेमभूषितम् ॥२३॥

तब तेजस्वी सुग्रीव ने पृथिवी पर पड़ा एक लोहे का बड़ा भयंकर मूसल, जो सोने के बंदों से चारों ओर भूषित था ॥२३॥

स तमुद्यम्य चिक्षेप सोऽप्यन्यां व्याक्षिपद्गदाम् ।
भिन्नावन्योन्यमासाद्य पेततुर्धरणीतले ॥२४॥

उसे उठा कर उन्होंने उस गदा के ऊपर चलाया । तब वह मूसल और गदा आपस में टकरा दोनों ही टूट कर भूमि पर गिर पड़े ॥२४॥

ततो भग्नप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीयतुः
तेजोबलसमाविष्टौ दीप्ताविव हुताशनौ ॥२५॥

जब वे दोनों आयुध टूट गए तब दोनों योद्धाओं में घुसंघुस्सा होने लगा। वे अपने अपने तेज और बल से प्रदीप्त आग की तरह जान पड़ते थे ॥२५॥

जघ्नतुस्तौ तदाऽन्योन्यं नेदतुश्च पुनः पुनः।
तलैश्चान्योन्यमाहत्य पेततुर्धरणीतले ॥२६॥

वे एक दूसरे पर प्रहार करते थे और बार बार सिंहनाद करते थे। फिर थपेड़ों से एक दूसरे को मार कर, दोनों धरती पर गिर पड़ते थे ॥२६॥

उत्पेततुस्ततस्तूर्णं जघ्नतुश्च परस्परम्।
भुजैश्चिक्षिपतुर्वीरावन्योन्यमपराजितौ ॥२७॥

फिर तुरन्त ही दोनों उठ खड़े होते और एक दूसरे पर प्रहार करने लगते थे। अपने भुजबल से वे एक दूसरे को उठा उठा कर पटकी दे रहे थे। अब तक उन दोनों में से हारा एक भी न था ॥२७॥

जग्मतुस्तौ श्रमं वीरौ बाहुयुद्धे परन्तपौ।
आजहार ततः खड्गमदूरपरिवर्तिनम् ॥२८॥
राक्षसश्चर्मणा सार्धं महावेगो महोदरः।
तथैव च महाखड्गं चर्मणा पतितं सह ॥२९॥

शत्रुघाती दोनों ही वीर इस प्रकार बहुत देर तक बाहुयुद्ध करते करते थक गए। उन्होंने तब बाहुयुद्ध बन्द कर दिया। अत्यन्त फुर्तीले महोदर ने वहाँ पड़ी हुई ढालों तलवारों में से एक ढाल और एक तलवार उठा ली ॥२८॥२९॥

जग्राह वानरश्रेष्ठः सुग्रीवो वेगवत्तरः ।
तौ तु रोषपरीताङ्गौ नर्दन्तावभ्यधावताम् ॥३०॥

तब महोदर से भी बढ़ कर फुर्तीले वानरश्रेष्ठ सुग्रीव ने भी एक ढाल और एक तलवार उठा ली। वे दोनों क्रोध में भर गर्जते हुए एक दूसरे के ऊपर दौड़े ॥३०॥

उद्यतासी रणे हृष्टौ युधि शस्त्रविशारदौ ।
दक्षिणं मण्डलं चोभौ सुतूर्णं सम्परीयतुः ॥३१॥

तलवार उठाए और शस्त्र चलाने में चतुराई दिखलाते हुए, वे दोनों योद्धा दक्षिणावर्ती मण्डलाकार पैतरा बदलते हुए कावा काट रहे थे ॥३१॥

अन्योन्यमभिसंक्रुद्धौ जये प्रणिहितावुभौ ।
स तु शूरो महावेगो वीर्यश्लाघी महोदरः ॥३२॥

महाचर्मणि तं खड्गं पातयामास दुर्मतिः ।
लग्नमुत्कर्षतः खड्गं खड्गेन कपिकुञ्जरः ॥३३॥

और एक दूसरे पर क्रोध करते हुए जीतने के अभिलाषी हो रहे थे। इतने में बड़ाई चाहने वाले, शूरवीर दुष्ट महोदर ने बड़े जोर से सुग्रीव की बड़ी ढाल पर खड्ग का प्रहार किया। किन्तु उसकी तलवार, जब वह उसे खींचने लगा, तब उस ढाल में उलझ गई। तब कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ने अपने हाथ की तलवार से ॥३२॥३३॥

जहार सशिरस्त्राणं कुण्डलोपहितं शिरः ।
निकृत्तशिरसस्तस्य पतितस्य महीतले ॥३४॥

महोदर के सिर को, जो (लोहे के) टोप (या पगड़ी) तथा कुण्डलों से शोभित था, काट डाला उसके कटे हुए सिर को, धरती पर पड़ा हुआ देख ॥३४॥

तद्बलं राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न तिष्ठते ।
हत्वा तं वानरैः सार्धं ननाद मुदितो हरिः ॥३५॥

रावण की वह सेना, वहाँ खड़ी न रह सकी। महोदर को मार सुग्रीव समस्त वानरों सहित गर्जे ॥३५॥

चुक्रोध च दशग्रीवो बभौ हृष्टश्च राघवः ।
विषण्णवदनाः सर्वे राक्षसा दीनचेतसः ।
विद्रवन्ति ततः सर्वे भयवित्रस्तचेतसः ॥३६॥

यह देख रावण तो क्रुद्ध हुआ, किन्तु श्रीरामचन्द्र जी हर्षित हुए। समस्त राक्षसों के चेहरों पर उदासी छा गई और वे मन में बड़े दुःखी हुए। समस्त राक्षस मन में भयभीत हो, वहाँ से भाग गए ॥३६॥

महोदरं तं विनिपात्य भूमौ
महागिरेः कीर्णमिवैकदेशम् ।
सूर्यात्मजस्तत्र रराज लक्ष्म्या
सूर्यःस्वतेजोभिरिवाप्रधृष्यः ॥३७॥

इस प्रकार महापर्वत के विदीर्ण हुए एक भाग की तरह महोदर को पृथिवी पर गिरा, सूर्यपुत्र सुग्रीव की, विजयलक्ष्मी से वैसे ही शोभा हुई ; जैसी कि, दुर्धर्ष की अपने तेज से होती है ॥३७॥

अथ विजयमवाप्य वानरेन्द्रः
समरमुखे सुरयक्षसिद्धसङ्घैः ।
अवनितलगतैश्च भूतसंघैः
*हरूषसमाकुलितैः स्तुतो महात्मा ॥३८॥

इति अष्टनवतितमः सर्गः ॥

वानरराज सुग्रीव के इस प्रकार इस युद्ध में विजयलक्ष्मी प्राप्त करने पर, आकाशस्थित देवता, यक्ष, सिद्ध तथा पृथिवी पर स्थित समस्त प्राणी हर्षित हो सुग्रीव की प्रशंसा करने लगे ॥३८॥

युद्धकाण्ड का अट्ठानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## एकोनशततमः सर्गः

—❀—

महोदरे तु निहते महापार्श्वो महाबलः ।
सुग्रीवेण समीक्ष्याथ क्रोधात् संरक्तलोचनः ॥१॥

महोदर के मारे जाने पर, महाबलवान राक्षस, महापार्श्व, क्रोध में भर और लाल लाल नेत्र कर, सुग्रीव को घूरने लगा ॥१॥

अङ्गदस्य चमूं भीमां क्षोभयामास सायकैः ।
स वानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि सर्वशः ॥२॥

---

* हर्षपदस्थाने हरूषेतिपाठश्छन्दोनुरोधात् । (तीर्थी०)

पातयामास कायेभ्यः फलं [1]वृन्तादिवानिलः ।
केषांचिदिषुभिर्बाहून् स्कन्धांश्चिच्छेद राक्षसाः ॥३॥

और अंगद को भयंकर वानरी सेना को बाणों से क्षुब्ध करने लगा। वह मुख्य मुख्य वानरों के शरीरों से उनके सिरों को बाण से काट काट कर, उसी प्रकार गिरा रहा था, जिस प्रकार हवा डालियों से फलों को गिराती है। बाणों से वह किसी की बाँहें और किसी किसी के कंधों को छिन्न भिन्न कर रहा था ॥२॥३॥

वानराणां सुसंक्रुद्धः पार्श्वं केषां व्यदारयत् ।
तेऽर्दिता बाणवर्षेण महापार्श्वेन वानराः ॥४॥

अत्यन्त क्रुद्ध हो वह अनेक वानरों की कोखों को विदीर्ण कर रहा था। महापार्श्व की बाणवर्षा से वानर लोग पीड़ित हुए ॥४॥

विषादविमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचेतसः
निरीक्ष्य बलमुद्विग्नमङ्गदो राक्षसार्दितम् ॥५॥

वानर लोग बिषादित हो युद्ध से बिमुख हो गए। उनकी चेतना नष्ट हो गई। तब महापार्श्व द्वारा वानरी सेना को पीड़ित देख अंगद ने ॥५॥

वेगं चक्रे महाबाहुः समुद्र इव पर्वणि ।
आयसं परिघं गृह्य सूर्यरश्मिसमप्रभम् ॥६॥

पूर्णमासी के समुद्र की तरह वेग धारण कर, सूर्य किरणों की तरह चमचमाते एक लोहे के परिघ को उठा लिया ॥६॥

---

१ वृन्तात्—प्रसवबंधनात्। (शि०)

समरे वानरश्रेष्ठो महापार्श्वे न्यपातयत् ।
स तु तेन प्रहारेण महापार्श्वो विचेतनः ॥७॥

फिर उस समरभूमि में वानरश्रेष्ठ अङ्गद ने उसे महापार्श्व के ऊपर चलाया। उस परिघ के प्रहार से महापार्श्व मूर्च्छित हो ॥७॥

ससूतः स्यन्दनात्तस्माद्विसंज्ञः प्रापतद्भुवि ।
सर्क्षराजस्तु तेजस्वी नीलाञ्जनचयोपमः ॥८॥

निष्पत्य सुमहावीर्यः स्वयूथान् मेघसन्निभात् ।
प्रगृह्य गिरिशृङ्गाभां क्रुद्धः सुविपुलां शिलाम् ॥९॥

सारथी सहित पृथिवी पर गिर पड़ा। इतने में काजल के ढेर की तरह महाबलवान तेजस्वी ऋक्षपति जाम्बवान् मेघ की तरह अपने दल से उछल कर, झपटे। उन्होंने क्रोध मे भर पर्वत के शृंग की तरह एक भारी शिला ले ली ॥८॥९॥

अश्वाञ्जघान तरसा स्यन्दनं च बभञ्ज तम् ।
मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञस्तु महापार्श्वो महाबलः ॥१०॥

उससे जाम्बवान् ने बड़े वेग से महापार्श्व के घोड़ों को मार रथ को चूर चूर कर डाला। एक मुहूर्त्त भर मूर्च्छित रह कर महाबली महापार्श्व सचेत हुआ ॥१०॥

अङ्गदं बहुभिर्बाणैर्भूयस्तं प्रत्यविध्यत ।
जाम्बवन्तं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥११॥

ऋक्षराजं गवाक्षं च जघान बहुभिः शरैः ।
जाम्बवन्तं गवाक्षं च स दृष्ट्वा शरपीडितौ ॥१२॥

तब उसने बहुत से बाण मार कर अङ्गद को घायल किया। ऋक्षराज जाम्बवान् की छाती में उसने तीन बाण मारे और गवाक्ष के बाण मारे। जाम्बवान् और गवाक्ष के बहुत से बाण-पीड़ा से व्यथित देख ॥११॥१२॥

जग्राह परिघं घोरमङ्गदः क्रोधमूर्च्छितः।
तस्याङ्गदः प्रकुपितो राक्षसस्य तमायसम् ॥१३॥

अङ्गद ने क्रोध से अधीर हो, एक परिघ उठाया। अङ्गद ने क्रोध में भर उस लोहे के परिघ को, उस राक्षस के ऊपर फैंका ॥१३॥

दूरस्थितस्य परिघं रविरश्मिसमप्रभम्।
द्वाभ्यां भुजाभ्यां संगृह्य भ्रामयित्व च वेगवान् ॥१४॥
महापार्श्वस्य चिक्षेप वधार्थं वालिनः सुतः।
स तु क्षिप्तो बलवता परिघस्तस्य रक्षसः ॥१५॥
धनुश्च सशरं हस्ताच्छिरस्त्रं चाप्यपातयत्।
तं समासाद्य वेगेन वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥१६॥

वेगवान् अङ्गद ने एक परिघ उठा लिया। वह परिघ सूर्य की किरणों की तरह चमकीला था। वालितनय ने उसे दोनों हाथों से पकड़ और जोर से घुमा, दूरस्थित महापार्श्व के वध के लिए उसके ऊपर फैंका। बड़े जोर से और वेग से छूटे हुए उस परिघ ने उस राक्षस के हाथ से बाण सहित उसका धनुष गिरा दिआ और उसके सिर की टोपी भी गिरा दी। तदनन्तर प्रतापी अङ्गद ने झपट कर और उसके समीप जा ॥१४॥१५॥१६॥

तलेनाभ्यहनत् क्रुद्धः कर्णमूले सकुण्डले ।
स तु क्रुद्धो महावेगो महापार्श्वो महाद्युतिः ॥१७॥

उसकी कनपुटी में, जहाँ कुण्डल लटक रहा था, एक थप्पड़ जमाया। इस पर महाद्युतिमान् एवं महावेगवान् महापार्श्व ने क्रोध में भर ॥१७॥

करेणैकेन जग्राह सुमहान्तं परश्वधम् ।
तं तैलधौत विमलं शैलसारमयं दृढम् ॥१८॥

एक हाथ से फरसा उठाया। वह फरसा तेल से साफ किया हुआ निर्मला था और पर्वत के समान मजबूत था ॥१८॥

राक्षसः परमः क्रुद्धो वालिपुत्रे न्यपातयत् ।
तेन वामांसफलके भृशं प्रत्यवपादितम् ॥१९॥
अङ्गदो मोक्षयामास सरोषः स परश्वधम्
स वीरो वज्रसङ्काशमङ्गदो मुष्टिमात्मनः ॥२०॥
संवर्तयत् सुसंक्रुद्धः पितृतुल्यपराक्रमः ।
राक्षसस्य स्तनाभ्यासे मर्मज्ञो हृदय प्रति ॥२१॥

महापार्श्व ने क्रोध में भर वह फरसा अंगद के खींच कर मारा। किन्तु अंगद ने उस राक्षस द्वारा अपने बाँये कंधे पर किए गए फरसे के प्रहार को क्रोध में भर व्यर्थ कर दिआ। तदनन्तर पिता के समान पराक्रमी वीर अंगद ने, क्रोध में भर वज्र की तरह अपनी मुट्ठी बाँधी। फिर मर्मस्थलों को पहिचानने वाले ने उसकी छाती में ॥१९॥२०॥२१॥

इन्द्राशनिसमस्पर्शं स मुष्टिं विन्यपातयत् ।
तेन तस्य निपातेन राक्षसस्य महामृधे ॥२२॥

अपना वह इन्द्र के समान कठोर घूँसा तान कर मारा। उस घूँसे के प्रहार से इस महायुद्ध में उस राक्षस का ॥२२॥

पफाल हृदयं चाशु स पपात हतो भुवि ।
तस्मिन्निपतिते भूमौ तत् सैन्यं संप्रचुक्षुभे ॥२३॥

हृदय फट गया और वह तुरन्त निर्जीव हो धरती पर गिर पड़ा। उसके पृथिवी पर गिरते ही उसकी सेना भाग गई ॥२३॥

अभवच्च महान् क्रोधः समरे रावणस्य तु ।
वानराणां च हृष्टानां सिंहनादश्च पुष्कलः ॥२४॥
स्फोटयन्निव शब्देन लङ्कां साट्टालगोपुराम् ।
महेन्द्रेणेव देवानां नादः समभवत् महान् ॥२५॥

तब तो समर में रावण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ; किन्तु वनरों का हर्षनाद तो ऐसा तुमुल हुआ; मानों अटाअटारियों और नगरी के मुख्य द्वारों सहित, लङ्कापुरी फटी जाती हो। यह हर्षनाद वैसा ही था जैसे कि, इन्द्र के जीतने पर देवताओं ने किआ था ॥२४॥२५॥

अथेन्द्रशत्रुस्त्रिदिवालयानां
वनौकसां चैव महाप्रणादम् ।
श्रुत्वा सरोषं युधि राक्षसेन्द्रः
पुनश्च युद्धाभिमुखोऽवतस्थे ॥२६॥

इति एकोनशततमः सर्गः ॥

इन्द्रशत्रु राक्षसेन्द्र रावण, वानरों और देवताओं का बड़ा भारी हर्षनाद सुन क्रुद्ध हो, पुनः युद्ध करने को उद्यत हुआ ॥२६॥

युद्धकाण्ड का निन्नानबेवाँ सर्ग पूरा हुआ।

## शततमः सर्गः

—❀—

महोदरमहापार्श्वौ हतौ दृष्ट्वा तु राक्षसौ ।
तस्मिंश्च निहते वीरे विरूपाक्षे महाबले ॥१॥

महादर और महापार्श्व नामक दोनों राक्षसों को मरा हुआ देख, तथा महाबली वीर विरूपाक्ष को मरा हुआ देख ॥१॥

आविवेश महान् क्रोधो रावणं तं महामृधे ।
सूतं सञ्चोदयामास वाक्य चेदमुवाच ह ॥२॥

उस महासमर में रावण अत्यंन्त कुपित हुआ । तदनन्तर उसने अपने सारथि को प्रेरणा करते हुए यह कहा ॥२॥

निहतानाममात्यानां रुद्धस्य नगरस्य च ।
दुःखमेषोऽपनेष्यामि हत्वा तौ रामलक्ष्मणौ ॥३॥

आज मैं उन दोनों राम और लक्ष्मण को मार कर, अपने मारे गए मंत्रियों का और लङ्कापुरी के घेरे जाने ( अवरोध ) का दुःख दूर करूँगा ॥३॥

रामवृक्षं रणे हन्मि सीतापुष्पफलप्रदम् ।
प्रशाखा यस्य सुग्रीवो जाम्बवान् कुमुदो नलः ॥४॥
मैन्दश्च द्विविदश्चैव ह्यङ्गदो गन्धमादनः ।
हनूमांश्च सुषेणश्च सर्वे च हरियूथपाः ॥५॥

मैं आज रामरूपी उस वृक्ष को काट गिराता हूँ जिसमें सीता-रूपी फल फला है और जिसके सुग्रीव, जाम्बवान्, कुमुद, नल,

मैन्द, द्विविद, अङ्गद, गन्धमादन, हनुमान्, एवं सुषेणादि समस्त वानर यूथपति डालियाँ और गुद्दे हैं ॥४॥५॥

स दिशो दश घोषेण रथस्यातिरथो महान् ।
नादयन् प्रययौ तूर्णं राघवं चाभ्यवर्तत ॥६॥

महारथी रावण रथ में सवार हो और रथ की घरघराहट से दसों दिशाओं को प्रतिध्वनित करता हुआ तथा गर्जता हुआ, बड़ी शीघ्रता से श्रीरामचन्द्र जी के सामने जा पहुँचा ॥६॥

पूरिता तेन शब्देन सनदीगिरिकानना ।
सञ्चचाल मही सर्वा सवराहमृगद्विपा ॥७॥

उसके सिंहनाद के शब्द से नदियों, पहाड़ों और वनों एवं वहाँ के शूकरों, मृगों और हाथियों सहित पृथिवी, प्रतिध्वनित हो, काँप उठी ॥७॥

तामसं स महाघोरं चकारास्त्रं सुदारुणम् ।
निर्ददाह कपीन् सर्वांस्ते प्रपेतुः समन्ततः ॥८॥

उस समय उसने महाभयकर और अत्यन्त दारुण तामस अस्त्र का प्रयोग कर, समस्त वानरों को दग्ध कर डाला। वे वानरगण दग्ध होकर रणभूमि में चारों ओर गिरने लगे ॥८॥

उत्पपात रजो घोरं तैर्भग्नैः सम्प्रधावितैः ।
न हि तत् सहितुं शेकुर्ब्रह्मणा निर्मितं स्वयम् ॥९॥

जब वानर लोग मोर्चे भग्न कर भागने लगे, तब उनके भागने से बड़ी भयकंर धूल उड़ी। स्वयं ब्रह्मा जी के बनाए हुए तामसास्त्र के सामने कोई न ठहर सका ॥९॥

तान्यनीकान्यनेकानि रावणस्य शरोत्तमैः ।
दृष्ट्वा भग्नानि शतशो राघवः पर्यवस्थितः ॥१०॥

तब वानरी सेना के अनेक वानरों के, रावण के श्रेष्ठ बाणों द्वारा घायल होने पर तथा सैकड़ों वानरों के रणभूमि से भागने पर, श्रीरामचन्द्र जी रावण से लड़ने को आगे बढ़े ॥१०॥

ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ।
स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥११॥

तब राक्षसश्रेष्ठ रावण ने, कपिसेना को भगा कर, देखा कि, किसी से कभी परास्त न होने वाले, श्रीरामचन्द्र जी उससे लड़ने के लिए तैयार खड़े हैं ॥११॥

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विष्णुना वासवं यथा ।
आलिखन्तमिवाकाशमवष्टभ्य महद्धनुः ॥१२॥

उनके पास उनके भाई लक्ष्मण वैसे ही खड़े हैं, जैसे विष्णु के साथ इन्द्र। (उस समय) वे अपने विशाल धनुष को उठाए मानों आकाश को स्पर्श कर रहे थे ॥१२॥

पद्मपत्रविशालाक्षं दीर्घबाहुमरिन्दमम् ।
ततो रामो महातेजाः सौमित्रिसहितो बली ॥१३॥

रावण ने कमलदल समान विशालनयन, जाँघों तक लटकती हुई लंबी भुजा वाले और शत्रुसूदन श्रीरामचन्द्र जी को देखा। तदनन्तर लक्ष्मण सहित महाबलवान और महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने ॥१३॥

वानरांश्च रणे भग्नानापतन्तं च रावणम् ।
समीक्ष्य राघवो हृष्टो मध्ये जग्राह कार्मुकम् ॥१४॥

वानरों को रण में घायल हो, भागते और रावण को आते देख, श्रीरामचन्द्र जी ने हर्षित हो धनुष को बीच में पकड़ा ॥१४॥

विस्फारयितुमारेभे ततः स धनुरुत्तमम् ।
महावेगं महानादं निर्भिन्दन्निव मेदिनीम् ॥१५॥

फिर वे उस धनुषश्रेष्ठ को टकोरने लगे । वह महावेगवान् और महाशब्दकारी धनुष ऐसे जोर का शब्द करने लगा ; मानों पृथिवी को फाड़ ही डालेगा ॥१५॥

रावणस्य च बाणौघै रामविस्फारितेन च ।
शब्देन राक्षसास्ते च पेतुश्च शतशस्तदा ॥१६॥

रावण के छोड़े बाणों से तथा श्रीरामचन्द्र जी के धनुष के टंकोर से सैकड़ों राक्षस गिर पड़े ॥१६॥

तयोः शरपथं प्राप्तो रावणो राजपुत्रयोः ।
स बभौ च यथा राहुः समीपे शशिसूर्ययोः ॥१७॥

उन दोनों राजकुमारों के बाणों के लक्ष्य के भीतर स्थित रावण ऐसा शोभित हुआ, मानों चन्द्रमा और सूर्य के समीपस्थित राहु शोभित हो रहा हो ॥१७॥

तमिच्छन् प्रथमं योद्धुं लक्ष्मणो निशितैः शरैः ।
मुमोच धनुरायम्य शरानग्निशिखोपमान् ॥१८॥

प्रथम लक्ष्मण ने रावण के साथ पैने पैने बाणों से लड़ना चाहा और अग्निशिखा के समान बाण धनुष पर रख कर, छोड़े ॥१८॥

तान् मुक्तमात्रानाकाशे लक्ष्मणेन धनुष्मता ।
बाणान् बाणैर्महातेजा रावणः प्रत्यवारयत् ॥१९॥

धनुषधारी लक्ष्मण के चलाए बाणों को, रावण ने छूटते ही अपने बाणों से आकाश ही में रोक दिया ॥१९॥

एकमेकेन बाणेन त्रिभिस्त्रीन् दशभिर्दश ।
लक्ष्मणस्य प्रचिच्छेद दर्शयन् पाणिलाघवम् ॥२०॥

अपने हाथ की सफाई दिखलाते हुए रावण ने, लक्ष्मण के चलाए एक बाण को एक बाण से, तीन बाणों को तीन बाणों से और दस बाणों को दस बाणों से काट गिराया ॥२०॥

अभ्यतिक्रम्य सौमित्रिं रावणः समितिञ्जयः ।
आससाद ततो रामं स्थितं शैलमिवाचलम् ॥२१

फिर समरविजयी रावण, लक्ष्मण के साथ युद्ध करना छोड़, पर्वत की तरह अटल अचल खड़े हुए, श्रीरामचन्द्र जी के सामने गया ॥२१॥

स संख्ये राममासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राघवोपरि ॥२२॥

युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी को पा कर, रावण के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गए और वह श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर बाणवृष्टि करने लगा ॥२२॥

शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः ।
दृष्ट्वैवापततः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राह सत्वरम् ॥२३॥

रावण के धनुष से होती हुई बाणवृष्टि को अपने ऊपर बड़ी शीघ्रता से आते देख, श्रीरामचन्द्र जी ने बड़ी फुर्ती से भल्लाकार बाण निकाले ॥२३॥

ताञ्शरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।
दीप्यमानान् महाघोरान् क्रुद्धानाशीविषानिव ॥२४॥

श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के उन बड़े चमकीले, महाभयानक, और क्रुद्ध विषधर सर्प की तरह, विकराल बाणों को अपने पैने भल्लाकार बाणों से काट गिराया ॥२४॥

राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तदा ।
अन्योन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरैरभिववर्षतुः ॥२५॥

बड़ी फुर्ती से परस्पर श्रीरामचन्द्र जी रावण के ऊपर और रावण श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर विविध प्रकार के पैने पैने बाणों की वर्षा करने लगे ॥२५॥

चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगान् समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥२६॥

एक दूसरे पर बड़े वेग से बाणों को छोड़ते हुए तथा किसी से कोई न हारता हुआ, वे दोनों दाँये बांये पैतरे बदलते हुए, चित्र विचित्र कावे काट रहे थे ॥२६॥

तयोर्भूतानि वित्रेसुर्युगपत् सम्प्रयुध्यतोः ।
रौद्रयोः सायकमुचोर्यमान्तकनिकाशयोः ॥२७॥

जब यमराज और मृत्यु की तरह भयंकर मूर्ति धारण कर दोनों आपस में बाणवृष्टि करने लगे, तब उनकी उन भयान मूर्तियों को देख' समस्त जीवधारी त्रस्त हो, घबड़ा उठे ॥२७॥

सन्ततं विविधैर्बाणैर्बभूव गगनं तदा ।
घनैरिवातपापाये विद्युन्मालासमाकुलैः ॥२८॥

उस समय वर्षा ऋतु में बिजली सहित मेघों की तरह, इन दोनों वीरों के चलाए हुए विविध प्रकार के बाणों से आकाश-मंडल ढक गया ॥२८॥

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः ।
महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः १सुवाजितैः ॥२९॥
शरान्धकारमाकाशं चक्रतुः *परमं तदा ।
गतेऽस्तं तपने चापि महामेघाविवोत्थितौ ॥३०॥

उन दोनों की शरवृष्टि से आकाश में झरोखे से बन गए। उनके महावेगवान, अत्यन्त पैने और गीध के पंख लगे होने के कारण सुन्दर पंख वाले बाणों से सूर्यास्त होने के पूर्व ही उठे हुए दो महामेघों के समान श्रीराम और रावण के बाणों से आकाश ढक गया और बड़ा अन्धकार छा गया ॥२९॥३०॥

बभूव तुमुलं युद्धमन्योन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
अनासाद्यमचिन्त्यं च वृत्रवासवयोरिव ॥३१॥

परस्पर वध करने की अभिलाषा रखने वाले, उन दोनों योद्धाओं का वैसा ही तुमुलयुद्ध हुआ जैसा कि, वृत्रासुर और इन्द्र का हुआ था ॥३१॥

उभौ हि परमेष्वासावुभौ शस्त्रविशारदौ ।
उभावस्त्रविदां मुख्यावुभौ युद्धे विचेरतुः ॥३२॥

---

१ सुवाजितैः—सञ्जातशोभनपक्षैः । (गो०) *पाठान्तरे—" समरं । "

क्योंकि, वे दोनों ही बड़े धनुर्धारी और दोनों ही शस्त्र चलाने और शस्त्र रोकने की विद्या में निपुण थे। दोनों ही अस्त्रों की विद्या के जानने वालों में प्रधान थे और समरभूमि में दाँव पेंच करते व बचाते विचर रहे थे ॥३२॥

[ टिप्पणी—"शस्त्र" व "अस्त्र" में यह अन्तर है कि, शस्त्र जो हाथ से चलाया जाय जैसे, तलवार, भाला, बर्छी कटार, खाँडा मूसल, परिघ, फरसा आदि। "अस्त्र" जो मन्त्रप्रयोग से चलाए जाते थे। जैसे ब्रह्मास्त्र, नारायणास्त्र, रौद्रास्त्रादि। ]

उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः।
ऊर्मयो वायुना विद्धा जग्मुः सागरयोरिव ॥३३॥

जिधर जिधर हो कर, वे निकलते थे उधर उधर पवन के वेग से लहराती हुई समुद्र की तरङ्गों की तरह, बाणरूपी लहरें लहराने लगती थीं ॥३३॥

ततः [1]संसक्तहस्तस्तु रावणो लोकरावणः।
नाराचमालां रामस्य ललाटे प्रत्यमुञ्चत ॥३४॥

तदनन्तर बाण चलाने में लगे हुए और लोगों को रुलाने वाले रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के माथे को ताक कर नाराच ( लोहे के बाणों ) की माला छोड़ी ॥३४॥

रौद्रचापप्रयुक्तां तां नीलोत्पलदलप्रभाम्।
शिरसा धारयन् रामो न व्यथां प्रत्यपद्यत ॥३५॥

परन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने नीले कमल के समान प्रभायुक्त और रावण के विशाल धनुष से छूटे हुए उन बाणों की माला को अपने मस्तक पर धारण कर लिया और वे उससे तनिक भी व्यथित न हुए ॥३५॥

---

१ संसक्तहस्त—बाणप्रयोगासक्तहस्तः। ( गो० )

अथ मन्त्रानभिजपन् रौद्रमस्त्रमुदीरयन् ।

शरान् भूयः समादाय रामः क्रोधसमन्वितः ॥३६॥

इस पर श्रीरामचन्द्र जी ने क्रोध में भर, रौद्रास्त्र का प्रयोग करने के लिए बहुत से बाण निकाले ॥३६॥

मुमोच च महातेजाश्चापमायम्य वीर्यवान् ।

ते महामेघसङ्काशे कवचे पतिताः शराः ॥३७॥

महातेजस्वी एवं बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने अपने धनुष पर रख उनको छोड़ा । महामेघ के समान रावण के कवच पर वे बाण जा टकराते थे ॥३७॥

१अवध्ये राक्षसेन्द्रस्य न व्यथां जनयंस्तदा ।

पुनरेवाथ तं रामो रथस्थं राक्षसाधिपम् ॥३८॥

ललाटे परमास्त्रेण सर्वास्त्रकुशलो रणे ।

ते भित्त्वा बाणरूपाणि पञ्चशीर्षा इवोरगाः ॥३९॥

श्वसन्तो विविशुर्भूमिं रावणप्रतिकूलिताः ।

निहत्य राघवस्यास्त्रं रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥४०॥

उनसे रावण तनिक भी पीड़ित न हुआ । क्योंकि रावण का वह कवच अभेद्य था । तब युद्ध में समस्त अस्त्रप्रयोगों में कुशल श्रीरामचन्द्र जी ने रथ पर सवार राक्षसराज रावण के ललाट में परमास्त्र के मंत्र से अभिमंत्रित कर बाण मारा । उस बाण से निकले हुए बाणों को रावण ने ऐसा रोका कि, वे पाँच सिर वाले साँपों की तरह फुफकारते हुए, भूमि को फोड़ कर घुस गए । श्रीरामचन्द्र जी के अस्त्र को इस प्रकार निष्फल कर, राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥३८॥३९॥४०॥

---

१ अवध्ये—अभेद्ये । ( गो० )

आसुरं सुमहाघोरमस्त्रं प्रादुश्चकार ह ।
सिंहव्याघ्रमुखांश्चान्यान् कङ्ककाकमुखानपि ॥४१॥
गृध्रश्येनमुखांश्चाऽपि शृगालवदनांस्तथा ।
ईहामृगमुखांश्चान्यान् व्यादितास्यान् भयानकान् ॥४२॥

और उसने अत्यन्त भयानक आसुरास्त्र निकाला और छोड़ा। उस आसुरास्त्र से सिंहमुख, व्याघ्रमुख, कङ्कमुख, काकमुख, गृधमुख, बाजमुख, शृगालमुख और भेड़ियामुखवाले तथा अन्य प्रकार के बाण निकले। ये अनेक पशुपक्षियों के मुख वाले बाण अपने भयानक मुखों को फैलाए हुए थे ॥४१॥४२॥

पञ्चास्याँल्लेलिहानांश्च[1] ससर्ज निशिताञ्शरान् ।
शरान् खरमुखांश्चान्यान् वराहमुखसंस्थितान् ॥४३॥
श्वानकुक्कुटवक्त्रांश्च मकराशीविषाननान् ।
एतानन्यांश्च मायावी ससर्ज निशिताञ्शरान् ॥४४॥
रामं प्रति महातेजाः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
आसुरेण समाविष्टः सोऽस्त्रेण रघुनन्दनः ॥४५॥

उसने बहुत से पाँच मुख वाले सर्पों की तरह पैने बाण भी छोड़े। इनके अतिरिक्त उस मायावी महातेजस्वी रावण ने खरमुख, शूकरमुख, श्वानमुख कुक्कुटमुख, मगरमुख, सर्पमुख तथा इसी प्रकार और भी मुखों वाले अनेक ऐसे ही पैने बाणों को छोड़ा। वे बाण क्रुद्ध सर्प की तरह फुफकारते श्रीरामचन्द्र जी की ओर चले। जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर वह आसुरास्त्र आया ॥४३॥४४॥४५॥

---

१ लेलिहानान्—सर्पान् । ( गो० )

ससर्जास्त्रं महोत्साहः पावकं पावकोपमः ।
अग्निदीप्तमुखान् बाणांस्तथा सूर्य्यमुखानपि ॥४६॥

तब उन महाउत्साही श्रीरामचन्द्र जी ने अग्नितुल्य अग्न्यस्त्र चलाया। तदनन्तर उन्होंने अग्नि की तरह प्रज्वलित मुखोंवाले तथा सूर्यमुखों वाले बाण भी चलाए ॥४६॥

चन्द्रार्धचन्द्रवक्त्रांश्च धूमकेतुमुखानपि ।
ग्रहनक्षत्रवक्त्रांश्च महोल्कामुखसंस्थितान् ॥४७॥

विद्युज्जिह्वोपमांश्चान्यान् ससर्ज निशिताञ्शरान् ।
ते रावणशरा घोरा राघवास्त्रसमाहताः ॥४८॥

इनके अतिरिक्त श्रीरामचन्द्र जी ने—चन्द्रमुखी, महोल्कामुखी और बिजली के समान जीभ लपलपाते पैने बाण छोड़े। श्रीरामचन्द्र जी के इन बाणों से रावण के भयानक ॥४७॥४८॥

विलयं जग्मुराकाशे जग्मुश्चैव [1]सहस्रशः ।
तदस्त्रं निहतं दृष्ट्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥४९॥

आकाश में टकरा कर यद्यपि नष्टभ्रष्ट हो गए थे; तथापि उनसे हजारों वानर मारे गए थे। अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी द्वारा रावण के उस अस्त्र को नष्ट हुआ देख ॥४९॥

हृष्टा नेदुस्ततः सर्वे कपयः कामरूपिणः ।
सुग्रीवप्रमुखा वीराः परिवार्य तु राघवम् ॥५०॥

---

१ विलयं जग्मुः तथापि सहस्रशोवानरान् जघ्नुः ( रा० )

समस्त कामरूपी वानरगण हर्षित हो, हर्षनाद कर उठे और सुग्रीव प्रमुख वीर वानरश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी को घेर कर खड़े हो गए ॥५०॥

ततस्तदस्त्रं विनिहत्य राघवः
प्रसह्य तद्रावणबाहुनिःसृतम् ।
मुदान्वितो दाशरथिर्महाहवे
विनेदुरुच्चैर्मुदिताः कपीश्वराः ॥५१॥

इति शततमः सर्ग. ॥

रावण के हाथ से छूटे हुए उस अस्त्र को नष्ट कर, उस महासमर में दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी हर्षित हुए और प्रधान प्रधान वानरों ने हर्षित हो, उच्चस्वर से हर्षनाद किया ॥५१॥

युद्धकाण्ड का सौवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## एकोत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधं च द्विगुणं चक्रे क्रोधाच्चास्त्रमनन्तरम् ॥१॥
मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः ।
उत्स्रष्टुं रावणो घोरं राघवाय प्रचक्रमे ॥२॥

राक्षसराज रावण ने अपने उस अस्त्र को निष्फल हुआ देख दुगना क्रोध किया । तदनन्तर मारे क्रोध के, मयदानव का बनाया

बहुत चमकदार एक दूसरा भयानक अस्त्र, जिसका नाम रौद्रास्त्र था, रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर छोड़ा ॥१॥२॥

ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च ।
कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः ॥३॥

रावण के उस अस्त्र से चमचमाते और वज्र के समान दारुण, धनुष, शूल, गदा, मूसल, निकलने लगे ॥३॥

मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा ।
निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये ॥४॥

फिर मुग्दर, कपटपाश तथा चमकते हुए वज्रादि विविध तीक्ष्ण शस्त्र वैसे ही वेग से निकले ; जैसे वेग से प्रलयकालीन पवन चलता है ॥४॥

तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः ।
जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः ॥५॥

किन्तु उत्तमास्त्रों के जानने वालों में श्रेष्ठ महाकान्तियुक्त श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के रौद्रास्त्र को नष्ट करने के लिए परमास्त्र गान्धर्वास्त्र चलाया ॥५॥

तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु राघवेण महात्मना ।
रावणः क्रोधताम्राक्षः सौरमस्त्रमुदैरयत् ॥६॥

महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी ने जब रावण के रौद्रास्त्र को गान्धर्वास्त्र से नष्ट कर डाला, तब रावण ने क्रोध के मारे लाल लाल नेत्र कर सौरास्त्र छोड़ा ॥६॥

ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च ।
कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः ॥७॥

तब तो उस बुद्धिमान् एवं भीम वेगवान् रावण के धनुष से चमचमाते और बड़े बड़े चक्र निकलने लगे ॥७॥

तैरासीद्गगनं दीप्तं सम्पतद्भिरितस्ततः ।
पतद्भिश्च दिशो दीप्ताश्चन्द्रसूर्यग्रहैरिव ॥८॥

उन चमचमाते चक्रों से सारा आकाश वैसे ही प्रकाशित हो गया ; जैसे गिरते हुए सूर्य चन्द्रादि ग्रहों से समस्त दिशाएँ प्रकाशित हो जाती हैं ॥८॥

तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि स तु राघवः ।
आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे ॥९॥

दोनों ओर की सेनाओं के सामने ही श्रीरामचन्द्र जी ने अपने बाणों से उन समस्त चक्रों को तथा रावण के चलाए अन्य विचित्र आयुधों को भी काट डाला ॥९॥

तदस्त्रं तु हतं दृष्ट्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विव्याध दशभिर्बाणै रामं सर्वेषु मर्मसु ॥१०॥

जब राक्षसराज रावण ने उस अस्त्र को भी व्यर्थ जाते देखा, तब उसने दस बाण मार कर, श्रीरामचन्द्र जी के शरीर के समस्त मर्मस्थलों को वेध डाला ॥१०॥

स विद्धो दशभिर्बाणैर्महाकार्मुकनिःसृतैः ।
रावणेन महातेजा न प्राकम्पत राघवः ॥११॥

महातेजस्वी रावण के विशाल धनुष से छूटे हुए, उन दस बाणों से विद्ध हो कर भी, श्रीरामचन्द्र जी तनिक भी कम्पित (विचलित) न हुए ॥११॥

ततो विव्याध गात्रेषु सर्वेषु समितिञ्जयः ।
राघवस्तु सुसंक्रुद्धो रावणं बहुभिः शरैः ॥१२॥

समरविजयी श्रीरामचन्द्र जी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो बहुत से बाण मार कर, रावण के सारे शरीर को छेद डाला ॥१२॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान् सप्त जग्राह परवीरहा ॥१३॥

इस बीच में शत्रुविनाशी बलवान् लक्ष्मण जी ने क्रोध में भर सात बाण हाथ में लिये ॥१३॥

तैः सायकैर्महावेगै रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं[1] तु तस्य चिच्छेद नैकधा ॥१४॥

और उन बाणों से महाकान्ति-सम्पन्न लक्ष्मण जी ने, रावण की मनुष्य-शिर-चिह्नित ध्वजा के अनेक टुकड़े कर डाले ॥१४॥

सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान् नैर्ऋतस्य महाबलः ॥१५॥

फिर महाबलवान् एवं श्रीसम्पन्न लक्ष्मण जी ने राक्षसराज रावण के सारथी का चमचमाते कुण्डलों से भूषित सिर काट डाला ॥१५॥

---

१ मनुष्यशीर्षं—मनुष्यशिरोविशिष्टं रावणस्यध्वजं (शि०)

तस्य बाणैश्च चिच्छेद धनुर्गजकरोपमम् ।
लक्ष्मणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैः शरैः ॥१६॥

तदनन्तर लक्ष्मण जी ने हाथी की सूँड़ की तरह आकारवाला राक्षसराज रावण का धनुष भी पाँच पैने बाण छोड़ कर, काट डाला ॥१६॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान् पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥१७॥

इतने में विभीषण ने कूद कर गदा से रावण के नीलमेघ के समान नीले रंग के और पर्वत के समान विशालकाय घोड़ों को मार डाला ॥१७॥

हताश्वाद्वेगवान् वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं भ्रातरं प्रति रावणः ॥१८॥

तब मरे हुए घोड़ों के विशाल रथ से बड़ी फुर्ती से कूद कर, फुर्तीले रावण ने अपने भाई विभीषण पर बड़ा क्रोध किया ॥१८॥

ततः शक्तिं महाशक्तिर्दीप्तां दीप्ताशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥१९॥

और उस प्रतापी राक्षसेन्द्र रावण ने प्रदीप्त वज्र के समान चमचमाती बड़ी शक्तिवाली एक बर्छी विभीषण के ऊपर फैंकी ॥१९॥

अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ।
अथोदतिष्ठत् सन्नादो वानराणां तदा रणे ॥२०॥

किन्तु उस वर्छी को बीच ही में लक्ष्मण जी ने तीन बाण चला कर काट डाला। यह देख समरभूमि में वानरों ने बड़ा हर्षनाद किआ ॥२०॥

सा पपात त्रिधा च्छिन्ना शक्तिः काञ्चनमालिनी।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता ॥२१॥

सुवर्णमाला से शोभित वह शक्ति चिनगारियाँ निकालती और जलती हुई तीन टुकड़े हो वैसे ही गिरी; जैसे आकाश से कोई बड़ा उल्का गिरे ॥२१॥

ततः सम्भावितत्तरां[१] कालेनापि दुरासदाम्।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥२२॥

तब तो रावण ने पुनः एक बड़ा भारी शक्ति (वर्छी) ली। वह शक्ति चन्दनादि से पूजा की हुई थी और काल के लिए भी दुर्धर्ष थी। वह अपनी चमक से चमक रही थी ॥२२॥

सा वेगिता बलवता रावणेन दुरासदा।
जज्वाल सुमहाघोरा शक्राशनिसमप्रभा ॥२३॥

महाबलवान एवं दुरात्मा रावण ने बड़े जोर से उसे (विभीषण के ऊपर) चलाना चाहा। वह शक्ति इन्द्र के वज्र के समान चमक रही थी ॥२३॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम्।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत[२] ॥२४॥

---

१ संभावितत्तरां—चन्दादिभिरर्चितां (गो०) २ अभ्यवपद्यत तमाच्छाद्य स्वयमतिष्ठदित्यर्थः। (गो०)

तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥२५॥

इतने में उस शक्ति द्वारा विभीषण के प्राण सङ्कट में देख, लक्ष्मण उनको बचाने के लिए स्वयं विभीषण के सामने जा खड़े हुए ( जिससे विभीषण के शक्ति न लगे ) और धनुष पर बाण चढ़ा कर शक्ति लिए हुए रावण के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे ॥२४॥२५॥

कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
न प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः२ ॥२६॥

महाबलवान लक्ष्मण जी के बाणों की मार से रावण ऐसा घबड़ाया कि, उसने अपने भाई विभीषण के वध की इच्छा त्याग दी ॥२६॥

मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥२७॥

जब रावण ने देखा कि, लक्ष्मण ने विभीषण को बचा लिया है, तब वह लक्ष्मण के सामने जा उनसे यह बोला ॥२७॥

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन् यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्य राक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥२८॥

हे सराहनीय बलशाली लक्ष्मण ! तूने इस शक्ति से विभीषण को तो बचा दिया अतएव मैं भी उसे छोड़ कर, अब इस शक्ति को तेरे ऊपर छोड़ता हूँ ॥२८॥

---

२ विमुखीकृतविक्रमः - विमुखीकृतविभीषणविषयपराक्रमः । ( गो० )

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा[1] ।
मद्बाहुपरिघोत्सृष्टा प्राणानादाय यास्यति ॥२६॥

मेरे हाथ से छूटी हुई यह रक्तचिह्नित (खून से सनी हुई) शक्ति तेरे हृदय (कलेजे) को चीर कर, तेरे प्राण निकाल ले जायगी ॥२६॥

इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिमष्टघण्टां महास्वनाम् ।
मयेन मायाविहिताममोघां शत्रुघातिनीम् ॥३०॥
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य ज्वलन्तीमिव तेजसा ।
रावणः परमक्रुद्धश्चिक्षेप च ननाद च ॥३१॥

यह कह कर, उस शक्ति को, जो मयदानव की बनाई हुई थी तथा जो अमोघ (कभी खाली न जाने वाली) थी, एवं जिसमें आठ घंटे घनघना रहे थे और जो शत्रुघातिनी थी और अपनी चमक से आग की तरह धधक रही था, लक्ष्मण जी को ताक कर, रावण ने अत्यन्त क्रोध में भर, फेंका और वह बड़े जोर से गर्जा ॥३०॥३१॥

सा क्षिप्ता भीमवेगेन शक्राशनिसमस्वना ।
शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्धनि ॥३२॥

भयंकर वेग से फेंकी हुई और वज्र के समान सनसनाती वह शक्ति बड़े जोर से रणक्षेत्र में खड़े हुए लक्ष्मण के लगी ॥३२॥

तामनुव्याहरच्छक्तिमापतन्तीं स राघवः ।
स्वस्त्यस्तु लक्ष्मणायेति मोघा भव हतोद्यमा ॥३३॥

---

१ लोहितलक्षणा—रुधिरचिह्ना । (गो०)

एक यह भी था कि, रावण बड़ी फुर्ती के साथ वानरों को बाण-वर्षा कर पीड़ित कर रहा था ॥४२॥

सौमित्रिं सा विनिर्भिद्य प्रविष्टा धरणीतलम् ।
तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ॥४३॥

बभञ्ज समरे क्रुद्धो बलवान् विचकर्ष च ।
तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ॥४४॥

वह शक्ति इतने जोर से चलाई गई थी कि, लक्ष्मण जी के शरीर को फोड़ कर वह पृथिवी में घुस गई थी। उस भयानक शक्ति को बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने दोनों हाथों से पकड़ कर खींच लिआ और क्रोध में भर उसको तोड़ कर फैंक दिआ। जिस समय श्रीरामचन्द्र जी उस शक्ति को खींच कर निकाल रहे थे उसी बीच में बलवान रावण ने ॥४३॥४४॥

शराः सर्वेषु गात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ।
अचिन्तयित्वा तान् बाणान् समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ॥४५॥

श्रीरामचन्द्र जी के शरीर के समस्त मर्मस्थलों को बाणों से वेध डाला। उन बाणों के प्रहार की कुछ भी परवाह न कर और लक्ष्मण को गले लगा कर; ॥४५॥

अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं चैव राघवः ।
लक्ष्मणं परिवार्येह तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ॥४६॥

श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव और हनुमान् को सम्बोधन कर कहा—हे वानरश्रेष्ठो ! तुम सब लक्ष्मण को घेर कर खड़े रहो ॥४६॥

पराक्रमस्य कालोऽयं सम्प्राप्तो मे चिरेप्सितः ।
पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ॥४७॥

क्योंकि बहुत दिनों पीछे मुझे अपना पराक्रम दिखाने का अवसर हाथ लगा है। इस पापात्मा और निश्चय पापी का वध अवश्य ही करना है ॥४७॥

काङ्क्षतः स्तोककस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ।
अस्मिन् मुहूर्ते न चिरात् सत्यं प्रतिशृणोमि वः ॥४८॥

अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ।
राज्यनाशं वने वासं दण्डके परिधावनम् ॥४९॥

मै बहुत दिनों से इसकी खोज में वैसे ही था जैसे वर्षाकाल में चातक मेघ की खोज में रहते हैं हे वानरों! मैं तुम लोगों के सामने प्रतिज्ञापूर्वक सत्य सत्य कहता हूँ कि, बहुत देर में नहीं प्रत्युत इसी समय तुम लोग इस संसार को या तो बिना रावण के या बिना राम के देखोगे। देखो, राज्य का नाश, वन का वास और दण्डकवन में मारे मारे फिरना ॥४८॥४९॥

वैदेह्याश्च परामर्शं रक्षोभिश्च समागमम् ।
प्राप्तं दुःखं महद्घोरं क्लेशं च निरयोपमम् ॥५०॥

सीता का हरण, राक्षसों का समागम—इन सब से मुझे बड़ा दुःख और नरक के समान क्लेश हुआ है ॥५०॥

अद्य सर्वमहं त्यक्ष्ये निहत्वा रावणं रणे ।
यदर्थं वानरं सैन्यं समानीतमिदं मया ॥५१॥

आज मैं युद्ध में रावण को मार कर, उन सब क्लेशों से मुक्त हो जाऊँगा ; जिनके लिये मैं यह वानरी सेना यहाँ लाया हूँ ॥५१॥

सुग्रीवश्च कृतो राज्ये निहत्वा वालिनं रणे ।
यदर्थं सागरः क्रान्तः सेतुर्बद्धश्च सागरे ॥५२॥

जिसके लिए मैंने बाली को मार सुग्रीव को राजा बनाया, जिसके लिए समुद्र पर पुल बाँध कर समुद्र को पार किआ ॥५२॥

सोऽयमद्य रणे पापश्चक्षुर्विषयमागतः ।
चक्षुर्विषयमागम्य नायं जीवितुमर्हति ॥५३॥

वह पापी आज रणक्षेत्र में मेरी आँखों के सामने आया है। अब मेरे सामने से यह जीता नहीं बच सकता ॥५३॥

दृष्टिं दृष्टिविषस्येव सर्पस्य मम रावणः ।
स्वस्थाः पश्यत दुर्धर्षा युद्धं वानरपुङ्गवाः ॥५४॥
आसीनाः पर्वताग्रेषु ममेदं रावणस्य च ।
अद्य रामस्य [1]रामत्वं पश्यन्तु मम संयुगे ॥५५॥
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः ।
अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ॥५६॥
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥५७॥

जिस तरह दृष्टि-विष वाले साँप की आँखों के सामने पड़ने पर कोई जीता नहीं बच सकता, वैसे ही मेरी आँखों के सामने आ रावण भी जीता नहीं बच सकता। हे दुर्धर्ष वानरश्रेष्ठो तुम

लोग स्वस्थ होकर पर्वतशिखर पर बैठे बैठे मेरी और रावण की लड़ाई देखो। आज मेरे इस युद्ध में, गन्धर्वों, सिद्धों, ऋषियों और चारणों सहित तीनों लोक मेरा अद्वितीय ( बेजोड़ ) वीरत्व अथवा रामत्व देखें। आज मैं वह काम करूँगा कि जब तक यह संसार रहैगा, तब तक देवताओं सहित चर और अचर जीव उसका बखान करते रहैंगे ॥५४॥५५॥५६॥५७॥

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकाञ्चनभूषणैः ।
आजघान दशग्रीवं रणे रामः समाहितः ॥५८॥

यह कह कर युद्ध में खरे सुवर्ण से भूषित सात पैने बाण, श्रीरामचन्द्र जी ने सावधान होकर रावण के मारे ॥५८॥

अथ प्रदीप्तैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥५९॥

तब तो रावण ने भी श्रीराम जी के ऊपर चमचमाते नाराच ( बाण विशेष ) और मूसलों की वृष्टि वैसे ही की जैसे बादल धारा प्रवाह रूप से जल की वर्षा करते हैं ॥५९॥

रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
शराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥६०॥

श्रीरामचन्द्र और रावण के चलाये हुए और आकाश में आपस में टकराते हुए बाणों का बड़ा शब्द हुआ ॥६०॥

ते भिन्नाश्च विकीर्णाश्च रामरावणयोः शराः ।
अन्तरिक्षात् प्रदीप्ताग्रा निपेतुर्धरणीतले ॥६१॥

श्रीरामचन्द्र और रावण के वे बाण आकाश में (परस्पर) टकरा कर टूट जाते थे औ भूमि पर गिरते समय, उनकी नोंकों से चिनगारियाँ निकलती थीं ॥६१॥

तयोर्ज्यातलनिर्घोषो रामरावणयोर्महान् ।
त्रासनः सर्वभूतानां संबभूवाद्भुतोपमः ॥६२॥

श्रीरामचन्द्र जी और रावणके धनुषों के रोदों के टंकार का महान् और अद्भुत शब्द हो रहा था, जिसे सुन समस्त प्राणी भयभीत हो रहे थे ॥६२॥

स कीर्यमाणः शरजालवृष्टिभिः
महात्मना दीप्तधनुष्मताऽर्दितः ।
भयात् प्रदुद्राव समेत्य रावणो
यथाऽनिलेनाभिहतो बलाहकः ॥६३॥

॥ इति एकोत्तरशततमः सर्गः ॥

महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी के धनुष से छूटे हुए बाणों से पीड़ित हो भय के मारे रावण उसी प्रकार भागा, जिस प्रकार बालक पवन के वेग से भागते हैं ॥६३॥

युद्धकाण्ड का एकसौएकवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## द्व्युत्तरशततमः सर्गः

—:o:—

शक्त्या विनिहतं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा ।
लक्ष्मणं समरे शूरं रुधिरौघपरिप्लुतम् ॥१॥

स दृष्ट्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः ।
विसृजन्नेव बाणौघान् सुषेणं वाक्यमब्रवीत् ॥२॥

बलवान् रावण द्वारा युद्ध में शक्ति के प्रहार से गिरे हुए शूरवीर लक्ष्मण जी को रुधिर में सराबोर देख कर भी, दुरात्मा रावण के साथ घोर संग्राम कर और बाणों को छोड़ते हुए, श्रीरामचन्द्र जी सुषेण ( वानरयूथपति ) से बोले ॥१॥२॥

एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितः क्षितौ ।
सर्पवद्वेष्टते वीरो मम शोकमुदीरयन् ॥३॥

लक्ष्मण का, इस रावण की शक्ति के आघात से पृथिवी पर गिरना और साँप की तरह लोटना देख मुझको शोकान्वित करता है ॥३॥

शोणितार्द्रमिमं वीरं प्राणैरिष्टतमं मम ।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥४॥

लक्ष्मण मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं। ये लोहू में नहाये हुए हैं। इनको इस दशा में देख, मैं घबड़ा गया हूँ। अब मुझ में क्या शक्ति है, जो मैं बैरी से लड़ सकूँ ॥४॥

अयं स समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः ।
यदि पञ्चत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन च ॥५॥

यदि शुभ लक्षणों से युक्त यह मेरा समरश्लाघी भाई कहीं मर गया, तो फिर सुखभोगने से मुझे लाभ ही क्या है ? ॥५॥

लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः ।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥६॥

इनकी यह दशा देख मुझे अपने बल.पराक्रम पर लज्जा आती है। हाथ से धनुष छूटा पड़ता है। बाण ढीले पड़ गए हैं और आँखों में बराबर आँसुओं के उमड़ने से मुझे कुछ दिखलाई भी नहीं पड़ता ॥६॥

अवसीदन्ति गात्राणि [1]स्वप्नयाने नृणामिव।
चिन्ता मे वर्धते तीव्रा [2]मुमूर्षा चोपजायते।
भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा रावणेन दुरात्मना ॥७॥

दुरात्मा रावण द्वारा भाई को मारा गया देख, स्वप्न में गमन करने वाले मनुष्य की तरह मेरे पैर आगे न पड़ कर पीछे को पड़ते हैं। मेरी चिन्ता उग्ररूप धारण कर, उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली जाती है और जी चाहता है कि, इस लोक ही को त्याग दूँ (अर्थात् मर जाऊँ) ॥७॥

[3]विनिष्टनन्तं दुःखार्तं मर्मण्यभिहतं भृशम् ॥८॥

मर्मस्थल अत्यन्त विदीर्ण हो जाने के कारण पीड़ित हो बुरी तरह कराहते हुए ॥८॥

राघवो भ्रातरं दृष्ट्वा प्रियं प्राणं बहिश्चरम्।
दुःखेन महताऽऽविष्टो ध्यानशोकपरायणः ॥९॥

प्यारे और बाहिर घूमने वाले अपने दूसरे प्राण की तरह भाई को देख श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त दुःखी हो चिन्तित हो गए और शोक से व्याकुल हुए ॥९॥

---

१ स्वप्नयाने—स्वप्नगमने। स्वप्ने हि गच्छतां पुरुषाणां पादाः पश्चादाकृष्टा भवन्ति (गो०) २ मुमूर्षा—एतल्लोकत्यागेच्छा। (शि०) ३ विनिष्टनन्तं—विकृतशब्दं कुर्वते। (रा०)

परं विषादमापन्नो विललापाकुलेन्द्रियः ।
न हि युद्धेन मे कार्यं नैव प्राणैर्न सीतया ॥१०॥

श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त दुःखी और विकल हो विलाप करने लगे । वे कहने लगे—मुझे न तो अब युद्ध ही से कुछ काम है और न सीता ही से और न मुझे अब अधिक जीने ही का कुछ प्रयोजन है ॥१०॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा लक्ष्मणं रणपांसुषु ।
किं मे राज्येन किं प्राणैर्युद्धे कार्यं न विद्यते ॥११॥

मरे हुए लक्ष्मण को समरभूमि में धूल में पड़ा देख. मैं अब अयोध्या का राज्य लेकर और जी कर ही क्या करूँगा ? मुझे अब रावण से लड़ने की भी आवश्यकता नहीं है ॥ ११ ॥

यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः ।
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ॥१२॥

क्योंकि, लक्ष्मण तो समरक्षेत्र में अब सदा के लिए सो ही गए हैं । देखो स्त्रियाँ और भाई बन्धु तो सब जगह मिल सकते हैं, ॥१२॥

तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ।
इत्येवं विलपन्तं तं शोकविह्वलितेन्द्रियम् ॥१३॥

परन्तु मुझे ऐसी कोई जगह नहीं देख पड़ती; जहाँ सहोदर भाई मिल सके । इस प्रकार विलाप करते हुए श्रीरामचन्द्र जी शोक से विह्वल हो घबड़ा गए ॥१३॥

---

१ रणपांसुषु लुंठत इति शेषः । ( रा० )

[टिप्पणी—यद्यपि लक्ष्मण और श्रीरामचन्द्र जी एक जननी की कोख से उत्पन्न नहीं हुए थे ; तथापि उनका जन्म उस पायस के भाग से हुआ था ; जो कौसल्या ने स्वयं अपने हाथ से सुमित्रा को दिया था। अथवा यहाँ पर "सहोदर" कहने से आदिकवि का यह भी अभिप्राय हो सकता है कि "सहोदर के समान" भाई। ]

**विवेष्टमानं करुणमुच्छ्वसन्तं पुनः पुनः ।**
**राममाश्वासयन् वीरः सुषेणो वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥**

इस प्रकार करुणस्वर से विलाप करते और बार बार लंबी सांसें लेते देख, श्रीरामचन्द्र जी को धीरज बँधाते हुए सुषेण कहने लगे ॥१४॥

**न मृतोऽयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।**
**न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि [1]श्यावं न निष्प्रभम् ॥१५॥**

हे महाबाहो ! यह शोभा बढ़ाने वाले लक्ष्मण मरे नहीं हैं। क्योंकि न तो इनके मुख की आकृति ही बिगड़ी है और न इनके चेहरे का रङ्ग काला ही पड़ा है। जैसा कि मुर्दे का पड़ जाता है ॥१५॥

**सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्याभिलक्ष्यते ।**
**पद्मरक्ततलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने ॥१६॥**

इनका चेहरा तो हर्षित और भलीभाँति दमक रहा है। इनकी दोनों हथेलियाँ कमल-पुष्प की तरह लाल और दोनों आँखें सुन्दर बनी हुई हैं ॥१६॥

---

१ श्यावं—कपिशं विवर्णमिति यावत्। (गो०)

एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशांपते ।
दीर्घायुषस्तु ये मर्त्यास्तेषां तु मुखमीदृशम् ॥१७॥

हे प्रजापालक ! प्राणहीन लोगों के ऐसे लक्षण नहीं होते। जो मनुष्य दीर्घायु होते हैं, उन्हींका मुख ऐसा हुआ करता है ॥१७॥

नायं प्रेतत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।
मा विषादं कृथा वीर सप्राणोऽयमरिन्दमः ॥१८॥

शोभा बढ़ाने वाले लक्ष्मण मरे नहीं हैं। हे वीर ! आप दुःखी न हों। यह शत्रुहन्ता लक्ष्मण अभी जीवित हैं ॥१८॥

आख्यास्यते प्रसुप्तस्य स्रस्तगात्रस्य भूतले ।
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥१९॥

क्योंकि, शिथिल अङ्ग किए और पृथिवी पर सोते हुए लक्ष्मण जी की साँस बराबर चल रही है। उनका हृदय बार बार साँस लेने से हिल रहा है ॥१९॥

एवमुक्त्वा तु वाक्यज्ञः सुषेणो राघवं वचः ।
हनुमन्तमुवाचेदं हनुमन्तमभित्वरन् ॥२०॥

वाक्यज्ञ सुषेण श्रीरामचन्द्र जी से ये वचन कह कर, हनुमान् जी को जल्दियाते हुए, उनसे बोले ॥२०॥

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा शैलमोषधिपर्वतम् ।
पूर्वं ते कथितो योऽसौ वीर जाम्बवता शुभः ॥२१॥

हे सौम्य ! यहाँ से तुम शीघ्र जाओ और जाम्बवान् ने जिस पर्वत का पता तुम्हें पहिले बतलाया था, उस ओषधिपर्वत पर जा कर ॥२१॥

फिर वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी ने उसे (गेंद की तरह उछाल कर गुपका) दोनों हाथों से उठा ऊपर को उछाला। फिर जल से भरे काले बादल की तरह, उस पर्वत के शिखर को ले, हनुमान जी आकाशमार्ग में पहुँचे ॥३०॥

आपपात गृहीत्वा तु हनुमाञ्छिखरं गिरेः।
समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः ॥३१॥

फिर उस पर्वतशिखर को लिये हुए वे वहाँ से बड़े वेग से उड़े और उस पर्वतशिखर को ले जा कर, लङ्का में पहुँचा दिआ ॥३१॥

विश्रम्य किञ्चिद्धनुमान् सुषेणमिदमब्रवीत्
ओषधीं नावगच्छामि तामहं हरिपुङ्गव ॥३२॥

फिर कुछ देर तक दम ले कर, हनुमान जी ने सुषेण से यह कहा—हे कपिश्रेष्ठ! आपकी बतलाई जड़ीबूटियों को तो मैं पहिचान नहीं सका ॥३२॥

तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया।
एवं कथयमानं प्रशस्य पवनात्मजम् ॥३३॥

अतः मैं उस पर्वत के इस समूचे गिरिशिखर को ले आया हूँ। जब हनुमान् जी ने इस प्रकार कहा, तब सुषेण ने उनकी प्रशंसा की ॥३३॥

सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीम्।
विस्मितास्तु बभूवुस्ते रणे वानरराक्षसाः ॥३४॥
दृष्ट्वा हनुमतः कर्म सुरैरपि सुदुष्करम्।
ततः संक्षोदयित्वा तामोषधीं वानरोत्तमः ॥३५॥

तदनन्तर कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उन जड़ीबूटियों को उखाड़ लिया। जो काम, देवता भी न कर सके, उस काम को हनुमान् द्वारा होते देख, समरभूमि में उपस्थित, क्या वानर और क्या राक्षस सभी विस्मित हुए। तदनन्तर कपिश्रेष्ठ सुषेण ने उन जड़ीबूटियों को पीसा ॥३४॥३५॥

लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतेः।
सशल्यस्तां समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ॥३६॥

फिर सुषेण ने उन दवाइयों को लक्ष्मण जी को सुँघाया। शत्रुघाती लक्ष्मण उन दवाइयों को सूँघते ही ॥३६॥

विशल्यो विरुजः शीघ्रमुदतिष्ठन् महीतलात्।
तमुत्थितं ते हरयो भूतलात् प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ॥३७॥

शस्त्रपीड़ा से रहित हो, तुरन्त पृथिवी पर से उठ खड़े हुए। लक्ष्मण जी को पृथिवी पर से उठा देख, वे सब वानर ॥३७॥

साधु साध्विति सुप्रीताः सुषेणं प्रत्यपूजयन्।
एह्येहीत्यब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा ॥३८॥

सस्वजे स्नेहगाढं च बाष्पपर्याकुलेक्षणः।
अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ॥३९॥

धन्य! धन्य! कह कर सुषेण की सराहना करने लगे। तब शत्रु-घाती श्रीरामचन्द्र जी ने आओ आओ कह कर, और आँखों में आँसू भर कर, अत्यन्त स्नेह के साथ, लक्ष्मण जी को छाती से लगाया। लक्ष्मण जी को छाती से लगाने के बाद श्रीराम-चन्द्र जी ने उनसे कहा ॥३८॥३९॥

दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात् पुनरागतम् ।
न हि मे जीवितेनार्थः सीतया चापि लक्ष्मण ॥४०॥
को हि मे विजयेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ।
इत्येवं वदतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ॥४१॥

हे वीर! मैं बड़े भाग्य से पुनः तुमको देख रहा हूँ। मैं तो तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ मानता हूँ। हे लक्ष्मण! यदि कहीं तुम मर जाते, तो मुझे अपने जीने से, न सीता से और न रावण को जीतने ही से कुछ काम था। जब महात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार कहा ॥४०॥४१॥

खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
[1]तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ॥४२॥

तब उदास लक्ष्मण ने धीमे स्वर से ये वचन कहे—हे सत्य पराक्रमी! पहिले एक प्रतिज्ञा कर, (अर्थात् रावण का वध कर विभीषण को लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा कर) ॥४२॥

लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं वक्तुमिहार्हसि ।
न हि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां साधवोऽनघ ॥४३॥

पुरुषार्थहीन ओछे लोगों की तरह, ऐसी बात कहना उचित नहीं। हे अनघ! श्रेष्ठजन जो प्रतिज्ञा एक बार कर लेते हैं, उसे वे कभी भङ्ग नहीं करते ॥४३॥

लक्षणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ।
नैराश्यमुपगन्तुं ते तदलं मत्कृतेऽनघ ॥४४॥

---

१ तां प्रतिज्ञा—रावणं हत्वा विभीषणमभिषेक्ष्यामि एवंरूपां प्रतिज्ञां। (गो०)

हे अनघ! महत्व इसीमें है कि, जो प्रतिज्ञा की जाय, वह पूरी की जाय। अथवा बड़ाई की पहिचान यही है कि, प्रतिज्ञा का पालन किया जाय। मेरे पीछे या मेरे लिए आपको निराश हो जाना उचित न था ॥४४॥

वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय।
न जीवन्यास्यते शत्रुस्तव बाणपथं गतः ॥४५॥

आज आप रावण का वध कर, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कीजिए। आपके बाणों के लक्ष्य के भीतर आकर, शत्रु वैसे ही जीवित नहीं रह सकता ॥४५॥

नर्दतस्तीक्ष्णदंष्ट्रस्य सिंहस्येव महागजः।
अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः।
यावदस्तं न यात्येष [1]कृतकर्मा दिवाकरः ॥४६॥

जैसे पैने दाँतों वाले दहाड़ते हुए सिंह के सामने पड़कर गजराज जीता नहीं बच सकता। मैं तो यह चाहता हूँ कि, पृथिवी की परिक्रमा कर सूर्य के अस्ताचलगामी होने के पूर्व ही, यह दुरात्मा रावण शीघ्र मार डाला जाय ॥४६॥

यदि वधमिच्छसि रावणस्य संख्ये
यदि च कृतां त्वमिहेच्छसि प्रतिज्ञाम् ॥
यदि तव राजवरात्मजाभिलाषः
कुरु च वचो मम शीघ्रमद्य वीर ॥४७॥

इति द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥

---

[1] कृतकर्मा—कृतसंचारः। (गो०)

हे वीर! यदि युद्ध में आप रावण का वध करना चाहते हों, यदि आप अपने को सत्य-प्रतिज्ञ कहलाना चाहते हों, यदि आप राजनन्दिनी जानकी का उद्धार करना चाहते हों तो आप मेरे कथनानुसार शीघ्र कार्य कीजिए ॥४७॥

युद्धकाण्ड का एकसौ दूसरा सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## त्र्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ।
सन्दधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥१॥

लक्ष्मण के कहे हुए वचनों को सुन, शत्रुघाती एवं पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष हाथ में ले उसके ऊपर बाण चढ़ाया ॥१॥

रावणाय शरान् घोरान् विससर्ज चमूमुखे ।
अथान्यं रथमारुह्य रावणो राक्षसाधिपः ॥२॥

और समस्त सेना के सामने ही वे रावण के ऊपर घोर बाण-वृष्टि करने लगे। इस बीच में राक्षसराज रावण दूसरे रथ पर सवार हो ॥२॥

अभ्यद्रवत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिव भास्करम् ।
दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ॥३॥
आजघान महाघोरैर्धाराभिरिव तोयदः ।
दीप्तपावकसङ्काशैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥४॥

वह श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर वैसे ही दौड़ा, जैसे राहु सूर्य के ऊपर दौड़ता है। रथ में बैठा हुआ रावण, श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर वज्रसमान एवं महाभयानक बाणों से वैसे ही बाण बरसाने लगा, जैसे मेघ जल बरसाते हैं। सुवर्णभूषित एवं प्रज्वलित अग्नि की तरह चमचमाते तीरों से ॥३॥४॥

निर्बिभेद रणे रामो दशग्रीवं समाहितम् ।
भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः ॥५॥

इस लड़ाई में श्रीरामचन्द्र जी ने बड़ी सावधानी से दशग्रीव रावण को घायल किया। किन्तु भूमि पर खड़े श्रीरामचन्द्र जी का और रथ में सवार रावण का ॥५॥

न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वदानवाः ।
ततः काञ्चनचित्राङ्गः किङ्किणीशतभूषितः ॥६॥

युद्ध, ( आकाशस्थित ) देवता गन्धर्व और दानवों के कथनानुसार बराबरी का नहीं था। तब तो सुवर्ण से चित्रित ( सोने का पानी चढ़ा हुआ ) और सैकड़ों झुनझुनियों से सजा हुआ ॥६॥

तरुणादित्यसङ्काशो वैडूर्यमयकूबरः ।
सदश्वैः [१]काञ्चनापीडैर्युक्तः [२]श्वेतप्रकीर्णकैः ॥७॥

मध्याह्न के सूर्य की तरह जगमगाता, पन्नों के जड़ाऊ जुएँ से युक्त, सुवर्ण के भूषणों से भूषित, उत्तम घोड़ों से युक्त, सफेद चमरों के अलङ्कृत ॥७॥

---

१ काञ्चनापीडैः—काञ्चनालंकारैः । ( गो० ) २ श्वेतप्रकीर्णकैः—श्वेतचामरैः । ( गो० )

१हरिभिः सूर्यसङ्काशैर्हेमजालविभूषितैः ।
रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान् देवराजरथो वरः ॥८॥

सूर्य के समान चमचमाते हरे रंग के घोड़ों से जुता हुआ, सोने की जालियों से भूषित, सोने के बाँस में फहराती हुई ध्वजा से युक्त, इन्द्र के श्रेष्ठ रथ को ॥८॥

देवराजेन सन्दिष्टो रथमारुह्य मातलिः ।
अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात् ॥९॥

जब श्रीरामचन्द्र जी के लिए ले जाने की स्वयं इन्द्र ने अपने रथवान मातलि को आज्ञा दी, तब मातलि उस पर सवार हो स्वर्ग से नीचे उतर श्रीरामचन्द्र जी के समीप आया ॥९॥

अब्रवीच्च तदा रामं सप्रतोदो रथे स्थितः ।
प्राञ्जलिर्मातलिर्वाक्यं सहस्राक्षस्य सारथिः ॥१०॥

हाथ में चाबुक लिए, रथ पर सवार इन्द्र के सारथी मातलि ने हाथ जोड़ कर, श्रीरामचन्द्र जी से कहा ॥१०॥

सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते ।
दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण ॥११॥

हे काकुत्स्थ ! हे महापराक्रमी महाराज ! हे शत्रुदमनकारिन् देवराज इन्द्र ने, आपकी विजय प्राप्ति के लिए यह रथ भेजा है ॥११॥

इदमैन्द्रं महच्चापं कवचं चाग्निसन्निभम् ।
शराश्चादित्यसङ्काशाः शक्तिश्च विमला शिता ॥१२॥

---

१ हरिभिः—हरितवर्णैः ( रा० )

यह इन्द्र का बड़ा धनुष है, यह अग्नि के समान दमकता हुआ कवच है, सूर्य की तरह चमचमाते ये बाण हैं और यह चमचमाती और अत्यन्त पैनी बर्छी ( शक्ति ) है ॥१२॥

**आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम् ।**
**मया सारथिना राजन्महेन्द्र इव दानवान् ॥१३॥**

हे वीर ! मेरी रथवानी की चातुरी से देवराज इन्द्र जिस प्रकार दानवों का नाश करते हैं, उसी प्रकार आप भी इस रथ पर सवार हो कर, निशाचर रावण का विनाश कीजिये ॥१३॥

**इत्युक्तः सम्परिक्रम्य रथं समभिवाद्य च ।**
**आरुरोह तदा रामो [1]लोकाँल्लक्ष्म्या विराजयन् ॥१४॥**

मातलि के इस प्रकार कहने पर, श्रीरामचन्द्र जी ने उस रथ की परिक्रमा की और भली भाँति उसे प्रणाम कर, उस पर वे सवार हुए। उस समय श्रीरामचन्द्र जी अपनी कान्ति से चन्द्रमा की तरह समस्त लोकों को प्रकाशित करने लगे ॥१४॥

**तद्बभूवाद्भुतं युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ।**
**रामस्य च महाबाहो रावणस्य च रक्षसः ॥१५॥**

तदनन्तर महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी और राक्षस रावण का ऐसा महाभयङ्कर और अद्भुत युद्ध हुआ कि, उसे देखने वालों के रोंगटे खड़े हो गए ॥१५॥

**स गान्धर्वेण गान्धर्वं दैवं दैवेन राघवः ।**
**अस्त्रं राक्षसराजस्य जघान परमास्त्रवित् ॥१६॥**

---

१ लोकान्लक्ष्म्या विराजयन्—चन्द्रप्रभत्वमेव स्वकान्त्या सर्वलोकान् प्रकाशयन् । ( गो० )

बड़े बड़े अस्त्रों का चलाना और रोकना जानने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के चलाये गान्धर्वास्त्र को गान्धर्वास्त्र से और दैवास्त्र को दैवास्त्र से काट डाला ॥१६॥

अस्त्रं तु परमं घोरं राक्षसं राक्षसाधिपः ।
ससर्ज परमक्रुद्धः पुनरेव निशाचरः ॥१७॥

तब राक्षसराज रावण ने अत्यन्त क्रोध में भर, फिर महाभयङ्कर राक्षसास्त्र छोड़ा ॥१७॥

ते रावण धनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनभूषणाः ।
अभ्यवर्तन्त काकुत्स्थं सर्पा भूत्वा महाविषाः ॥१८॥

उस समय सुवर्णभूषित जो बाण रावण के धनुष से छूटते थे, वे महाविषधर सर्प हो कर श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर गिरते थे ॥१८॥

ते दीप्तवदना दीप्तं वमन्तो ज्वलनं मुखैः ।
राममेवाभ्यवर्तन्त व्यादितास्या भयानकाः ॥१९॥

वे ( बाणरूपी ) प्रज्वलित एवं भयानक मुख वाले सर्प, मुख से आग उगलते हुए, श्रीरामचन्द्रजी के शरीर पर गिरते थे ॥१९॥

तैर्वासुकिसमस्पर्शैर्दीप्त[1]भोगैर्महाविषैः ।
दिशश्च सन्तताः सर्वाः प्रदिशश्च समावृताः ॥२०॥

प्रदीप्त फणों से युक्त महाविषधर वासुकी सर्प के तुल्य स्पर्शकारी बाणों से समस्त दिशाएँ भर गईं ॥२०॥

---

१ दीप्तभोगैः—दीप्तफणैः । ( गो० )

तान् दृष्ट्वा पन्नगान् रामः समापतत आहवे ।
अस्त्रं गारुत्मकं घोरं प्रादुश्चक्रे भयावहम् ॥२१॥

इस लड़ाई में उन पन्नग रूपी बाणों को अपने ऊपर गिरते देख श्रीरामचन्द्र जी ने सर्पों को भयभीत करने वाले भयानक गरुड़ास्त्र का प्रयोग किआ ॥२१॥

ते राघवशरा मुक्ता रुक्मपुङ्खाः शिखिप्रभाः ।
सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा विचेरुः सर्पशत्रवः ॥२२॥

अब तो श्रीरामचन्द्र जी के धनुष से अग्निशिखा के समान प्रभावाले सुवर्णपुङ्ख युक्त, सोने के जो बाण छूटते, वे सर्पशत्रु गरुड़ बन कर सर्पों को खा लेते थे ॥२२॥

ते तान् सर्वाञ्शराञ्जघ्नुः सर्परूपान् महाजवान् ।
सुपर्णरूपा रामस्य विशिखाः कामरूपिणः ॥२३॥

श्रीरामचन्द्र जी के गरुड़रूपधारी बाण, रावण के महावेगवान् सर्प रूपी बाणों को काटने लगे ॥२३॥

अस्त्रे प्रतिहते क्रुद्धो रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं घोराभिः शरवृष्टिभिः ॥२४॥

अपने अस्त्र को इस प्रकार विफल हुआ देख, राक्षसराज रावण ने क्रोध में भर श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर बड़े भयङ्कर बाणों की वर्षा की ॥२४॥

ततः शरसहस्रेण राममक्लिष्टकारिणम् ।
अर्दयित्वा शरौघेण मातलिं प्रत्यविध्यत ॥२५॥

उसने एक सहस्र बाण चला अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी को घायल कर, रथवान मातलि को भी घायल किया ॥२५॥

चिच्छेद केतुमुद्दिश्य शरेणैकेन रावणः ।
पातयित्वा रथोपस्थे रथात्केतुं च काञ्चनम् ॥२६॥

फिर इन्द्ररथ की ध्वजा को लक्ष्य बना उसने एक बाण छोड़ा, जिससे उसने रथ पर फहराती हुई सुवर्णमयी ध्वजा को काट कर रथ से गिरा दिया ॥२६॥

ऐन्द्रानपि जघानाश्वाञ्शरजालेन रावणः ।
तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म रावणस्य दुरात्मनः ॥२७॥

फिर रावण ने बाण समूह से इन्द्र के रथ के घोड़ों को भी घायल किया। दुरात्मा रावण की हाथ की सफाई का यह महत्कृत्य देख ॥२७॥

विषेदुर्देवगन्धर्वा दानवाश्चारणैः सह ।
राममार्तं तदा दृष्ट्वा सिद्धाश्च परमर्षयः ॥२८॥

दानवों और चारणों सहित देवता और गन्धर्व उदास हुए। श्रीरामचन्द्र जी को पीड़ित देख; सिद्ध, देवर्षि, ॥२८॥

व्यथिता वानरेन्द्राश्च बभूवुः सविभीषणाः ।
रामचन्द्रमसं दृष्ट्वा ग्रस्तं रावणराहुणा ॥२९॥

समस्त वानर और विभीषण व्यथित हुए। श्रीरामचन्द्ररूपी चन्द्रमा को रावणरूपी राहु से ग्रसा हुआ देख ॥२९॥

प्राजापत्यं च नक्षत्रं रोहिणीं शशिनः प्रियाम् ।
समाक्रम्य बुधस्तस्थौ प्रजानामशुभावहः ॥३०॥

चन्द्रमा की प्यारी प्रजापति दैवत रोहिणी पर बुध ने आक्रमण किया, जो प्रजाजनों के लिए अशुभसूचक था। अर्थात् यह एक प्रकार की उत्पातसूचक घटना थी ) ॥३०॥

**सधूमपरिवृत्तोर्मिः प्रज्वलन्निव सागरः ।**
**उत्पपात तदा क्रुद्धः स्पृशन्निव दिवाकरम् ॥३१॥**

धूमसहित लहरों से प्रज्वलित सा होता हुआ समुद्र क्रोध में भर ऐसा उमड़ा, मानों वह सूर्य ही को छू लेगा ॥३१॥

**[1]शस्त्रवर्णः सुपरुषो मन्दरश्मिर्दिवाकरः ।**
**अदृश्यत [2]कबन्धाङ्कः संसक्तो धूमकेतुना ॥३२॥**

सूर्य का रङ्ग काला पड़ गया, उनकी किरण मन्द पड़ गई। सूर्य, राक्षस राहु की गोद में धूमकेतु के साथ देख पड़े ॥३२॥

**कोसलानां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्राग्निदैवतम् ।**
**आक्रम्याङ्गारकस्तस्थौ विशाखामपि चाम्बरे ॥३३॥**

सूर्यवंशियों का विशाखा नक्षत्र है, जिसके देवता इन्द्र और अग्नि हैं। इस विशाखा नक्षत्र पर आकाश में आक्रमण कर मङ्गल जा बैठा ॥३३॥

**दशास्यो विंशतिभुजः प्रगृहीतशरासनः ।**
**अदृश्यत दशग्रीवो मैनाक इव पर्वतः ॥३४॥**

दसमुख और बीस भुजा वाले रावण ने हाथ में धनुष ले लिया। उस समय वह दशग्रीव ऐसा देख पड़ा, मानों मैनाक पर्वत हो ॥३४॥

---

१ शस्त्रवर्णः—असितवर्णः। (रा०) २ कबन्धः—राहुः। (रा०)

निरस्यमानो रामस्तु दशग्रीवेण रक्षसा ।
नाशक्नोदभिसन्धातुं सायकान् रणमूर्धनि ॥३५॥

समरभूमि में ( रावण के प्राप्त बरदान की मर्यादा रखने के लिए) श्रीरामचन्द्र जी रावण द्वारा खदेड़े जाने पर भी, ऐसे शिथिल पड़ गए कि, उनसे धनुष पर बाण भी रखा न जा सका ॥३५॥

स कृत्वा भ्रुकुटिं क्रुद्धः किञ्चित् संरक्तलोचनः ।
जगाम सुमहाक्रोधं निर्दहन्निव चक्षुषा ॥३६॥

इति त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥

किन्तु कुछ ही देर बाद रघुनाथ जी भौंहें टेढ़ी कर और कुछ कुछ आँखें लाल कर अत्यन्त कुपित हुए और ऐसा जान पड़ा ; मानों वे नेत्राग्नि से ( रावण को ) भस्म कर डालेंगे ॥३६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ तीसरा सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## चतुरुत्तरशततमः सर्गः

—❀—

तस्य क्रुद्धस्य वदनं दृष्ट्वा रामस्य धीमतः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः प्राकम्पत च मेदिनी ॥१॥

बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी का कुपित मुखमण्डल देख समस्त प्राणी भयभीत हो गए और पृथिवी काँपने लगी ॥१॥

सिंहशार्दूलवाञ्शैलः सञ्चचाल चलद्रुमः ।
बभूव चातिक्षुभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥२॥

सिंह एवं शार्दूल सेवित पहाड़ हिल उठे, पेड़ काँपने लगे। नदी समुद्र खलबला उठे ॥२॥

खराश्च खरनिर्घोषा गगने परुषा घनाः।
औत्पातिकानि नर्दन्तः समन्तात् परिचक्रमुः ॥३॥

गधे बड़ी बुरी तरह रेंकने लगे। आकाश में रूखे बादल, उत्पातसूचक गर्जन करते हुए चारों ओर घूमने लगे ॥३॥

रामं दृष्ट्वा सुसंक्रुद्धमुत्पातांश्च सुदारुणान्।
वित्रेसुः सर्वभूतानि रावणस्याभवद्भयम् ॥४॥

श्रीरामचन्द्र जी को क्रुद्ध और इन सुदारुण उत्पातों को देख, समस्त प्राणी त्रस्त हो गए और रावण के मन में भी भय का सञ्चार हुआ ॥४॥

विमानस्थास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः।
ऋषिदानवदैत्याश्च गरुत्मन्तश्च खेचराः ॥५॥

आकाश में विमान में बैठे हुए देवता, गन्धर्व, महोरग, ऋषि-दानव, दैत्य, गरुड़ तथा अन्य आकाशचारी जीव ॥५॥

ददृशुस्ते महायुद्धं लोकसंवर्तसंस्थितम्।
नानाप्रहरणैर्भीमैः शूरयोः सम्प्रयुध्यतोः ॥६॥

विविध प्रकार के भयंकर अस्त्रों-शस्त्रों से लड़ने वाले उन दोनों शूरवीरों के उस लोक-प्रलयकारी महायुद्ध को देख रहे थे ॥६॥

ऊचुः सुरासुराः सर्वे तदा [१]विग्रहमागताः।
प्रेक्षमाणा महद्युद्धं वाक्यं भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥७॥

---

१ विग्रहमागताः—विग्रहयुद्धं द्रष्टुमागताः। (गो॰)

जो देवता और दैत्य श्रीरामचन्द्र और रावण का युद्ध देखने आए थे वे उस महायुद्ध को देख, बड़े अनुराग और हर्ष से जयजयकार बोलते थे ॥७॥

दशग्रीवं जयेत्याहुरसुराः समवस्थिताः ।
देवा राममथोचुस्ते त्वं जयेति पुनः पुनः ॥८॥

जो दैत्य वहाँ आए हुए थे वे रावण का जयजयकार बोल रहे थे, और जो देवता वहाँ थे वे बार बार "श्रीरामचन्द्र जी का जय" "श्रीरामचन्द्र जी का जय" पुकार रहे थे ॥८॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रोधाद्राघवस्य स रावणः ।
प्रहर्तुकामो दुष्टात्मा स्पृशन् प्रहरणं महत् ॥९॥

इस बीच में दुष्ट रावण ने श्रीरामचन्द्र जी का वध करने की कामना से एक बड़ा शूल उठाया ॥९॥

वज्रसारं महानादं सर्वशत्रुनिबर्हणम् ।
शैलशृंगनिभैः कूटैश्चितं दृष्टिभयावहम् ॥१०॥

वह हथियार वज्र की तरह कठोर बड़ा भारी शब्द करने वाला और पर्वत के समान था, जिसे देखने से मन में भय उत्पन्न हो जाता था ॥१०॥

सधूममिव तीक्ष्णाग्रं युगान्ताग्निचयोपमम् ।
अतिरौद्रमनासाद्यं कालेनापि दुरासदम् ॥११॥

वह प्रलयकालीन सधूम आग के ढेर की तरह जान पड़ता था। वह बड़ा पैना और बड़ा भयंकर था। उसका प्रहार कोई सह नहीं सकता था। यहाँ तक कि, काल के लिए भी वह दुर्धर्ष था ॥११॥

त्रासनं सर्वभूतानां दारणं भेदनं तदा ।
प्रदीप्तमिव रोषेण शूलं जग्राह रावणः ॥१२॥

और सब जीवधारियों को त्रस्त एवं विदीर्ण करने वाला और छेदने वाला था । रावण ने रोष से भभक उस शूल को उठाया ॥१२॥

तच्छूलं परमक्रुद्धो मध्ये जग्राह वीर्यवान् ।
अनेकैः समरे शूरै राक्षसैः परिवारितः ॥१३॥

परम क्रोध में भर बलवान् रावण ने उस शूल को बीच में पकड़ा । उस समय समरभूमि में रावण के पास बहुत से शूरवीर राक्षस आ कर इकट्ठे हो गए ॥१३॥

समुद्यम्य महाकायो ननाद युधि भैरवम् ।
संरक्तनयनो रोषात् स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥१४॥

महाकाय रावण क्रोध में भर और लाल लाल नेत्र कर, उस शूल को उठा समरभूमि में बड़े ज़ोर से गरजा, जिससे उसकी सेना बहुत प्रसन्न हुई ॥१४॥

पृथिवीं चान्तरिक्षं च दिशश्च प्रदिशस्तथा ।
प्राकम्पयत्तदा शब्दो राक्षसेन्द्रस्य दारुणः ॥१५॥

राक्षसेन्द्र रावण के उस भयङ्कर सिंहनाद से पृथिवी आकाश दिशाएँ और विदिशाएँ काँप उठीं ॥१५॥

अतिनादस्य नादेन तेन तस्य दुरात्मनः ।
सर्वभूतानि वित्रेसुः सागरश्च प्रचुक्षुभे ॥१६॥

अति गर्जनशील दुरात्मा रावण के उस भयङ्कर गर्जन से समस्त जीवधारी डर गए और सागर भी खलबला उठा ॥१६॥

स गृहीत्वा महावीर्यः शूलं तद्रावणो महत् ।
विनद्य सुमहानादं रामं परुषमब्रवीत् ॥१७॥

महाबलवान् रावण उस विशाल शूल को ले और बड़े जोर से गर्ज कर श्रीरामचन्द्र जी से कठोर वचन कहने लगा ॥ १७ ॥

शूलोऽयं वज्रसारस्ते राम रोषात् मयोद्यतः ।
तव भ्रातृसहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति ॥१८॥

हे राम ! देख, यह मेरा वज्र के समान कठोर शूल है। क्रोध में भर मैं इसे तेरे ऊपर चलाता हूँ। यह शूल भ्राता सहित तेरे प्राणों को हरण करेगा ॥१८॥

रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे ।
त्वां निहत्य रणश्लाधिन् करोमि तरसा [1]समम् ॥१९॥

युद्ध में वाहवाही चाहने वाले हे राम ! आज तक युद्ध में जितने शूर राक्षस तेरे हाथ से मारे गए हैं, आज तुझे मार कर मैं तुझे उन्हींके समान कर दूँगा ॥१९॥

तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव ।
एवमुक्त्वा स चिक्षेप तच्छूलं राक्षसाधिपः ॥२०॥

हे राम ! खड़ा रह अब मैं तुझे इस शूल से मारता हूँ। यह कह कर रावण ने वह शूल छोड़ा ॥२०॥

---

१ समं सदृशं । ( शि० )

तद्रावणकरान् मुक्तं विद्युज्ज्वालासमाकुलम् ।
अष्टघण्टं महानादं वियद्गतमशोभत ॥२१॥

रावण के हाथ से छूटा हुआ वह शूल आठ घंटों सहित घनघनाता हुआ आकाश में बिजली की तरह शोभित होने लगा ॥२१॥

तच्छूलं राघवो दृष्ट्वा ज्वलन्तं घोरदर्शनम् ।
ससर्ज विशिखान् रामश्चापमायम्य वीर्यवान् ॥२२॥

उस ज्वलन्त और भयङ्कर शूल को देख महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी ने धनुष पर रख बड़े पैने पैने बाण छोड़े ॥२२॥

आपतन्तं शरौघेण वारयामास राघवः ।
उत्पतन्तं युगान्ताग्निं जलौघैरिव वासवः ॥२३॥

श्रीरामचन्द्र जी ने उस शूल को बाण चला कर, उसी प्रकार रोकना चाहा, जिस प्रकार इन्द्र जलवर्षा कर धधकती हुई प्रलय की आग को बुझाते हैं ॥२३॥

निर्ददाह स तान् बाणान् रामकार्मुकनिःसृतान् ।
रावणस्य महाशूलः पतङ्गानिव पावकः ॥२४॥

किन्तु रावण को उस विशाल शूल ने श्रीरामचन्द्र जी के चलाए हुए बाणों को उसी तरह जला कर भस्म कर डाला, जिस प्रकार आग पतङ्गों को भस्म कर डालती है ॥२४॥

तान् दृष्ट्वा भस्मसाद्भूताञ्छूलसंस्पर्शचूर्णितान् ।
सायकानन्तरिक्षस्थान् राघवः क्रोधमाहरत् ॥२५॥

यह देख कर कि, मेरे घोड़े और आकाश में गए हुए समस्त बाण उस शूल से टकरा कर टुकड़े टुकड़े हो गए, श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त क्रुद्ध हुए ॥२५॥

स तां मातलिनाऽऽनीतां शक्तिं वासवनिर्मिताम् ।
जग्राह परमक्रुद्धो राघवो रघुनन्दनः ॥२६॥

तब तो रघुनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने अत्यन्त क्रुद्ध हो इन्द्र की बनाई और मातलि की लाई हुई शक्ति ( बर्छी ) उठाई ॥२६॥

सा तोलिता बलवता शक्तिर्घण्टाकृतस्वना ।
नभः प्रज्वालयामास युगान्तोल्केव संप्रभा ॥२७॥

जब बलवान श्रीरामचन्द्र जी ने उसे हाथ में ले तोला तब उसमें लगी हुई घंटियाँ बड़े जोर से बजीं और उससे प्रलयकालीन उल्का के प्रकाश की तरह आकाश में उजियाला हो गया । अर्थात् शक्ति में इतनी चमक थी ॥२७॥

सा क्षिप्ता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिञ्शूले पपात ह ।
भिन्नः शक्त्या महाञ्शूलो निपपात हतद्युतिः ॥२८॥

जब श्रीरामचन्द्र ने उसे चलाया ; तब वह उस शूल पर गिरी । शक्ति के प्रहार से रावण का विशाल शूल टूट कर नीचे गिर पड़ा और उसकी चमक भी नष्ट हो गई ॥२८॥

निर्बिभेद ततो बाणैर्हयानस्य महाजवान् ।
रामस्तीक्ष्णैर्महावेगैर्वज्रकल्पैः शितैः शरैः ॥२९॥

तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने बड़ी फुर्तीली चाल चलने वाले रावण के रथ के घोड़ों को अपने तीक्ष्ण महावेगवान् और वज्र के समान पैने तीरों से वेधा ॥२९॥

निर्बिभेदोरसि ततो रावणं निशितैः शरैः ।
राघवः परमायत्तो ललाटे पत्रिभिस्त्रिभिः ॥३०॥

फिर पैने तीर चला रावण की छाती विदीर्ण की। तदनन्तर बड़े वेग से तीन बाण उसके ललाट में मारे ॥३०॥

स शरैर्भिन्नसर्वाङ्गो गात्रप्रस्रुतशोणितः ।
राक्षसेन्द्रः समूहस्थः[1] फुल्लाशोक इवाबभौ ॥३१॥

श्रीरामचन्द्र जी के तीरों की मार से रावण का सारा शरीर घायल हो गया और उसके समस्त अङ्गों से रुधिर बहने लगा। युद्धभूमि में स्थित राक्षसेन्द्र रावण उस समय पुष्पित अशोक वृक्ष को तरह देख पड़ने लगा ॥३१॥

स रामबाणैरभिविद्धगात्रो
निशाचरेन्द्रः क्षतजार्द्रगात्रः ।
जगाम खेदं च [2]समाजमध्ये
क्रोधं च चक्रे सुभृशं तदानीम् ॥३२॥

इति चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥

श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से विद्ध हो राक्षसेन्द्र रावण रक्त से नहा उठा। उस समय वह उस लड़ाई से बहुत दुःखी हुआ और (अपनी उस दशा को देख) वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ ॥३२॥

युद्धकाण्ड का एकसौ चौथा सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

१ समूहस्थः—युद्धस्थः। (गो०) २ समाजे—युद्धे। (गो०)

## पञ्चोत्तरशततमः सर्गः



स तेन तु तथा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो रणे ।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥१॥

इस युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी द्वारा चोट खा कर, समरश्लाघी रावण बड़ा कुपित हुआ ॥१॥

स दीप्तनयनो रोषाच्चापमायम्य वीर्यवान् ।
अभ्यर्दयत् सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥२॥

बलवान् रावण के दोनों नेत्र क्रोध के मारे धधक उठे और वह धनुष ले उस महासागर में क्रोध में भरा हुआ श्रीरामचन्द्र पर दौड़ा ॥२॥

बाणधारासहस्रैस्तैः सतोयद इवाम्बरात् ।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयत् ॥३॥

मेघ जिस तरह आकाश से जलधारा वर्षा कर तालाबों को भर देते हैं, उसी तरह सहस्रों बाणों की वर्षा से रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के शरीर को ( बाणों से ) पूर्ण कर दिया ॥३॥

पूरितः शरजालेन धनुर्मुक्तेन संयुगे ।
महागिरिरिवाकम्प्यः काकुत्स्थो न प्रकम्पते ॥४॥

वीर्यवान् श्रीरामचन्द्र जी रण में रावण के धनुष से छूटे हुए बाणों से पूरित होकर भी, महागिरि की तरह अचल अटल बने रहे ॥४॥

स शरैः शरजालानि वारयन् समरे स्थितः ।
गभस्तीनिव सूर्यस्य प्रतिजग्राह वीर्यवान् ॥५॥

बलवान् श्रीरामचन्द्र जी ने समरभूमि में खड़े, रावण के चलाए बहुत से बाणों को तो अपने बाणों से रोका और कुछ बाणों को वे वैसे ही सहन कर लेते थे; जैसे सूर्य की किरणों का लोग सहन कर लेते हैं ॥५॥

ततः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
निजघानोरसि क्रुद्धो राघवस्य महात्मनः ॥६॥

फुर्तीले रावण ने क्रोध में भर महाबलवान् श्रीरामचन्द्र जी की छाती में एक सहस्र बाण मारे ॥६॥

स शोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान् किंशुकद्रुमः ॥७॥

उस समय उस लड़ाई में लक्ष्मण के बड़े भाई श्रीरामचन्द्र जी रक्त से नहाए हुए ऐसे जान पड़े; मानों वन में फूला हुआ टेसू का एक बड़ा वृक्ष खड़ा हो ॥७॥

शराभिघातसंरब्धः सोऽपि जग्राह सायकान् ।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यतेजसः ॥८॥

महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने भी रावण के बाणों की चोट से क्रोध में भर कर, प्रलयकालीन सूर्य की तरह चमचमाते बाण निकाले ॥८॥

ततोऽन्योन्यं सुसंरब्धावुभौ तौ रामरावणौ ।
शरान्धकारे समरे नोपालक्षयतां तदा ॥९॥

दोनों वीर श्रीराम और रावण क्रोध में भर, परस्पर एक दूसरे के ऊपर इस प्रकार की बाणवर्षा करने लगे कि, उन बाणों के छा जाने से समरभूमि में व्याप्त अन्धकार में, वे दोनों एक दूसरे को नहीं देख पाते थे ॥९॥

ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥१०॥

दशरथनन्दन शूरवीर श्रीरामचन्द्र जी ने क्रोध में भर अट्टहास कर रावण से कठोर वचन कहे ॥१०॥

मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम ।
हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान् ॥११॥

अरे राक्षसाधम ! हम लोगों के अनजाने विवशा स्त्री को तू जनस्थान से हर लाया । अतएव तू शूरवीर तो नहीं है ॥११॥

मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने ।
वैदेहीं प्रसभं हृत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१२॥

जंगल में अकेली और दीन बेचारी वैदेही को बरजोरी हर ला कर, तू अपने को बहादुर लगाता है ॥१२॥

स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शक ।
कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१३॥

अरे पराई स्त्रियों पर हाथ डालने वाले ! अरे अनाथा स्त्रियों के सामने अपनी बहादुरी दिखाने वाले ! कापुरुषों का काम कर भी तू अपने को बहादुर मानता है ॥१३॥

भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित ।
दर्पान् मृत्युमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यसे ॥१४॥

अरे मर्यादा तोड़ने वाले ! अरे निर्लज्ज ! अरे दुश्चरित्र ! इकड़ी में आ तू अपनी मौत अपने हाथ से ला कर भी तू अपने को शूरवीर लगाता है ! ॥१४॥

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
श्लाघनीयं यशस्यं च कृतं कर्म महत्त्वया ॥१५॥

वाह ! शूरश्रेष्ठ बलवान् और कुबेर का छोटा भाई होकर भी, तूने यह काम तो सराहनीय और बड़ा भारी किया ! इससे तेरी यशपताका खूब फहरायगी !! (यह व्यङ्ग्य है) ॥१५॥

[1]उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च ।
कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत् फलम् ॥१६॥

अभिमान में चूर होकर तूने जो निन्दित और अहितकर कर्म किया है, अब उसका फल भी तुझको बहुत बड़ा मिलेगा ॥१६॥

शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ।
नैव लज्जास्ति ते सीतां चोरवद्व्यपकर्षतः ॥१७॥

अरे दुर्मते ! तू चोर की तरह सीता को हरण करके अपने को शूर समझ रहा है, इससे क्या तुझको लाज नहीं आती ? ॥१७॥

यदि मत् सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् ।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत् सायकैर्हतः ॥१८॥

यदि मेरी उपस्थिति में बरजोरी सीता हरता, तो तू कभी का मेरे बाणों से मारा जाकर अपने भाई खर के पास पहुँच गया होता ॥१८॥

---

१ उत्सेकेन—गर्वेण । ( गो० )

दिष्ट्याऽसि मम दुष्टात्मंश्चक्षुर्विषयमागतः ।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥१६॥

आज सौभाग्यवश तू मुझे दिखलाई पड़ा है, सो आज ही मैं पैने पैने बाणों से मार, तुझे यमालय भेजे देता हूँ ॥१६॥

अद्य ते मच्छरैश्छिन्नं शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
क्रव्यादा व्यपकर्षन्तु विकीर्णं रणपांसुषु ॥२०॥

आज कुण्डलों से झलमलाता तेरा सिर मेरे बाणों से कट कर समरभूमि की धूल में लोटेगा और मांसाहारी जीव उसको चीथेंगे ॥२०॥

निपत्योरसि गृध्रास्ते क्षितौ क्षिप्तस्य रावण ।
पिबन्तु रुधिरं तर्षाच्छरशय्यान्तरोत्थितम् ॥२१॥

जब मैं तेरी छाती में बाण मार कर तुझे पृथिवी पर गिरा दूँगा; तब तेरी छाती के ऊपर गीध बैठ कर चुभे हुए बाणों के घावों से बहते हुए रक्त को पीवेंगे ॥ २१ ॥

अद्य मद्बाणभिन्नस्य गतासोः पतितस्य ते ।
कर्षन्त्वान्त्राणि पतगा गरुत्मन्त इवोरगान् ॥२२॥

आज मेरे बाणों की चोट से मर कर जब तू भूमि पर गिरेगा तब मांसभक्षी गीध आदि पक्षी तेरी अतड़ियों को वैसे ही झकझोर झकझोर खींचेंगे, जैसे गरुड़ सर्पों को झकझोर झकझोर कर खींचते हैं ॥२२॥

इत्येवं संवदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥२३॥

इस प्रकार शत्रुनाशक, शूरवीर श्रीरामचन्द्र जी पास खड़े रावण से (कठोरवचन) कह कर, उसके ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे ॥२३॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणः ॥२४॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में रावण के वध करने की अभिलाषा की, तब उनके शरीर का बल, अस्त्रबल, पराक्रम और मन की प्रसन्नता दूनी हो गई ॥२४॥

[1]प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥२५॥

उस समय महातेजा एवं प्रख्यात श्रीरामचन्द्र जी के सामने समस्त अस्त्रों के अधिष्ठाता देवता प्रकट हुए। इस पर श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त हर्षित हुए और उनमें और भी अधिक फुर्ती आ गई ॥२५॥

शुभान्येतानि चिह्नानि विज्ञायात्मगतानि सः ।
भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥२६॥

तब राक्षसों के मारने वाले श्रीरघुनाथ जी अपने में इन शुभ लक्षणों को देख कर, फिर रावण को बाणों से पीड़ित करने लगे ॥२६॥

हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात् ।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्णहृदयोऽभवत् ॥२७॥

---

[1] अस्त्राणिप्रादुर्बभुवुः—अस्त्रदेवताः सन्निहिता अभूवनाप्रहर्षादस्त्रदेवता सन्निधिजात्। ( रा० )

फिर वानरों की पत्थरवर्षा तथा श्रीरामचन्द्र जी की बाणवर्षा के प्रहार से रावण बड़ा घबड़ाया ॥२७॥

यदा च शस्त्रं नारेभे न व्यकर्षच्छरासनम् ।
नास्य[1] प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥२८॥

उस समय मारे घबड़ाहट के न तो वह कोई शस्त्र ही चला सकता था और न धनुष तान कर बाण ही छोड़ सकता था। यह देख वीर श्रीरामचन्द्र जी ने उसके वध के लिए अपना पराक्रम प्रकट न किया अर्थात् इस पर अस्त्र न छोड़े ॥२८॥

क्षिप्ताश्चापि शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।
[2]न रणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालेऽभिवर्ततः ॥२९॥

जो बाण और विविध प्रकार के शस्त्र उसने चलाए, उनका भी कुछ फल न हुआ अर्थात् उनसे कोई न तो घायल हुआ न कोई मरा। क्योंकि रावण का अन्त समय अब उपस्थित था ॥२९॥

सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं समीक्ष्य तम् ।
शनैर्युद्धादसम्भ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥३०॥

इति पञ्चोत्तरशततमः सर्गः

तब रावण के रथ को हाँकने वाला सारथी, उसकी यह दशा देख, बड़ी सावधानी से धीरे धीरे रथ हाँक कर, समरभूमि के बाहिर ले गया ॥३०॥

युद्धकाण्ड का एकसौपाँचवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

---

१ प्रत्यकरोद्वीर्यं—रामो संहाराय न तिष्ठेदितिभावः। (रा०) २ न रणार्थाय वर्तन्ते—छेदनभेदनादिरणप्रयोजनं कर्तुं यदा नाशक्नुवन्। (गो०)

## षडुत्तरशततमः सर्गः

—❀—

स तु [1]मोहात् सुसंक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥१॥

मृत्यु से प्रेरित रावण अविवेक के कारण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ । क्रोध के मारे नेत्र लाल कर, वह सारथी से बोला ॥१॥

हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम् ।
भीरुं लघुमिवासत्वं विहीनमिव तेजसा ॥२॥

क्या तूने मुझे वीर्यहीन जैसा, अशक्त जैसा, पुरुषार्थहीन जैसा, डरपोंक जैसा, निर्बल जैसा, तेजहीन जैसा समझा ? ॥२॥

विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम् ।
मामवज्ञाय दुर्बुद्धे स्वया बुद्धया विचेष्टसे ॥३॥

क्या तूने मुझे राक्षसी माया से हीन जैसा और अस्त्रों से बहिष्कृत जैसा समझा ? अरे दुर्बुद्धे ! तू मेरा अनादर कर, मनमाना काम करता है अथवा अपनी बुद्धि से काम लेता है ॥३॥

किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ।
त्वया शत्रोः समक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥४॥

मेरा अनादर कर और मेरा अभिप्राय जाने बिना ही शत्रु के सामने से मेरा रथ तू क्यों हटा लाया ? ॥४॥

---

[1] मोहात्—अविवेकात् । ( गो० )

त्वयाऽद्य हि ममानार्य चिरकालसमार्जितम् ।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥५॥

अरे नीच ! तूने आज मेरा बहुत दिनों का कमाया हुआ यश, पराक्रम, तेज और विश्वास ( लोगों का विश्वास रावण रण में कभी पीठ नहीं दिखाता ) सभी नष्ट कर डाले ॥५॥

शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः ।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥६॥

क्योंकि पराक्रम से प्रसन्न करने योग्य एक प्रसिद्ध पराक्रमी शत्रु के सामने से, मुझे, जो सदा युद्ध की अभिलाषा ही किए फिरता था, हटा कर, कायर बना डाला ॥६॥

यस्त्वं रथमिमं मोहान्न चोद्वहसि दुर्मते ।
सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः ॥७॥

अरे दुर्मते ! ( जब तू मोहवश संग्राम से मुझे यहाँ ले आया और ) अब ( मेरे कहने पर भी ) तू मेरा रथ वहाँ नहीं ले चल रहा है, तब मुझे अपना यह अनुमान कि, तूने शत्रु से घूंस खाई है ; ठीक ही जान पड़ता है ॥७॥

न हि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकाङ्क्षिणः ।
रिपूणां सदृशं चैतन्न त्वयैतत् स्वनुष्ठितम् ॥८॥

जैसा बर्ताव तूने आज मेरे साथ किया है; वैसा कोई हितैषी सुहृद कभी नहीं करता। यह बर्ताव तो जैसा है। तुझको मेरे साथ ऐसा सलूक करना नहीं चाहिए था ॥८॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नोपैति मे रिपुः ।
यदि वाऽध्युषितो[1] वाऽसि स्मर्यन्ते यदि वा गुणाः[2] ॥९॥

यदि तू मेरा ( सच्चा ) सुहृद हो और तुझे अपने ऊपर किए हुए मेरे अनुग्रहों ( पुरस्कारादि प्रदान ) का स्मरण हो ; तो अब मेरा रथ शीघ्र लौटा, जिससे शत्रु मेरा पीछा करता हुआ, यहाँ ( तक ) न आ पहुँचे ॥९॥

एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ।
अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥१०॥

जब इस प्रकार बुद्धिहीन रावण ने अपने हितैषी सारथि को डाँटा डपटा, तब सूत ने बड़ी नम्रता के साथ ये हितकर वचन कहे ॥१०॥

न भीतोऽस्मि नमूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः ।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मृता न च सत् क्रिया ॥११॥

हे महाराज ! न तो मैं भयभीत हुआ हूँ, न मेरी बुद्धि ही मारी गई है, न शत्रुओं से मैंने घूँस ही खाई है, न मैं पागल हूँ, न मैं स्नेहशून्य हूँ और न मैं तुम्हारे सत्कारों ही को भूला हूँ ॥११॥

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ।
स्नेहप्रस्कन्नमनसा प्रियमित्यप्रियं कृतम् ॥१२॥

मैंने तो तुम्हारे हित के लिए और तुम्हारे यश की रक्षा के लिए स्नेहयुक्त मन से अच्छा ही काम किआ है, किन्तु (यहमेरा दुर्भाग्य

---

[1] अध्युषितः—सहवासी सुहृदिति । ( गो० ) [2] गुणाः—सत्काराः । (गो० )

है कि, इस अच्छे काम को भी) आप इसे बुरा समझते हैं ॥१२॥

नास्मिअर्थे महाराज त्वं मां प्रियहिते रतम्।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥१३॥

हे महाराज! इसके लिए तुम एक नीच और अधम जन की तरह, तुम्हारे प्रिय एवं हित-कार्य साधन में तत्पर, मुझ पर-दोष न लगाओ ॥१३॥

श्रूयतां त्वभिधास्यामि यन्निमित्तं मया रथः।
नदीवेग १ इवाभोगे संयुगे विनिवर्तितः ॥१४॥

ऊँची जगह से गिरने वाली नदी के वेग की तरह तुम्हें रथ को रणभूमि से यहाँ ले आने का कारण मैं बतलाता हूँ। तुम सुनो ॥१४॥

श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा।
न हि ते वीर २सौमुख्यं प्रहर्षं वांपधारये ॥१५॥

रथोद्वहनखिन्नाश्च त इमे रथवाजिनः।
दीना घर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥१६॥

हे वीर! जब मैंने देखा कि, घोर युद्ध करते करते तुम थक गए हो, मुख के ऊपर प्रसन्नता लाने वाला हर्ष तुम्हारे भीतर से विदा हो चुका है और रथ को खींचते खींचते घोड़े भी थक कर वैसे ही सुस्त पड़ गये हैं और पसीने से सराबोर हो रहे हैं; जैसे वर्षा के मारे बैल; तब मैंने यहाँ चले आना ही ठीक समझा ॥१५॥१६॥

---

१ आभोगे—उन्नतप्रदेशे। (गो०) २ सौमुख्यं—सुमुखत्वं। (गो०)

निमित्तानि भूयिष्ठं यानि प्रादुर्भवन्ति नः ।
तेषु तेष्वभिपन्नेषु लक्षयाम्यप्रदक्षिणम् ॥१७॥

फिर, रणक्षेत्र में जैसी घटनाएँ घट रही थीं, वे सब अमङ्गल-सूचक असगुन थे ॥१७॥

देशकालौ च विज्ञेयौ [१]लक्षणानीङ्गितानि[२] च ।
[३]दैन्यं खेदश्च हर्षश्च रथिनश्च बलाबलम् ॥१८॥

स्थलनिम्नानि भूमेश्च समानि विषमाणि च ।
युद्धकालश्च विज्ञेयः परस्यान्तरदर्शनम् ॥१९॥

[४]उपायानापयाने[५] च स्थानं प्रत्यपसर्पणम् ।
सर्वमेतद्रथस्थेन ज्ञेयं [६]रथकुटुम्बिना ॥२०॥

( यदि आप कहें तुझे सगुन असगुन से क्या काम था ? इसके उत्तर में सारथि ने कहा । )

युद्धकाल में सारथि को रथ में बैठ कर लड़ने वाले के सम्बन्ध में इन सब बातों पर ध्यान रखना पड़ता है । स्थान और समय, सगुन असगुन ; लड़ने वाले के मुख पर झलकने वाले हर्ष विषादादि; लड़ने वाले का अनुत्साह ( और उत्साह ) विषाद हर्ष और लड़ने वाले का बलाबल, युद्धभूमि की निचाई, वहाँ की भूमि की समानता असमानता ( हमवार और ऊबड़खाबडपन ) युद्ध का उपयुक्त अनुपयुक्त ) समय, शत्रु की निर्बलता, शत्रु के समीप गमन

१. लक्षणादि-शुभाशुभनिमित्तानि । (गो०) २ इंगितानि—मुखप्रसाद-वैगुण्यादीनि । (गो०) ३ दैन्यं—अनुत्साहः ( गो० ) ४ उपयानं—समीप गमनं । ( गो० ; ५ अपयानं—पार्श्वतोगमनं । ( गो० ) ६ रथकुटुम्बिना सारथिना । ( गो० ) ।

पार्श्वगमन, स्थित होकर होना ( कहाँ पर डट कर खड़ा होना ), शत्रु के सामने से शत्रु के पीछे भागना। ( इन सब बातों को रथ पर बैठे सारथि को युद्ध काल में देखना पड़ता है क्योंकि लड़ने वाले को इन बातों का ध्यान नहीं रहता। अतः सारथि को इन पर दृष्टि रखनी पड़ती है। ) ॥१८॥१९॥२०॥

तव विश्रमहेतोश्च तथैषां रथवाजिनाम् ।
रौद्रं[1] वर्जयता[2] खेदं क्षमं[3] कृतमिदं मया ॥२१॥

आपकी तथा घोड़ों की दुःसह थकावट मिटाने के लिए मैंने रथ का वहाँ से हटाना उचित समझा ॥२१॥

न मया स्वेच्छया वीर रथोऽयमपवाहितः ।
भर्तृस्नेहपरीतेन मयेदं यत्कृतं विभो ॥२२॥

हे वीर! मैं अपने मन से समरभूमि से रथ को नहीं लाया। मैंने तो यह काम अपने मालिक के स्नेहवश हो कर ही किया है ॥२२॥

आज्ञापय यथातत्त्वं वक्षस्यरिनिषूदन ।
तत्करिष्याम्यहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥२३॥

हे वीर! हे अरिनाशन! अब तुम जो आज्ञा दोगे मैं तदनुसार ही करूँगा; जिससे मैं तुम्हारे ऋण से उद्धार हो जाऊँ ॥२३॥

सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥२४॥

---

१ रौद्रं—दुस्सहं। (गो०) २ क्षमं—युक्तं। ( गो० ) ३ वर्जयता—अपनयता। ( गो० )

सारथि के इस उत्तर ( कैफियत ) से सन्तुष्ट हो कर, रावण ने उसकी प्रशंसा की और युद्ध की वासना से उससे यह बोला ॥२४॥

रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं कुरु ।
नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥२५॥

हे सूत ! तुम मेरा यह रथ शीघ्र राम के सामने ले चलः क्योंकि शत्रु को मारे बिना रावण कभी समरभूमि से नहीं लौटेगा ॥२५॥

एवमुक्त्वा ततस्तुष्टो रावणो राक्षसेश्वरः ।
ददौ तस्मै शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ।
श्रुत्वा रावणवाक्य तु सारथिः संन्यवर्तत ॥२६॥

यह कह कर राक्षसेश्वर रावण सारथि पर प्रसन्न हुआ और एक बढ़िया हाथ में पहिनने का आभूषण अँगूठी अथवा सोने का कड़ा दिया। रावण की आज्ञा मान सारथि ने भी रथ लौटाया ॥२६॥

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः
प्रचोदयामास हयान् स सारथिः ।
स राक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः
क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥२७॥

इति षडुत्तरशततमः सर्गः

रावण के कथनानुसार उस सारथि ने बड़े वेग से घोड़ों को हाँका। अतः क्षण भर में रावण का रथ समरभूमि में खड़े हुए श्रीराम जी के सामने पहुँच गया ॥२७॥

युद्धकाण्ड का एकसौ छठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

## सप्तोत्तरशततमः सर्गः

—❀—

### ( आदित्यहृदयम् )

**ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।**
**रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥१॥**

उस समय श्रीरामचन्द्र जी को युद्ध में श्रान्त और *चिन्तित तथा रावण को युद्ध करने के लिए सामने खड़ा देख, ॥१॥

**दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।**
**उपगम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवानृषिः ॥२॥**

देवताओं सहित उस युद्ध को देखने के लिए आए हुए ऋषिश्रेष्ठ भगवान् अगस्त्य जी, श्रीरामचन्द्र जी के निकट जा कर, बोले ॥२॥

**राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं [1]सनातनम् ।**
**येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसि ॥३॥**

हे वत्स ! हे महाबाहो ! हे राम ! जिस स्तोत्र के पाठ करने से तुम युद्ध में अपने समस्त शत्रुओं को जीत सको उस वेदवत् नित्य और गोपनीय आदित्यहृदय स्तोत्र को ( मैं बतलाता हूँ ) तुम सुनो ॥३॥

---

१ सनातनं—वेदवन्नित्यं । ( गो० )

* ( कथं रावणं परत्वप्रकटनं विना जेष्यामि इति चिन्तया स्थितं ) चिन्ता इस बात की कि, मैं अपना परत्व ( ईश्वरत्व ) प्रकट किए विना किस प्रकार रावण का वध करूँ ।

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जयावहं जपेन्नित्यमक्षय्यं[1] [2]परमं शिवम् ॥४॥

आदित्यहृदय स्तोत्र वेद की तरह नित्य ( सदा रहने वाला ) है, इसका पाठ करने से यह पाठ करने वाले के पुण्य को बढ़ाने वाला है, समस्त शत्रुओं का नाश करने वाला है, विजयप्रद है, नित्य पाठ करने से यह पाठ करने वाले को अक्षय्य फल देने वाला और परम कल्याण करने वाला है अथवा परम पवित्र है ॥४॥

सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥५॥

यह सर्वमङ्गलों का भी मङ्गल करने वाला और समस्त पापों का नाश करने वाला है । यह चिन्ता और शोक अथवा आधिव्याधि को मिटाने वाला और दीर्घायु करने वाला है अर्थात् निर्दिष्ट आयु को बढ़ाने वाला है और पाठ करने योग्य स्तोत्रों में यह सर्वश्रेष्ठ है ॥५॥

[ टिप्पणी—इसके आगे अगस्त्य जी स्तोतव्य देवता का रूप बतलाते हैं । ]

रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भास्करं भुवनेश्वरम् ॥६॥

तुम सुवर्ण की तरह श्रेष्ठ किरणों वाले, पूर्ण बिम्ब से सदा उदय होने वाले ( चन्द्रमा की तरह घटने बढ़ने वाले नहीं ), सुर असुर से पूज्य, अपने प्रकाश से समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले, ( विवस्वन्तं ) भुवनेश्वर ( वर्षा और गर्मी में समस्त

---

१ अक्षय्यं—अक्षय्यफलकं । ( गो० ) २ परमंशिवं—परमपावनं । ( गो० )

भुवनों के नियन्ता ) भास्कर अर्थात् सूर्य भगवान् को तुम आदित्य-हृदय स्तोत्र के पाठ से प्रसन्न करो ॥६॥

[ टिप्पणी—देवतान्तर के पूजन का अनुरोध करने का कारण बतलाते हुए अगस्त्य जी कहते हैं ]

**सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः ।**

**एष देवासुरगणाँल्लोकान् पाति गभस्तिभिः ॥७॥**

क्योंकि सूर्य भगवान् समस्त देवताओं के आत्मा रूप हैं ( "सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च" इति श्रुतेः ) बड़े तेजस्वी हैं और अपनी किरणों से रक्षा करते हैं। ये देवासुर ( स्वभाव के लोगों) की तथा लोकों की अपनी किरणों द्वारा रक्षा करते हैं ॥७॥

[ टिप्पणी—अगस्त्य जी अगले श्लोक में सूर्य का सर्वदेवात्मकत्व अर्थात् समस्त देवताओं के आत्मरूप होने का विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं। ]

**एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।**

**महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपांपतिः ॥८॥**

ये ही ब्रह्मा हैं, ये ही विष्णु हैं, ये ही शिव हैं, ये ही स्कन्द हैं, ये ही प्रजापति हैं, ये ही इन्द्र हैं, ये ही कुबेर हैं, ये ही मृत्यु हैं, ये ही यम हैं, ये ही चन्द्रमा हैं और ये ही वरुण हैं ॥८॥

**पितरो वसवः साध्या ह्यश्विनौ मरुतो मनुः ।**

**वायुर्वह्निः प्रजाप्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥९॥**

ये ही पितर, ये ही वसु, ये ही साध्य, ये ही अश्विनीकुमार, ये ही मरुत, ये ही मनु, ये ही वायु, ये ही अग्नि और ये ही शरीरस्थ प्राणवायु हैं। ये सूर्य ऋतुओं के उपादान कारण होने से ऋतुकर्त्ता भी हैं ॥९॥

[ टिप्पणी—इसके आगे आदित्यहृदय आरम्भ होता है ]

सूर्य की नामावली

**आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।**
**सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥१०॥**

आदित्य, सविता, सूर्य, खग, पूषा, गभस्तिमान, सुवर्णसदृश, भानु, हिरण्यरेता, दिवाकर ॥१०॥

**हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।**
**तिमिरोन्मथनः शंभुस्त्वष्टा मार्तण्ड अंशुमान् ॥११॥**

हरिदश्व, सहस्रार्चि, सप्तसप्ति, मरीचिमान् , तिमिरोन्मथन, शम्भु, त्वष्टा, मार्तण्ड, अंशुमान् ॥११॥

**हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनो भास्करो रविः ।**
**अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥**

हिरण्यगर्भ, शिशिरस्तपन, भास्कर, रवि, अग्निगर्भ, अदिति-पुत्र, शङ्ख, शिशिरनाशन ॥१२॥

**व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुःसामपारगः ।**
**घनवृष्टिरपां मित्रो विन्ध्यवीथी प्लवङ्गमः ॥१३॥**

व्योमनाथ, तमोभेदी, ऋग्-यजु-साम-पारग, घनवृष्टि , अपांमित्र, विन्ध्यवीथी, प्लवङ्गम ॥१३॥

**आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ।**
**कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥**

आतपी, मण्डली, मृत्यु, पिङ्गल, पर्वतापन, कवि, विश्व, महातेजा, रक्त, सर्वभवोद्भव ॥१४॥

नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते ॥१५॥

नक्षत्रग्रहताराधिप, विश्वभावन, तेजों में सब से बढ़ कर तेजस्वी ॥

[ टिप्पणी—इस नामावली के बाद सूर्य के नमस्कार का प्रकरण आरम्भ होता है ]

हे द्वादशात्मन् ! आपको नमस्कार है ॥१५॥

नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमे गिरये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६॥

हे उदयाचल और अस्ताचलवर्त्ती ! आपको प्रणाम है । हे ग्रहनक्षत्रों के स्वामी ! और हे दिनाधिप ( दिन के स्वामी ) ! आपको प्रणाम है ॥१६॥

जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमोनमः सहस्रांशो आदित्याय नमोनमः ॥१७॥

हे जय ! हे जयभद्र ! हे हर्यश्व ! आपको प्रणाम है । हे सहस्रांशु ! आपको प्रणाम है । हे आदित्य ! आपको प्रणाम है ॥१७॥

नम उग्राय वीराय सारङ्गाय नमोनमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय मार्तण्डाय नमोनमः ॥१८॥

हे उग्र ! हे वीर ! हे सारङ्ग ! आपको प्रणाम है । हे पद्मप्रबोध ! हे मार्तण्ड ! आपको प्रणाम है ॥१८॥

ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूर्यायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥१९॥

हे ब्रह्मन् ! हे ईशान ! हे अच्युत ! हे ईश ! हे सूर्य ! हे आदित्यवर्चस ! हे भास्वन ! हे सर्वभक्ष ! हे रौद्रवपु ! आपको प्रणाम है ॥१६॥

तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥२०॥

हे तमोघ्न ! हे हिमघ्न ! हे शत्रुघ्न ! हे अमितात्मन् ! हे कृतघ्न ! हे देव ! हे ज्योतिषपते ! आपको प्रणाम है ॥२०॥

तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥२१॥

हे तप्तचामीकराभ ! हे हरे ! हे विश्वकर्मन् ! हे तमोभिनिघ्न ! हे रुचे ! हे लोकसाक्षिन् ! आपको प्रणाम है ॥२१॥

[ टिप्पणी—प्रणाम समाप्त कर पुनः ]

नाशयत्येष वै भूतं तदेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभिः ॥२२॥

( हे राम ! ) यह प्रभु दिवाकर ही समस्त प्राणियों को उत्पन्न, पालन और नाश किया करते हैं। सूर्य भगवान् ही अपनी किरणों से शोषण करते हैं, तपाते हैं और वर्षा करते हैं ॥२२॥

एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठितः ।
एष एवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥२३॥

ये ही समस्त प्राणियों के सोने पर जागा करते हैं। ये ही सब प्राणियों में अन्तर्यामी रूप से रहते हैं। ये ही अग्निहोत्र और ये ही अग्निहोत्रियों को फल देने वाले हैं अथवा अग्निहोत्र का फल स्वरूप ये ही हैं ॥२३॥

देवाश्च क्रवश्चैव क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्व एष रविः प्रभुः१ ॥२४॥

ये ही समस्त यज्ञों के अधिष्ठाता देवता और ये ही यज्ञों के फल स्वरूप भी हैं। लोकों में जितने काम होते हैं, उन सब के ये सूर्य ही नियन्ता हैं ॥२४॥

[ टिप्पणी—इसके आगे स्तोत्र की फलस्तुति कही गई है। ]

एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन् पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥२५॥

हे राघव ! कोई बड़े सङ्कट में फँसा हुआ हो, विकट वन में भटक गया हो अथवा किसी बड़े भय से पीड़ित हो, वह भी यदि इस स्तोत्र का पाठ करे तो उसे भी किसी प्रकार का क्लेश नहीं हो सकता ॥२५॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥२६॥

अतएव हे राघव! तुम एकाग्र मन से इन देवदेव एवं जगत्पति सूर्य नारायण का पूजन कर, इस आदित्यहृदय स्तोत्र के तीन पाठ करो तो युद्ध में निश्चय ही तुम्हारी जीत होगी ॥२६॥

अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं वधिष्यसि ।
एवमुक्त्वा तदाऽगस्त्यो जगाम च यथागतम् ॥२७॥

हे महाबाहो ! तुम इसी क्षण रावण का वध करोगे। इस प्रकार उपदेश दे, भगवान् अगस्त्य जहाँ से आए थे वहीं लौट कर चले गए ॥२७॥

एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
[1]धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥२८॥

अगस्त्य मुनि के इस स्तोत्र के उपदेश से महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी का शोक नष्ट हो गया। प्रयत्नवान् श्रीरामचन्द्र जी ने श्रद्धाभक्तिपूर्वक आदित्यहृदयस्तोत्र का पाठ किया ॥२८॥

आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वा तु परं हर्षमवाप्तवान् ।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥२९॥

श्रीसूर्य भगवान की ओर देखते हुए ( अर्थात् पूर्वाभिमुख हो कर ) इस स्तोत्र का पाठ करने से श्रीरामचन्द्र जी परम हर्षित हुए। पाठ करने के बाद तीन बार आचमन कर, एवं पवित्र हो और धनुष ले वीर्यवान् श्रीरामचन्द्र जी ने ॥२९॥

रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा युद्धाय समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता वधे तस्य धृतोऽभवत् ॥३०॥

राक्षसराज रावण को लड़ने के लिए आया हुआ देख, श्रीराम जी ने हर्षित मन से, उसका वध करने को, सब प्रकार से बड़े बड़े प्रयत्नों से काम लिया ॥३०॥

अथ [2]रविरवदन्निरीक्ष्य रामं
मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।

---

१ धारयामास—जप्त्वेत्र आदित्यहृदयमिति शेषः। ( गो० ) २ रवि आत्मानस्तुवन्त रामं निरीक्ष्य स्तोत्रेण सन्तुष्टमनाः सन् रावणवधं प्रति त्वरस्वेति वचोवदत् । ( गो० )

निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा
सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥३१॥

इति सप्तोत्तरशततमः सर्गः

सूर्य भगवान्, श्रीरामचन्द्र जी को अपनी स्तुति करते हुए देख कर, सन्तुष्ट हो परम प्रसन्न हुए और देवताओं के बीच स्थित हो बोले कि हे वत्स! रावण के वध में अब शीघ्रता करो अर्थात् रावण का वध शीघ्र करो ॥३१॥

युद्धकाण्ड का एकसौसातवाँ सर्ग पूरा हुआ

—❀—

## अष्टोत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

स रथं सारथिर्हृष्टः परसैन्यप्रधर्षणम् ।
गन्धर्वनगराकारं समुच्छ्रितपताकिनम् ॥१॥

इधर रावण का सारथि हर्षितमन से शत्रुसैन्य को त्रस्त करने वाला रथ हाँकता हुआ, वहाँ पहुँचा। यह रथ देखने में गन्धर्व नगरी के तुल्य था और उसके ऊपर बहुत ऊँची (लंबी) पताका फहरा रही थी ॥१॥

युक्तं परमसम्पन्नैर्वाजिभिर्हेममालिभिः ।
युद्धोपकरणैः पूर्णं पताकाध्वजमालिनम् ॥२॥

उस रथ में सुवर्ण के भूषणों से भूषित बढ़िया घोड़े जुते हुए थे। वह रथ सुवर्ण की मालाओं से सजाया गया था। वह युद्ध

की सारी सामग्री से पूर्ण था तथा वह ध्वजा और पताका से सुशोभित हो रहा था ॥२॥

ग्रसन्तमिव चाकाशं नादयन्तं वसुन्धराम् ।
प्रणाशं परसैन्यानां स्वसैन्यानां प्रहर्षणम् ॥३॥

वह रथ इतना ऊँचा था कि, ज्ञान पड़ता था कि, वह आकाश को ग्रस लेना चाहता है और भारी इतना था कि, चलते समय पृथिवी को नादित करता था । वह शत्रुसैन्य का नाश करने वाला और अपनी सेना को हर्षित करने वाला था ॥३॥

रावणस्य रथं क्षिप्रं चोदयामास सारथिः ।
तमापतन्तं सहसा स्वनवन्तं महास्वनम् ॥४॥
रथं राक्षसराजस्य नरराजो ददर्श ह ।
कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्तं रौद्रेण[1] वर्चसा ॥५॥

सारथि ने ऐसे रावण के उस रथ को हाँक कर शीघ्र ही समर भूमि में पहुँचाया । राक्षसराज के उस रथ को बड़ा भारी घर घर शब्द करते हुए, नरराज श्रीरामचन्द्र जी ने देखा । उन्होंने देखा कि, उसमें काले घोड़े जुते हुए हैं और वह भयङ्कर तेज से युक्त है ॥४॥५॥

तडित्पताकागहनं दर्शितेन्द्रायुधायुधम् ।
शरधारा विमुञ्चन्तं धारासारमिवाम्बुदम् ॥६॥

वह रथ मेघ के सदृश था, जिसमें पताका रूपी बिजलियाँ थीं, आयुधरूपी इन्द्र-धनुष था और उस रथ से जो शरवृष्टि होती

---

१ रौद्रेण वर्चसा—भयंकरेण तेजसा । ( शि० )

थी वही मानों जल की धारा उस बादल रूपी रथ से गिरती थी ॥६॥

तं दृष्ट्वा मेघसङ्काशमापतन्तं रथं रिपोः ।
गिरेर्वज्राभिमृष्टस्य दीर्यतः सदृशस्वनम् ॥७॥

शत्रु के उस मेघ-समान रथ को जो वज्र के प्रहार से फटते हुए पर्वत की तरह शब्द कर रहा था अपनी ओर आते देख ॥७॥

विस्फारयन् वै वेगेन बालचन्द्रनतं धनुः ।
उवाच मातलिं रामः सहस्राक्षस्य सारथिम् ॥८॥

श्रीराम जी ने अपना धनुष, जो द्वितीया के चन्द्रमा की तरह झुका हुआ था, बड़े जोर से टंकारा । तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने इन्द्र के सारथि मातलि से कहा ॥८॥

मातले पश्य [1]संरब्धमापतन्तं रथं रिपोः ।
यथापसव्यं पतता वेगेन महता पुनः ॥९॥

हे मातलि ! देखो शत्रु का वेगवान रथ कैसे झपाटे से दौड़ा चला आता है और बाईं ओर झुका हुआ है ॥९॥

समरे हन्तुमात्मानं तथा तेन कृता मतिः ।
तदप्रमादमातिष्ठन् प्रत्युद्गच्छ रथं रिपोः ॥१०॥

वह चाहता है कि युद्ध में मुझे वह मारे । अतः तुम अब सावधान हो जाओ और मेरा रथ शत्रु के रथ के सामने ले चलो ॥१०॥

---

१ संरब्धं—वेगवन्तं । ( गो० )

विध्वंसयितुमिच्छामि वायुर्मेघमिवोत्थितम् ।
[1]अविक्लवम[2]सम्भ्रान्तमव्यग्रहृदयेक्षणम् ॥११॥

मैं रावण को उसी प्रकार नष्ट कर डालना चाहता हूँ, जिस प्रकार आकाश में उमड़ी हुई मेघ घटाओं को पवन विध्वस्त कर डालता है। तुम अदीन और सावधान हो जाओ और मन तथा दृष्टि को स्थिर कर ॥ ११ ॥

रश्मिसञ्चारनियतं [3]प्रचोदय रथं द्रुतम् ।
कामं न त्वं समाधेयः पुरन्दररथोचितः ॥१२॥
युयुत्सुरहमेकाग्रः स्मारये त्वां न शिक्षये ।
परितुष्टः स रामस्य तेन वाक्येन मातलिः ॥१३॥

घोड़ों की रासों को खींचने और ढीली करने में सावधानी रखते हुए शीघ्रतापूर्वक रथ हाँको। यद्यपि तुम इन्द्र के सारथि हो अतः तुम्हें शिक्षा देना उचित नहीं क्योंकि तुम ये सब बातें जानते ही हो, तथापि मैं एकाग्र मन से ( यदि सारथि को समय समय पर रथ चलाने के सम्बन्ध में निर्देश देने पड़े तो युद्ध में योद्धा की एकाग्रता नहीं रह सकती ) युद्ध करना चाहता हूँ। अतः तुमको स्मरणमात्र मैंने कराया है, मैं तुम्हें शिक्षा नहीं देता। श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन मातलि प्रसन्न हुआ ॥ १२ ॥ ॥१३ ॥

प्रचोदयामास रथं सुरसारथिसत्तमः ।
अपसव्यं ततः कुर्वन् रावणस्य महारथम् ॥१४॥

---

१ अविक्लवं—अदीनं । ( गो० ) २ असम्भ्रान्तं—अप्रमादं । (गो०)
३ नियतं—रश्मीना सचारे आकुंचन प्रसारणे नियतं यथा भवति तथा रथ प्रचोदय । ( शि० )

श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन देवताओं के सारथियों में सर्वश्रेष्ठ मातलि ने सन्तुष्ट हो, अपना रथ ऐसे हाँका कि, रावण का रथ बाईं ओर पड़ गया ॥१४॥

चक्रोत्क्षिप्तेन रजसा रावणं व्यवधानयत् ।
ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ॥१५॥

और इन्द्ररथ के पहियों से उड़ी हुई धूल से रावण ढक गया। तब तो रावण ने क्रोध में भर और लाल लाल नेत्र कर ॥१५॥

रथप्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत्[१] ।
धर्षणामर्षितो रामो[२] धैर्यं रोषेण लम्भयन् ॥१६॥

श्रीरामचन्द्र जी के रथ पर बाणों के प्रहार किए। रावण की इस धृष्टता को न सह कर मारे क्रोध के श्रीराम जी अधैर्य हो गए ॥१६॥

जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ।
शरांश्च सुमहातेजाः सूर्यरश्मिसमप्रभान् ॥१७॥

और समर में उन्होंने अत्यन्त वेगवान् इन्द्र का धनुष उठा सूर्य की किरणों के समान चमचमाते बाण निकाले ॥१७॥

तदोपोढं[३] महद्युद्धमन्योऽन्यवधकाङ्क्षिणोः ।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥१८॥

एक दूसरे को मारने की इच्छा रखने वाले वे दोनों योद्धा आमने सामने खड़े होकर गर्वित सिंह की तरह घोर युद्ध करने लगे ॥१८॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
समेयुर्द्वैरथं[1] द्रष्टुं रावणक्षयकाङ्क्षिणः ॥१९॥

रावण के नाश की काँक्षा रखने वाले देवता, गन्धर्व, सिद्ध और देवर्षि युद्ध में प्रवृत्त इन दोनों रथियों का युद्ध देखने को वहाँ आ उपस्थित हुए ॥१९॥

समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः
रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च ॥२०॥

इसी समय रावण के नाश और श्रीरामचन्द्र जी के विजय के लिए ऐसे ऐसे दारुण अशकुन हुए, जिन्हें देखकर रोंगटे खड़े होते थे ॥२०॥

ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि ।
वाता मण्डलिनस्तीक्ष्णा ह्यपसव्यं प्रचक्रमुः ॥२१॥

देवताओं ने रावण के रथ के ऊपर रक्त की वर्षा की। रावण की बाईं ओर चक्करदार ववंडर के आकार का वायु चलने लगा ॥२१॥

महद्गृध्रकुलं चास्य भ्रममाणं नभःस्थले ।
येन येन रथो याति तेन तेन प्रधावति ॥२२॥

समरभूमि में जिधर जिधर रावण का रथ जाता था, उधर ही उधर गृध्रों के झुण्ड के झुण्ड आकाश में उसके रथ के ऊपर मड़राते थे ॥२२॥

---

१ द्वैरथ—द्वाभ्या रथाभ्या प्रवर्तित युद्ध । ( गो० )

पीछे पीछे गीध और आगे आगे लोमड़ियाँ मुखों से ज्वालाएँ निकालती हुई रावण के मुख की ओर देख देख कर, अमङ्गल सूचक शब्द बोलने लगीं ॥२७॥

प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून् समाकिरन् ।
तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन् दृष्टिविलोपनम् ॥२८॥

समरभूमि में रावण के सामने से हवा चलने लगी और धूल उड़ने लगी। इससे राक्षसराज रावण के नेत्र मुँद गए ॥२८॥

निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः ।
दुर्विषह्यस्वना घोरा विना जलधरस्वनम् ॥२९॥

राक्षसराज रावण की सेना के ऊपर भयङ्कर और असह्य बिजली गिरने लगी, बिना बादल ही आकाश से बादल के गर्जने का शब्द सुन पड़ने लगा ॥२९॥

दिशश्च प्रदिशः सर्वा बभूवुस्तिमिरावृताः ।
पांसुवर्षेण महता दुर्दर्शं च नभोऽभवत् ॥३०॥

समस्त दिशाओं और विदिशाओं में अँधेरा छा गया। धूल उड़ने से आकाश अदृश्य सा हो गया ॥३०॥

कुर्वन्त्यः कलहं घोरं शारिकास्तद्रथ प्रति ।
निपेतुः शतशस्तत्र दारुणं दारुणारुताः ॥३१॥

भयङ्कर शब्द करतीं और जोर से ( आपस में ) लड़ती हुई सैकड़ों मैनाओं के झुंड, रावण के रथ पर गिरे ॥३१॥

जघनेभ्यः स्फुलिङ्गाश्च नेत्रेभ्योऽश्रूणि सन्ततम् ।
मुमुचुस्तस्य तुरगास्तुल्यमग्निं च वारि च ॥३२॥

रावण के रथ के घोड़ों की जाँघों से चिनगारियाँ और नेत्रों से अग्नि की तरह गर्म आँसू निरन्तर बहने लगे ॥३२॥

**एवंप्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः ।**
**रावणस्य विनाशाय दारुणाः सम्प्रजज्ञिरे ॥३३॥**

रावण के विनाश के द्योतक इस प्रकार के बहुत से दारुण अपशकुन अथवा उत्पात हुए, जिनको देख कर देखने वाले भयभीत हो गए ॥३३॥

**रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शुभानि च ।**
**बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः ॥३४॥**

उधर श्रीरामचन्द्र जी के लिए सब कल्याणकारक और शुभशकुन हुए जो श्रीरामचन्द्र जी के विजय के सूचक थे ॥३४॥

**निमित्तानि च सौम्यानि राघवः स्वजयाय च ।**
**दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम् ॥३५॥**

निज जयसूचक इस प्रकार के शुभशकुनों को देख, श्रीरामचन्द्र जी अत्यन्त हर्षित हुए और रावण को मरा हुआ समझा ॥३५॥

**ततो निरीक्ष्यात्मगतानि राघवो**
**रणे निमित्तानि निमित्तकोविदः ।**
**जगाम हर्षं च परां च निर्वृतिं[1]**
**चकार युद्धे ह्यधिकं च विक्रमम् ॥३६॥**

इति अष्टोत्तरशततमः सर्गः ॥

---

१ निर्वृतिं—सुखं । ( गो० )

शकुन एवं अपशुकनों के शुभाशुभफलों के ज्ञाता श्रीरामचन्द्र जी अपने पक्ष में शुभशकुनों को देख कर, हर्षित हुए और फिर वे दूने पराक्रम ( उत्साह ) के साथ युद्ध करने लगे ॥३६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ आठवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## नवोत्तरशततमः सर्गः

—:o:—

ततः प्रवृत्तं सुक्रूरं रामरावणयोस्तदा ।
सुमहद्द्वैरथं युद्धं सर्वलोकभयावहम् ॥१॥

तदनन्तर फिर उन दोनों महारथियों अर्थात् श्रीरामचन्द्र और रावण का समस्त जीवधारियों को भय देने वाला अत्यन्त क्रूर संग्राम आरम्भ हुआ ॥१॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समतिष्ठत ॥२॥

उस समय राक्षसों की सेना और वानरों की महती सेना आयुधों को लिए हुए निश्चेष्ट खड़ी थीं ॥२॥

सम्प्रयुद्धौ ततो दृष्ट्वा बलवन्नरराक्षसौ ।
[1]व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥३॥

बलवान् श्रीराम और रावण को घोर युद्ध में प्रवृत्त देख, युद्ध देखने में व्यग्र सब लोग विस्मित हो गए ॥३॥

---

१ व्याक्षिप्तहृदयाः—युद्धदर्शनसक्तचित्ताः । ( गो० )

नानाप्रहरणैर्व्यग्रैर्भुजैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्थुः प्रेक्ष्य च संग्रामं नाभिजघ्नुः परस्परम् ॥४॥

दोनों ओर की सेनाओं के सैनिक हाथों में विविध प्रकार के आयुधों को लिये विस्मित हो, खड़े हुए श्रीराम और रावण का युद्ध देख रहे थे और आपस में एक दूसरे पर प्रहार नहीं करते थे ॥४॥

रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥५॥

उस समय रावण को देखते हुए राक्षस और श्रीरामचन्द्र जी को देखते हुए वानर, विस्मित हो, चित्र लिखे से खड़े थे ॥५॥

तौ तु तत्र निमित्तानि दृष्ट्वा रावणराघवौ ।
[1]कृतबुद्धी स्थिरामर्षौ युयुधाते ह्यभीतवत् ॥६॥

पूर्व में देखे हुए शुभ अशुभ शकुनों को श्रीरामचन्द्र और रावण स्मरण कर, निश्चित बुद्धि से खड़े हुए और क्रोध में भरे, निर्भीक हो आपस में लड़ रहे थे ॥६॥

[ टिप्पणी—उन दोनों की "निश्चितबुद्धि" क्या थी— सो आगे कहते हैं । ]

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ।
धृतौ[2] स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥७॥

श्रीरामचन्द्र जी ने तो शुभ शकुनों से अपनी जीत निश्चित कर रखी थी और अशुभ शकुनों से रावण ने अपना मरना

१ कृतबुद्धी—निश्चितबुद्धी । ( गो० ) २ धृतौ—धैर्यवन्तौ । (गो०)

निश्चित जान रखा था। अतः वे दोनों धैर्यवान् युद्ध में अपना समस्त बलपराक्रम दिखला रहे थे ॥७॥

ततः क्रोधाद्दशग्रीवः शरान् सन्धाय वीर्यवान् ।
मुमोच ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रथे स्थितम् ॥८॥

बलवान् रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के रथ की ध्वजा को लक्ष्य बना कर बहुत से बाण छोड़े ॥८॥

ते शरास्तमनासाद्य पुरन्दररथध्वजम् ।
रथशक्तिं परामृश्य निपेतुर्धरणीतले ॥९॥

पर वे बाण इन्द्र के अद्भुत शक्ति वाले रथ का कुछ भी बिगाड़ न कर, निष्फल हो पृथिवी पर गिर पड़े ॥९॥

ततो रामोऽभिसंक्रुद्धश्चापमायम्य वीर्यवान् ।
कृतप्रतिकृतं कर्तुं मनसा सम्प्रचक्रमे ॥१०॥

तब तो श्रीरामचन्द्र जी ने भी क्रोध में भर बदला लेने के लिए अपने धनुष पर बाण चढ़ाया ॥१०॥

रावणध्वजमुद्दिश्य मुमोच निशितं शरम् ।
महासर्पमिवासह्यं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११॥

और रावण के रथ की ध्वजा को लक्ष्य बना, एक पैना बाण छोड़ा। वह महाविषधर सर्प की तरह असह्य था और अपनी दमक से चमक रहा था ॥११॥

जगाम स महीं छित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ।
स निकृत्तोऽपतद्भूमौ रावणस्य रथध्वजः ॥१२॥

वह बाण रावण के रथ की ध्वजा को काट कर पृथिवी में धँस गया। रावण के रथ की ध्वजा कट कर भूमि पर गिर पड़ी ॥१२॥

ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः सुमहाबलः।
सम्प्रदीप्तोऽभवत् क्रोधादमर्षात् प्रदहन्निव ॥१३॥

रथ की ध्वजा को कटा हुआ देख, अत्यन्त बलवान् रावण क्रोध से और असहनशीलतावश, अग्नि की तरह भभक उठा ॥१३॥

स रोषवशमापन्नः शरवर्षं महद्वमन्।
रामस्य तुरगान् दीप्तैः शरैर्विव्याध रावणः ॥१४॥

वह क्रोध के वशवर्ती हो, बहुत से बाणों की वर्षा करने लगा। उसने चमचमाते बाणों से श्रीरामचन्द्र के रथ में जुते हुए घोड़ों को घायल किया ॥१४॥

ते विद्धा हरयस्तत्र नास्खलन्नापि बभ्रमुः।
बभूवुः स्वस्थहृदयाः पद्मनालैरिवाहताः ॥१५॥

वे हरे रंग के घोड़े उन बाणों की चोट से न तो भूमि पर गिरे और न भड़के ही। वे स्वस्थ हृदय बने रहे। उन बाणों की चोट उनको ऐसी जान पड़ी मानों कमल की डंडी शरीर में स्पर्श कर गई हो ॥१५॥

तेषामसम्भ्रमं दृष्ट्वा वाजिनां रावणस्तदा।
भूय एव सुसंक्रुद्धः शरवर्षं मुमोच ह ॥१६॥

जब रावण ने देखा कि, रथ से घोड़े भड़के तक नहीं; तब अत्यन्त कुपित हो वह पुनः बाणवर्षा करने लगा ॥१६॥

गदाश्च परिघाश्चैव चक्राणि मुसलानि च ।
गिरिश‍ृङ्गाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् ॥१७॥

[1]मयाविहितमेतत्तु शस्त्रवर्षमपातयत्
[2]तुमुलं त्रासजननं भीमं भीमप्रतिस्वनम् ॥१८॥

तद्वर्षमभवद्युद्धे [3]नैकशस्त्रमयं महत् ।
विमुच्य राघवरथं समन्ताद्वानरे बले ॥१९॥

उसने उन बाणों के अतिरिक्त गदा, परिघ, चक्र, मूसल, पत्थर, पेड़, शूल, परश्वधादि शस्त्रों की भी वर्षा की। ये सब अस्त्र आश्चर्यकर शक्ति से बनाए गए थे। विविध प्रकार के, भय उत्पन्न करने वाले, भयङ्कर और भयानक शब्द करने वाले बहुत से शस्त्रों की वर्षा हुई। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। रावण ने श्रीरामचन्द्र जी के रथ को छोड़, चारों ओर बानरों की सेना के ऊपर ॥१७॥१८॥१९॥

सायकैरन्तरिक्षं च चकाराशु निरन्तरम् ।
सहस्रशस्ततो बाणानश्रान्तहृदयोद्यमः ॥२०॥

मुमोच च दशग्रीवो निःसङ्गेनान्तरात्मना ।
[4]व्यायच्छमानं तं दृष्ट्वा तत्परं रावणं रणे ॥२१॥

बाणों की वर्षा कर, आकाश को ऐसा ढका कि, तिल रखने को भी खाली जगह न रह गई। उसने उभड़ते हुए उत्साह

---

१ मायाविहितं—आश्चर्यकरशक्तिकृतं। (गो) २ तुमुलं—नानाविध मित्यर्थः। (गो०) ३ नैकशस्त्रं—अनेकशस्त्रप्रचुरं। (गो०) ४ व्यायच्छमानं—प्रवर्तयन्तम्। (शि०)

से उत्साहित हो हज़ारों बाण, बड़ी सावधानी से छोड़े। युद्ध में प्रवृत्त हो इस प्रकार रावण को तत्परता दिखलाते हुए देख, ॥२०॥२१॥

प्रहसन्निव काकुत्स्थः सन्दधे सायकाञ्शितान् ।
स मुमोच ततो बाणान् रणे शतसहस्रशः ॥२२॥

श्रीरामचन्द्र जी ने हँसते हँसते बड़े पैने बाण धनुष पर रखे और ऐसे सहस्रों बाण उस लड़ाई में उन्होंने छोड़े ॥२२॥

तान् दृष्ट्वा रावणश्चक्रे स्वशरैः खं निरन्तरम् ।
ततस्ताभ्यां प्रमुक्तेन शरवर्षेण भास्वता ॥२३॥

उन बाणों को छूटते देख, रावण ने अपने बाणों से आकाश को पूर्ण कर दिया। तब तो उन दोनों के छोड़े हुए बाणों की वृष्टि से ॥२३॥

शरबद्धमिवाभाति द्वितीयं भास्वदम्बरम् ।
[1]नानिमित्तोऽभवद्बाणो [2]नातिभेत्ता न निष्फलः[3] ॥२४॥

बाणों से गठा हुआ एक दूसरा आकाश दिखाई देने लगा। दोनों योद्धाओं के छोड़े हुए बाणों में कोई भी बाण न तो लक्ष्य-भ्रष्ट हुआ, न अपेक्षित प्रमाण से किसी बाण ने अधिक भेदन किया और न कोई निष्फल ही गया ॥२४॥

अन्योऽन्यमभिसंहत्य निपेतुर्धरणीतले ।
तथा विसृजतोर्बाणान् रामरावणयोर्मृधे ॥२५॥

---

१ अनिमित्तः—लक्ष्यविशेषोद्देशरहितः। (गो०) २ अतिभेत्ता—अपेक्षितप्रमाणात् अधिकभेत्ता। (गो०) ३ निष्फलः—लक्ष्येपतितोपि प्रयोजनाकारी। (गो०)

वे एक दूसरे से टकरा कर और टूट कर भूमि पर गिर पड़ते थे। इस प्रकार समर में बाण छोड़ते हुए, श्रीरामचन्द्र जी और रावण के ॥२५॥

प्रायुध्यतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम्।
चक्रतुश्च शरौघैस्तौ निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥२६॥

निरन्तर बाएँ दाहिने ऐसे बाण चले कि, (उन्होंने आकाश ढाक दिआ और तब) ऐसा जान पड़ा, मानों आकाश का स्वाँस लेना ही बंद हो गया ॥२६॥

रावणस्य हयान् रामो हयान् रामस्य रावणः।
जघ्नतुस्तौ तथाऽन्योन्यं कृतानुकृतकारिणौ ॥२७॥

रावण के घोड़ों को श्रीरामचन्द्र जी और श्रीरामचन्द्र जी के घोड़ों को रावण, घायल करके एक दूसरे से बदला ले रहे थे ॥२७॥

एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमद्भुतम्।
मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥२८॥

इस प्रकार उन दोनों महाक्रुद्ध योद्धाओं का बड़ा ही अद्भुत युद्ध हुआ। एक मुहूर्त्त भर तो ऐसा भयानक युद्ध हुआ कि देखने वालों के रोंगटे खड़े हो गए ॥२८॥

प्रयुध्यमानौ समरे महाबलौ
शितैः शरै रावणलक्ष्मणाग्रजौ।
ध्वजावपातेन स राक्षसाधिपो
भृशं प्रचुक्रोध तदा रघूत्तमे ॥२९॥

इति नवोत्तरशततमः सर्गः ॥

इस प्रकार पैने पैने बाणों से महाबलवान् श्रीराम और रावण का घोर युद्ध हुआ। रावण के रथ की ध्वजा कट जाने पर उसने श्रीरामचन्द्र जी पर बड़ा क्रोध किया ॥२६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ नवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## दशोत्तरशततमः सर्गः

—❀—

तौ तदा युध्यमानौ तु समरे रामरावणौ ।
ददृशुः सर्वभूतानि विस्मितेनान्तरात्मना ॥१॥

इस प्रकार समरभूमि में श्रीराम और रावण को युद्ध करते देख, समस्त प्राणी विस्मित हुए ॥१॥

अर्दयन्तौ तु समरे तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ।
परस्परमभिक्रुद्धौ परस्परमभिद्रुतौ ॥२॥

अपने अपने रथों पर सवार दोनों एक दूसरे के ऊपर बड़ा क्रोध प्रकट करते एक दूसरे को खदेड़ते थे ॥२॥

परस्परवधे युक्तौ घोररूपौ बभूवतुः ।
मण्डलानि च [1]वीथीश्च गतप्रत्यागतानि च ॥३॥
दर्शयन्तौ बहुविधां सूतसारथ्यजां गतिम् ।
अर्दयन् रावणं रामो राघवं चापि रावणः ॥४॥
गतिवेगं समापन्नौ प्रवर्तननिवर्तने ।
क्षिपतोः शरजालानि तयोस्तौ स्यन्दनोत्तमौ ॥५॥

---

१ वीथीः—प्रसिद्धमार्गद्वारागतीश्च । (रा०)

वे एक दूसरे को मार डालने के लिए तत्पर हो, बड़ी भयङ्कर आकृति वाले देख पड़ते थे। उनके सारथि भी रथों को मण्डलाकार चला और फिर कभी सड़क पर आगे पीछे चला कर रथ चलाने की विविध प्रकार की क्षमता दिखला रहे थे। वे दोनों बड़े वेगवान् थे। तथा आवश्यकतानुसार आगे पीछे हटने में कुशल थे। ऐसे श्रीरामचन्द्र जी, रावण पर और रावण श्रीरामचन्द्र जी पर आक्रमण करते थे। वे एक दूसरे के उत्तम रथों पर बाणों की वृष्टि कर रहे थे ॥३॥४॥५॥

चेरतुः संयुगमहीं सासारौ जलदौ यथा।
दर्शयित्वा तथा तौ तु गतिं बहुविधां रणे ॥६॥

समरभूमि में बिचरते और बाणों को छोड़ते हुए दोनों के रथ, जल बरसाने वाले बादलों की तरह देख पड़ते थे। दोनों रथ रणभूमि में विविध प्रकार की चालें दिखा, ॥६॥

परस्परस्याभिमुखौ पुनरेवावतस्थतुः।
धुरं धुरेण रथयोर्वक्त्रं वक्त्रेण वाजिनाम् ॥७॥

एक दूसरे के सामने हो फिर ऐसे खड़े हो गए कि, (एक के रथ की) धुरी (दूसरे के रथ की) धुरी से, घोड़ों के मुख घोड़ों के मुख से ॥७॥

पताकाश्च पताकाभिः समेयुः स्थितयोस्तदा।
रावणस्य ततो रामो धनुर्मुक्तैः शितैः शरैः ॥८॥
चतुर्भिश्चतुरो दीप्तैर्हयान् प्रत्यपसर्पयत्।
स क्रोधवशमापन्नो हयानामपसर्पणे ॥९॥

और पताकाएँ पताकाओं से जुट गईं। तब श्रीरामचन्द्र जी ने अपने धनुष से पैने और चमचमाते चार बाणों को छोड़ कर, रावण के घोड़ों को ऐसा मारा कि, घोड़े पीछे हट गए। घोड़ों के पीछे हटने से रावण क्रुद्ध हुआ ॥८॥९॥

मुमोच निशितान् बाणान् राघवाय निशाचरः ।
सोऽतिविद्धो बलवता दशग्रीवेण राघवः ॥१०॥

और उस राक्षस ने श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर पैने पैने बाण छोड़े। रावण द्वारा घायल किए जाने पर बलवान् श्रीरामचन्द्र जी ॥१०॥

जगाम न [१]विकारं च न चापि व्यथितोऽभवत् ।
चिक्षेप च पुनर्बाणान् वज्रपातसमस्वनान् ॥११॥

के मुख पर न तो वेदनासूचक सिकुड़न ही पड़ी और न उनके शरीर में कुछ भी व्यथा ही हुई। तब रावण ने वज्रपात की तरह घोर शब्द करने वाले बाण फिर छोड़े ॥११॥

सारथिं वज्रहस्तस्य समुद्दिश्य निशाचरः ।
मातलेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः शराः ॥१२॥

रावण ने इन्द्र के सारथि मातलि को लक्ष्य कर बाण छोड़े यद्यपि वे बाण बड़े वेग से मातलि के शररी में लगे ॥१२॥

न सूक्ष्ममपि संमोहं व्यथां वा प्रददुर्युधि ।
तया धर्षणया क्रुद्धो मातलेर्न तथाऽऽत्मनः ॥१३॥

---

१ विकारं—वेदनासूचकमुखविकारं । ( गो० )

तथापि उन बाणों के लगने से मातलि को तनिक सी भी पीड़ा न हुई। किन्तु श्रीरामचन्द्र जी ने अपने शरीर में बाणों के लगने से भी अधिक क्रोध, मातलि के शरीर में बाणों के लगने पर किया अथवा अपने शरीर में बाणों के लगने से श्रीरामचन्द्र जी उतने क्रुद्ध नहीं हुए थे, जितने क्रुद्ध मातलि के शरीर में बाणों के लगने से हुए ॥१३॥

चकार शरजालेन राघवो विमुखं रिपुम् ।
विंशतं त्रिंशतं षष्टिं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४॥

(क्रोध में भर) श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के ऊपर इतने बाण बरसाए कि, उसे कुछ देर के लिए युद्ध से मुख मोड़ना पड़ा। एक एक बार में बीस बीस, तीस तीस, साठ साठ, सौ सौ और सहस्र सहस्र ॥१४॥

मुमोच राघवो वीरः सायकान् स्यन्दने रिपोः ।
रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ॥१५॥

बाण, वीर श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के रथ पर फेंके। तब तो रथ में बैठा हुआ राक्षसराज रावण भी क्रुद्ध हुआ ॥१५॥

गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ।
तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥१६॥

और उसने समर में गदाओं और मूसलों की वर्षा की। तब तो दोनों योद्धाओं में बड़ा भयानक और देखने वालों के रोंगटे खड़े करनेवाला युद्ध हुआ ॥१६॥

गदानां मुसलानां च परिघाणां च निस्स्वनैः ।
शराणां पुङ्खपातैश्च क्षुभिताः सप्त सागराः ॥१७॥

गदाओं, मूसलों और परिघों के प्रहार के पटापट शब्द से तथा पंख-दार बाणों की सरसराहट से, सातों समुद्र खलबला उठे ॥१७॥

क्षुब्धानां सागराणां च पातालतलवासिनः ।
व्यथिताः पन्नगाः सर्वे दानवाश्च सहस्रशः ॥१८॥

समुद्रों के खलबला उठने पर पातालवासी समस्त पन्नग (नाग) और सहस्रों दानव व्यथित हुए ॥१८॥

चकम्पे मेदिनी कृत्स्ना सशैलवनकानना ।
भास्करो निष्प्रभश्चासीन्न ववौ चापि मारुतः ॥१९॥

पर्वतों और वनों समेत सम्पूर्ण पृथिवी काँपने लगी। सूर्य का प्रकाश धुँधला पड़ गया और पवन का चलना बन्द हो गया ॥१९॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः ॥२०॥

तब तो समस्त देवता, गन्धर्व, सिद्ध, देवर्षि, किन्नर और महोरग अत्यन्त चिन्तित हुए ॥२०॥

स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः ।
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम् ॥२१॥

गौ ब्राह्मणों का मङ्गल हो, सब लोग निरन्तर अपने अपने स्थानों पर स्थिर रहें और युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी रावण को परास्त करें ॥२१॥

एवं जपन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा ।
रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ॥२२॥

इस प्रकार बार बार कहते हुए देवता तथा ऋषिगण श्रीराम और रावण का अत्यन्त भयङ्कर और रोमाञ्चकारी युद्ध देखने लगे ॥२२॥

गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम् ।
गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः[1] ॥२३॥

गन्धर्वों और अप्सराओं की टोलियाँ इस अनुपम युद्ध को देख, कह उठीं कि, जिस प्रकार आकाश की उपमा आकाश ही है और सागर की उपमा स्वयं सागर ही है ॥२३॥

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम् ॥२४॥

उसी प्रकार श्रीराम-रावण के युद्ध की उपमा श्रीराम-रावण ही का युद्ध है। इस प्रकार कहते हुए, वे सब (गन्धर्व अप्सराएँ) श्रीरामचन्द्र और रावण का युद्ध देख रहे थे ॥२४॥

ततः क्रुद्धो महाबाहू रघूणां कीर्तिवर्धनः ।
सन्धाय धनुषा रामः क्षुरमाशीविषोपमम् ॥२५॥

तदनन्तर रघुवंश की कीर्ति बढ़ाने वाले महा बलवान् श्रीराम चन्द्र जी ने क्रोध में भर, छुरा की धार की तरह पैना और सर्पाकार एक बाण अपने धनुष पर रख कर, छोड़ा ॥२५॥

रावणस्य शिरोच्छिन्दच्छ्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
तच्छिरः पतितं भूमौ दृष्टं लोकैस्त्रिभिस्तदा ॥२६॥

---

१ यथा गगनसागरयोःसदृशवस्त्वन्तराभावः तथा रामरावणयुद्धस्य सदृशं युद्ध किंचिन्नास्तीत्यर्थः। (गो०)

उस बाण के लगने से रावण का चमचमाते कुण्डलों में शोभायमान सीस कट कर पृथिवी पर गिर पड़ा। पृथिवी पर पड़े उस सिर को तीनों लोकों के निवासियों ने देखा ॥२६॥

तस्यैव सदृशं चान्यद्रावणस्योत्थितं शिरः ।
तत्क्षिप्रं क्षिप्रहस्तेन रामेण क्षिप्रकारिणा ॥२७॥

ठीक उस कटे हुए सिर की तरह दूसरा सिर रावण के कन्धों पर निकल आया, तब फुर्तीले श्रीरामचन्द्र जी ने बड़ी फुर्ती के साथ तुरन्त ॥२७॥

द्वितीयं रावणशिरश्छिन्नं संयति सायकैः ।
छिन्नमात्रं तु तच्छीर्षं पुनरन्यत्स्म दृश्यते ॥२८॥

उस युद्ध में रावण के दूसरे सिर को भी बाण से काट डाला जैसे ही वह दूसरा सिर कट कर नीचे गिरा, वैसे ही तीसरा नया सिर (कटे हुए सिर की जगह) निकला हुआ देख पड़ा ॥२८॥

तदप्यशनिसङ्काशैश्छिन्नं रामेण सायकैः ।
एकमेकशतं छिन्नं शिरसां [१]तुल्यवर्चसाम् ॥२९॥

श्रीरामचन्द्र जी ने अपने वज्र के समान बाणों से, उसे भी काट डाला। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के एक ही आकार प्रकार के सौ सिर काट डाले ॥२९॥

न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये ।
ततः सर्वास्त्रविद्वीरः कौसल्यानन्दवर्धनः ॥३०॥

किन्तु तब भी रावण के सिरों का न अन्त ही हुआ और न वह मरा ही। तब तो शूरवीर तथा माता कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाले एवं समस्त अस्त्र शस्त्रों के जानने वाले ॥३०॥

---

१ तुल्यवर्चसाम्—तुल्याकाराणाम्। (रा०)

मार्गणैर्बहुभिर्युक्तश्चिन्तयामास राघवः ।
मारीचो निहता यैस्तु खरो यैस्तु सदूषणः ॥३१॥

और बहुत से बाणों को रखने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने सोचा कि, मैंने जिन बाणों से मारीच को मारा, जिन बाणों से मैंने खर और दूषण को मारा ॥३१॥

क्रौञ्चारण्ये विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने ।
त इमे सायकाः सर्वे युद्धे प्रात्यायिका[१] मम ॥३२॥

क्रौंचारण्य में विराध को और दण्डक वन में कबन्ध को मारा था, वे ही मेरे सब बाण युद्ध में कई बार परीक्षा किए (आजमाये) हुए हैं अर्थात् इन पर मुझे पूरा विश्वास है ॥३२॥

किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः ।
इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे ॥३३॥

किन्तु समझ में नहीं आता कि, रावण के लिए ये क्यों भौथरे हो गए हैं । इस प्रकार सोचते हुए युद्ध में सावधान ॥३३॥

ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि ।
रावणोऽपि ततः क्रुद्धो रथस्थो राक्षसेश्वरः ॥३४॥

श्रीरामचन्द्र जी ने रावण की छाती पर बाणवृष्टि की । तब तो रथ पर सवार राक्षसराज रावण भी क्रुद्ध हुआ ॥३४॥

गदामुसलवर्षेण रामं प्रत्यर्दयद्रणे ।
तत् प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम् ॥३५॥

---

१ प्रात्यायिकाः—विश्वस्ताः । ( गो० )

और उसने श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर युद्ध में गदा और मूसलों के प्रहार किए। तब तो फिर बड़ी घमासान और रोंगटे खड़े करने वाली लड़ाई होने लगी ॥३५॥

अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्धनि ।
देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पश्यतां तन् महाद्युद्धं [1]सर्वरात्रमवर्तत ॥३६॥

यह लड़ाई केवल समरभूमि ही में नहीं, किन्तु कभी आकाश में, कभी भूमि पर और कभी पर्वतशिखर पर होती थी। उस महायुद्ध को देखते देखते देवताओं, दानवों, यक्षों, पिशाचों, उरगों और राक्षसों को एक पूरा दिन और एक पूरी रात बीत गई ॥३६॥

नैव रात्रं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम् ।
रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति ॥३७॥

रात या दिन में एक मुहूर्त अथवा एक क्षण के लिए भी श्रीरामचन्द्र जी और रावण का यह युद्ध बन्द न हुआ ॥३७॥

दशरथसुतराक्षसेन्द्रयोः
जयमनवेक्ष्य रणे स राघवस्य ।
सुरवररथसारथिर्महान्[2]
रणगतमेनमुवाच वाक्यमाशु ॥३८॥

इति दशोत्तरशततमः सर्गः

दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र जी और राक्षसेन्द्र रावण के युद्ध में श्रीरामचन्द्र जी की जीत न देख, इन्द्र का सारथि मातलि, जो

---

१ सर्वरात्रं—अहोरात्रमित्यर्थः (गो०) २ महान्—महाबुद्धिरित्यर्थः। (गो०)

बड़ा बुद्धिमान् था, संग्राम करते हुए श्रीरामचन्द्र जी से तुरन्त यह बचन बोला ॥३८॥

युद्धकाण्ड का एकसौ दसवाँ सर्ग पूरा हुआ।



## एकादशोत्तरशततमः सर्गः



अथ संस्मारयामास राघवं मातलिस्तदा ।
अजानन्निव किं वीर त्वमेनमनुवर्तसे ॥१॥

इन्द्र का सारथि मातलि, श्रीरामचन्द्र जी को स्मरण दिलाता हुआ कहने लगा—हे वीर ! अनजान की तरह इसके साथ तुम ऐसा युद्ध क्यों कर रहे हो ॥१॥

विसृजास्मै वधाय त्वमस्त्रं पैतामहं प्रभो ।
विनाशकालः कथितो यः सुरैः सोऽद्य वर्तते ॥२॥

हे प्रभो ! तुम इसके ऊपर ब्रह्मास्त्र छोड़ो। देवताओं ने इसके वध का जो समय बतलाया था वह आज ही है ॥२॥

ततः संस्मारितो रामस्तेन वाक्येन मातलेः ।
जग्राह सशरं दीप्तं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥३॥

जब मातलि ने श्रीरामचन्द्र जी को इस प्रकार याद दिलाई; तब उन्होंने एक चमचमाता बाण निकाला जिसमें से साँप के फुँसकारने जैसे शब्द हो रहा था ॥३॥

यमस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवानृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महाबाणममोघं युधि वीर्यवान् ॥४॥

यह बाण पूर्वकाल में भगवान् अगस्त्य जी ने वीर्यवान श्रीरामचन्द्र जी को दिया था। यह अगस्त्य जी को ब्रह्मा से मिला था और यह महाबाण युद्ध में कभी निष्फल जाने वाला न था ॥४॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकाङ्क्षिणः ॥५॥

पूर्वकाल में अमित तेजस्वी ब्रह्मा जी ने त्रिलोकविजयाभिलाषी इन्द्र के लिए इसे बना कर, उनको दिया था ॥५॥

यस्य वाजेषु पवनः फले पावकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमयं गौरवे मेरुमन्दिरौ ॥६॥

इस बाण के पुङ्खों में पवन, फल ( नोंक ) में अग्नि और सूर्य थे। इसका शरीर आकाशमय था, ( अर्थात् पोला था तथापि ) भारीपन में वह मेरु पहाड़ की तरह था ॥६॥

जाज्वल्यमानं वपुषा सुपुङ्खं हेमभूषितम् ।
तेजसा[1] सर्वभूतानां कृतं भास्करवर्चसम् ॥७॥

वह बड़ा चमकीला था, पुङ्खदार था और सुवर्णभूषित था। वह सब भूतों का अंश निकाल कर बनाया गया था और सूर्य की तरह चमकदार था ॥७॥

सधूममिव कालाग्निं दीप्तं आशीविषं यथा ।
परनागाश्ववृन्दानां भेदनं क्षिप्रकारिणम् ॥८॥

---

१ तेजसा—सारांशेन । ( गो० )

वह धूम सहित कालाग्नि और विषधर सर्प की तरह प्रदीप्त था। शत्रुओं के हथियों और घोड़ों के समूहों का नाश करने वाला और बड़ी फुर्ती से काम करने वाला था ॥८॥

द्वाराणां[१] परिघाणां च गिरीणामपि भेदनम् ।
नानारुधिरसिक्ताङ्गं मेदोदिग्धं सुदारुणम् ॥९॥

शत्रु के नगरों के द्वारों को, परिघों को और पर्वतों तक को तोड़ने फोड़ने वाला था। उसमें अनेक असुरों का रक्त और उनकी चर्बी सनी हुई थी और वह अत्यन्त भयङ्कर था ॥९॥

वज्रसारं[२] महानादं नानासमितिदारणम्[३] ।
सर्ववित्रासनं भीमं श्वसन्तमिव पन्नगम् ॥१०॥

वह वज्र की तरह दृढ़ (मजबूत) और कपट युद्धों में भी सफलतापूर्वक काम आनेवाला सब को भयभीत करनेवाला, महा भयानक और साँप की तरह फुँसकार छोड़ने वाला था ॥१०॥

कङ्कगृध्रबलानां च गोमायुगणरक्षसाम्
नित्यं भक्ष्यप्रदं युद्धे यमरूप भयावहम् ॥११॥

वह सदैव युद्धों में कङ्कों, गीधों बगलों, शृगालों और राक्षसों को भोजन देने वाला था। वह यमरूपी बाण, बड़ा भयङ्कर था ॥११॥

नन्दनं वानरेन्द्राणां रक्षसामवसादनम् ।
वाजितं विविधैर्वाजैश्चारुचित्रैर्गरुत्मतः ॥१२॥

---

१ द्वाराणां—रिपुगोपुराणां। (गो०) २ वज्रसारं—वज्रतुल्यदार्ढ्यं। (गो०) ३ नानासमितिदारणं—नानाकपटयुद्धस्यापि निर्वर्तकं। (गो०)

वह वानरों को प्रसन्न करने वाला और राक्षसों का नाश करने वाला था। गरुड़ जी के विविध सुन्दर पुङ्ख उसमें लगे हुए थे ॥१२॥

तमुत्तमेषुं लोकानामिक्ष्वाकुभयनाशनम् ।
द्विषतां कीर्तिहरणं प्रहर्षकरमात्मनः ॥१३॥

वह समस्त लोकों के बाणों में श्रेष्ठ, इक्ष्वाकुकुल के भय को नाश करने वाला, शत्रु की (विजय) कीर्ति का नाशक और अपने को ( जो उसे चलाता उसे ) हर्ष देने वाला था ॥१३॥

अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥१४॥

महाबली श्रीरामचन्द्र जी ने उस महाबाण को (अथर्वण) वेद की विधि से ( ब्रह्मास्त्र के मंत्र से ) अभिमन्त्रित कर, धनुष पर चढ़ाया ॥१४॥

तस्मिन् सन्धीयमाने तु राघवेण शरोत्तमे ।
सर्वभूतानि वित्रेसुश्चचाल च वसुन्धरा ॥१५॥

उस शरोत्तम का धनुष पर सन्धान करते ही, समस्त प्राणी भयभीत हो गए और पृथिवी काँपने लगी ॥१५॥

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तस्तं शरं मर्मघातिनम् ॥१६॥

अत्यन्त क्रुद्ध हो, श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के वध के लिए नुष तान कर बड़े वेग से, समस्त मर्मस्थलों को बिदारण करने ला, वह बाण छोड़ा ॥१६॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः ।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥१७॥

इन्द्र के हाथ से छोड़े हुए वज्र की तरह दुर्धर्ष और यमराज के समान किसी के न रोकने योग्य वह बाण, जा कर, रावण की छाती में लगा ॥१७॥

स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः शरः ।
बिभेद हृदयं तस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥१८॥

महावेग से छूटते हुए और शरीर का नाश करने वाले उस बाण ने, दुरात्मा रावण का हृदय चीर डाला ॥१८॥

रुधिराक्तः स वेगेन जीवितान्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन् प्राणान् विवेश धरणीतलम् ॥१९॥

रुधिर में सना और वेग से प्राण का संहार करनेवाला, वह बाण, रावण का वध कर पृथिवी में घुस गया ॥१९॥

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः ।
कृतकर्मा [1]निभृतवत् स्वतूणीं पुनरागमत् ॥२०॥

पीछे वह रुधिर लगने से शोभायमान बाण अपना काम पूरा कर, विनम्र की तरह श्रीरामचन्द्र जी के तरकस में घुस गया ॥२०॥

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं तत् ससायकम् ।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात् ॥२१॥

---

१ निभृतवत्—विनीतवत् । ( गो० )

अस्त्राघात से रावण का जीवन शेष हो जाने पर प्राण छूटने के साथ ही साथ बाण सहित धनुष भी हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़ा ॥२१॥

गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः ।
पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥२२॥

महाकान्तिमान राक्षसराज रावण प्राणरहित हो, वज्र के प्रहार से गिरे हुए वृत्रासुर की तरह बड़े वेग से, रथ से पृथिवी पर गिर पड़ ॥२२॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः ॥२३॥

रावण को पृथिवी पर पड़ा देख, वे राक्षस जो युद्ध में मारे जाने से बच रहे थे, रक्षक के मारे जाने से भयभीत हो, इधर उधर भाग गए ॥२३॥

नर्दन्तश्चाभिपेतुस्तान् वानरा द्रुमयोधिनः ।
दशग्रीववधं दृष्ट्वा विजयं राघवस्य च ॥२४॥

गरजना करते हुए वानरों ने हाथों में वृक्ष लिए हुए उनका पीछा किया। रावण का वध और श्रीरामचन्द्र जी की जीत देख, ॥२४॥

अर्दिता वानरैर्हृष्टैर्लङ्कामभ्यपतन् भयात् ।
गताश्रयत्वात् करुणैर्बाष्पप्रस्रवणैर्मुखैः ॥२५॥

हर्षित वनरों द्वारा पीड़ित और भवभीत हो करुणा पूर्वक रोते हुए वे लङ्का में घुस गए। क्योंक, वे अब विना सहारे के हो गए थे ॥२५॥

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥२६॥

तब विजयी वानरों ने अत्यन्त हर्षित हो, हर्षनाद किया। वे श्रीरामचन्द्र जी की जीत और रावण का वध पुकार पुकार कर कह रहे थे ॥२६॥

अथान्तरिक्षे व्यनदत् सौम्यस्त्रिदशदुन्दुभिः ।
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखं ववौ ॥२७॥

आकाश में देवताओं के मङ्गलसूचक नगाड़े बजने लगे। दिव्य सुगन्धि से युक्त सुखदायी हवा चलने लगी ॥२७॥

निपपातान्तरिक्षाच्च पुष्पवृष्टिस्तदा भुवि ।
किरन्ती राघवरथं दुरवापा मनोरमा ॥२८॥

आकाश में दुर्लभ और मनोहर पुष्पराशि श्रीरामचन्द्र जी के रथ के ऊपर बरस कर पृथिवी पर गिरने लगी ॥२८॥

राघवस्तवसंयुक्ता गगनेऽपि च शुश्रुवे ।
साधु साध्विति वागग्र्या दैवतानां महात्मनाम् ॥२९॥

आकाश में देवताओं और महात्माओं की, श्रीरामचन्द्र जी की स्तुति से युक्त वाह वाह की वाणी, सुन पड़ी ॥२९॥

आविवेश महान् हर्षो देवानां चारणैः सह ।
रावणे निहते रौद्रे सर्वलोकभयङ्करे ॥३०॥

सब लोकों को भय देने वाले, भयङ्कर एवं दुष्टात्मा रावण के मारे जाने पर देवगण और चारण बड़े हर्षित हुए ॥३०॥

ततः सकामं सुग्रीवमङ्गदं च महाबलम् ।
चकार राघवः प्रीतो हत्वा राक्षसपुङ्गवम् ॥३१॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी सर्वप्रधान राक्षस रावण को मार कर प्रसन्न हुए और महाबलवान् सुग्रीव एवं अङ्गद की मनोकामना पूरी हुई ॥३१॥

ततः प्रजग्मुः [1]प्रशमं [2]मरुद्गणा
दिशः प्रसेदुर्विमलं नभोऽभवत् ।
मही चकम्पे न हि मारुतो ववौ
स्थिरप्रभश्चाप्यभवद्दिवाकरः ॥३२॥

उस समय देवता प्रसन्न हुए । समस्त दिशाएँ निर्मल हो गईं । आकाश विमल हो गया । पृथिवी कम्पायमान न होकर स्थिर हुई । सुखद पवन चलने लगा । सूर्य पहिले की तरह चमकने लगे अथवा प्रभायुक्त हो गए ॥३२॥

ततस्तु सुग्रीव विभीषणादयः
सुहृद्विशेषाः सहलक्ष्मणास्त
समेत्य हृष्टा विजयेन राघवं
रणेऽभिरामं [3]विधिना ह्यपूजयन् ॥३३॥

तब लक्ष्मण सहित सुग्रीव, विभीषणादि सुहृद्विशेष ( हनुमान जाम्बवानादि ) एकत्र हो, श्रीरामचन्द्र जी की इस जीत के लिए आनन्द मनाने लगे और समर में दुर्जेय श्रीरामचन्द्र जी की क्रम से स्तुति करने लगे । ( यहाँ स्तुति शब्द से अभिप्राय बधाई देने से है ) ॥३३॥

---

१ प्रशमं—प्रसादं । ( गो० ) २ मरुद्गणाः—देवगणाः । ( गो० )
३ विधिना—क्रमेण । ( गो० )

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः
स्वजनबलाभिवृतो रणे रराज ।
रघुकुलनृपनन्दनो महौजा-
स्त्रिदशगणैरभिसंवृतो यथेन्द्रः ॥३४॥

इति एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

शत्रु को मार कर दृढ़प्रतिज्ञ एवं महाप्रतापी रघुकुल-नृप-नन्दन श्रीरामचन्द्र जी समरभूमि में सुहृदों में बीच वैसे ही शोभायमान हुए; जैसे देवताओं के बीच में इन्द्र शोभायमान होते हैं ॥३४॥

युद्धकाण्ड का एकसौ ग्यारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## द्वादशोत्तरशततमः सर्गः

—❀—

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं रामनिर्जितम् ।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥१॥

श्रीरामचन्द्र जी से परास्त अपने भाई रावण को मृतक हो, भूमि पर अनन्त निद्रा में सोते देख, शोक से विकल बिभीषण विलाप कर ( कहने ) लगे ॥१॥

वीर विक्रान्तविख्यात १विनीत नयकोविद ।
महार्हशयनोपेत किं शेषेऽद्य हतो भुवि ॥२॥

---

१ विनीत—विद्यासुशिक्षित । गो० )

हे वीर! हे विख्यात पराक्रम! हे सुशिक्षित! हे नीतिचतुर! तुम बढ़िया सेजों पर सोने वाले हो कर, आज मृतक हो पृथिवी पर पड़े क्यों सो रहे हो? ॥२॥

विक्षिप्य दीर्घौ निश्चेष्टौ भुजावङ्गदभूषितौ ।
मुकुटेनापवृत्तेन भास्कराकारवर्चसा ॥३॥

बाजूबन्दों से शोभित तुम्हारी लंबी दोनों भुजाएँ चेष्टाहीन हो फैली हुई हैं और सूर्य की तरह चमकीला मुकुट अलग पड़ा है ॥३॥

[ टिप्पणी—"दीर्घौ" "निश्चेष्टौ" इन द्विवचनात्मक भुजाओं के विशेषणों से जान पड़ता है कि, मरने के समय रावण के दो ही भुजाएं रह गईं थीं। ]

तदिदं वीर सम्प्राप्तं मया पूर्वं समीरितम् ।
काममोहपरीतस्य यत्ते न रुचितं वचः ॥४॥

हे वीर! मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था, पर उस समय तुम काम और मोह में फँसे हुए थे। अतः मेरी बात तुमको रुची ही नहीं। अन्त में मेरी कही बातें सामने आईं ॥४॥

यन्न दर्पात् प्रहस्तो वा नेन्द्रजिन्नापरे जनाः ।
न कुम्भकर्णोऽतिरथो[1] नातिकायो नरान्तकः ॥५॥

अहङ्कार में चूर होने के कारण न तो प्रहस्त ने, न इन्द्रजीत ने, न अन्य लोगों ने, न कुम्भकर्ण ने, न महारथी अतिकाय ने, न नरान्तक ने ॥५॥

न स्वयं त्वममन्येथास्तस्योदर्कोऽयमागतः ।
गतः सेतुः सुनीपानां गतो धर्मस्य विग्रहः[2] ॥६॥

---

१ अतिरथ—इत्यतिकायविशेषणं। (गो०) २ विग्रहः—निरोधः। (गो०)

न स्वयं तुमने ही मेरा कहना माना। यह उसीका परिणाम है जो तुम इस दशा को प्राप्त हुए। हा! आज तुम्हारे मरने से सुनीतिज्ञों की मर्यादा नष्ट हो गई, धर्म का विरोधी जाता रहा। अथवा शरीरधारी धर्म का नाश हो गया (रावण अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म काण्ड में सदा निरत रहता था—घोर तपस्या भी कर चुका था। अतः इस अर्थ में भी कोई विशेष बाधा नहीं पड़ सकती।) ॥६॥

गतः [२]सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां[३] गतिर्गता।
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः ॥७॥

चित्रभानुः[४] प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः।
अस्मिन्निपतिते भूमौ वीरे शस्त्रभृतां वरे ॥८॥

हे वीर! तुम्हारे मरने से आज बल (सेना) का संग्रह नष्ट हो गया (अर्थात् एक विख्यात बलवान् पुरुष उठ गया) और वीरों की गति (आश्रय) जाती रही। तुम्हारे जैसे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठवीर के वीरगति को प्राप्त होने से सूर्य पृथिवी पर गिर पड़ा, चन्द्रमा अन्धकार में डूब गया। अग्नि की ज्वाला शान्त हो गई। उत्साह निराधार हो गया ॥७॥८॥

किं शेषमिह लोकस्य हतवीरस्य साम्प्रतम्।
रणे राक्षसशार्दूले प्रसुप्त इव पांसुषु ॥९॥

हे राक्षसशार्दूल! रण में तुम्हारे मारे जाने व धूल में लोटने से, इस लङ्का में अब रह ही क्या गया? ॥९॥

---

१ सत्त्वस्य संक्षेपः—बलस्य संग्रहः (गो०) २सुहस्तानां—वीराणां। (रा०) चित्रभानुः—वह्निः। (गो०)

धृतिप्रवालः प्रसभाग्र्यपुष्पः
तपोबलः शौर्यनिबद्धमूलः ।
रणे महान् राक्षसराजवृक्षः
सम्मर्दितो राघवमारुतेन ॥१०॥

हा ! धैर्यरूपी पत्तों, सहनशीलतारूपी फूलों, तपस्यारूपी फलों और शूरतारूपी दृढ़मूलवाले रावणरूपी वृक्ष को, श्रीरामचन्द्ररूपी पवन ने उखाड़ कर फेंक दिया ! ॥१०॥

तेजोविषाणः कुलवंशवंशः१
कोपप्रसादापरगात्रहस्तः ।
इक्ष्वाकुसिंहावगृहीतदेहः
सुप्तः क्षितौ रावणगन्धहस्ती ॥११॥

तेजरूपी दाँतों वाला, कुलवंशरूपी पीठ की हड्डीवाला, क्रोध और प्रसन्नतारूपी सूँड़वाला रावणरूपी मदमत्त हाथी, इक्ष्वाकु-कुलोद्भव श्रीरामचन्द्ररूपी सिंह के वश में हो, अब पृथिवी पर पड़ा सो रहा है ॥११॥

पराक्रमोत्साहविजृम्भितार्चिः
निःश्वासधूमः स्वबलप्रतापः ।
प्रतापवान् संयति राक्षसाग्निः
निर्वापितो रामपयोधरेण ॥१२॥

पराक्रम और उत्साहरूपी प्रकाशमान ज्वालावाले, बलरूपी धुआँ से युक्त और महाप्रतापरूपी अग्निवाले रावणरूपी अग्नि

१ "वंशो वेणौ कुले वर्गे पृष्ठस्यवयवेऽपि च"—इति विश्वः

को, श्रीरामचन्द्ररूपी मेघ ने ( बाणरूपी जलवर्षा कर ) बुझा दिया ॥१२॥

सिंहर्क्षलाङ्गूलककुद्विषाणः
परभिजिद्गन्धनगन्धहस्ती ।
रक्षोवृषश्चापलकर्णचक्षुः
क्षितीश्वरव्याघ्रहतोऽवसन्नः ॥१३॥

जिसके राक्षसरूपी पूँछ, कंधा और सींग थे, शत्रुओं को जीतना ही जिसका मत्त हाथियों की तरह मद था, विषयलोलुपता ही जिसके कान और आँखें थीं; ऐसे रावणरूपी साँड़ को, श्रीराम-रूपी शार्दूल ने मार गिराया ॥१३॥

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं १परिदृष्टार्थनिश्चयम् ।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥१४॥

विभीषण जब इस प्रकार से युक्तियुक्त स्पष्टार्थ बोधक वचनों से युक्त विलाप कर रहे थे, तब शोक से विकल विभीषण से श्रीरामचन्द्र जी बोले ॥१४॥

नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः ।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः२ ॥१५॥

यह प्रचंडपराक्रमी राक्षसराजरावण समर में निश्चेष्ट या सामर्थ्यहीन होकर नहीं मारा गया है। इसका युद्धोत्साह तो बहुत चढ़ा बढ़ा हुआ था, अर्थात् यह अत्यन्त बलशाली था और इसे मौत का भी डर न था यह तो ( दैववश ) मर कर गिर गया है ॥१५॥

---

१ परिदृष्टार्थनिश्चयम्—स्पष्टंप्रकाशितार्थनिश्चयो यस्मात् । (शि०)
२ अशङ्कितः—विनष्टः ( गो० )

नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्ममवस्थिताः ।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥१६॥

जो अपने लिए परलोक की वृद्धि की आकाँक्षा रखते हुए समरभूमि में मारे जाते हैं, ऐसे वीरों के लिए वीरोचित धर्म में विज्ञतजन, शोक नहीं किया करते ॥१६॥

येन सेन्द्रास्त्रयो लोकास्त्रासिता युधि धीमता ।
तस्मिन् कालसमायुक्ते न कालः परिशोचितुम् ॥१७॥

जिस बुद्धिमान् रावण ने इन्द्रसहित तीनों लोकों को युद्ध में त्रस्त कर रखा था, उस रावण के वीरगति को प्राप्त होने पर, उसके लिए शोकान्वित होने का यह अवसर नहीं है ॥१७॥

नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ।
परैर्वा हन्यते वीरः परान् वा हन्ति संयुगे ॥१८॥

सदा किसी की जीत नहीं हुआ करती । वीर समरभूमि में पहुँच कर या तो अपने प्रतिद्वन्द्वी को मार डालता है, अथवा स्वयं उसके हाथ से मारा जाता है ॥१८॥

इयं हि [1]पूर्वैः सन्दिष्टा गतिः [2]क्षत्रियसम्मता ।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥१९॥

इस प्रकार समर में मारे जाने की प्रशंसा मन्वादि करते चले जाते हैं और वीर लोग भी इसको सराहते आते हैं । जो वीर युद्ध में मारा जाता है, वह निश्चय ही शोच्य नहीं है, अर्थात् शोक करने योग्य नहीं होता ॥१९॥

---

१ पूर्वैः—मन्वादिभिः । (रा०) २ क्षत्रियः—शूरः (गो०)

[ टिप्पणी—इस श्लोक में "क्षत्रिय" शब्द आया है रावण जाति का क्षत्रिय न था, अतएव टीकाकारों ने "क्षत्रिय" शब्द का अर्थ वीर किया है, जो निर्विवाद है। ]

तदेवं निश्चयं [१]दृष्ट्वा [२]तत्त्वमास्थाय विज्वरः ।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनु चिन्तय ॥२०॥

हे विभीषण ! जो जन्मा है सो एक दिन अवश्य मरेगा, यह निश्चय जान कर अब शोक त्याग दो और आगे जो करना है उसे करो ॥२०॥

तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः ।
उवाच शोकसन्तप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥२१॥

जब पराक्रमी राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को समझाया, तब शोकसन्तप्त विभीषण अपने भाई के पक्ष में हित कर वचन बोले ॥२१॥

योऽयं विमर्देषु न भग्नपूर्वः
सुरैः समेतैः सह वासवेन ।
भवन्तमासाद्य रणे विभग्नो
वेलामिवासाद्य यथा समुद्रः ॥२२॥

हे राम ! जो रावण आज तक कभी किसी युद्ध में नहीं हारा था, अन्य तो अन्य समस्त देवताओं सहित इन्द्र भी जिसे नहीं हरा सके थे; वह आपके हाथ से इस प्रकार नाश को प्राप्त हुआ; जिस प्रकार समुद्र का जल अपनी मर्यादा पर पहुँच फिर अपने स्थान को लौट जाता है ॥२२॥

---

१ दृष्ट्वा—ज्ञात्वा । ( गो० ) २ तत्वमास्थायपरमार्थबुद्धिमवलम्ब्य जनिमतामवश्यं मृत्युं ज्ञात्वेत्यर्थः । ( गो० )

अनेन दत्तानि [1]सुपूजितानि
भुक्ताश्च भोगा[2] निभृताश्च भृत्याः।
धनानि मित्रेषु समर्पितानि
वैराण्यमित्रेषु च यापितानि ॥२३॥

हे राघव ! इसने बड़े बड़े दान दिए। जिसने अपने इष्टदेव तथा गुरजनों का भली भाँति पूजन (सत्कार) किश्रा। भोगने योग्य पदार्थों को भलीभाँति भोगा; अपने नौकरों चाकरों का अच्छी तरह पालन पोषण किश्रा, अपने मित्रों को धनादि देकर सन्तुष्ट किश्रा और शत्रुओं को भली भाँति छकाया अथवा उनसे पूरा पूरा बदला लिश्रा ॥२३॥

एषो हिताग्निश्च महातपाश्च
वेदान्तगः [3]कर्मसु चाग्र्यवीर्यः।
एतस्य यत् प्रेतगतस्य कृत्यं
तत् कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात् ॥२४॥

यह आहिताग्नि था (विधिवत् नित्य अग्निहोत्र किश्रा करता था) बड़ी तपस्या करने वाला था। वेदान्तशास्त्र का ज्ञाता था, (अथवा इसने वेदों का आद्यन्त अध्ययन किश्रा था)। बड़ा कर्मशूर अथवा कर्मठ था। अतः आपके अनुग्रह से अब मैं इसके मृतककर्म करना चाहता हूँ। क्योंकि अब मृतककर्म करने वाला इसका कोई पुत्र तो रहा नहीं। पुत्र के अभाव में भाई ही को मृतककर्म करने का अधिकार है।) ॥२४॥

---

१ गुरुदेवतानीतिशेषः। (गो०) २ निभृताः—नितराभृताः। (गो०) ३ कर्मसु चाग्र्यवीर्यः—कर्मशूर इत्यर्थः। (गो०)

स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा
सम्बोधितः साधु विभीषणेन ।
आज्ञापयामास नरेन्द्रसूनुः
स्वर्गीय[1]माधानमदीनसत्त्वः ॥२५॥

साधुश्रेष्ठ विभीषण के इन अत्यन्त दुःखपूरित वचनों को सुन, राजकुमार महाबुद्धिमान् श्रीरामचन्द्र जी ने रावण के स्वर्ग जाने के लिए उसके मृतक कर्म करने को ( विभीषण को ) आज्ञा दी ॥२५॥

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम् ।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥२६

इति द्वादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

(श्रीरामचन्द्र जी ने यह भी कहा कि) मरने तक ही वैर रहता है, परन्तु अब जब मेरा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है, तब वैर नहीं करना चाहिए। अब तो यह जैसा तुम्हारा भाई था वैसा ही मेरा है, अतएव इसका यायजूकोचित संस्कार करो ॥२६॥

युद्धकाण्ड का एक सौ बारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## त्रयोदशोत्तरशततमः सर्गः

—❀—

रावणं निहतं श्रुत्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥१॥

---

१ आधानं—अन्त्येष्टि संज्ञक कर्म । ( गो० )

महाबलवान श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से रावण का मारा जाना सुन, शोक से पीड़ित रावण की स्त्रियाँ रनवास से निकलीं ॥१॥

वार्यमाणाः सुबहुशो वेष्टन्त्यः क्षितिपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यो दुःखार्ता गावो वत्सहता इव ॥२॥

वे सब बारंबार रोकी जाने पर भी, मृतवत्सा गाय की तरह शोकपीड़ित हो, सिर के बाल खोले, भूमि पर धूल में लोटतीं हुई ॥२॥

उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं पतिम् ॥३॥

लङ्का के उत्तर फाटक से राक्षसों ( नौकर राक्षसों ) के साथ निकलीं और भयङ्कर समरभूमि में जा, अपने मृतपति को ढूँढ़ने लगीं ॥३॥

राजपुत्रेतिवादिन्यो हा नाथेति च सर्वशः ।
परिपेतुः कबन्धाङ्कां महीं शोणितकर्दमाम् ॥४॥

वे सब, "हा आर्यपुत्र" ! ( यह पति के लिए सम्बोधन है ) हा नाथ ! कह कर चिल्लातीं, रक्त की कीच से भरी और बिना सिर के धड़ों से परिपूर्ण समरभूमि में जाकर गिर पड़ीं ॥४॥

ता बाष्पपरिपूर्णाक्ष्यो भर्तृशोकपराजिताः ।
करेण्व इव नर्दन्त्यो विनेदुर्हतयूथपाः ॥५॥

वे आँखों में आँसू भर, पतिशोक से विकल, गजपति के मर से हथिनियों की नाईं चिंघारती थीं ॥५॥

दद्दशुस्तं महावीर्यं महाकायं महाद्युतिम् ।
रावणं निहतं भूमौ नीलाञ्जनचयोपमम् ॥६॥

ढूँढ़ते ढूँढ़ते उन्होंने विशालकाय, महापराक्रमी महाकान्तिमान् और नील कज्जल के ढेर की तरह, रावण के (मृतक शरीर) को देखा ॥६॥

ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु छिन्ना वनलता इव ॥७॥

अपने पति को रणभूमि की धूल पर पड़ा देख, वे उसके शरीर पर वैसे ही धड़ाम से गिर पड़ीं ; जैसे कटी हुई वनलता धड़ाम से गिर पड़ती है ॥७॥

बहुमानात् परिष्वज्य काचिदेनं रुरोद ह ।
चरणौ काचिदालिङ्ग्य काचित् कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥८॥

उनमें से कोई तो बड़े आदर के साथ उससे लिपट गई, कोई उसके पैरों से लिपट कर और कोई उसके कण्ठ को पकड़ कर रोने लगी ॥८॥

उद्धृत्य च भुजौ काचिद्भूमौ स्म परिवर्तते ।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचित् मोहमुपागमत् ॥९॥

कोई अपनी दोनों भुजाएँ फैला भूमि पर लोटने लगी और कोई उसका मुख देख, मूर्च्छित हो गई ॥९॥

काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पङ्कजम् ॥१०॥

कोई उसके सिर को अपनी गोद में रख और उसके मुख को देख देख कर रोने लगी और आसुओं की बूँदों से उसका मुख ऐसे भिगोने लगी जैसे तुषार की बूँदें कमल को भिगोती हैं ॥१०॥

एवमार्ताः पतिं दृष्ट्वा रावणं निहतं भुवि ।
चुक्रुशुर्बहुधा शोकाद्भूयस्ताः पर्य्यदेवयन् ॥११॥

वे अपने पति को भूमि पर मरा हुआ पड़ा देख, बड़े जोर से चिल्ला कर रोने लगीं और बहुत विलाप करने लगीं ॥११॥

येन वित्रासितः शक्रो येन वित्रासितो यमः ।
येन वैश्रवणो राजा पुष्पकेण वियोजितः ॥१२॥

(विलाप करती हुई वे कहने लगीं) जिसने इन्द्र और यम को युद्ध में भयभीत कर दिया, जिसने कुबेर से पुष्पक विमान छीन लिया ॥१२॥

गन्धर्वाणामृषीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
भयं येन महद्दत्तं सोऽयं शेते रणे हतः ॥१३॥

जिसने गन्धर्वों, ऋषियों और बड़े बड़े देवताओं को अत्यन्त भयभीत कर दिया, वही युद्ध में मारा जा कर, लड़ाई के मैदान में सो रहा है ॥१३॥

असुरेभ्यः सुरेभ्यो वा पन्नगेभ्योऽपि वा तथा ।
न भयं यो विजानाति तस्येदं मानुषाद्भयम् ॥१४॥

हाय ! जो आज तक न तो कभी देवताओं से, न असुरों से और न नागों से भयभीत हुआ था ; उसे आज मनुष्यों से भयभीत होना पड़ा है ॥१४॥

अवध्यो देवतानां यस्तथा दानवरक्षसाम् ।
हतः सोऽयंरणे शेते मानुषेण पदातिना ॥१५॥

जो देवताओं, दानवों और राक्षसों से अवध्य था; वह आज एक पैदल मनुष्य के हाथ से मारा जा कर, लड़ाई के मैदान में सो रहा है ॥१५॥

यो न शक्यः सुरैर्हन्तुं न यक्षैर्नासुरैस्तथा ।
सोऽयं कश्चिदिवासत्त्वो मृत्युं मर्त्येन लम्भितः ॥१६॥

जिसे आज तक देवता, यक्ष और दैत्य नहीं मार सके थे वह एक साधारण प्राणी की तरह, एक मनुष्य के हाथ से मारा गया ॥१६॥

एवं वदन्त्यो बहुधा रुरुदुस्तस्य ताः स्त्रियः ।
भूय एव च दुःखार्ता विलेपुश्च पुनः पुनः ॥१७॥

इस प्रकार विविध प्रकार से विलाप करती हुई वे राक्षसियाँ अत्यन्त दुखी हो, रो रही थीं । फिर वे दुःख से पीड़ित हो विलाप करती हुई कहने लगीं ॥१७॥

अशृण्वता च सुहृदां सततं हितवादिनाम् ।
मरणायाहृता सीता घातिताश्च निशाचराः ॥१८॥

यह सदैव हित चाहने वाले सुहृदों के कथन पर कान न देकर, स्वयं मरने और राक्षसों को मरवाने के लिए, सीता को हर लाए ॥१८॥

एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातिताः ।
ब्रुवाणोपि हितं वाक्यमिष्टो भ्राता विभीषणः ॥१९"

इसीसे सब तुम्हारे पक्ष वाले राक्षस तुम्हारी तरह मारे गए और हम सब भी मारी पड़ीं। तुम्हारे प्यारे भाई विभीषण ने तुम्हारे हित ही की बात कही थी ॥१९॥

धृष्टं परुषितो मोहात्त्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षिणा ।
यदि निर्यातिता ते स्यात् सीता रामाय मैथिली ॥२०॥

पर तुमने भ्रम में पड़, मरने के लिए ही उससे कठोर वचन कह, उसे निकाल दिया। यदि विभीषण के कथनानुसार तुमने राम को सीता लौटा दी होती ॥२०॥

न नः स्याद्व्यसनं घोरमिदं मूलहरं महत् ।
[1]वृत्तकामो भवेद्भ्राता रामो मित्रकुलं भवेत् ॥२१॥

तो हमें जड़ से नष्ट करने वाली यह घोर विपत्ति हमारे ऊपर क्यों पड़ती! (प्रत्युत उसके कथनानुसार चलने से) तुम्हारे भाई का कहना भी रह जाता और श्रीरामचन्द्र भी तुम्हारे मित्र हो जाते ॥२१॥

वयं चाविधवाः सर्वाः सकामा न च शत्रवः ।
त्वया पुनर्नृशंसेन सीता संरुन्धता बलात् ॥२२॥

तथा न हम सब विधवाएँ होतीं और न शत्रुओं का मनोरथ ही पूरा होता। किन्तु तुमने तो निष्ठुरतापूर्वक बलात् सीता को अपने घर में बंद रक्खा ॥२२॥

राक्षसा वयमात्मा च त्रयं तुल्यं निपातितम् ।
न कामकारः कामं वा तव राक्षसपुङ्गव ॥२३॥

---

१ वृत्तकामः— निष्पन्न मनोरथः। (गो०)

इससे तुमने एक ही बार में अपना, हमारा और अन्य समस्त राक्षसों का—इन तीनों का सर्वनाश कर डाला। अथवा हे राक्षस-श्रेष्ठ! ये सब तुमने अपनी इच्छा के अनुसार नहीं किआ॥ २३॥

दैवं चेष्टयते सर्वं हतं दैवेन हन्यते।
वानराणां विनाशोऽयं रक्षसां च महाहवे॥२४॥
तव चैव महाबाहो दैवयोगादुपागतः।
नवार्थेन न कामेन विक्रमेण न चाज्ञया।
शक्या दैवगतिर्लोके निवर्तयितुमुद्यता॥२५॥

यह सब दैव की करतूत है दैव भी मरे हुए को मारता है। हे महाबाहो! इस महासमर में वानरों का, राक्षसों का और तुम्हरा सर्वनाश दैवयोग ही से हुआ है। क्योंकि दैवगति ऐसी है कि, वह धन से, चाहने से, पुरुषार्थ से अथवा आज्ञा से किसी के टाले नहीं टल सकती॥२४।२५॥

विलेपुरेवं दीनास्ता राक्षसाधिपयोषितः।
कुरर्य इव दुःखार्ता बाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥२६॥

इति त्रयदशोत्तरशततमः सर्गः॥

वे राक्षसराज की रानियाँ दुःख से पीड़ित हो, दीनभाव से आँखों में आँसू भर कर कुररी पक्षियों की तरह रोने लगीं॥२६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ तेरवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—०—

## चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

तासां विलपमानानां तथा राक्षसयोषिताम् ।
ज्येष्ठा पत्नी प्रिया दीना[1] भर्तारं समुदैक्षत ॥१॥

इस प्रकार विलाप करती हुई रावण की स्त्रियों में सब से जेठी (अर्थात् उसकी पटरानी प्यारी व सती मन्दोदरी अपने पति की उस दशा को देखती हुई ॥१॥

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा ।
पतिं मन्दोदरी* तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥२॥

अनहोनी बातें करनें वाले श्रीरामचन्द्र जी के हाथ से अपने पति रावण को मरा हुआ देख, पटरानी मन्दोदरी दुःखी हो विलाप करने लगी ॥२॥

ननु नाम महाभाग तव वैश्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥३॥

हे महाभाग कुबेर के छोटे भाई! हे जगद्विख्यात! जब तुम क्रोध करते थे, तब इन्द्र भी तुम्हारे सामने खड़े नहीं रह सकते थे ॥३॥

ऋषयश्च महीदेवा गन्धर्वाश्च यशस्विनः ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥४॥

हे जगद्विख्यात! ऋषि, ब्राह्मण, नामी नामी गन्धर्व लोग और बड़े बड़े चारण तुम्हारे क्रुद्ध होने पर दसो दिशाओं में भाग जाते थे ॥४॥

---

१ दीना—सती। (गो०) * पाठान्तरे—" मण्डोदरी "।

**स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः।**
**न व्यपत्रपसे राजन् किमिदं राक्षसर्षभ ॥५॥**

सो वही तुम आज राम नामक एक मनुष्य के हाथ से समर में पराजित होकर नहीं लजाते। हे राजन्! हे राक्षसश्रेष्ठ! इसका कारण क्या है? ॥५॥

**कथं त्रैलोक्यमाक्रम्य श्रिया वीर्येण चान्वितम्।**
**अविषह्यं जघान त्वां मानुषो वनगोचरः ॥६॥**

तीनों लोकों के जीतने वाले बड़े धनवान, दबंग और असह्य (जिसके क्रोध या बल को दूसरे न सह सके, को एक वनवासी मनुष्य ने मार डाला! (क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है) ॥६॥

**मानुषाणामविषये[१] चरतः कामरूपिणः।**
**विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ॥७॥**

तुम तो ऐसी जगह में रहते थे जहाँ कोई भी मनुष्य आ नहीं सकता था। इतना ही नहीं, तुम इच्छारूपी भी थे। अतः राम के हाथ से रण में तुम्हारा मारा जाना सर्वथा असम्भव है ॥७॥

**न चैतत् कर्म रामस्य श्रद्दधामि चमूमुखे।**
**[२]सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्शनम् ॥८॥**

मुझे राम के इस कार्य पर विश्वास नहीं होता कि, सर्वत्र विजयी तुमको अथवा युद्ध की समस्त सामग्री रहते हुए भी तुमको, उन्होंने समर में मार डाला। (इसका तात्पर्य यह है

---

१ अविषये—अगम्यदेशे। (गो०) २ सर्वतः समुपेतस्य—सर्वतः जयोपेतस्य। (रा०) अथवा निखिल युद्धोपकरणैः समुपेतस्य। (शि०)

कि मंदोदरी श्रीरामचन्द्र जी के मनुष्य होने में विश्वास नहीं करती। आगे यही बात स्पष्ट रूप से मन्दोदरी कहती है )॥८॥

यदैव च जनस्थाने राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।

खरस्तव हतो भ्राता तदैवासौ न मानुषः ॥९॥

जब जनस्थान में बहुत से राक्षसों के साथ तुम्हारे भाई खर को श्रीरामचन्द्र जी ने मारा था, तभी तुम्हे विश्वास हो गया था कि, यह श्रीरामचन्द्र मनुष्य नहीं हैं ॥९॥

यदैव नगरीं लङ्कां दुष्प्रवेशां सुरैरपि ।

प्रविष्टो हनुमान् वीर्यात्तदैव व्यथिता वयम् ॥१०॥

फिर जब इस ( अगम्य ) लङ्कापुरी में जिसमें देवता भी नहीं फटक सकते, बलपूर्वक हनुमान् घुस आया ; तभी हम लोगों को ( आगे होने वाली दुर्दशा का आभास मिलने से ) बड़ी व्यथा हुई थी ॥१०॥

यदैव वानरैर्घोरैर्बद्धः सेतुर्महार्णवे ।

तदैव हृदयेनाहं शङ्के राममानुषम् ॥११॥

जब बड़े बड़े भयङ्कर वानरों ने समुद्र के ऊपर पुल बाँधा; तभी मेरे मन में श्रीरामचन्द्र जी के मनुष्य होने में सन्देह उत्पन्न हो गया था । ११॥

अथवा रामरूपेण कृतान्तः स्वयमागतः ।

मायां तव विनाशाय विधायाप्रतितर्किताम् ॥१२॥

( १ ) ( हाँ ऐसा हो कि ) तुम्हारी अप्रतितर्कित माया का विनाश करने को श्रीरामचन्द्र का रूप धारण कर काल स्वयं आया हो । ( २ ) ( अथवा, हाँ, कदाचित् ) श्रीराम जी का रूप धारण कर स्वयं यमराज आए हों, जिन्होंने तुम्हारे विनाश के लिए यह अप्रतितर्कित माया फैलाई हो ॥१२॥

अथवा वासवेन त्वं धर्षितोऽसि महाबल।
वासवस्य कुतः शक्तिस्त्वां द्रष्टुमपि संयुगे १३॥

अथवा हे महाबली! इन्द्र ने तुम्हारा वध किया हो। (किन्तु यह बात ठीक नहीं जान पड़ता ; क्योंकि) इन्द्र में यह शक्ति नहीं है कि, रण में तुम्हारी ओर आँख उठाकर भी देख सके॥१३॥

व्यक्तमेष [1]महायोगी [2]परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्॥१४॥

[3]तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः।
[4]श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः॥१५॥

मानुषं वपुरास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।
सर्वैः परिवृतो देवैर्वानरत्वमुपागतैः॥१६॥

सर्वलोकेश्वरः साक्षाल्लोकानां हितकाम्यया।
सराक्षसपरीवारं हतवांस्त्वां महाद्युतिः॥१७॥

अतः यह स्पष्ट है कि, यह श्रीरामचन्द्र जी निश्चय ही समस्त प्राणियों की रक्षा की चिन्ता करने वाले, समस्त जीवों में उत्कृष्ट, सनातन, जन्म वृद्धि विनाश-रहित और महान् से भी महान् हैं।

---

१ महायोगी—महानयोगः लोकरक्षणोपायचिन्ता अस्यास्तीति महायोगी। (गो०) २ परमात्मा—परमश्चासावात्मा च परमात्मा। सर्वजीवात्मभ्य उत्कृष्ट इत्यर्थः (गो०) ३ तमसः—प्राकृतमण्डलस्य। परमः परस्तादप्राकृते वैकुण्ठे विद्यमान। (गो०) ४ श्रीवत्सवक्षा—रक्तवर्णो मत्स्यविशेषः सः वक्षसि दक्षिणे यस्य स श्रीवत्सवक्षाः (गो०) सर्वलोकेश्वरः—सर्वलोकानां नियन्ता, अनिष्टनिवृत्तीष्टप्रापणयोः कर्त्ता। (गो०)

वैकुण्ठवासी, समस्त जीवों के परम पोषक, शङ्ख-चक्र-गदा-धारी वक्षःस्थल के दक्षिण भाग में लाल रंग का मत्स्य चिह्न धारण करने वाले, अनपायनी श्री से युक्त, अजेय, शाश्वत और सत्य पराक्रमी विष्णु भगवान् मनुष्य का रूप धारण कर के आए हैं। सब देवता वानरों का रूप धारण करके उनके साथ आए हैं। उन्हीं सब लोकों के स्वामी महाद्युतिमान् राक्षस विष्णु ने प्राणिमात्र की हित कामना के लिए, सपरिवार तुमको नष्ट कर डाला है ॥१४॥१५॥१६॥१७॥

[ टिप्पणी—श्लोक १४ से १७ तक मे भगवान् वाल्मीकि ने मन्दोदरी के मुख से यह बात प्रतिपादित करवाई है कि, महोयोगित्वादिगुणविशिष्ट विष्णु ही श्रीरामचन्द्र जी का रूप धर कर अवतारे हैं और भगवान् विष्णु अन्य समस्त देवताओं की अपेक्षा उत्कृष्ट हैं। ]

इन्द्रियाणि पुरा जित्वा जितं त्रिभुवनं त्वया।
स्मरद्भिरिव तद्वैरमिन्द्रियैरेव निर्जितः ॥१८॥

तुमने प्रथम अपनी इन्द्रियों को जीता, तदनन्तर तीनों भुवनों को जीता था। सो तुम्हारी इन्द्रियों ने उस बैर को स्मरण कर अब तुम्हें परास्त किया है ॥१८॥

क्रियतामविरोधश्च राघवेणेति यन् मया।
उच्यमानो न गृह्णासि तस्येयं [1]व्युष्टिरागता ॥१९॥

मैंने तुमसे कहा था कि, तुम रघुनाथ जी से बैर मत करो; किन्तु मेरे कहने पर भी तुमने मेरा कहना न माना। उसी का यह फल मिला है ॥१९॥

---

१ व्युष्टिः—फलं। ( गो० )

[१]अकस्माच्चाभिकामोऽसि सीतां राक्षसपुङ्गव ।
ऐश्वर्यस्य विनाशाय देहस्य स्वजनस्य च ॥२०॥

हे राक्षसश्रेष्ठ ! तुमने अपने ऐश्वर्य, शरीर और स्वजनों के विनाश के लिए ही अकारण सीता की चाहना की ॥२०॥

अरुन्धत्या विशिष्टां तां रोहिण्याश्चापि दुर्मते ।
सीतां धर्षयता मान्यां त्वया ह्यसदृशं कृतम् ॥२१॥

अरे दुर्मते ! अरुन्धती और रोहिणी से बढ़ कर मान्य सीता को तुमने हरा सो तुमने बड़ा ही अनुचित काम किआ ॥२१॥

[ टिप्पणी—जब सीता अरुन्धती और रोहिणी से भी बढ़कर सतीत्व में थी ; तब यह स्वाभाविक शंका होती है कि, सतीत्व के प्रभाव से हरते समय सीता ने रावण को दग्ध क्यों नही कर डाला ; इस शंका की निवृत्ति के लिए आदि कविमंदोदरी ही से कहला देते हैं कि—]

वसुधायाश्च वसुधां श्रियः श्रीं भर्तृवत्सलाम् ।
सीतां सर्वानवद्याङ्गीमरण्ये विजने शुभाम् ॥२२॥

आनयित्वा तु तां दीनां छद्मनात्मस्वदूषण ।
अप्राप्य चैव तं कामं मैथिलीसङ्गमे कृतम् ॥२३॥

सीता पृथिवी से भी बढ़ कर क्षमाशील समस्त सम्पदाओं की अधिष्ठात्री देवी और पतिव्रता है। अथवा पति से अत्यधिक प्यार करने वाली एवं सर्वाङ्गसुन्दरी, सौभाग्यवती और दीन सीता को उस वन से तुमने कटपूर्वक हर कर अपना नाश किआ।

---

१ अकस्मात्—निर्हेतुकं । ( गो० )

फिर जिस विचार से सीता को तुम लाए थे वह भी तो पूरा न हुआ ॥२२॥२३॥

पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ।
तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ॥२४॥

हे प्रभो, प्रत्युत निश्चय ही तुम उस पतिव्रता के तप रूप अग्नि से भस्म हो गए। तुमने जिस समय उस पतली कमर वाली जानकी को हरा था, उसी समय तुम भस्म हो जाते ॥२४॥

देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ।
अवश्यमेव लभते फलं पापस्य कर्मणः ॥२५॥
घोरं पर्यागते काले कर्ता नास्त्यत्र संशयः ।
शुभकृच्छुभमाप्नोति पापकृत् पापमश्नुते ॥२६॥

परन्तु इन्द्र, अग्नि आदि समस्त देवता तुमसे डरते थे, (इसीसे उस समय बच गए); किन्तु तुरन्त मिले अथवा कुछ समय बाद मिले—कर्त्ता को घोर पाप का फल परिपाक के समय अवश्य मिलता है। इसमें सन्देह नहीं। पुण्यप्रद कर्म करने वाला आनन्द भोगता है और पापकर्म करने वाला दुःख पाता है ॥२५॥२६॥

विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्वं प्राप्तः पापमीदृशम्[१] ।
सन्त्यन्याः प्रमदास्तुभ्यं रूपेणाभ्यधिकास्ततः ॥२७॥

(प्रत्यक्ष देख लो) विभीषण को सुख मिला और तुमको यह दुःख मिला। तुम्हारे अन्तःपुर में तो सीता से कहीं बढ़ कर रूपवती स्त्रियाँ थीं ॥२७॥

---

१ पापं—दुःखं। (गो०)

अनङ्गवशमापन्नस्त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ।
न कुलेन न रूपेण न दाक्षिण्येन[1] मैथिली ॥२८॥

मयाधिका वा तुल्या वा त्वं तु मोहान्न बुध्यसे ।
सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरलक्षणः ॥२६॥

परन्तु कामासक्त होकर, तुमने अज्ञानवश यह बात न सोची । जानकी कुल में, विद्या में और चातुरी में मुझसे बढ़ कर तो क्या—मेरे समान भी तो नहीं है । पर अज्ञानवश तुमने इस बात पर ध्यान ही न दिया । बिना कारण के कोई मरता नहीं ॥२८॥२६॥

तव तावदयं मृत्युर्मैथिलीकृतलक्षणः ।
सीतानिमित्तजो मृत्युस्त्वया दूरादुपाहृतः ॥३०॥

सो सीता तुम्हारे मरने का हेतु हुई है । तुम स्वयं ही सीता रूपी मृत्युनिमित्त को दूर से हर लाए ॥३०॥

मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ।
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥३१॥

सीता तो अब श्रीरामचन्द्र जी के साथ आनन्द से विहार करेगी । मैं थोड़े पुण्यवाली होने के कारण, अब घोर शोकसागर में गिर गई ॥३१॥

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ।
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥३२॥

मैं तुम्हारे साथ कैलास, मन्दराचल, मेरु, चैत्ररथवन और देवताओं के अन्य समस्त उद्यानों में घूमा फिरा करती थी ॥३२॥

---

१ दाक्षिण्येन—विद्यासामर्थ्येन । ( गो० )

विमानेनानुरूपेण या याम्यतुलया श्रिया ।
पश्यन्ती विविधान् देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा ॥३३॥

मैं अतुल शोभायुक्त बढ़िया विमान में बैठ अनेक प्रकार की रंग बिरंगी मालाओं और वस्त्रों से भूषित हो, विविध देशों को देखती थी ॥३३॥

भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव ।
सैवान्येवास्मि संवृत्ता धिग्राज्ञां चञ्चलाः श्रियः ॥३४॥

हे वीर ! वही मैं, तुम्हारे न रहने से आज उन समस्त भोगों से वञ्चित हो गई। वही आज दूसरी हो गई। धिक्कार है चंचला राजलक्ष्मी को ॥३४॥

हा राजन् सुकुमारं ते सुभ्रु सुत्वक् समुन्नसम् ।
कान्तिश्रीद्युतिभिस्तुल्यमिन्दुपद्मादिवाकरैः ॥३५॥

हे राजन् ! जो चेहरा अति सुकुमार, सुन्दर भौंहोंवाला, सुन्दर त्वचायुक्त, ऊँची नासिकावाला ; प्रभा, सौन्दर्य और तेज में चन्द्रमा, कमल और सूर्य के समान था ॥३५॥

किरीटकूटोज्ज्वलितं ताम्रास्यं दीप्तकुण्डलम् ।
मदव्याकुललोलाक्षं भूत्वा यत्पानभूमिषु ॥३६॥

तथा जो किरीट से शोभित, ताँबे को तरह अरुण तथा झलमल करते कुण्डलों से भूषित रहता था ; मद-पान-भूमि में मदपान के कारण जिसके नेत्र चंचल रहते थे ॥३६॥

विविधस्रग्धरं चारु वल्गुस्मितकथं शुभम् ।
तदेवाद्य तवेदं हि वक्त्रं न भ्राजते प्रभो ॥३७॥

जो मनोहर चेहरा, विविध प्रकार की पुष्पमालाएँ धारण कर मुस्कुराता हुआ वार्तालाप किया करता था; हे प्रभो! वह आपका चेहरा आज यहाँ अच्छा नहीं लगता ॥३७॥

रामसायकनिर्भिन्नं सिक्तं रुधिरविस्रवैः ।
विशीर्णमेदोमस्तिष्कं रूक्षं स्यन्दनरेणुभिः ॥३८॥

क्योंकि वह श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से विदीर्ण, रुधिरप्रवाह से सराबोर, मस्तिष्क की चर्बी में सना हुआ और रथ के पहियों से उड़ी हुई धूल के लिपट जाने से रूखा हो रहा है ॥३८॥

हा पश्चिमा मे सम्प्राप्ता दशा वैधव्यकारिणी ।
या मयाऽऽसीन्न संबुद्धा कदाचिदपि मन्दया ॥३९॥

हाय! आज मुझे यह सब से पिछली वैधव्य देने वाली दशा प्राप्त हुई है जिसकी कि, मुझ मन्दबुद्धिवाली ने कभी कल्पना भी नहीं की थी ॥३९॥

पिता दानवराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ।
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्येवं गर्विता भृशम् ॥४०॥

क्योंकि, दानवराज तो मेरे पिता, राक्षसराज मेरे पति, इन्द्र को जीतने वाला मेरा पुत्र था—बारंबार यही विचार कर, मैं अभी तक इसी महाभिमान में चूर रहा करती थी ॥४०॥

दृप्तारिमर्दनाः शूराः प्रख्यातबलपौरुषाः ।
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्दृढा ॥४१॥

मेरे पति बड़े बड़े गर्वीले शत्रुओं को ध्वस्त करने वाले हैं, वे शूरवीर और प्रसिद्ध बलवान् एवं पुरुषार्थी होने के कारण सब से निडर हैं। यह मेरी दृढ़ धारणा थी ॥४१॥

तेषामेवंप्रभावानां युष्माकं राक्षसर्षभ ।
कथं भयमसंबुद्धं मानुषादिदमागतम् ॥४२॥

ऐसे प्रतापी होकर भी हे राक्षसश्रेष्ठ ! अकस्मात् तुमको यह मनुष्यभय क्योंकर प्राप्त हो गया ? ॥४२॥

स्निग्धेन्द्रनीलनीलं तु प्रांशुशैलोपमं महत् ।
केयूराङ्गदवैडूर्यमुक्तादामस्रगुज्ज्वलम् ॥४३॥

तुम्हारा शरीर चिकने इन्द्रनीलमणि के समान नीला और ऊँचे पर्वत की तरह विशाल था। यह कड़े बाजूबन्द, पन्ना, मुक्ताहार और मालाओं से भूषित हुआ करता था ॥४३॥

कान्तं विहारेष्वधिकं दीप्तं संग्रामभूमिषु ।
भात्याभरणभाभिर्यद्विद्युद्भिरिव तोयदः ॥४४॥

तुम्हारा यह शरीर विहार करते समय अत्यधिक शोभित होता था और समर में आभूषणों की चमक से बिजली से युक्त मेघ की तरह शोभा पाता था ॥४४॥

तदेवाद्य शरीरं ते तीक्ष्णैर्नैकैः शरैश्चितम् ।
पुनर्दुर्लभसंस्पर्शं परिष्वक्तुं न शक्यते ॥४५॥

आज वही तुम्हारा शरीर अनेक बाणों से बिंधा हुआ पड़ा है। अब यह आलिङ्गन करने के योग्य तो क्या, छूने के योग्य भी नहीं रह गया है ॥४५॥

श्वाविधः शललैर्यद्वद्बाणैर्लग्नैर्निरन्तरम् ।
स्वर्पितैर्मर्मसु भृशं सञ्छिन्नस्नायुबन्धनम् ॥४६॥

तुम्हारे इस शरीर में इतने बाण चुभे हुए हैं कि, वह सेही की तरह देख पड़ता है। तुम्हारे मर्मस्थलों में तीर ऐसे वेग से लगे हैं कि, नसों के बन्धन तक कट कर बिखर गए हैं ॥४६॥

क्षितौ निपतितं राजञ्श्यावं रुधिरसच्छवि ।
वज्रप्रहाराभिहतो विकीर्ण इव पर्वतः ॥४७॥

हे राजन् ! श्याम रंग का, किन्तु रुधिर में डूबा हुआ तुम्हारा यह शरीर पृथिवी पर पड़ा हुआ ऐसा जान पड़ता है मानों वज्र के प्रहार से टूटा पड़ा पर्वत हो ॥४७॥

हा स्वप्नः सत्यमेवेदं त्वं रामेण कथं हतः ।
त्वं मृत्योरपि मृत्युः स्याः कथं मृत्युवशं गतः ॥४८॥

हाय ! क्या यह स्वप्न है अथवा सत्य घटना है ? यदि (स्वप्न नहीं) यह सत्य है तो तुम राम के हाथ से क्योंकर मारे गए ? क्योंकि तुम तो मृत्यु के भी मृत्यु थे ॥४८॥

त्रैलोक्यवसुभोक्तारं त्रैलोक्योद्वेगदं महत् ।
जेतारं लोकपालानां क्षेप्तारं शङ्करस्य च ॥४९॥

तुम तीनों लोकों की सम्पत्ति के भोग करने वाले थे, तुमसे तीनों लोक घबड़ाते थे। तुमने समस्त लोकपालों को जीत लिआ था। कैलास पर्वत को हिला कर, तुमने श्रीमहादेव जी को भी डुला दिआ था ॥४९॥

दृप्तानां निगृहीतारमाविष्कृतपराक्रमम् ।
लोकक्षोभयितारं च नादैर्भूतविराविणम् ॥५०॥

तुम अभिमानियों के गर्व को खर्व करने वाले (युद्ध में अप्रतिम) पराक्रम प्रकट करने वाले, प्राणिमात्र को क्षुब्ध करने वाले और सिंहनाद कर समस्त स्त्रियों को डराने वाले थे ॥५०॥

ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसन्निधौ ।
स्वयूथभृत्यवर्गाणां गोप्तारं भीमविक्रमम्* ॥५१॥

पराक्रम से पूर्ण हो शत्रुओं के सामने अहङ्कारपूर्ण वचन कहने वाले, अपने दल के लोगों और नौकर चाकरों के रक्षक और बड़े भारी पराक्रमी थे ॥५१॥

हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ।
निवातकवचानां च निग्रहीतारमाहवे ॥५२॥

सहस्रों दानवेन्द्रों और यक्षों के मारने वाले थे। तुमने निवातकवचों को युद्ध में जीता था ॥५२॥

नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ।
१धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे ॥५३॥

तुम अनेक यज्ञों के लोप करने वाले थे और अपने जनों के रक्षक थे। तुम आचार की मर्यादा तोड़ने वाले और युद्ध में विविध प्रकार की माया रचने वाले थे ॥५३॥

देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ।
शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं निजसैनिकान् ॥५४॥

अनेक स्थानों से देवकन्याओं, असुरकन्याओं और मनुष्य कन्याओं को बलात् हरने वाले थे। शत्रुओं की स्त्रियों को शोक देने वाले और अपनी सेना का सञ्चालन करने वाले थे ॥५४॥

लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ।
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् ॥५५॥

---

१ धर्मव्यवस्था आचारव्यवस्था। (गो०) * पाठान्तरे—"भीमकर्मणा"।

तुम अपने लङ्का द्वीप की रक्षा करने वाले और बड़े बड़े भयङ्कर कर्मों के करने वाले थे। हम लोगों को हमारी इच्छानुसार भोगों को देने वाले और रथियों में (योद्धाओं में) श्रेष्ठ थे ॥५५॥

एवंप्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम्।
स्थिराऽस्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ॥५६॥

ऐसे प्रभाव वाले अपने प्यारे पति को श्रीराम जी के हाथ से निहत और पतित हुआ देख कर भी (जो) मैं यह शरीर धारण कर रही हूँ (सो मैं बड़ी निष्ठुर हृदय वाली हूँ) ॥५६॥

शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर।
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुपाटलः ॥५७॥

हे राक्षसेश्वर! बड़े बड़े मूल्यवान् बिछौने पर सोने वाले होकर, तुम आज यहाँ धूल में सने हुए, पृथिवी पर क्यों सो रहे हो? ॥५७॥

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्युधि।
तदास्म्यभिहिता तीव्रमद्य त्वस्मिन्निपातिता ॥५८॥

जब लक्ष्मण के हाथ से लड़ाई में मेरा लाड़ला (इन्द्रजीत) मारा गया था, तब मेरे हृदय पर भारी आघात (ही) लगा था (पर) आज तो तुम्हारे मारे जाने से मैं मर ही गई ॥५८॥

१नाहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन तु त्वया।
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वती समाः ॥५९॥

बन्धुजनों के मारे जाने का मुझे सोच नहीं है। किन्तु मुझे तो सोच तुम्हारे मारे जाने का है, जिनके मारे जाने से मैं काम-भोग से वञ्चित हो गई हूँ। तुम्हारे न रहने का शोक तो मुझे अनन्त काल तक भोगना ही पड़ेगा ॥५९॥

---

१ बन्धुजनैः हीना नाह शोचिष्ये (गो०)

ओजसा दृप्तवाक्यानां वक्तारं रिपुसन्निधौ ।
स्वयूथभृत्यवर्गाणां गोप्तारं भीमविक्रमम्* ॥५१॥

पराक्रम से पूर्ण हो शत्रुओं के सामने अहङ्कारपूर्ण वचन कहने वाले, अपने दल के लोगों और नौकर चाकरों के रक्षक और बड़े भारी पराक्रमी थे ॥५१॥

हन्तारं दानवेन्द्राणां यक्षाणां च सहस्रशः ।
निवातकवचानां च निग्रहीतारमाहवे ॥५२॥

सहस्रों दानवेन्द्रों और यक्षों के मारने वाले थे। तुमने निवातकवचों को युद्ध में जीता था ॥५२॥

नैकयज्ञविलोप्तारं त्रातारं स्वजनस्य च ।
१धर्मव्यवस्थाभेत्तारं मायास्रष्टारमाहवे ॥५३॥

तुम अनेक यज्ञों के लोप करने वाले थे और अपने जनों के रक्षक थे। तुम आचार की मर्यादा तोड़ने वाले और युद्ध में विविध प्रकार की माया रचने वाले थे ॥५३॥

देवासुरनृकन्यानामाहर्तारं ततस्ततः ।
शत्रुस्त्रीशोकदातारं नेतारं निजसैनिकान् ॥५४॥

अनेक स्थानों से देवकन्याओं, असुरकन्याओं और मनुष्य कन्याओं को बलात् हरने वाले थे। शत्रुओं की स्त्रियों को शोक देने वाले और अपनी सेना का सञ्चालन करने वाले थे ॥५४॥

लङ्काद्वीपस्य गोप्तारं कर्तारं भीमकर्मणाम् ।
अस्माकं कामभोगानां दातारं रथिनां वरम् ॥५५॥

---

१ धर्मव्यवस्था आचारव्यवस्था। (गो०) * पाठान्तरे—"भीमकर्मणा"।

तुम अपने लङ्का द्वीप की रक्षा करने वाले और बड़े बड़े भयङ्कर कर्मों के करने वाले थे। हम लोगों को हमारी इच्छानुसार भोगों को देने वाले और रथियों में (योद्धाओं में) श्रेष्ठ थे ॥५५॥

एवंप्रभावं भर्तारं दृष्ट्वा रामेण पातितम् ।
स्थिराऽस्मि या देहमिमं धारयामि हतप्रिया ॥५६॥

ऐसे प्रभाव वाले अपने प्यारे पति का श्रीराम जी के हाथ से निहत और पतित हुआ देख कर भी ( जो ) मैं यह शरीर धारण कर रही हूँ ( सो मैं बड़ी निष्ठुर हृदय वाली हूँ ) ॥५६॥

शयनेषु महार्हेषु शयित्वा राक्षसेश्वर ।
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुपाटलः ॥५७॥

हे राक्षसेश्वर ! बड़े बड़े मूल्यवान् बिछौने पर सोने वाले होकर, तुम आज यहाँ धूल में सने हुए, पृथिवी पर क्यों सो रहे हो ? ॥५७॥

यदा मे तनयः शस्तो लक्ष्मणेनेन्द्रजिद्युधि ।
तदास्म्यभिहिता तीव्रमद्य त्वस्मिन्निपातिता ॥५८॥

जब लक्ष्मण के हाथ से लड़ाई में मेरा लाड़ला ( इन्द्रजीत ) मारा गया था, तब मेरे हृदय पर भारी आघात ( ही ) लगा था ( पर ) आज तो तुम्हारे मारे जाने से मैं मर ही गई ॥५८॥

[1]नाहं बन्धुजनैर्हीना हीना नाथेन तु त्वया ।
विहीना कामभोगैश्च शोचिष्ये शाश्वतीः समाः ॥५९॥

बन्धुजनों के मारे जाने का मुझे सोच नहीं है। किन्तु मुझे तो सोच तुम्हारे मारे जाने का है, जिनके मारे जाने से मैं काम-भोग से वञ्चित हो गई हूँ। तुम्हारे न रहने का शोक तो मुझे अनन्त काल तक भोगना ही पड़ेगा ॥५९॥

---

१ बन्धुजनैः हीना नाहं शोचिष्ये ( गो० )

प्रपन्नो दीर्घमध्वानं राजन्नद्य सुदुर्गमम् ।
नय मामपि दुःखार्तां न जीविष्ये त्वया विना ॥६०॥

हे प्यारे ! तुमने तो आज बड़ी लंबी और दुर्गम यात्रा का मार्ग पकड़ा है। सो मुझ दुखियारी को भी अपने साथ ही लिये चलो। क्योंकि तुम्हारे बिना मैं जीवित नहीं रह सकती ॥६०॥

कस्मात्त्वं मां विहायेह कृपणां गन्तुमिच्छसि ।
दीनां विलपितैर्मन्दां किंवा मां नाभिभाषसे ॥६१॥

मुझ दुखियारी को छोड़ कर क्यों जाते हो ? अरे मुझ दीन, विलपती और मन्दभागिनी से बोलते क्यों नहीं ? ॥६१॥

दृष्ट्वा न खल्वसि क्रुद्धो मामिहानवगुण्ठिताम् ।
निर्गतां नगरद्वारात्पद्भ्यामेवागतां प्रभो ॥६२॥

हे स्वामी ! मैं घूँघट काढ़े बिना नगर के फाटक से निकल कर पाँव प्यादे यहाँ चली आई हूँ। सो तुम इसके लिए मुझसे क्रुद्ध क्यों नहीं होते ॥६२॥

पश्येष्टदार दारांस्ते भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान्* ।
बहिर्निष्पतितान्सर्वान्कथं दृष्ट्वा न कुप्यसि ॥६३॥

देखो, मैं ही अकेली नहीं, बल्कि तुम्हारी सभी प्यारी पत्नियाँ लज्जा त्याग और घूँघट खोले अन्तःपुर के बाहिर निकल आई हैं—सो इन्हें इस दशा में देख तुमको क्रोध क्यों नहीं आता ॥६३॥

[ टिप्पणी—"भ्रष्टलज्जावगुण्ठनान्"से स्पष्ट है कि रामायण काल में स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं—आजकल के पर्दाफाश लोगों का यह कथन कि पर्दा की प्रथा मुसलमानी शासन से यहाँ प्रचलित हुई, इस प्राचीनतम प्रमाण से निराधार एवं अप्रामाणिक है।

* पाठान्तरे—"गुण्ठितान्।

अयं क्रीडासहायस्तेऽनाथो लालप्यते जनः ।
न चैनमाश्वासयसे किंवा न बहुमन्यसे ॥६४॥

क्रीड़ा के समय तुम्हारे साथ क्रीड़ा करने वाली हम सब अनाथिनी हो, विलाप कर रहे हैं। सो तुम हमारा सब का यदि सम्मान न करो, तो कम से कम हम सबको ढाढस तो बँधाओ ! ॥६४॥

यास्त्वया विधवा राजन् कृता नैकाः कुलस्त्रियः ।
पतिव्रता धर्मपरा गुरुशुश्रूषणे रताः ॥६५॥
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशं गतः ।
त्वया विप्रकृताभिर्यत्तदा शप्तं तदागतम् ॥६६॥

हे राजन् तुमने जो अनेक पतिव्रताओं, पतिव्रतधर्म परायणा और पतिसेवा में रत कुलकामिनियों को विधवा कर डाला, सो क्या कहीं उन्हीं स्त्रियों ने शोकसन्तप्त हो कर, तुम्हें शाप तो नहीं दिया, जो तुम शत्रु के वश में पड़ गए। जान पड़ता है, तुमसे दुःख पाकर, उन स्त्रियों ने जो शाप दिया था, उसीका यह फल मिला है ॥६५॥६६॥

प्रवादः सत्य एवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ।
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥६७॥

हे राजन् ! तुम्हारे विषय में लोग इस प्रकार जो प्रवाद प्रायः किया करते थे, वह सत्य ही है। क्योंकि, पतिव्रताओं के आँसू भूमि पर हठात् नहीं गिरते ॥६७॥

कथं चनाम ते राजँल्लोकानाक्रम्य तेजसा ।
नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौण्डीर्यमानिना ॥६८॥

हे राजन्! तुम तो अपने को बड़ा बहादुर लगाते थे और तुमने अपने बलपराक्रम से समस्त लोकों को दबा भी रखा था। फिर तुमने यह स्त्री की चोरी जैसा नीचकर्म क्यों किया? ॥६८॥

अपनीयाश्रमाद्रामं यत् मृगच्छद्मना त्वया ।
आनीता रामपत्नी सा तत्ते कातर्यलक्षणम् ॥६९॥

कपटमृग द्वारा श्रीरामचन्द्र को आश्रम से दूर हटा कर, जो तुम उनकी स्त्री को हर लाये, इससे तो तुम्हारा कादरपन ही प्रकट होता है ॥६९॥

कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित् संस्मराम्यहम् ।
तत्तु भाग्यविपर्यासान्नूनं ते [1]पक्वलक्षणम् ॥७०॥

मुझे याद नहीं पड़ता कि, इसके पहिले कभी किसी युद्ध में तुमने ऐसा डरपोंकपन दिखलाया हो। किन्तु सीता की चोरी कर तुमने डरपोंकपन दिखलाया उसे मैं भाग्य का उलटफेर और विनाशसूचक तथा एक बड़ा नीच काम समझती हूँ ॥७०॥

अतीतानागतार्थज्ञो वर्तमानविचक्षणः ।
मैथिलीमाहृतां दृष्ट्वा ध्यात्वा निःश्वस्य चायतम् ॥७१॥
सत्यवाक् स महाभागो देवरो मे यदब्रवीत् ।
सोऽयं राक्षसमुख्यानां विनाशः पर्युपस्थितः ॥७२॥

---

१ पक्वलक्षणम् पक्वत्वलक्षणम् विनाशज्ञापकमिति यावत्। महतो हीनकृत्यं हानिकरमिति लोकप्रवादमिति भावः। (गो०)

कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिना ।

निर्वृत्तस्त्वत्कृतेऽनर्थः सोऽयं मूलहरो महान् ॥७३॥

भूत, भविष्यत्, वर्तमान् जानने वाले सत्यवादी मेरे महाभाग देवर विभीषण ने, हर कर जानकी यहाँ लाई हुई देख, बहुत देर लों लंबी श्वाँसे ले और चिन्तित हो जो कहा था कि, काम और क्रोध से अकस्मात् उत्पन्न हुए व्यसन के प्रसङ्ग से, यह जो दुराचार कर बैठे हो, सो यह मानों तुमने प्रधान प्रधान राक्षसों के विनाश की नींव डाल दी है। सो तुम्हारे उसी अनर्थ ने तुम्हारी जड़ तक खोद बहा दी है ॥७१॥७२॥७३॥

त्वया कृतमिदं सर्वमनाथं रक्षसां कुलम् ।

न हि त्वं शोचितव्यो मे प्रख्यातबलपौरुषः ॥७४॥

तुमने राक्षसवंश को अनाथ कर डाला ! तुम तो एक प्रसिद्ध बलवान् और पराक्रमी पुरुष थे—अतः मुझे तुम्हारे लिए तो शोक करना उचित नहीं हैं ॥७४॥

स्त्रीस्वभावात्तु मे बुद्धिः कारुण्ये परिवर्तते ।

सुकृतं दुष्कृतं च त्वं गृहीत्वा स्वां गतिं गतः ॥७५॥

पर क्या करूँ, स्त्रीस्वभाव के कारण मेरा मन दुःखी हो रहा है। तुम तो अपने पाप पुण्य को ले,अपनी गति को पहुँच गए ॥७५॥

आत्मानमनुशोचामि त्वद्वियोगेन दुःखिता ।

सुहृदां हितकामानां न श्रुतं वचनं त्वया ॥७६॥

मैं अब अपने लिए चिन्तित हो रही हूँ और तुम्हारे वियोग से दुःखी हो रही हूँ। हाय ! तुमने अपने हितैषी सुहृदों की बातों पर ध्यान ही न दिया ॥७६॥

भ्रातृणां चापि कार्त्स्न्येन हितमुक्तं त्वयाऽनघ ।
हेत्वर्थयुक्तं विधिवच्छ्रेयस्करमदारुणम् ॥७७॥
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत्त्वया ।
मारीचकुम्भकर्णाभ्यां वाक्यं मम पितुस्तदा ॥७८॥

हे अनघ ! तुमसे तुम्हारे भाइयों ने समस्त बातें तुम्हारे भले के लिए ही कहीं थीं । हेतु और प्रयोजन से युक्त, शास्त्रानुमोदित, कल्याणकारी और मधुरस्वर में जो बातें विभीषण ने कही थीं ; उनको तुमने न माना । मारीच, कुम्भकर्ण और मेरे पिता की भी ॥७७॥७८॥

न श्रुतं वीर्यमत्तेन तस्येदं फलमीदृशम् ।
नीलजीमूतसङ्काश पीताम्बर शुभाङ्गद ॥७९॥
स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिराप्लुतः ।
प्रसुप्त इव शोकार्ता किं मां न प्रतिभाषसे ॥८०॥

बातें जो तुमने अपने बलके अहंकार में आ, न सुनी ; उसीका यह फल तुमको प्राप्त हुआ है । नीले बादल के समान, पीले वस्त्र और सुन्दर बाजूबन्द पहिने हुए अपने अंगों को फैलाए और रुधिर से नहाए तुम क्यों सोते हो ? और प्रगाढ़ निद्रा में निद्रित पुरुष की तरह मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देते ? ॥७९॥८०॥

महावीर्यस्य दक्षस्य संयुगेष्वपलायिनः ।
यातुधानस्य दौहित्रि किं च मां नाभ्युदीक्षसे ॥८१॥

मैं भी पराक्रमी, चतुर और युद्धक्षेत्र में कभी पीठ न दिखाने वाले सुमाली राक्षस की धोहिती ( लड़की की लड़की हूँ । सो तुम मेरी ओर क्यों नहीं देखते ? ॥८१॥

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे प्राप्ते परिभवे नवे।
अद्य वै निर्भया लङ्कां प्रविष्टाः सूर्यरश्मयः ॥८२॥

इस नये निरादर से लज्जित हो क्यों सोते हो ? उठो ! उठो !! देखो आज निर्भय हो सूर्य की किरणें लङ्का में घुस रही हैं ॥८२॥

येन सूदयसे शत्रून् समरे सूर्यवर्चसा।
वज्रो वज्रधरस्येव सोऽयं ते सततार्चितः ॥८३॥

सूर्य समान चमचमाते जिस परिघ से तुम शत्रुओं का नाश करते थे, जो इन्द्र के वज्र के समान सदैव तुमसे आदर पाता था ॥८३॥

रणे शत्रुप्रहरणो हेमजालपरिष्कृतः।
परिघो व्यवकीर्णस्ते बाणैश्छिन्नः सहस्रधा ॥८४॥

जो युद्ध में शत्रुओं पर प्रहार करने वाला और जो सोने से मढ़ा हुआ था, वह तुम्हारा परिघ, श्रीरामचन्द्र जी के बाणों से सहस्रों टुकड़े हो कर, पृथिवी पर टूटा पड़ा है ॥८४॥

प्रियामिवोपगुह्य त्वं शेषे समरमेदिनीम्।
अप्रियामिव कस्माच्च मां नेच्छस्यभिभाषितुम् ॥८५॥

अपनी प्यारी स्त्री की तरह तुम समरभूमि से लिपट कर पड़े हुए हो और मुझे कुप्यारी स्त्री की तरह जान, मुझसे बोलते तक नहीं ! ॥८५॥

धिगस्तु हृदयं यस्या ममेदं न सहस्रधा।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते[1] शोकपीडितम् ॥८६॥

---

१ फलते— स्फुटति। ( गो० )

जो हृदय तुम्हारे मरने पर भी शोक से पीड़ित हो फट कर हज़ारों टुकड़े नहीं हो जाता ; उस मेरे हृदय को धिक्कार है ॥८६॥

इत्येवं विलपन्त्येव बाष्पव्याकुललोचना ।
स्नेहावस्कन्नहृदया[1] देवी मोहमुपागमत् ॥८७॥

इस प्रकार विलाप करती और आँखों से आँसू बहाती हुई मन्दोदरी देवी स्नेह के कारण घबरा कर मूर्च्छित हो गई ॥८७॥

कश्मलाभिहता सन्ना बभौ सा रावणोरसि ।
सन्ध्यानुरक्ते जलदे दीप्ता विद्युदिवासिते ॥८८॥

दुःख की सताई और मूर्च्छित हो रावण की छाती पर पड़ी हुई मन्दोदरी, उस समय ऐसी शोभायमान जान पड़ती थी, जैसी सन्ध्याकालीन मेघों में बिजली शोभायमान जान पड़ती है ॥८८॥

तथागतां समुत्पत्य सपत्न्यस्ता भृशातुराः ।
पर्यवस्थापयामासू रुदन्त्यो रुदतीं भृशम् ॥८९॥

तब रुदन करती हुई मन्दोदरी को, अति दुःखिता तथा रोती हुई उसकी सौतों ने पकड़ कर उठाया और सावधान करने के लिए उससे कहा ॥८९॥

न ते सुविदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ।
दशा विभागपर्याये राज्ञां चञ्चलया श्रिया ॥९०॥

हे देवि ! क्या यह तुमको नहीं मालूम कि, प्राणीमात्र की दशा, अवस्थानुसार (बाल्य, कौमार्य, यौवन, वार्धक्य के अनुसार,) सदा बदला करती है और दशा के उलटफेर से राजश्री भी स्थिर नहीं रहती ॥९०॥

---

१ अवस्कन्नहृदया—विलीनहृदया । ( गो० )

इत्येवमुच्यमाना सा सशब्दं प्ररुरोद ह ।
स्नापयन्ती त्वभिमुखौ स्तनावस्त्रम्बुविस्रवैः ॥९१॥

जब इस प्रकार अन्य रानियों ने मन्दोदरी को समझाया, तब अश्रुधारा से अपने स्तनों को भिगोती हुई मन्दोदरी जोर से रोने लगी ॥९१॥

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रियश्चैता निवर्तय ॥९२॥

इतने में श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण से कहा—अब तुम अपने भाई की अन्त्येष्टि क्रिया करो और स्त्रियों को समझा बुझा कर लङ्का में भेज दो ॥९२॥

तं प्रश्रितस्ततो रामं श्रुतवाक्यो विभीषणः ।
विमृश्य बुद्ध्या धर्मज्ञो धर्मार्थसहितं वचः ॥९३॥

रामस्यैवानुवृत्त्यर्थमुत्तरं[1] प्रत्यभाषत ।
त्यक्तधर्मव्रतं क्रूरं नृशंसमनृतं तथा ॥९४॥

श्रीरामचन्द्र जी के ऐसे वचन सुन, धर्मात्मा विभीषण ने श्रीरामचन्द्र जी का मन टटोलने के लिए कुछ देर सोच, नम्रतापूर्वक और धर्मार्थयुक्त ये वचन कहे—महाराज! अपने धर्मव्रत को त्यागने वाले, निष्ठुर, घातक तथा मिथ्यावादी ॥९३॥९४॥

नाहमर्होऽस्मि संस्कर्तुं परदाराभिमर्शिनम् ।
भ्रातृरूपो हि मे शत्रुरेष सर्वाहिते रतः ॥९५॥

१ रामस्यैवानुवृत्त्यर्थम्—रामस्यअभिप्रायविज्ञानार्थं । ( गो० )

और परस्त्री के हरने वाले इस रावण का संस्कार करना मुझे उचित नहीं। यह मेरा भाई तो था; किन्तु साथ ही शत्रु रूपी भाई था और सदैव सब की बुराई करने ही में लगा रहता था ॥६५॥

रावणो नार्हते पूजां पूज्योऽपि गुरुगौरवात् ।
नृशंस इति मां कामं वक्ष्यन्ति मनुजा भुवि ॥६६॥

रावण बड़ा होने के कारण पूज्य होने पर भी, इस योग्य नहीं कि, मैं इसका अन्तिम संस्कार करूँ। जो लोग अपने भाई का अन्तिम संस्कार न करने के कारण प्रथम मुझे निष्ठुरहृदय बतलावेंगे ॥६६॥

श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृतं पुनः ।
तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मभृतां वरः ॥६७॥

वे ही लाग पीछे इस रावण के बड़े बड़े दुर्गुणों को सुन, इस कार्य को भला बतलावेंगे। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी विभीषण के इन वचनों को सुन, परम प्रसन्न हुए ॥६७॥

विभीषणमुवाचेदं वाक्यज्ञो वाक्यकोविदम् ।
तवापि मे प्रियं कार्यं त्वत्प्रभावाच्च मे जितम् ॥६८॥

वाक्यविशारद श्रीरामचन्द्र जी ने वाक्यकोविद विभीषण से कहा—हे विभीषण! तुम्हारे साहाय्य से मैंने रावण को परास्त किया है। अतः मुझे भी तुम्हारा प्रियकार्य करना (अर्थात् राजसिंहासन पर बैठाना है) ॥६८॥

अवश्यं तु क्षमं वाच्यो मया त्वं राक्षसेश्वर ।
अधर्मानृतसंयुक्तः कामं त्वेष निशाचरः ॥६९॥

हे राक्षसेश्वर ! मैं राज्य तो तुमको दिलाऊँगा ही ; साथ ही जो तुम्हारे लिए हितकर और उचित कर्त्तव्य होगा, वह भी मैं तुमसे कहूँगा । यद्यपि यह रावण पापी और मिथ्यावादी था ॥९९॥

तेजस्वी बलवाञ्शूरो संयुगेषु च नित्यशः ।
शतक्रतुमुखैर्देवैः श्रूयते न पराजितः ॥१००॥

तथापि यह तेजस्वी, बलवान् शूरवीर और युद्ध में सदा विजय प्राप्त करता था । सुना जाता है कि, यह इन्द्रादि देवताओं से भी कभी नहीं हारा था ॥१००॥

महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः ।
मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्त नः प्रयोजनम् ॥१०१॥

रावण महात्मा (महाबुद्धिमान् ) था, बलवान था और लोकों को रुलाने वाला अर्थात् सताने वाला था । बैर मरने तक ही रहता है सो बैर की अवधि तो पूरी हो चुकी और मेरा प्रयोजन भी पूरा हो चुका ॥१०१॥

क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ।
त्वत्सकाशाद्दशग्रीवः संस्कारं विधिपूर्वकम् ॥१०२॥
प्राप्तुमर्हति धर्मज्ञ त्वं यशोभाग्भविष्यसि ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ॥१०३॥
संस्कारेणानुरूपेण योजयामास रावणम् ।
चितां चन्दनकाष्ठानां पद्मकोशीरसंवृताम् ॥१०४॥

अब यह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी है । अतः अब तुम इसका संस्कार करो । तुम्हारे हाथ से रावण का विधि

पूर्वक संस्कार होने से, धर्मज्ञ! तुम यश के भागी होगे। श्रीरामचन्द्र जी के इन (उदार) वचनों को सुन, विभीषण शीघ्रता पूर्वक, अपने भाई की पदमर्यादा के अनुरूप उनके अन्तिम संस्कार की तैयारियाँ करने में लग गए और चन्दन, पद्मक, खस आदि सुगन्धित लकड़ियों की चिता बनाई। १०२॥१०३॥१०४॥

ब्राह्मया[1] संवेशयांचक्रू रांकवास्तरणावृताम्[2] ।
वर्तते वेदविहितो राज्ञो वै पश्चिमः[3] क्रतुः ॥१०५॥

तदनन्तर वेदविधि से रंकु जाति के (काले) मृग का चर्म चिता पर बिछा कर, रावण का मृतक शरीर रखा) अन्त्येष्टि कर्म वैदिक विधि से किया गया ॥१०५॥

प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुक्रमम् ।
वेदिं च दक्षिणप्राच्यां यथास्थानं च पावकम् ॥१०६॥

विभीषण ने राक्षसेन्द्र रावण का पितृमेध यथाक्रम किया। चिता के आग्नेय (दक्षिण-पूर्व) कोण में वेदी बनाई गई और यथास्थान अग्नि (त्रेताग्नि) रखा ॥१०६॥

पृषदाज्येन संपूर्णं स्रुवं स्कन्धे प्रचिक्षिपुः ।
पादयोः शकटं[4] प्रादुरन्तरूर्वोरुलूखलम् ॥१०७॥

फिर दही मिले हुए घी से भरा स्रुवा काँधे पर छोड़ा, पावों पर शकट (यज्ञीयपात्र विशेष) तथा जाँघों पर उलूखल रखा ॥१०७॥

---

१ ब्राह्म्या—वेदोक्तप्रक्रिया। (गो०) २ रांकुः रंकुः मृगविशेषः तत्सम्बन्धि चर्म राकवं। (गो०) ३ पश्चिमः क्रतुः अन्त्येष्टिः। (गो०) ४ शकटं—सोमराजानयनशकटम्। (गो०)

दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम्
दत्त्वा तु मुसलं चान्यद्यथास्थान विचक्षणाः ॥१०८॥

समस्त काठ से (यज्ञहोत्र के बर्तन) पात्र अरणी और उत्तरारणी और मूसल यथास्थान जैसा कि कर्मकाण्ड-विशेषज्ञों का मत है, रखे ॥१०८॥

शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ।
तत्र [1]मेध्यं पशुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥१०९॥

फिर धर्मशास्त्र की विधि से और महर्षियों की बतलाई विधि से चिता के समीप रावण के अर्थ बकरे का बलिदान दिआ गया ॥१०९॥

परिस्तरणिकां राज्ञो घृताक्तां समवेशयन् ।
गन्धैर्माल्यैरलङ्कृत्य रावणं दीनमानसाः । ११०॥

विभीषणसहायास्ते वस्त्रैश्च विविधैरपि ।
लाजैश्चावकिरन्ति स्म बाष्पपूर्णमुखास्तदा ॥१११॥

फिर उस बकरे की खाल को ले और उसे घी से लपेट कर उसे रावण के मुख पर रखा। तदनन्तर उन दुःखीमन राक्षसों ने, जो विभीषण को इस काम में सहायता दे रहे थे, रावण के मृतक शरीर को सुगन्धित द्रव्यों और पुष्पमालाओं से अलंकृत कर और विविध वस्त्र पहिना कर, आँखों से आँसू बहाते हुए, चिता पर लावों की वर्षा की ॥११०॥१११॥

---

१ मेध्यं—पवित्रं पशुं छागं । ( गो० )

ददौ च पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान् दूर्वाभिमिश्रितान् ॥११२॥
उदकेन च संमिश्रान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ।
प्रदाय चोदकं तस्मै मूर्ध्ना चैनं नमस्य च ॥११३॥

तदनन्तर विधिपूर्वक चिता में आग लगाई । फिर स्वयं नहा कर गीले कपड़े पहिने हुए, दूर्वा ( कई संस्करणों में दूर्वा की जगह दर्भ-कुश लिखा पाया गया है और मृतक सस्कार में कुश ही लिये भी जाते हैं ) सहित तिलमिश्रित जल से विधिपूर्वक तिलाञ्जलि दी । इस प्रकार जलाञ्जलि दे और सिर नवा कर प्रणाम कर ॥११२॥११३॥

ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वमुक्त्वा पुनः पुनः ।
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं तदा ॥११४॥

उन रावण की स्त्रियों को बारंबार समझाया और कहा अब तुम सब नगर को जाओ; तब वे सब लङ्का में चली गयी ॥११४॥

प्रविष्टासु च सर्वासु राक्षसीषु विभीषणः ।
रामपार्श्वमुपागम्य तदातिष्ठद्विनीतवत् ॥११५॥

जब वे सब रावण की स्त्रियाँ लङ्का में चली गईं तब, विभीषण, श्रीरामचन्द्र जी के निकट जा, विनीत भाव से ( चुपचाप ) खड़े हो गये ॥११५॥

रामोऽपि सह सैन्येन ससुग्रीवः सलक्ष्मणः ।
हर्षं लेभे रिपुं हत्वा यथा वृत्रं शतक्रतुः ॥११६॥

इति चतुर्दशोत्तरशततमः सर्गः ।

जैसे इन्द्र, वृत्रासुर का वध कर, हर्षित हुए थे; वैसे ही सुग्रीव, लक्ष्मण तथा अन्य समस्त वानरी सेना सहित श्रीरामचन्द्र जी भी रावण का वध कर हर्षित हुए ॥११६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ।



## पञ्चदशोत्तरशततमः सर्गः



ते रावणवधं दृष्ट्वा देवगन्धर्वदानवाः।
जग्मुः स्वैः स्वैर्विमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः ॥१॥

रावण का वध देख, देवता, गन्धर्व और दानव अपने अपने विमानों में बैठ, आपस में रावण के वध की चर्चा करते हुए अपने अपने स्थानों को चले गए ॥१॥

रावणस्य वधं घोरं राघवस्य पराक्रमम्।
सुयुद्धं वानराणां च सुग्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥२॥

अनुरागं च वीर्यं च मारुतेर्लक्ष्मणस्य च।
कथयन्तो महाभागा जग्मुर्हृष्टा यथागतम् ॥३॥

रावण का भयङ्कर वध, श्रीरामचन्द्र जी का पराक्रम, वानरों का भली भाँति लड़ना, सुग्रीव की सुमंत्रणा, श्रीरामचन्द्र जी के प्रति लक्ष्मण और हनुमान जी का अनुराग (या स्वामि भक्तलायल्टी) और इन दोनों के बल पराक्रम की कथा कहते तथा आनन्दित होते हुए वे समस्त महाभाग (देवगण जहाँ से आए थे वहाँ चले गए ॥२॥३॥

राघवस्तु रथं दिव्यमिन्द्रदत्तं शिखिप्रभम्
अनुज्ञाय महाभागो मातलिं प्रत्यपूजयत् ॥४॥

श्रीरामचन्द्र जी ने, इन्द्र के भेजे हुए दिव्य और अग्नि के समान चमचमाते रथ को लौटा कर ले जाने के लिए मातलि को आज्ञा दी और उसका सत्कार भी किया ॥४॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातो मातलिः शक्रसारथिः ।
दिव्यं तं रथमास्थाय दिवमेवारुरोह सः ॥५॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने इन्द्र के सारथि मातलि को रथ लौटा कर ले जाने की आज्ञा दी, तब वह उस दिव्य रथ पर सवार हो स्वर्ग को चला गया ॥५॥

तस्मिंस्तु दिवमारूढे सुरसारथिसत्तमे ।
राघवः परमप्रीतः सुग्रीवं परिषस्वजे ॥६॥

देवताओं के सारथिश्रेष्ठ मातलि के स्वर्ग चले जाने के बाद, श्रीरामचन्द्र जी ने परमप्रसन्न हो सुग्रीव को अपनी छाती से लगाया ॥६॥

परिष्वज्य च सुग्रीवं लक्ष्मणेन प्रचोदितः ।
पूज्यमानो हरिश्रेष्ठैराजगाम बलालयम् ॥७॥

सुग्रीव को गले लगा, श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी के कहने से वहाँ गए जहाँ वानरी सेना छावनी डाले पड़ी थी ॥७॥

अब्रवीच्च तदा रामः समीपपरिवर्तिनम् ।
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं दीप्ततेजसम् ॥८॥

श्रीरामचन्द्र जी ने वहाँ पहुँच अपने पार्श्ववर्ती सुमित्रानन्दन, बलवान् और तेज से दीप्तिमान् लक्ष्मण से कहा ॥८॥

विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ।
अनुरक्तं च भक्तं च मम चैवोपकारिणम् ॥९॥

हे सौम्य ! अब तुम इन विभीषण को लङ्का के राजसिंहासन पर अभिषिक्त करो । क्योंकि यह मेरे अनुरागी हैं, भक्त हैं और उपकार करने वाले हैं ॥९॥

एष मे परमः कामो यदीमं रावणानुजम् ।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥१०॥

हे सौम्य ! यह मेरी बड़ी साध है कि, मैं इन विभीषण को लङ्का के राजसिंहासन पर बैठा हुआ देखूँ ॥१०॥

एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ।
तथेत्युक्त्वा तु संहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥११॥

जब महात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार कहा, तब लक्ष्मण जी ने कहा—" बहुत अच्छा " और एक सुवर्णकलश उठा लिआ ॥११॥

तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ।
आदिदेश महासत्त्वान् समुद्रसलिलानये[१] ॥१२॥

उस सुवर्ण कलश को मन के समान शीघ्र चलनें वाले वानरेंद्रों को देकर उनसे कहा कि, ( इसमें ) चारों समुद्रों का जल ले आओ ॥१२॥

---

१ समुद्राच्चतुः—समुद्रेभ्य इत्यर्थः । ( रा० )

अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते महाबलाः ।
आगतास्तज्जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥१३॥

वे महाबली वानर अत्यन्त शीघ्र गए और वे वानरश्रेष्ठचारों समुद्रों का जल ले कर ( तुरन्त ) लौट भी आए ॥१३॥

ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ॥१४॥

तब लक्ष्मण जी ने विभीषण को राजसिंहासन पर बिठा कर समुद्रों के जल से भरे हुए कलसों में से एक कलसे के जल से विभीषण का अभिषेक किआ ॥१४॥

[ टिप्पणी—११ और १२ वें श्लोकों में एक वचन में " घट " का प्रयोग होने पर भी १२ वें श्लोक में " वानरेन्द्राणा " और १० वें श्लोक में " ततस्त्वेकं " को देख, समुद्र जल लाने के लिए कई घड़ों का वानरों को दिया जाना सिद्ध होता है । ]

लङ्कायां रक्षसां मध्ये राजानं रामशासनात् ।
विधिना मन्त्रदृष्टेन सुहृद्गणसमावृतम् ॥१५॥

अभ्यषिञ्चत् स धर्मात्मा शुद्धात्मानं विभीषणम् ।
तस्यामात्या जहृषिरे भक्ता ये चास्य राक्षसाः ॥१६॥

दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
स तद्राज्यं महत् प्राप्य रामदत्तं विभीषणः ॥१७॥

तदनन्तर लङ्का में वहाँ के राक्षसों की उपस्थिति में,श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से धर्मात्मा लक्ष्मण जी ने सुहृदों से घिरे हुए शुद्धात्मा विभीषण के विधिपूर्वक वैदिक मंत्रों से राजतिलक

किया। राक्षसेन्द्र विभीषण का लङ्का के राज्यासन पर अभिषेक हुआ देख, विभीषण के मंत्री तथा इनके पक्षपाती या भक्त राक्षस लोग बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामचन्द्र के दिए हुए इस महत् राज्य को पाकर विभीषण ॥१५॥१६॥१७॥

प्रकृतीः सान्त्वयित्वा च ततो राममुपागमत्।
अक्षतान् मोदकाँल्लाजान् दिव्याः सुमनसस्तदा ॥१८॥

जब लङ्का की प्रजा को ढाढस बँधा (लक्ष्मण को साथ लिए हुए) श्रीरामचन्द्र जी के समीप आए; तब अक्षत, लड्डू, धान की खीलें (लावा) तथा दिव्यपुष्पों को ले कर ॥१८॥

आजह्रुरथ संहृष्टाः पौरास्तस्मै निशाचराः।
स तान् गृहीत्वा दुर्धर्षो राघवाय न्यवेदयत् ॥१९॥

मङ्गल्यं मङ्गलं सर्वं लक्ष्मणाय च वीर्यवान्।
कृतकार्यं समृद्धार्थं दृष्ट्वा रामो विभीषणम् ॥२०॥

लंकानिवासी राक्षस, हर्षित अन्तःकरण से, विभीषण के सामने लाने लगे और भेंट करने लगे। दुधर्ष विभीषण ने उन सब मङ्गलकारी माङ्गलिक वस्तुओं को लेकर, वीर्यवान श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी के सामने रख दिया। श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को समृद्धशाली और सफलमनोरथ देख कर, ॥१९॥२०॥

प्रतिजग्राह तत्सर्वं तस्यैव प्रियकाम्यया।
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं पार्श्वतः स्थितम् ॥२१॥

और उनको प्रसन्न करने के लिए उन सब द्रव्यों को ग्रहण कर लिया। तदनन्तर पर्वत के समान बगल में खड़े हुए वीर ॥२१॥

अब्रवीद्राघवो वाक्यं हनमन्तं प्लवङ्गमम् ।
अनुमान्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् ॥२२॥
गच्छ सौम्य पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य यथाविधि ।
प्रविश्य रावणगृहं विजयेनाभिनन्द्य च ॥२३॥

वानर हनुमान जी से श्रीरामचन्द्र जी बोले ; हे सौम्य ! तुम महाराज विभीषण से आज्ञा माँग कर, लंका में जाओ और रावण के घर में घुस कर तुम मेरे विजय का संवाद सुना कर, सीता को आनन्दित करो ॥२२॥२३॥

वैदेह्यै मां कुशलिनं ससुग्रीवं सलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व वदतांश्रेष्ठ रावणं च मया हतम् ॥२४॥

हे बोलने वाला में श्रेष्ठ ! फिर मेरा, लक्ष्मण का और सुग्रीव का कुशलसमाचार सुना कर, सीता जी से यह भी कह देना कि, मैंने रावण को मार डाला ॥२४॥

प्रियमेतदुदाहृत्य मैथिल्यास्त्वं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य च सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥२५॥

इति पंचदशोत्तरशततमः सर्गः ॥

हे हरीश्वर ! तुम सीता जी को यह प्रिय संवाद सुना और उनका सन्देशा ले यहाँ लौट आओ ॥२५॥

[ टिप्पणी—इस अध्याय में वर्णित विभीषण का लंका की राजगद्दी पर अभिषेक होना देख, यह स्पष्ट है कि श्रीरामचंद्र जी की लंका पर चढ़ाई का उद्देश्य जानकी जी का उद्धारमात्र था । अयोध्या का राज्य बढ़ाने अथवा लंका के राज्य को अपने राज्य में जोड़ने के हेतु लंका पर चढ़ाई नहीं की गई थी । ]

युद्धकाण्ड का एकसौ पंद्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## षोडशोत्तरशततमः सर्गः

—❀—

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान् मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां पूज्यमानो निशाचरैः ॥१॥

पवननन्दन हनुमान् जी इस प्रकार से आज्ञा पा, जब लंका में गए ; तब वहाँ के रहने वाले राक्षसों ने उनका बड़ा आदर सत्कार किया ( क्योंकि लंका में हनुमान जी के प्रथम प्रवेश के समय वे उनके पराक्रम को देखे हुए थे ॥१॥

प्रविश्य च महातेजा रावणस्य निवेशनम् ।
ददर्श मृजया हीनां सातङ्कामिव रोहिणीम् ॥२॥

वृक्षमूले निरानन्दां राक्षसीभिः समावृताम् ।
निभृतः प्रणतः प्रह्वः सोभिगम्याभिवाद्य च ॥३॥

महातेजस्वी हनुमान् जी ने रावण की अशोक बाटिका में प्रवेश कर देखा कि, मैली कुचैली और भयभीत रोहिणी की तरह, उदास और राक्षसियों से घिरी हुई सीता माता एक अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई हैं। यह देख हनुमान जी चुपचाप उनके समीप गए और सीस नवा, विनम्र हो प्रणाम कर, खड़े हो गए ॥२॥३॥

दृष्ट्वा तमागत देवी हनुमन्तं महाबलम् ।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा प्रमुदिताऽभवत् ॥४॥

महाबली हनुमान् जी को आया हुआ देख और ( तुरन्त उन्हें न पहचान कर सीता जी कुछ देर तक चुपचाप रहीं। तदनन्तर उनको पहचान वे प्रसन्न हो गईं ॥४॥

सौम्यं दृष्ट्वा मुखं तस्या हनुमान् प्लवगोत्तमः ।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी जानकी का सौम्यमुख देख, उन्हें श्रीरामचन्द्र जी का समस्त सन्देशा सुनाने लगे ॥५॥

वैदेहि कुशली रामः सहसुग्रीवलक्ष्मणः ।
विभीषणसहायश्च हरीणां सहितो बलैः ॥६॥

कुशलं चाह सिद्धार्थो हतशत्रुररिन्दमः ।
विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ॥७॥

हे वैदेही ! सुग्रीव और लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी सकुशल हैं। अपने सहायक विभीषण और वानरों सहित शत्रुहन्ता एवं सफलमनोरथ श्रीरामचन्द्र जी ने शत्रु को मार कर, तुमसे कुशल-संवाद कहा है। श्रीरामचन्द्र जी ने, विभीषण की सहायता से और वानरों को साथ ले ॥६॥७॥

निहतो रावणो देवि लक्ष्मणस्य नयेन च ।
पृष्ट्वा तु कुशलं रामो वीरस्त्वां रघुनन्दनः ॥८॥

अब्रवीत् परमप्रीतः कृतार्थेनान्तरात्मना ।
प्रियमाख्यामि ते देवि त्वां तु भूयः [1]सभाजये ॥९॥

और लक्ष्मण के नीतिचातुर्य से, हे देवि ! रावण को मार डाला। वीर श्रीरामचन्द्र जी ने तुम्हारा कुशलसंवाद पूँछा है। सफलमनोरथ श्रीरामचन्द्र जी ने परमप्रसन्न हो जो सन्देशा तुमसे मेरे द्वारा कहलाया है, उस प्रिय सन्देशे को तुम्हें सुना कर, मैं पुनः पुनः इसलिए कि एक बार इसके पूर्व हनुमान जी ऐसा ही कर चुके थे। ) तुम्हें आनन्दित करता हूँ ॥८॥९॥

१ सभाजये—प्रीणये। ( गो० )

दिष्ट्या जीवसि धर्मज्ञे संयुगे जयेन मम।
लब्धो नो विजयः सीते स्वस्था भव गतव्यथा ॥१०॥

(श्रीरामचन्द्र जी ने कहा है) हे धर्मज्ञे! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, तुम जीवित हो)। युद्ध में अब हम लोग विजयी हुए हैं। सो तुम अब हमारे इस विजय से अपने मन की व्यथा दूर कर, सावधान हो जाओ ॥१०॥

रावणश्च हतः शत्रुर्लङ्का चेयं वशीकृता*।
मया ह्यलब्धनिद्रेण [1]दृढेन तव [2]निर्जये ॥११॥

रावणरूपी शत्रु को मैंने मार डाला और इस लङ्का को फतह कर लिआ। शत्रु के हाथ से तुम्हारा उद्धार करने के लिए मैंने निद्रा छोड़ और एकाग्र मन हो ॥११॥

प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ।
सम्भ्रमश्च न गन्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ॥१२॥

और समुद्र का पुल बाँध, मैंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। यद्यपि अभी तक तुम रावण के घर में हो, तथापि तुम घबड़ाओ मत ॥१२॥

विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम्।
तदाश्वसिहि विश्वस्ता स्वगृहे परिवर्तसे ॥१३॥

क्योंकि लङ्का का समस्त ऐश्वर्य अर्थात् राज्य विभीषण के हाथ आ गया है। अतः तुम निश्चिन्त हो जाओ और समझो कि अपने घर ही में हो ॥१३॥

---

१ दृढेन—एकाग्रचित्तेन। (गो०) २ निर्जये—शत्रुहस्ताच्च विमोचने (गो०) * पाठान्तरे—"वशे स्थिता"।

अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ।
एवमुक्ता समुत्पत्य सीता शशिनिभानना ॥१४॥
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याजहार न किञ्चन ।
अब्रवीच्च हरिश्रेष्ठः सीतामप्रतिजल्पतीम् ॥१५॥

विभीषण तुम्हारे दर्शन करने के लिए हर्षित हो आना चाहते हैं। हनुमान् जी के इस प्रकार के वचनों को सुन, चन्द्रमुखी सीता कुछ भी न बोल सकीं। क्योंकि मारे आनन्द के उनका गला भर आया। तब माता जी को कुछ बोलते न देख कपिश्रेष्ठ हनुमान जी ने कहा ॥१४॥१५॥

किंनु चिन्तयसे देवि किंनु मां नाभिभाषसे ।
एवमुक्ता हनुमता सीता धर्मे व्यवस्थिता ॥१६॥

हे देवि! आप किस बात के लिए चिन्तित हो रही हैं और मुझसे क्यों सम्भाषण नहीं करतीं? जब हनुमान् जी ने इस प्रकार कहा; तब पातिव्रत धर्म में स्थित सीता ने ॥१६॥

अब्रवीत् परमप्रीता हर्षगद्गदया गिरा ।
प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ॥१७॥
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ।
न हि पश्यामि सदृशं चिन्तयन्ती प्लवङ्गम ॥१८॥

हर्ष के मारे गद्गद वाणी से परम हर्षित हो कहा—हे वानर. पति के विजय का संवाद सुन, आनन्द के मारे क्षण भर तक मुझ से कुछ बोला नहीं जाता था। अब मैं यह सोच रही हूँ कि, इस मङ्गलसंवाद के अनुरूप तुम्हें क्या पारितोषिक दूँ। क्योंकि मुझे इसके लिए तुम्हें देने योग्य कोई वस्तु नहीं देख पड़ती ॥१७॥१८॥

मत्प्रियाख्यानकस्येह तव प्रत्यभिनन्दनम् ।
न हि पश्यामि तत्सौम्य पृथिव्यामपि वानर ॥१९॥

सदृश मत् प्रियाख्याने तव दातुं भवेत् समम् ।
१हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च ॥२०॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु नैतदर्हति भाषितुम् ।
एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवङ्गमः ॥२१॥

मुझे सारी पृथिवी पर ऐसी कोई वस्तु नहीं देख पड़ती, जो तुम्हारे समान प्रियसंवाद सुनाने वाले को दी जा सके। यदि मैं, चाँदी, सोना, विविध प्रकार के रत्न अथवा त्रिलोकी का राज्य भी तुम्हें दे डालूँ, तो भी तुम्हारे लिए यह सब इस सुखदसंवाद सुनाने के बदले में उचित पुरस्कार नहीं हो सकता। जब सीता जी ने इस प्रकार कहा, तब उत्तर में हनुमान् जी ने ॥१९॥२०॥२१॥

गृहीतप्राञ्जलिर्वाक्यं सीतायाः प्रमुखे स्थितः ।
भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकाङ्क्षिणि ॥२२॥

हाथ जोड़ और सीता जी के सामने खड़े होकर कहा—हे पति के प्रिय हित में तत्पर रहने वाली ! हे पति का विजय चाहने वाली ! ॥२२॥

स्निग्धमेतंविधं वाक्यं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ।
तवैतद्वचनं सौम्ये सारवत् स्निग्धमेव च ॥२३॥

हे सौम्ये ! इस प्रकार के मनोहर वचन तुम्हीं कह सकती हो। तुम्हारे यह सारयुक्त, मनोहर और स्नेहसाने वचन ॥२३॥

---

१ हिरण्यं—रजतं। ( गो० )

रत्नौघाद्विविधाच्चापि देवराज्याद्विशिष्यते ।
अर्थतश्च मया प्राप्ता देवराज्यादयो गुणाः ॥२४॥

केवल विविध प्रकार के रत्नों ही से नहीं, बल्कि स्वर्ग के राज्य से भी कहीं अधिक चढ़ बढ़ कर मूल्यवान हैं। उनके सुनते ही से मुझे तो स्वर्ग का राज्य आदि बहुमूल्य पदार्थ प्राप्त हो चुके ॥२४॥

हतशत्रुं विजयिनं रामं पश्यामि सुस्थितम् ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली जनकात्मजा ॥२५॥

क्योंकि मैं शत्रुहन्ता एवं विजयी श्रीरामचन्द्र जी को अब शान्तचित्त पाता हूँ। (अर्थात पूर्ववत् वे अब शत्रु के कारण न तो चिन्तित हैं और न तुम्हारे वियोग में क्षुब्ध हैं।) हनुमान जी के वचन सुन कर, जनकनन्दिनी मैथिली ने ॥२५॥

ततः शुभतरं वाक्यमुवाच पवनात्मजम् ।
अतिलक्षणसम्पन्न माधुर्यगुणभूषितम् ॥२६॥

बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं त्वमेवार्हसि भाषितुम् ।
श्लाघनीयोऽनिलस्य त्वं पुत्रः परमधार्मिकः ॥२७॥

पहिले से भी अधिक सुन्दर वचन हनुमान जी से कहे—हे हनुमन! साधुत्वसम्पन्न और मधुरतागुण से भूषित, अष्टाङ्ग बुद्धि से पूर्ण ऐसे वचनों से तुम्हीं कह सकते हो। पवननन्दन तुम बड़े धार्मिक हो सराहने योग्य हो ॥२६॥२७॥

टिप्पणी—अष्टांगबुद्धि से पूर्ण वचनों का विवरण यह है:—

ग्रहणं, धारणं, चैव स्मरणं प्रतिपादनम् ।
ऊहापोहोर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥१॥

अर्थात् सुने की उत्कण्ठा या चाह, सुनी हुई बात को धारण करना, समय पर उसे याद रखना, बात को प्रतिपादन करना, उसमें तर्क वितर्क करना, उसका शोक न करना. उसका यथार्थ अभिप्राय जान लेना, उसमें से तत्त्व निकाल लेना—ये बुद्धि के आठ अंग हैं । ]

**बलं शौर्यं श्रुतं सत्त्वं विक्रमो दाक्ष्यमुत्तमम् ।**
**तेजः क्षमा धृतिर्धैर्यं विनीतत्वं न संशयः ॥२८॥**

प्रयाससहिष्णुत्व, युद्धोत्साह. शास्त्रज्ञान, शारीरिक बल, पराक्रम, सामर्थ्य, शत्रु का पराभव करने की शक्ति, अपराधसहिष्णुता, प्रभाव, धैर्य, विनम्रता अथवा नीति का विशेष ज्ञान तुममें सब से श्रेष्ठ है—इसमें सन्देह नहीं ॥२८॥

**एते चान्ये च बहवो गुणास्त्वय्येव शोभनाः ।**
**अथोवाच पुनः सीतामसम्भ्रान्तो विनीतवत् ॥२९॥**

ये सब गुण तो तुममें हैं ही इनके अतिरिक्त भी बहुत से अच्छे गुण तुममें पाए जाते हैं । यह सुनकर हनुमान जी कुछ भी विचलित न होकर पुनः बड़ी नम्रता के साथ सीता जी से कहने लगे ॥२९॥

**प्रगृहीताञ्जलिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थितः ।**
**इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ॥३०॥**
**हन्तुमिच्छाम्यहं सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा ।**
**क्लिश्यन्तीं पतिदेवां त्वामशोकवनिकां गताम् ॥३१॥**

वे हाथ जोड़कर सीता जी के सामने खड़े होकर और हर्षित हो बोले—हे देवि । यदि तुम आज्ञा दो, तो मैं इन सब राक्षसियों को, जो पहिले तुमको डराती धमकाती थीं, मार डालूँ । तुम तो पति की चिन्ता में दुःखी अशोकवाटिका में रहती थीं ॥३०॥३१॥

घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ।
राक्षस्यो दारुणकथा वरमेतत् प्रयच्छ मे ॥३२॥

मुष्टिभिः पाणिभिः सर्वाश्चरणैश्चैव शोभने ।
इच्छामि विविधैर्घातैर्हन्तुमेताः सुदारुणाः ॥३३॥

और ये सब भयङ्कर रूपवाली और बुरे आचरणों वाली, क्रूर और टेढ़ी मेड़ी आँखों वाली राक्षसियाँ तुमसे बुरी बुरी बातें कहती थीं। सो हे शोभने। अब मुझे यह बर दो। मूँकों, थप्पड़ों और लातों से तथा विविध प्रकार की मार से, इन कठोर हृदय राक्षसियों को मारने को मेरा जी चाहता है ॥३२॥३३॥

घातैर्जानुप्रहारैश्च दशनानां च पातनैः ।
भक्षणैः कर्णनासानां केशानां लुञ्चनैस्तथा ॥३४॥

मैं इनको घुटनों से मारना चाहता हूँ। दाँतों से इनके नाक कान काटना चाहता हूँ। इनके बालों को नोंच नोंच कर उखाड़ डालना चाहता हूँ। इन्हें पटक पटक कर मारना चाहता हूँ और इनको (जिन्दा ही) खा जाना चाहता हूँ ॥३४॥

नखैः शुष्कमुखीभिश्च दारणैर्लङ्घनैर्हतैः ।
निपात्य हन्तुमिच्छामि तव विप्रियकारिणीः ॥३५॥

तुमको सताने वाली इन सुखे मुख वालीं राक्षसियों को नखों से विदीर्ण कर और ऊपर उछाल उछाल कर तथा जमीन पर पटक पटक कर मैं मार डालना चाहता हूँ ॥३५॥

एवंप्रकारैर्बहुभिर्विप्रकारैर्यशस्विनि ।
हन्तुमिच्छाम्यहं देवि तवेमाः कृतकिल्बिषाः ॥३६॥

हे यशस्विनी ! मैं तुम्हें सताने वाली इन सब पापिनियों को अनेक प्रकार के आघातों से मारना चाहता हूँ ॥३६॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
उवाच धर्मसहितं हनुमन्तं यशस्विनी ॥३७॥

जब हनुमान जी ने जनकनन्दिनी से इस प्रकार कहा, तब यशस्विनी सीता जी ने धर्म सहित वचन हनुमान् जी से कहे ॥३७॥

[ यशस्विनी इसलिये कि सीता जी के मन में बदला लेने की भावना तिलमात्रभी न थी । ]

राजसंश्रयवश्यानां कुर्वन्तीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥३८॥

ये दासियाँ हैं और रावण की आश्रिता थीं और उसकी आज्ञा का पालन करती थीं । सो हे वानरश्रेष्ठ ! तुम इन पर कुपित क्यों होते हो ॥ ३८ ॥

भाग्यवैषम्ययोगेन पुरा दुश्चरितेन च ।
मयैतत् प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥३९॥

मैं अपने ही भाग्यदोष से और अपने पूर्वकृत दुष्कृतों के द्वारा ये समस्त दुःख पाती हूँ और अपना भोग मान भोग रही हूँ ॥३९॥

प्राप्तव्यं तु दशायोगात् मयैतदिति निश्चितम् ।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥४०॥

मुझे यही बदा था कि, मैं ऐसी दशा में पड़ यह सब भोगूँ । मैंने तो यही निश्चय कर रखा है । मुझ दुर्बला ने इसीसे रावण की इन दासियों का क्रोध सह लिया ॥ ४० ॥

आज्ञप्ता रावणेनैता राक्षस्यो मामतर्जयन् ।
हते तस्मिन्न कुर्युर्हि तर्जनं वानरोत्तम ॥४१॥

हे वानरोत्तम ! इन राक्षसियों ने रावण की आज्ञा से ही मुझे सताया था। क्योंकि अब जब रावण मर चुका है, तो यह मुझे अब नहीं डाँटती डपटतीं ॥४१॥

अयं व्याघ्रसमीपे तु पुराणो धर्मसंस्थितः ।
ऋक्षेण गीतः श्लोको मे तन्निबोध प्लवङ्गम ॥४२॥

हे कपे ! पुराणान्तर्गत कहीं एक यह कथा है कि, एक समय एक शिकारी, व्याघ्र के डर से एक ऐसे पेड़ पर चढ़ गया जिसके ऊपर रीछ पहिले ही से बैठा था। उस समय भालू ने व्याघ्र को जो श्लोक सुनाया था, उसे सुनो ॥४२॥

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
[1]समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ॥४३॥

अपकारी को अपकार द्वारा बदला देना उचित नहीं। अथवा दूसरे के बुरे काम देख कर, वैसा ही बुरा बर्ताव करना उचित नहीं। प्रत्येक जन को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए। क्योंकि आचार रक्षा ही साधुजनोचित भूषण है ॥४३॥

पापानां वा शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम ।
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ॥४४॥

हे वानर! भले ही कोई पापी हो या धर्मात्मा, अथवा वध करने योग्य ही क्यों न हो, किन्तु श्रेष्ठजनों को उस पर दया ही करनी चाहिए। क्योंकि ऐसा कोई है ही नहीं जो अपराध न करता हो, कुछ न कुछ अपराध तो सभी से हुआ ही करता है ॥४४॥

---

१ समयः—आचारः। ( गो० )

लोकहिंसाविहाराणां रक्षसां कामरूपिणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैव कार्यमशोभनम् ॥४५॥

मेरी समझ में तो यथेच्छ रूपधारी वे राक्षस जो जीवहिंसा करना एक खेल समझते हैं, उनका भी अनिष्ट करना, अच्छी बात नहीं ॥४५॥

एवमुक्तस्तु हनुमान् सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीं यशस्विनीम् ॥४६॥

जब सीता जी ने इस प्रकार कहा, तब वाक्यकोविद हनुमान जी ने उत्तर में यशस्विनी श्रीरामपत्नी सीता जी से कहा ॥४६॥

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी यशस्विनी ।
प्रतिसन्दिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥४७॥

हे देवि! क्यों न हो! तुम हो तो श्रीरामचन्द्र जी ही की यशस्विनी धर्मपत्नी। अब तुम जो सन्देशा श्रीरामचन्द्र जी के लिए मुझसे कहना चाहती हो वह कहो। क्योंकि अब मैं श्रीरामचन्द्र जी के पास जाना चाहता हूँ ॥४७॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
अब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं वानरोत्तम ॥४८॥

जब हनुमान जी ने यह कहा; तब जनकनन्दिनी ने हनुमान जी से कहा—हे वानरोत्तम! मैं तो अपने पति के दर्शन करना चाहती हूँ ॥४८॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतात्मजः ।
हर्षयन् मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महाद्युतिः ॥४९॥

सीता जी का यह कथन सुन, पवननन्दन महाकान्तिमान् हनुमान जी ने मैथिली को हर्षित करते हुए यह कहा ॥४६॥

पूर्णचन्द्राननं रामं द्रक्ष्यस्यार्ये सलक्ष्मणम् ।
स्थिरमित्रं हतामित्रं शचीव त्रिदशेश्वरम् ॥५०॥

हे आर्ये ! लक्ष्मण तथा मित्रों सहित उन चन्द्रवदन और हतशत्रु श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन तुम उसी प्रकार (आज) करोगी जिस प्रकार शची अपने पति इन्द्र के करती हैं ॥५०॥

तामेवमुक्त्वा राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।
आजगाम महावेगो हनुमान् यत्र राघवः ॥५१॥

इति षोडशोत्तरशततमः सर्गः ॥

साक्षात् लक्ष्मी जी की तरह शोभायमान जानकी जी से यह वचन कह, महावेगवान् हनुमान् जी श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट आए ॥५१॥

युद्धकाण्ड का एकसौ सोलहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



## सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः



स उवाच महाप्राज्ञमभिगम्य प्लवङ्गमः ।
रामं वचनमर्थज्ञो वरं सर्वधनुष्मताम् ॥१॥

महापण्डित हनुमान् जी धनुषधारियों में श्रेष्ठ एवं वचन अर्थज्ञ श्रीरामचन्द्र जी के समीप जा कर, बोले ॥१॥

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां च फलोदयः ।
तां देवीं शोकसन्तप्तां मैथिलीं द्रष्टुमर्हसि ॥२॥

हे प्रभो जिनके लिए यह इतना विशाल आयोजन किया गया (अर्थात् समुद्र पर पुल बाँधा गया और जान पर खेल कर युद्ध किया गया) और जो इस समस्त आयोजन का फल स्वरूप हैं, उन शोकपीड़ित सीता देवी को अब दर्शन देना तुमको उचित है ॥२॥

सा हि शोकसमाविष्टा बाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा तव हर्षमुपागमत् ॥३॥

क्योंकि शोक से विकल रोती हुई जानकी तुम्हारे विजय का संवाद सुनते ही हर्षित हो गई ॥३॥

पूर्वकात् प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
भर्तारं द्रष्टुमिच्छामि कृतार्थं सहलक्ष्मणम् ॥४॥

पूर्वकालीन परिचय होने के कारण, सीता जी ने मुझ पर विश्वास किया और यही कहा कि, मैं उन पूर्णकाम (पूर्ण मनोरथ) अपने पति को लक्ष्मण सहित, देखना चाहती हूँ ॥४॥

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतां वरः ।
अगच्छत्सहसा ध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥५॥

जब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी से हनुमान् जी ने यह कहा; तब वे कुछ कुछ आँखों से आँसू भर सोचने लगे ॥५॥

दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य मेदिनीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसङ्काशं विभीषणमुपस्थितम् ॥६॥

फिर लंबी साँस ले वे पृथिवी को निहार कर, मेघ के समान विशालकाय विभीषण से, जो वहीं उपस्थित थे, बोले ॥६॥

दिव्याङ्गरागां वैदेहीं दिव्याभरणभूषिताम् ।
इह सीतां शिरःस्नातामुपस्थापय मा चिरम् ॥७॥

अच्छी तरह उपटन करा और सिर से स्नान करा कर तथा दिव्य भूषणों से भूषित कर, सीता को शीघ्र यहाँ ले आओ ॥७॥

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्वाभिः स्त्रीभिरचोदयत् ॥८॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने यह कहा, तब विभीषण तुरन्त अपने अन्तःपुर में गए और अपनी स्त्रियों द्वारा सीता जी से यह सन्देश कहलाया ( और फिर स्वयं उनके पास जा बोले ) ॥८॥

दिव्याङ्गरागा वैदेहि दिव्याभरणभूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥९॥

हे देवि ! तुम्हारा मङ्गल हो। तुम्हारे पति तुमको देखना चाहते हैं। अतः तुम उपटन लगवा नहा डालो और दिव्य भूषणों से भूषित हो पालकी पर सवार हो लो ॥९॥

एवमुक्ता तु वैदेही प्रत्युवाच विभीषणम् ।
अस्नाता द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसाधिप ॥१०॥

विभीषण के इस प्रकार कहने पर, सीता जी ने उत्तर दिया— हे राक्षसेश्वर ! मैं तो बिना स्नान किए ही अपने स्वामी को देखना चाहती हूँ ॥१०॥

**तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।**
**यदाह राजा भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥११॥**

सीता जी के इस कथन को सुन विभीषण ने कहा—(मेरी समझ में तो) जैसा आपके स्वामी महाराज ने आज्ञा दी है आपको तदनुसार ही करना चाहिए ॥११॥

**तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली भर्तृदेवता ।**
**भर्तृभक्तिव्रता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥१२॥**

विभीषण के ये वचन सुन, पति ही को अपना आराध्य देव समझ, पतिव्रता सती सीता ने पतिभक्तिवश उत्तर दिया—"बहुत अच्छा" ॥१२॥

**ततः सीतां शिरःस्नातां युवतीभिरलङ्कृताम् ।**
**महार्हाभरणोपेतां महार्हाम्बरधारिणीम् ॥१३॥**

तब विभीषण ने अपनी स्त्रियों द्वारा सीता जी को सिर से स्नान करवाए और भूषणों से भूषित करवाया। बहुमूल्य गहने धारण किए हुए तथा बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए जानकी को (विभीषण ने) ॥१३॥

**आरोप्य शिबिकां दीप्तां परार्ध्याम्बरसंवृताम् ।**
**रक्षोभिर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥१४॥**

एक चमचमाती पालकी में जिस पर बड़ा बढ़िया उघार पड़ा हुआ था, सवार करवाया। फिर उस पालकी की रक्षा के लिए बहुत से राक्षसों को नियुक्त कर, पालकी को श्रीरामचन्द्र जी के निकट लिवा ले चले ॥१४॥

सोऽभिगम्य महात्मानं ज्ञात्वाऽपि ध्यानमास्थितम्
प्रणतश्च प्रहृष्टश्च प्राप्तां सीतां न्यवेदयत् ॥१५॥

श्रीरामचन्द्र जी को ध्यानमग्न जान कर भी विभीषण ने अत्यन्त हर्षित हो और प्रणाम कर, सीता जी के आगमन की सूचना दी ॥१५॥

तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृहचिरोषिताम् ।
हर्षो दैन्यं च रोषश्च त्रयं राघवमाविशत् ॥१६॥

रावण के घर में बहुत काल तक बस रहीं हुई सीता जी के आगमन का संवाद सुन, श्रीरामचन्द्र जी के मन में कुछ क्रोध, कुछ हर्ष और कुछ कुछ दीनता उत्पन्न हो गई ॥१६॥

ततः पार्श्वगतं दृष्ट्वा सविमर्शं विचारयन् ।
विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टं राघवोऽब्रवीत् ॥१७॥

निकट आई हुई सीता को देख, उनके विषय में सोच विचार कर, विभीषण से श्रीरामचन्द्र जी ने अप्रसन्न हो, यह कहा ॥१७॥

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजये रत ।
वैदेही सन्निकर्षं मे शीघ्रं समुपगच्छतु ॥१८॥

हे राक्षसेश्वर ! हे सौम्य ! सदा हमारे विजय की कामना में रत रहने वाले मित्र ! जानकी शीघ्र मेरे पास आवें ॥१८॥

स तद्वचनमाज्ञाय राघवस्य विभीषणः ।
तूर्णमुत्सारणे यत्नं कारयामास सर्वतः ॥१९॥

श्रीरामचन्द्र जी का यह कथन सुन कर, धर्मात्मा विभीषण जी ने वहाँ से सब किसी को हटाने का प्रयत्न किया ( क्योंकि पर्दा-प्रथा के अनुरोध वश ) ॥१९॥

१कञ्चुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रजर्झरपाणयः ।
उत्सारयन्तः पुरुषाः समन्तात् परिचक्रमुः ॥२०॥

जामा पगड़ी पहिने हुए खोजे, जो हाथों में बेंत लिये हुए थे, चारों ओर घूम घूम कर पुरुषों को हटाने लगे ॥२०॥

ऋक्षाणां वानराणां च राक्षसानां च सर्वशः ।
वृन्दान्युत्सार्यमाणानि दूरमुत्तस्थुस्तदा ॥२१॥

तब रीछों वानरों और राक्षसों के समस्त दल वहाँ से हटाए जाने पर, दूर जा खड़े हुए ॥२१॥

तेषामुत्सार्यमाणानां सर्वेषां ध्वनिरुत्थितः ।
वायुनोद्वर्तमानस्य सागरस्येव निःस्वनः ॥२२॥

उन सब के हटाने में वैसा ही बड़ा होहल्ला मचा ; जैसा कि वायु के वेग से समुद्र का शब्द होता है ॥२२॥

उत्सार्यमाणांस्तान् दृष्ट्वा समन्ताज्जातसम्भ्रमान् ।
२दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च३ वारयामास राघवः ॥२३॥

इस प्रकार उन समस्त रीछों, वानरों और राक्षसों का बल पूर्वक वहाँ से हटाया जाना देख तथा उन सब को घबड़ाया हुआ देख, श्रीरामचन्द्र जी के मन में उनके प्रति दया उत्पन्न हुई। विभीषण ने यह काम श्रीरामचन्द्र जी से आज्ञा लिए बिना ही किया था , अतएव श्रीरामचन्द्र जी को उनका यह काम अच्छा न लगा । श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण को ऐसा करने से बर्जा ॥२३॥

---

१ कंचुकं—वारबाण । (गो०) २ दाक्षिण्यात्—कृपाविशेषात् । (रा०)
३ अमर्षात्—मदाज्ञांविनोत्सारयतीति विभीषणेऽमर्षः । ( रा० )

संरब्धश्चाब्रवीद्रामश्चक्षुषा प्रदहन्निव ।
विभीषणं महाप्राज्ञं सोपालम्भमिदं वचः ॥२४॥

मारे क्रोध के ऐसी लाल लाल आँखें कर, मानों नेत्राग्नि से वे जला ही डालेंगे, श्रीरामचन्द्र जी ने महाप्राज्ञ विभीषण को उलहना दिया और कहा ॥२४॥

किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयैनमुद्योगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥२५॥

तुम मेरा अनादर कर ( विना मेरी आज्ञा पाए ) मेरे जनों को क्यों सता रहे हो ? अपने लोगों को मना कर दो कि, वे लोग इन लोगों को न सतावें। क्योंकि ये सब तो मेरे स्वजन ही हैं। अर्थात् ये सब तो मेरे घर के लोगों जैसे हैं ॥२५॥

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारास्तिरस्क्रियाः[१] ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियाः ॥२६॥

स्त्रियों के लिए न घर, न चादर का घूँघट, न कनात आदि की चहारदीवारी, न चिक आदि परदा और न इस प्रकार का राजसत्कार ही आड़ ( ओट ) करने वाला है ( जैसा कि तुम कर रहे हो ) ॥२६॥

[२]व्यसनेषु न [३]कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे ।
न क्रतौ न विवाहे च दर्शनं दुष्यति स्त्रियाः ॥२७॥

---

१ तिरस्क्रिया—आवरणं । ( रा० ) २ व्यसनेषु —इष्टजन वियोगेषु । ( गो० ) ३ कृच्छ्रेषु—राज्यक्षोभादिषु । ( गो० )

इष्टजनों का वियोग होने पर, राजविप्लव के समय, समरभूमि में, स्वयंवरसभा में, यज्ञशाला में, विवाह में स्त्रियों का जनसमाज के सम्मुख विना परदे के या बिना घूँघट काढ़े आना, दूषित नहीं है। (अर्थात् इन दशाविशेषों के अतिरिक्त दशाओं में उनका पर्दा छोड़ विना घूँघट के जनसमाज में आना दूषित है) ॥२७॥

[ टिप्पणी—इस कथन से रामायणकाल में परदा प्रथा का आर्यों में व्यापक रूप से प्रचलित होना, स्पष्ट सिद्ध होता है। ]

सैषा युद्धगता चैव कृच्छ्रे च महति स्थिता ।
दर्शनेऽस्या न दोषः स्यान् मत्समीपे विशेषतः ॥२८॥

सीता जी भी इस समय बड़ी भारी विपत्ति में पड़ी हैं और पीड़ित हैं। अतएव ऐसे समय, विशेष कर मेरी उपस्थित में इनका बिना परदे के आना, कोई भी दोष की बात नहीं है ॥२८॥

तदानय समीपं मे शीघ्रमेनां विभीषण ।
सीता पश्यतु मामेषा सुहृद्गणवृतं स्थितम् ॥२९॥

सो हे विभीषण ! तुम शीघ्र (विना पर्दा के ही) सीता को मेरे पास ले आओ, जिससे ये सब मेरे सुहृद्गण सीता को देख सकें ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः ।
रामस्योपानयत् सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥३०॥

श्रीरामचन्द्र जी के ये वचन सुन, विभीषण जी मन में कुछ सोचते विचारते, नम्रतापूर्वक सीता जी को श्रीरामचन्द्र जी के पास ले आए ॥३०॥

ततो लक्ष्मणसुग्रीवौ हनुमांश्च प्लवङ्गमः ।
निशम्य वाक्यं रामस्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥३१॥

किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के ऐसे वचन सुन, लक्ष्मण, सुग्रीव, हनुमान् अत्यन्त दुःखी हुए ॥३१॥

कलत्रनिरपेक्षैश्च इङ्गितैरस्य दारुणैः ।
अप्रीतमिव सीतायां तर्कयन्ति स्म राघवम् ॥३२॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने सीता की ओर देखा, तब उनकी (क्रोध भरी) कठोर चितवन को देख, लक्ष्मणादि ने जाना कि श्रीरामचन्द्र जी सीता पर अप्रसन्न हैं ॥३२॥

लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगता भर्तारं साऽभ्यवर्तत ॥३३॥

उस समय जानकी जी लाज के मारे सिकुड़ती हुई मानों अपने अङ्गों ही में घुसी जाती थीं और विभीषण उनके पीछे पीछे आ रहे थे। इस प्रकार सीता श्रीरामचन्द्र जी के निकट पहुँची ॥३३॥

सा वस्त्रसंरुद्धमुखी लज्जया जनसंसदि ।
रुरोदासाद्य भर्तारमार्यपुत्रेति भाषिणी ॥३४॥

उस जनसमाज में लज्जावश सीता अपना मुख ढके हुए थीं अर्थात् घूँघट काढ़े हुए थीं। करना सीता अपने पति के समीप पहुँच कर "हे आर्य पुत्र" कह कर रो पड़ीं ॥३४॥

[टिप्पणी—यद्यपि श्रीरामचन्द्र जी ने उस समय घूँघट न काढने की बात सप्रमाण कही थी तथापि चिरन्तन अभ्यास वश सीता जी घूँघट काढ़े ही श्रीरामचद्र के निकट गईं।]

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥३५॥

सुन्दरमुखवाली, पति ही को अपना आराध्य देव मानने वाली श्रीजानकी जी विस्मय, हर्ष और प्रेम के वश हो, बहुत देर तक अपने पति का सुन्दर मुख देखती रहीं ॥३५॥

अथ समपनुदन् मनःक्लमं सा
सुचिरमदृष्टमुदीक्ष्य वै प्रियस्य ।
वदनमुदितपूर्णचन्द्रकान्तं[१]
[२]विमलशशाङ्कनिभानना तदानीम् ॥३६॥

इति सप्तदशोत्तरशततमः सर्गः ॥

मन की ग्लानि को त्याग कर, बहुत दिनों से न देखे हुए, अपने पति के उदय होते हुए चन्द्रमा की तरह लाल मुख ( क्रोध के कारण ) को देख, सीता का मुखमण्डल निर्मल चन्द्रमा के समान हो गया ॥३६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ।



## अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

तां तु पार्श्वस्थितां [३]प्रह्वां रामः सम्प्रेक्ष्य मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतक्रोधो व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१॥

---

१ उदितपूर्णचन्द्रकान्तं—इत्यनेन कोपरक्तत्वमुक्तं । (गो०) २ विमल शशाङ्केत्यनेन उत्तरकालिकत्वयः सूच्यते । ( गो० ) ३ प्रह्वां—लज्जया नम्रां । ( गो० )

लज्जा के मारे सिर झुकाए सीता को अपने निकट में खड़ी देख, श्रीरामचन्द्र जी ने उस अपने क्रोध को, जो अभी तक उनके हृदय में छिपा हुआ था, प्रकट करना आरम्भ किया ॥१॥

एषाऽसि निर्जिताः भद्रे शत्रुं जित्वा मया रणे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं तदेतदुपपादितम् ॥२॥

वे कहने लगे—हे भद्रे ! मैंने युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुमको पुनः प्राप्त कर लिया । पुरुषार्थ जो किया जा सकता था वह मैंने कर दिखाया ॥२॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च मया युगपदुद्धृतौ ॥३॥

अब मेरा क्रोध नष्ट हुआ । रावण ने तुमको हर कर मेरा जो अनादर किया था उस अनादर का बदला भी पूरा हो चुका । शत्रु ने जो अनादर की बातें कही थीं, उस अनादर के बदले मैंने युद्ध में शत्रु का वध कर डाला । अथवा युद्ध में उस अनादर को और अनादर करनेवाले शत्रु को साथ ही नष्ट कर डाला ॥३॥

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञत्वात् प्रभवामीह[1] चात्मनः ॥४॥

आज लोगों ने मेरा पुरुषार्थ देख लिया । आज मेरा सारा परिश्रम सफल हुआ । आज मैं अपनी प्रतिज्ञा से पार हुआ और आज मैं स्वतन्त्र हो गया ॥४॥

१ आत्मनः प्रभवामि—स्वतंत्रो भवामि । ( गो० )

या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो[1] मानुषेण मया जितः ॥५॥

मेरी अनुपस्थिति में चञ्चलमना रावण जो तुझको ( पञ्चवटी से ) हर कर ( यहाँ ) ले आया था, वह दैवकृत दोष अर्थात् अपमान था । उस अपमान को मुझ जैसे मनुष्य ने दूर कर दिया ॥५॥

सम्प्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पुरुषार्थोऽस्ति पुरुषस्याल्पतेजसः ॥६॥

जो मनुष्य अपने निरादर को अपने बल विक्रम से दूर नहीं कर सका ; उसका पुरुषार्थ ही किस काम का । ऐसा मनुष्य तो अल्पबल और अल्पविक्रम वाला समझा जाता है ॥६॥

लङ्घनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चावमर्दनम् ।
सफलं तस्य तच्छ्लाघ्यं महत्कर्म हनूमतः ॥७॥

समुद्र का नाँघना, लङ्का को विध्वस्त करना आदि हनुमान् जी ने जो बड़े बड़े सराहने योग्य कार्य किए, वे सब आज सफल हो गए ॥७॥

युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतश्च मे ।
सुग्रीवस्य ससैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥८॥

युद्ध में पराक्रम प्रदर्शित करने वाले और सदा हितयुक्त परामर्श ( सलाह देने वाले सुग्रीव का तथा उनकी सेना का भी सारा परिश्रम आज सफल हुआ ॥८॥

---

१ दोषः—अवमानः । ( गो० )

गिर्गुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपस्थितः ।
विभीषणस्य भक्तस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥९॥

गुणहीन भाई का साथ छोड़ जो स्वयं मेरे पास आकर उपस्थित हुए, उन मेरे भक्त विभीषण का भी परिश्रम आज सफल हुआ ॥९॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य सीता रामस्य तद्वचः ।
मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥१०॥

( बहुत दिनों बाद श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन पाने से ) सीता जी के नेत्र हिरनो की तरह प्रफल्लित हो गए थे, किन्तु श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन, उन नेत्रों में आँसू भर आए ॥१०॥

पश्यतस्तां तु रामस्य भूयः क्रोधो व्यवर्धत ।
प्रभूताज्यावसिक्तस्य पावकस्येव दीप्यतः ॥११॥

उस समय सीता को देख कर, श्रीरामचन्द्र जी का क्रोध पुनः उसी प्रकार भड़का, जिस प्रकार घी डालने से अग्नि धधक उठता है ॥११॥

स बद्ध्वा भ्रुकुटीं वक्त्रे तिर्यक्प्रेक्षितलोचनः ।
अब्रवीत् परुषं सीतां मध्ये वानररक्षसाम् ॥१२॥

उनकी भौंहें चढ़ गईं । उन्होंने टेढ़ी निगाह से सीता को देख, वानरों और राक्षसों के सामने, सीता जी से ये कठोर वचन कहे ॥१२॥

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां परिमार्जता ।
तत्कृतं सकलं सीते शत्रुहस्तादमर्षणात् ॥१३॥

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ।
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥१४॥

हे सीते ! देखो अपना अपमान दूर करने के लिए मनुष्य को जो कुछ करना उचित है, वह मैंने ( रावण को मार कर ) दिखलाया । मैंने क्रोध कर शत्रु के हाथ से तुम्हारा उद्धार वैसे ही किया ; जैसे आत्मस्वरूप को जानने वाले अगस्त्य ने दुर्धर्ष दक्षिण दिशा का, राक्षसों के हाथ से उद्धार किया था ॥१३॥१४॥

विदितश्चास्तु ते भद्रे योयं रणपरिश्रमः ।
स तीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥१५॥

हे भद्रे ! तुमको यह भी जान लेना चाहिए कि, इन इष्टमित्रों ही के बल पराक्रम से मैं संग्राम के परिश्रम से पार हुआ हूँ । किन्तु मैंने यह परिश्रम ( केवल ) तुम्हारे लिए ही नहीं उठाया ॥१५॥

रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वशः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य [1]न्यङ्गं च परिरक्षता ॥१६॥

किन्तु ( रावण को मार कर ) मैंने अपने चरित्र की रक्षा की है और अपनी बदनामी को बचाया है तथा अपने विख्यात वंश के अपयश को धो बहाया है ॥१६॥

प्राप्तचारित्रसन्देहा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढम् ॥१७॥

---

१ न्यंग—अयशस्यं । ( गो० )

हे सीते ! तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है अतः तुम मेरे सामने खड़ी हुई मेरे लिए उसी प्रकार असह्य हो रही हो, जिस प्रकार नेत्ररोग से पीड़ित मनुष्य को सामने रखा हुआ दीपक असह्य जान पड़ता है ॥१७॥

तद्गच्छ ह्यभ्यनुज्ञाता यथेष्टं जनकात्मजे।
एता दश दिशो भद्रे कार्यमस्ति न मे त्वया ॥१८॥

सो हे जनकात्मजे ! ये दसों दिशाएँ तुम्हारे लिए खुली पड़ी हैं। मैं तुम्हें आज्ञा देता हूँ कि, जिधर तुम्हारी इच्छा हो उधर चली जाओ। मुझे तुमसे अब कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥१८॥

कः पुमान् हि कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम्।
तेजस्वी पुनरादद्यात् सुहृल्लेख्येन चेतसा ॥१९॥

क्योंकि ऐसा कौन तेजस्वी पुरुष होगा, जो स्वयं उच्चकुल में उत्पन्न होकर, दूसरे के घर में रही हुई स्त्री को सुहृद् समझ कर (अपनी समझ कर) फिर अङ्गीकार कर लेगा ॥१९॥

रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं [1]व्यपदिशन् महत् ॥२०॥

अतः रावण की गोद में बैठ चुकी हुई, उसकी कुदृष्टि से देखी हुई तुमको, इतने बड़े कुल में उत्पन्न होकर, मैं भला अब क्यों कर ग्रहण करूँ ? ॥२०॥

तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वङ्गो यथेष्टं गम्यतामितः ॥२१॥

---

१ व्यपदिशन्—कीर्तयन्। (गो०)

जिस कीर्त्ति के लिए मैंने तुम्हारा उद्धार किया वह मुझे मिल चुकी। अब मुझे तुमसे कोई मतलब नहीं। अब तुम जहाँ चाहो वहाँ जा सकती हो ॥२१॥

इति प्रव्याहृतं भद्रे मयैतत् कृतबुद्धिना ।
लक्ष्मणे भरते वा त्वं कुरु बुद्धिं यथासुखम् ॥२२॥

सुग्रीवे वानरेन्द्रे वा राक्षसेन्द्रे विभीषणे ।
निवेशय मनः सीते यथा वा सुखमात्मनः ॥२३॥

हे भद्रे ! मैंने निश्चय करके तुमसे यह कहा है। लक्ष्मण, भरत, वानरेन्द्र सुग्रीव अथवा राक्षसेन्द्र विभीषण में से, जिसके यहाँ तुम रहना पसन्द करो या जहाँ तुम्हें सुख मिलने की आशा हो, वहाँ तुम रह सकती हो ॥२२॥२३॥

न हि त्वां रावणो दृष्ट्वा दिव्यरूपां मनोरमाम् ।
मर्षयेत चिरं सीते स्वगृहे परिवर्तिनीम् ॥२४॥

हे सीते ! तुम्हारा दिव्य और मनोहर रूप देख रावण ने जो चाहा होगा सो किया होगा, क्योंकि तुम उसके घर में बहुत दिनों से रहती ही थीं ॥२४॥

ततः प्रियार्हश्रवणा तदप्रियं
प्रियादुपश्रुत्य चिरस्य मैथिली ।
मुमोच बाष्पं सुभृशं प्रवेपिता
गजेन्द्रहस्ताभिहतेव [1]सल्लकी ॥२५॥

इति अष्टादशोत्तरशततमः सर्गः ॥

---

१ सल्लकी—गजभक्ष्यलता विशेषः। ( गो० )

बहुत दिनों से प्यारे वंचन सुनने की आशा लगाए हुए सीता, श्रीरामचन्द्र जी के मुख से इस प्रकार के अप्रियवचन सुन कर, गजेन्द्र द्वारा झकझोरी हुई लता (विशेष) की तरह थरथर काँपने लगीं और नेत्रों से अश्रु विन्दु टपकाने लगी ॥२५॥

युद्धकाण्ड का एकसौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

एवमुक्ता तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम्।
राघवेण सरोषेण भृशं प्रव्यथिताऽभवत् ॥१॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने क्रोध में भर इस प्रकार के कठोर और रोमाञ्चकारी वचन कहे, तब सीता जी बहुत व्यथित हुईं ॥१॥

सा तदश्रुतपूर्वं हि जने महति मैथिली।
श्रुत्वा भर्तुर्वचो रूक्ष लज्जया व्रीडिताभवत् ॥२॥

सब लोगों के सामने पहिले कभी न सुने हुए ऐसे रूखे वचनों को सुन कर, सीता जा ने लज्जित हो सिर नीचा कर लिया ॥२॥

प्रविशन्तीव गात्राणि स्वान्येव जनकात्मजा।
वाक्शल्यैस्तैः सशल्येव भृश प्रव्यथिताऽभवत् ॥३॥

ततो बाष्पपरिक्लिष्टं प्रमार्जन्ती स्वमाननम्।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥४॥

उस समय ऐसा जान पड़ा, मानों जनकनन्दिनी सिकुड़ कर अपने अङ्गों ही में समा जायगी। सीता जी, (श्रीरामचन्द्र जी के) वचन रूपी बाणों की गाँसी हृदय में चुभने से अत्यन्त पीड़ित हुई और आँसुओं से भरे अपने मुँह को पोंछती हुई, गद्गद वाणी से धीरे धीरे अपने पति से यह बोलीं ॥३॥४॥

**किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।**
**रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥५॥**

हे वीर ! तुम ऐसी अनुचित, कर्णकटु और रूखी बातें उस तरह क्यों कहते हो, जिस तरह गँवार आदमी अपनी गँवार स्त्री से कहा करते हैं ॥५॥

**न तथाऽस्मि महाबाहो यथा त्वमवगच्छसि ।**
**प्रत्ययं गच्छ मे येन चारित्रेणैव ते शपे ॥६॥**

हे महाबाहो ! तुमने मुझे जैसा समझ रक्खा है, मैं वैसी नहीं हूँ। इस विषय में तुम मेरे ऊपर विश्वास रक्खो। मैं अपने पातिव्रत धर्म की शपथ खा कर यह बात तुमसे कहती हूँ ॥६॥

**[1]पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशङ्कसे ।**
**परित्यजेमां शङ्कां तु यदि तेऽहं परीक्षिता[2] ॥७॥**

गँवार स्त्रियों के चरित्र से सारी की सारी स्त्रीजाति के ऊपर सन्देह करना उचित नहीं। यदि तुम मेरे स्वभाव से परिचित हो, तो मेरे चरित्र के सम्बन्ध में (तुम्हारे मन में) जो सन्देह उठ खड़ा हुआ है उसे तुम (अपने मन से) दूर कर डालो ॥७॥

---

१ पृथक्—प्राकृत। (गो०) २ परीक्षिता—ज्ञातस्वभावा। (गो

यद्यहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥८॥

हे प्रभो ! जब रावण ने मुझे पकड़ा तब उसने मेरा शरीर ( अवश्य ) स्पर्श किया था, किन्तु उस समय मैं विवश थी। मेरी इच्छा से उसने मेरा शरीर नहीं छुआ था। इसमें मेरा कुछ भी अपराध नहीं, इसके लिये तो दैव ( भाग्य ) ही अपराधी है ॥८॥

मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी[1] ॥९॥

मेरे अधीन जो मेरा मन है, वह तुम्हीं में लगा रहता है। ( उसे कोई नहीं छू सका ) किन्तु मेरा शरीर पराधीन था। सो मैं ऐसी अस्वतंत्र कर ही क्या सकती हूँ ॥९॥

सह संवृद्धभावाच्च संसर्गेण च मानद ।
यद्यहं ते न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम् ॥१०॥

हे मानद ! ( इतने दिनों तक साथ साथ रहने पर ) साथ ही साथ पले पोसे मेरे भावों को, यदि तुम न जान पाये, तो मैं तो सदा ही के लिये मार डाली गयी ॥१०॥

प्रेषितस्ते यदा वीरो हनुमानवलोककः ।
लङ्कास्थाऽहं त्वया वीर किं तदा न विसर्जिता ॥११॥

जब तुमने मुझे देखने के लिए हनुमान जी को लङ्का में भेजा था, तब उन्हींके द्वारा मेरे परित्याग की बात मुझसे क्यों तुमने न कहला भेजी ? ॥११॥

---

१ अनीश्वरी—अस्वतंत्रा। ( गो० )

प्रत्यक्षं वानरेन्द्रस्य त्वद्वाक्यसमनन्तरम् ।
त्वया संत्यक्तया वीर त्यक्तं स्याज्जीवितं मया ॥१२॥

यदि उस समय यह बात मुझे मालूम हो जाती, तो तुम्हारे भेजे हुए हनुमान् के सामने ही तुम्हारी त्यागी हुई मैं, अपने प्राण त्याग देती ॥ १२ ॥

न वृथा ते श्रमोऽयं स्यात् संशये न्यस्य जीवितम् ।
सुहृज्जनपरिक्लेशो न चायं निष्फलस्तव ॥१३॥

ऐसा करने से न तो तुमको व्यर्थ इतना श्रम उठाना पड़ता और न अपने प्राणों को सन्देह में डालना पड़ता तथा न इन अपने हितैषी मित्रों को ही वृथा कष्ट देना पड़ता ॥ १३ ॥

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुवर्तता ।
लघुनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्[१] ॥१४॥

हे नरशार्दूल ! तुमने तो ओछे मनुष्यों की तरह क्रोध के वशवर्ती हो साधारण स्त्रियों की तरह मुझको भी समझ लिया ॥ १४ ॥

अपदेशेन जनकान्नोत्पत्तिर्वसुधातलात् ।
मम वृत्तं च वृत्तज्ञ बहु तेन पुरस्कृतम् ॥१५॥

हे वृत्तज्ञ मेरा समस्त वृत्तान्त जानने वाले ! मैं जनक की लड़की हूँ । इस विचार से तुमने न तो मेरी पृथिवी से उत्पत्ति ही की ओर ध्यान दिया और न मेरे ( लोकोत्तर ) चरित्र ही का कुछ विचार किया ॥ १५ ॥

---

१ पुरस्कृतं—चिन्तितम् । ( रा० )

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥१६॥

बाल्यावस्था में (विवाह के समय) तुमने जो मेरा हाथ पकड़ा था। उसका भी तुमने प्रमाण न माना। अपने प्रति मेरी भक्ति और मेरे शील की ओर से भी तुमने मुँह फेर लिया ॥ १६ ॥

टिप्पणी—तेजस्विनी सीता माता ने कैसी निर्भीकता से और खरे शब्दों में अपने प्रति की अनुचित भर्त्सना का समाधान किया है। सीता जी के इस कथन में ऐसी एक भी लाचर बात नहीं जिसका कोई खण्डन कर सका हो।

एवं ब्रुवाणा रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।
अब्रवील्लक्ष्मणं सीता दीनं ध्यानपरं स्थितम् ॥१७॥

इस प्रकार कह कर रोती, आँसू बहाती तथा गद्गद हो कर सीता, लक्ष्मण जी से, जो उस समय उदास हो, एकाग्र मन से कुछ सोच रहे थे, बोली ॥१७॥

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्योपघातोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥१८॥

हे लक्ष्मण! इस मिथ्यापवाद से पीड़ित हो, मैं अब जीना नहीं चाहती। अतः तुम अब मेरे लिए चिता बना दो। क्योंकि ऐसे रोग की एकमात्र यही औषध है ॥१८॥

अप्रीतस्य गुणैर्भर्तुस्त्यक्ताया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥१९॥

मेरे गुणों से अप्रसन्न होकर सब लोगों के सामने, मेरे पति ने मुझे त्यागा है। अत; मेरे लिए अब यही उचित है कि, मैं आग में प्रवेश करूँ अथवा आग में जल मरूँ ॥१९॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
अमर्षवशमापन्नो राघवाननमैक्षत ॥२०॥

जब शत्रुघाती लक्ष्मण से जानकी जी ने इस प्रकार कहा, तब लक्ष्मण जी ने क्रोध में भर श्रीरामचन्द्र जी की ओर ( इस विषय में उनका आन्तरिकभाव जानने के लिए देखा ॥२०॥

स विज्ञाय ततश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥२१॥

श्रीरामचन्द्र जी की मुखाकृति से लक्ष्मण ने जान लिया कि, वे भी यही चाहते हैं। अतः वीर्यवान् श्रीरामचन्द्र जी के मतानुसार उन्होंने चिता बनाकर तैयार कर दी ॥२१॥

अधोमुखं तदा रामं शनैः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपासर्पत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥२२॥

नीचे की ओर मुख किए धीरे धीरे श्रीरामचन्द्र जी की परिक्रमा कर, वैदेही दहकती हुई आग के निकट गई ॥२२॥

प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥२३॥

मैथिली ने देवताओं और ब्राह्मणों को प्रणामकर अग्नि के पास खड़े होकर तथा हाथ जोड़ कर यह कहा ॥२३॥

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥२४॥

जिस प्रकार मेरा मन श्रीरामचन्द्र जी की ओर से कभी चलायमान नहीं हुआ, उसी प्रकार सब लोकों के साक्षी अग्निदेव सब प्रकार से मेरी रक्षा करें ॥२४॥

यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥२५॥

मेरा चरित्र शुद्ध होने पर भी जैसे श्रीरामचन्द्र जी मुझको दुष्ट चरित्र वाली समझते हैं, वैसे ही लोकसाक्षी अग्निदेव मेरी सब प्रकार से रक्षा करें ॥२५॥

कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥२६॥

कर्म, वचन और मन से यदि मैं सर्वधर्मज्ञ श्रीरामचन्द्र जी को छोड़, दूसरे को न जानती होऊँ, (पति रूप से) तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें ॥२६॥

आदित्यो भगवान् वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा संध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ॥२७॥
यथान्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ।
एवमुक्त्वा तु वैदेही परिक्रम्य हुताशनम् ॥२८॥

सूर्य, भगवान् पवन, दिशाएँ, चन्द्रमा, दिवस, सन्ध्या, रात्रि, पृथिवी तथा अन्य सब लोग जिस प्रकार मुझको चरित्रवती जानते हैं, (उसी प्रकार हे पावक! तुम मेरी रक्षा करो) यह कह कर वैदेही ने अग्निदेव की परिक्रमा की ।।२७॥२८॥

विवेश ज्वलनं दीप्तं [1]निःसङ्गेनान्तरात्मना ।
जनः स सुमहांस्त्रस्तो बालवृद्धसमाकुलः ॥२९॥

[1] निःसंगेन—शरीरे निरभिलाषेण । (गो०)

और अपने शरीर की कुछ भी परवाह न कर सीता जी धध-कती हुई आग में घुस गईं। (उस समय) वहाँ बालक बूढ़े जो उपस्थित थे, वे सब यह देख कर भयभीत हो गए ॥२९॥

ददर्श मैथिलीं तत्र प्रविशन्तीं हुताशनम् ।
सा तप्तनवहेमाभा तप्तकाञ्चनभूषणा ॥३०॥

उन सब लोगों ने सीता को अग्नि में घुसते हुए देखा। सोने के समान कान्ति वाली और सुवर्ण भूषणों से भूषित ॥३०॥

पपात ज्वलनं दीप्तं सर्वलोकस्य सन्निधौ ।
ददृशुस्तां महाभागां प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥३१॥

सीता सब के सामने आग में घुस गई। उस महाभागा सीता को अग्नि में घुसते सब ने देखा ॥३१॥

सीतां कृत्स्नास्त्रयो लोकाः *पूर्णामाज्याहुतीमिव ।
प्रचुक्रुशुः स्त्रियः सर्वास्तां दृष्ट्वा हव्यवाहने ॥३२॥

अखिल तीनों लोकों ने देखा कि, घी की पूर्णाहुति की तरह सीता देवी आग में गिर पड़ीं। तब वहाँ उस समय जो स्त्रियाँ थीं, वे सब हाय! हाय!! कह कर चिल्लाने लगीं ॥३२॥

पतन्तीं संस्कृतां मन्त्रैर्वसोर्धारामिवाध्वरे ।
ददृशुस्तां त्रयोलोका देवगन्धर्वदानवाः ।
शप्तां पतन्तीं निरये त्रिदिवाद्देवतामिव ॥३३॥

मंत्राभिषिक्त वसोर्धारा के समान अग्नि में गिरती हुईं सीता जी को, तीनों लोकों तथा देवताओं, गन्धर्वों और दानवों ने वैसे ही देखा, जैसे शापित देवी स्वर्ग से नरक में गिरती है ॥३३॥

---

* पाठान्तरे—"पुण्यामाज्याहुतीमिव ।"

तस्यामग्निं विशन्त्यां तु हाहेति विपुलः स्वनः ।
रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥३४॥

इति एकोनविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

सीता के अग्नि में घुसने पर, राक्षसों और वानरों का बड़ाभारी और अद्भुत हाहाकारयुक्त कोलाहल हुआ ॥३४॥

युद्धकाण्ड का एकसौ उन्नीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—*—

## विंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

ततो हि दुर्मना रामः श्रुत्वैव वदतां गिरः ।
[1]दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥१॥

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी उन सब का ऐसा हाहाकार सुन बहुत उदास हो गए । वे आँखों में आँसू भर कर, कुछ देर तक मन ही मन कुछ सोचते विचारते रहे ॥१॥

ततो वैश्रवणो राजा यमश्चामित्रकर्शनः ।
सहस्राक्षो महेन्द्रश्च वरुणश्च *जलेश्वरः ॥२॥

[2]षडर्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ।
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा वेद विदां वरः ॥३॥

---

१ दध्यौ—मनसाधनं कृतवान् । (गो०) २ षडर्धनयनः –त्रिनेत्र इत्यर्थः । (रा०) * पाठान्तरे— "परन्तपः ।"

एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्यसन्निभैः ।
आगम्य नगरीं लङ्कामभिजग्मुश्च राघवम् ॥४॥

इतने ही में यक्षों के राजा कुबेर, शत्रुकर्शनकारी यम, सहस्राक्ष, इन्द्र, जल के राजा वरुण, वृषध्वज त्रिलोचन महादेव वेदवादियों में श्रेष्ठ एवं समस्त सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी—ये सब देवता सूर्य के समान विमानों में बैठ कर आए और लङ्का में पहुँच, वे श्रीरामचन्द्र जी के निकट गए ॥२॥३॥४॥

ततः सहस्ताभरणान् प्रगृह्य विपुलान् भुजान् ।
अब्रुवंस्त्रिदशश्रेष्ठाः प्राञ्जलिं राघवं स्थितम् ॥५॥

उन सब देवताओं को आया हुआ देख, श्रीरामचन्द्र जी हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। तब भूषणों से भूषित देवता गण, अपनी अपनी विशाल भुजाओं को उठा कर बोले ॥५॥

कर्ता सर्वस्य लोकस्य श्रेष्ठो ज्ञानवतां वरः ।
उपेक्षसे कथं सीतां पतन्तीं हव्यवाहने ॥६॥

तुम समस्त लोकों के रचने वाले, सब देवताओं में श्रेष्ठ और ज्ञानियों के शिरोमुकुट हो। ऐसे होकर भी, अग्नि में गिरती हुई जानकी जी की तुम क्यों उपेक्षा कर रहे हो ? ॥६॥

कथं देवगणश्रेष्ठमात्मानं नावबुध्यसे ।
[1]ऋतधामा वसुः पूर्वं वसूनां त्वं प्रजापतिः ॥७॥

---

१ ऋतधामाख्यो वसुः । (गो०)

हे देवताओं में श्रेष्ठ ! क्या तुम अपने को नहीं जानते ? अथवा तुम देवताओं में श्रेष्ठ होने पर भी, किसी कारणवश अपने को भूले हुए हो ? तुम ( प्रथम कल्प में ) अष्टवसुओं में से, प्रजापति ऋतुधामा नाम के वसु थे ॥७॥

त्रयाणां त्वं हि लोकानामादिकर्ता स्वयंप्रभुः ।
रुद्राणामष्टमो रुद्रः साध्यानामसि पञ्चमः ॥८॥

तुम तीनों लोकों के आदिरचयिता, स्वयंप्रभु, रुद्रों में आठवें रुद्र और साध्यों में पाँचवें साध्य हो ॥८॥

अश्विनौ चापि ते कर्णौ चन्द्रसूर्यौ च चक्षुषी ।
अन्ते चादौ च लोकानां दृश्यसे त्वं परन्तप ॥९॥

हे परन्तप ! अश्विनीकुमार तुम्हारे कान, तथा सूर्य और चन्द्र तुम्हारे नेत्र हैं । प्रलय के समय और सृष्टि की आदि में एक तुम ही देख पड़ते हो ॥९॥

उपेक्षसे च वैदेहीं मानुषः प्राकृतो यथा ।
इत्युक्तो लोकपालैस्तैः स्वामी लोकस्य राघवः ॥१०॥

अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठान् रामो धर्मभृतां वरः ।
आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ॥११॥

( ऐसे हो कर भी ) तुम संसारी मनुष्य की तरह वैदेही की उपेक्षा करते हो ! जब उन लोकपालों ने इस प्रकार कहा, तब लोकनाथ एवं धर्मात्मों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र जी ने उन श्रेष्ठ देवताओं से कहा, मैं तो अपने को महाराज दशरथ का पुत्र राम नाम का एक मनुष्य (मात्र) जानता हूँ ॥१०॥११॥

योऽहं[1] यस्य[2] [3]यतश्चाहं भगवांस्तद्ब्रवीतु मे ।
इति ब्रुवन्तं काकुत्स्थं ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ॥१२॥

परन्तु मेरा जो स्वरूप है, जिससे मेरा सम्बन्ध है और मेरा जो प्रयोजन है, उसे आप स्पष्ट रूप से प्रकट करें । जब श्रीरामचन्द्र जी ने यह पूँछा, तब ब्रह्मवादियों में श्रेष्ठ ब्रह्मा जी ने उत्तर देते हुए ॥१२॥

अब्रवीच्छृणु मे राम सत्यं सत्यपराक्रम ।
भगवान्नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधो विभुः[4] ॥१३॥

कहा कि, हे सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र ! मैं जो सत्य सत्य बातें कहता हूँ, उन्हें सुनो । तुम ही जल में शयन करने वाले श्रीमान् चक्रधारी सर्वव्यापी श्रीमन्नारायण हो ॥१३॥

एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित् ।
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव ॥१४॥

हे राघव ! प्रलयकाल में जल में डूबी हुई पृथिवी का उद्धार करने वाले एक शृङ्गधारी वराह तुम ही हो । ( श्रुति भी कहती है—"उद्धृतासि वराहेण") । तुम भूतकालीन मधुकैटभादि शत्रुओं के तथा आगे उत्पन्न होने वाले शिशुपालादि शत्रुओं के नाश करने वाले हो । तुम ही अव्यय ( कभी नाश न होने वाले ) सत्य-ब्रह्म हो । सृष्टि के मध्य और अन्त में वर्तमान रहने वाले भी तुम्हीं हो ॥१४॥

---

१ योहमितिस्वरूपप्रश्नः ( गो० ) २ यस्येति सम्बन्धप्रश्नः । ( गो० )
३ यतइति प्रयोजनप्रश्नः । ( गो० ) ४ विभुः—व्यापक इत्यर्थः । ( गो०

**लोकानां त्वं परो धर्मो१ विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः ।**
**शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः ॥१५॥**

सब लोकों के तुम सिद्ध रूप धर्म हो। विष्वक्सेन और चतुर्भुज तुम्हीं हो। तुम्हीं *शार्ङ्गधन्वा, †हृषीकेश, पुरुष और पुरुषोत्तम हो ॥१५॥

**अजितः खड्गधृद्विष्णुः २कृष्णश्चैव बृहद्बलः ।**
**सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः ॥१६॥**

तुम अजित हो, नन्दन नामक खड्गधारी तुम्हीं हो, तुम्हीं विष्णु हो, तुम्हीं कृष्ण हो, तुम्हीं बृहद्बल हो। तुम्हीं सेनानी हो। तुम्हीं ग्रामणी ( ग्रामं नयतीति ग्रामणीः ) हो, तुम्हीं निश्चयात्मक बुद्धि वाले हो तुम्हीं सत्त्व, तुम्हीं क्षमा, तुम्हीं दम हो ॥१६॥

[ टिप्पणी—कृष्ण नाम से ब्रह्मा का अभिप्राय वासुदेव या वसुदेव सुतसे नहीं किन्तु— "कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचकः" से है ]

**प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः ।**
**इन्द्रकर्मा महेन्द्रस्त्वं पद्मनाभो रणान्तकृत् ॥१७॥**

तुम्हीं समस्त सृष्टि के रचयिता और तुम्हीं समस्त सृष्टि के लय करने वाले हो। तुम्हीं उपेन्द्र और मधुसूदन हो। तुम्हीं इन्द्रकर्मा, तुम्हीं महेन्द्र, तुम्हीं पद्मनाभ और तुम्हीं रणान्तक हो ॥१७॥

**शरण्यं शरणं च त्वामाहुर्दिव्या महर्षयः ।**
**सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतजिह्वो महर्षभः ॥१८॥**

---

१ परोधर्मः—सिद्धरूपो धर्मः। (गो०) २ कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः। ( गो० )

* शार्ङ्ग नामक धनुष वाले। † हृषीकेश का अर्थ है इन्द्रियों के स्वामी।

दिव्य महर्षिगण तुम्हीं को शरणागतवत्सल और रक्षणोपाय बतलाते हैं। तुम्हीं सहस्रशृङ्गधारी, वेदों के आत्मा, शतजिह्वा और वृषभ रूप हो ॥१८॥

**त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयम्प्रभुः ।**
**सिद्धानामपि साध्यानामाश्रयश्चासि पूर्वजः ॥१९॥**

तुम्हीं तीनों लोकों के आदिकर्त्ता और स्वयंप्रभु हो। तुम्हीं सिद्धों और साध्यों के आश्रयदाता और पूर्वज हो ॥१९॥

**त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोंकारः परन्तपः ।**
**प्रभवं निधनं वा ते न विदुः को भवानिति ॥२०॥**

तुम्हीं यज्ञ, तुम्हीं वषट्कार, तुम्हीं ओंकार और तुम्हीं उत्कृष्ट तप हो। तुम्हारी उत्पत्ति और लय का हाल किसी को नहीं मालूम। यह भी कोई नहीं जानता कि, आप हैं क्या? ॥२०॥

**दृश्यसे सर्वभूतेषु ब्राह्मणेषु च गोषु च ।**
**दिक्षु सर्वासु गगने पर्वतेषु वनेषु च ॥२१॥**

तुम्हीं समस्त प्राणियों में, समस्त ब्राह्मणों में, समस्त गौओं में, समस्त दिशाओं में, आकाश में, पर्वतों में, और वनों में दिखलाई देते हो ॥२१॥

**सहस्रचरणः श्रीमाञ्शतशीर्षः सहस्रदृक् ।**
**त्वं धारयसि भूतानि वसुधां च सपर्वताम् ॥२२॥**

तुम सहस्रचरण (सहस्र पैरोंवाले), तुम श्रीमान् (शोभासम्पन्न), शतशीर्ष (सहस्र सिरवाले) और सहस्रदृक् (सहस्र

नेत्रों वाले) हो। तुम समस्त पर्वतों सहित इस पृथिवी को तथा समस्त प्राणियों को धारण करने वाले हो ॥२२॥

अन्ते १पृथिव्याः सलिले दृश्यसे त्वं महोरगः।
त्रींल्लोकान् धारयन् राम देवगन्धर्वदानवान् ॥२३॥

पृथिवी के विनाशकाल में जल में तुम शेषशायी रूप धारण करते हो। हे राम! तुम देवता, गन्धव और दानवों सहित तीनों लोकों को धारण करने वाले हो ॥२३॥

अहं ते हृदयं राम जिह्वा देवी सरस्वती।
देवा गात्रेषु रोमाणि निर्मिता ब्रह्मणः प्रभो ॥२४॥

हे राम! मै तुम्हारा हृदय और सरस्वती देवी तुम्हारी जिह्वा हैं। हे प्रभो! मेरे रचे हुए समस्त देवता तुम्हारे शरीर के रोम हैं ॥२४॥

निमेषस्ते भवेद्रात्रिरुन्मेषस्ते भवेद्दिवा।
२संस्कारास्तेऽभवन् वेदा न तदस्ति त्वया विना ॥२५॥

तुम्हारे पलक झपकाने से रात और पलक खोलने से दिन होता है। तुम्हारे संस्कार ही से संसार को प्रवृत्ति और निवृत्ति व्यवहार जनाने वाले वेदों की उत्पत्ति हुई है। अतः संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें अन्तर्यामी रूप से तुम वर्तमान न हो ॥२५॥

जगत्सर्वं शरीरं ते स्थैर्यं ते वसुधातलम्।
अग्निः कोपः प्रसादस्ते सोमः श्रीवत्सलक्षण ॥२६॥

---

१ पृथिव्या अंते—विनाशे। (गो०) २ संस्कारा इति संस्काराः प्रवृत्तिनिवृत्तिव्यवहारबोधकास्ते वेदा अभवन्। (शि०)

यह सारा जगत् तुम्हारा शरीर है और पृथिवी में समस्त प्राणियों को धारण करने की जो शक्ति है, वह शक्ति भी तुम्हारी ही है। हे श्रीवत्सलक्षण! अग्नि में जो ताप (दहन शक्ति) है वह तुम्हारा कोप है और चन्द्रमा में जो शीतलता है, वह तुम्हारी प्रसन्नता है ॥२६॥

त्वया लोकास्त्रयः क्रान्ताः पुराणे विक्रमैस्त्रिभिः।
महेन्द्रश्च कृतो राजा बलिं बद्ध्वा महासुरम् ॥२७॥

पूर्वकाल में तीन पग से तीनों लोकों का नापने वाले तुम्हीं हो और दानवराज बलि का बाँध कर इन्द्र को राजा बनाने वाले भी तुम्हीं हो ॥२७॥

[ टिप्पणी—श्रीरामचन्द्र जी के, बारहवे श्लोक मे किए हुए स्वरूप सम्बधी तथा जगत् से सम्बध रूपी प्रश्नों का उत्तर यहाँ तक दे, ब्रह्मा जी इसके आगे उनके पृथिवीतल पर आगमन सम्बंधी प्रयोजन को इस प्रकार बतलाते हैं:—]

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः।
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम् ॥२८॥

यह सीता देवी भगवती लक्ष्मी हैं और तुम विष्णु, कृष्ण तथा प्रजापति देव हो। इस रावण को मारने के लिए ही तुम मनुष्य रूप में धराधाम पर अवतीर्ण हुए हो ॥२८॥

तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया धर्मभृतां वर।
निहतो रावणो राम प्रहृष्टो दिवमाक्रम ॥२९॥

हे धर्मात्माओं में श्रेष्ठ! इस हमारे काम को तुमने पूरा कर दिया। हे राम! तुम रावण को मार ही चुके। अब तुम सुप्रसन्न हो कर, स्वर्ग को पधारो ॥२९॥

अमोघं बलवीर्यं ते अमोघस्ते पराक्रमः ।
अमोघं दर्शनं राम न च मोघः स्तवस्तव ॥३०॥

तुम्हारा बलवीर्य और पराक्रम अमोघ है (अर्थात् कभी निष्फल जाने वाला नहीं। अतः तुम्हारा कोई सामना नहीं कर सकता।) हे राम ! तुम्हारा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता और तुम्हारी स्तुति भी कभी निष्फल नहीं जाती ॥३०॥

अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तश्च ये नराः ।
ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम् ॥३१॥
प्राप्नुवन्ति सदा कामानिह लोके परत्र च ॥३२॥

जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारा आराधन करेंगे उनका आराधन भी कभी निष्फल नहीं होगा। जो लोग पुराणपुरुषोत्तम अर्थात् तुम्हारे दृढ़ भक्त अथवा अनन्य भक्त होंगे वे इस लोक और परलोक में सदा अपने अभीष्ट को पावेंगे। अर्थात् सदा उनकी मनोकामनाएँ पूरी होंगी ॥३१॥३२॥

इममार्षं स्तवं नित्यमितिहासं पुरातनम् ।
ये नराः कीर्तयिष्यन्ति नास्ति तेषां पराभवः[१] ॥३३॥

इति विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

जो लोग ऋषिप्रोक्त इतिहासान्तर्गत इस प्राचीन स्तव को पढ़ेंगे उनको पुनः संसार में आना न पड़ेगा ॥३३॥

युद्धकाण्ड का एकसौ बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

१ पराभवः—पुनरावृत्तिः। (गो०)

# एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पितामहसमीरितम् ।
अङ्केनादाय वैदेहीमुत्पपात विभावसुः[1] ॥१॥

पितामह ब्रह्मा जी के कहे हुए, इन शुभ वचनों को सुन कर अग्निदेव सीता जी ० को गोद में लेकर ( उस चिता से ) प्रकट हुए ॥१॥

स विधूय[2] चितां तां तु वैदेहीं हव्यवाहनः ।
उत्तस्थौ [3]मूर्तिमानाशु गृहीत्वा जनकात्मजाम् ॥२॥

जब उस चिता की आग ठंडी पड़ गई तब अग्निदेव मनुष्य जैसा शरीर धारण कर जनकनन्दिनी वैदेही को लिये हुए शीघ्रतापूर्वक निकले ॥ २॥

तरुणादित्यसङ्काशां तप्तकाञ्चनभूषणाम् ।
रक्ताम्बरधरां बालां नीलकुञ्चितमूर्धजाम् ॥३॥

अक्लिष्टमाल्याभरणां तथारूपां मनस्विनीम्[4] ।
ददौ रामाय वैदेहीमङ्के कृत्वा विभावसुः ॥४॥

उस समय सीता, तरुण ( मध्याह्नकालीन ) सूर्य की तरह, सुवर्ण के भूषणों से भूषित, लाल साड़ी पहिने, काले और घुँघराले

---

१ विभावसुः अग्निः । ( गो० ) २ विधूय—चिता शिथिलीकृत्य । ( गो० ) ३ मूर्तिमान्—मनुष्यविग्रहवान् ( गो० ) ४ मनस्विनीम्—प्रसन्नमनस्कामित्यर्थः ( गो० )

वालों से शोभित खिले हुए फूलों की माला तथा आभूषण पहिने एवं पहिला ही रूप धारण किए हुए थीं। उस समय उनका मन प्रसन्न हो रहा था। (अग्निपरीक्षा द्वारा निर्दोष सिद्ध होने के कारण।) ऐसी जनकनन्दिनी को गोद में लेकर, अग्नि देव ने श्रीरामचन्द्र जी को समर्पण किया ॥३॥४॥

अब्रवीच्च तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥५॥

नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौण्डीर न त्वामतिचचार ह ॥६॥

तदनन्तर सब लोकों के साक्षी अग्निदेव ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा—हे राम! यह तुम्हारी सीतादेवी हैं। इनमें किसी प्रकार का पाप नहीं है। हे धर्मशील! मन, वचन, बुद्धि और नेत्रों से आपको छोड़, ये दूसरे की ओर कभी नहीं फिरीं। यह सब प्रकार से सदाचारिणी हैं ॥५॥६॥

रावणेनापनीतैषा वीर्योत्सिक्तेन रक्षसा ।
त्वया विरहिता दीना विवशा निर्जनाद्वनात् ॥७॥

उस समय बल के घमण्डी रावण ने तुम्हारी अनुपस्थिति में अकेली पाकर इस बेचारी को निर्जनवन से हर लिआ था। उस समय यह बेचारी कर ही क्या सकती थी ॥७॥

रुद्धा चान्तःपुरे गुप्ता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ।
रक्षिता राक्षसीसङ्घैर्विकृतैर्घोरदर्शनैः ॥८॥

यद्यपि उसने इनको लङ्का में लाकर अपने अन्तःपुर में पहरे के भीतर रखा, तथापि इनका मन आपही में लगा हुआ था।

उस समय कुरूपा और भयङ्कर रूप वाली राक्षसियाँ इनकी रखवाली किया करती थीं ॥८॥

प्रलोभ्यमाना विविधं भर्त्स्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥९॥

वे इनको लोभ दिखलाती थीं। तथा डाटतीं डपटती भी थीं किन्तु इनका मन आपमें लगे रहने के कारण इन्होंने रावण की ओर कुछ भी ध्यान न दिया ॥९॥

विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृह्णीष्व राघव ।
न किंचदभिधातव्यमहमाज्ञापयामि ते ॥१०॥

हे राघव ! इस विशुद्ध हृदय वाली पापरहित सीता को, तुम अङ्गीकार करो। मैं तुमको आज्ञा देता हूँ कि, अब तुम इस विषय में इनसे कुछ न कहो ॥१०॥

ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैतद्वदतां वरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा बाष्पव्याकुललोचनः ॥११॥

अग्निदेव के इन वचनों को सुन, बोलने वालों में श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी प्रसन्न हो गए और कुछ देर तक सोचते रहे तथा उनके नेत्रों में आँसू उमड़ आए ॥११॥

एवमुक्तो महातेजा द्युतिमान् दृढविक्रमः ।
अब्रवीत्त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतां वरः ॥१२॥

तदनन्तर महातेजस्वी, कान्तिमान्, दृढ़पराक्रमी एवं धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, श्रीरामचन्द्र जी श्रेष्ठ अग्निदेव से बोले ॥१२॥

**अवश्यं त्रिषु लोकेषु न सीता पापमर्हति ।**
**दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तःपुरे शुभा ॥१३॥**

निश्चय ही तीनों लोकों के बीच जानकी पवित्र हैं । किन्तु यह सौभाग्यवती बहुत दिनों तक रावण के रनवास में रही हैं ॥१३॥

**बालिशः खलु कामात्मा रामो दशरथात्मजः ।**
**इति वक्ष्यन्ति मां सन्तो जानकीमविशोध्य हि ॥१४॥**

यदि मैं जानकी की शुद्धता की परीक्षा न कर, इन्हें शुद्ध सिद्ध न करवाता, तो सब लोग यही कहते कि, महाराज दशरथ के पुत्र श्रीरामचन्द्र बड़े कामी और अनाड़ी हैं ॥१४॥

**अनन्यहृदयां भक्तां मच्चित्तपरिवर्तिनीम् ।**
**अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥१५॥**

यह मुझे मालूम है कि, सीता मुझे छोड़ अपने मन में अन्य किसी को स्थान नहीं दे सकती अर्थात् वह मुझमें अनन्य अनुरागवती है ॥१५॥

[ टिप्पणी — जब श्रीरामचंद्र जी सीता के चरित्र के विषय में ऐसा दृढ़ विश्वास रखते थे, तब उन्हें अग्निप्रवेश से रोका क्यों नहीं ? इस शंका के समाधान में वे कहते हैं:— ]

**प्रत्ययार्थं तु लोकानां त्रयाणां सत्यसंश्रयः ।**
**उपेक्षे चापि वैदेहीं प्रविशन्तीं हुताशनम् ॥१६॥**

मैंने सत्य का आश्रय लेते हुए, अग्नि में प्रवेश करते समय सीता को इसलिए नहीं रोका था और इनकी उपेक्षा की थी, जिससे तीनों लोकों को इनकी विशुद्ध चरित्रता का विश्वास हो जाय ॥१६॥

[ टिप्पणी—किन्तु उत्तरकाण्ड में सीता-परित्याग का प्रसंग देखने पर श्रीरामचंद्र का यह अनुमान ठीक सिद्ध न हुआ । ]

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥१७॥

जिस प्रकार समुद्र कभी अपनी मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करता उसी प्रकार रावण भी, अपने पातिव्रत धर्म से अपनी रक्षा करने वाली, इन विशालनयना सीता का अनादर नहीं कर सकता था ( रावण अवश्य अनादर करता यदि उसे वेदवती के शाप का भय न होता । वेदवती के शाप की कथा उत्तरकाण्ड में देखो ॥१७॥

न हि शक्तः स दुष्टात्मा मनसाऽपि हि मैथिलीम् ।
प्रधर्षयितुमप्राप्तां दीप्तामग्निशिखामिव ॥१८॥

दुष्ट रावण की क्या मजाल थी जो सीता पर मन भी चलाता । क्योंकि प्रज्वलित आग की तरह, यह उसके हाथ लगने वाली वस्तु न थी ॥१८॥

नेयमर्हति चैश्वर्यं रावणान्तःपुरे शुभा ।
अनन्या हि मया सीता भास्करेण प्रभा यथा ॥१९॥

रावण के बढ़िया रनवास में रह कर भी, सीता उसके ऐश्वर्य की चाहना नहीं कर सकती थीं—अर्थात् लोभ में नहीं फँस सकती थीं । क्योंकि सीता तो मुझमें वैसे ही अनन्यरूप से अनुरागवती है अर्थात् मुझसे अभिन्न है, जैसे प्रभा सूर्य से ॥१९॥

विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न हि हातुमियं शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥२०॥

अब तो ( अग्निपरीक्षा द्वारा भी ) जनकनन्दिनी मैथिली विशुद्ध सिद्ध हो चुकीं । मैं इन्हें वैसे ही नहीं त्याग सकता, जैसे प्रसिद्ध या कीर्तिमान् पुरुष, कीर्ति को नहीं त्याग सकता ॥२०॥

अवश्यं तु मया कार्यं सर्वेषां वो वचः शुभम् ।
स्निग्धानां *लोकनाथानामेवं च ब्रुवतां हितम् ॥२१॥

आपने तथा मेरे हितैषी समस्त लोकपालों ने स्नेहसहित जो हितकर वचन मुझसे कहे हैं, उनके अनुसार कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है ॥२१॥

इतीदमुक्त्वा विजयी महाबलः
प्रशस्यमानः †स्वकृतेन कर्मणा ।
समेत्य रामः प्रियया महायशाः
सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥२२॥

इति एकविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

विजयी, महाबली, महायशस्वी और सुख भोगने योग्य श्रीरामचन्द्र जी, अपने कर्मों द्वारा लोकपालों से प्रशंसित हो, सीता जी को अपने समीप बिठा कर, अत्यन्त हर्षित हुए ॥२२॥

युद्धकाण्ड का एकसौ इक्कीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं राघवेण सुभाषितम् ।
इदं शुभतरं वाक्यं व्याजहार महेश्वरः ॥१॥

श्रीरामचन्द्र जी के ऐसे शुभ वचनों को सुन कर, महादेव जी यह शुभतर वचन बोले ॥१॥

---

* पाठान्तरे—" लोकमान्यानामेवं ।" †पाठान्तरे—" विदितं ।"

[ टिप्पणी—इस प्रसग में तथा दण्डक वनमे अगस्त्याश्रम में इंद्र के आगमन का प्रसंग पढ़ यह समझना अनुचित न होगा कि रामायण काल में धरणीतल के जीवों और स्वर्गस्थ देवताओं में घनिष्ठता थी। देवगण प्रत्यक्ष ही मनुष्यों से वर्तालाप करते थे

**[1]पुष्कराक्ष महाबाहो महावक्षः परन्तप।**
**दिष्टया कृतमिदं कर्म त्वया शस्त्रभृतां वर ॥२॥**

हे कमलनयन! हे महाबाहो! हे महावक्षःस्थलवाले! हे परन्तप! हे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ! तुमने यह काम बहुत ही अच्छा किया ॥२॥

**दिष्टया सर्वस्य लोकस्य प्रवृद्धं दारुणं तमः।**
**अपावृत्तं त्वया संख्ये राम रावणजं भयम् ॥३॥**

हे राम! यह बड़े ही सौभाग्य की बात है कि, जो रण में (रावण का वध कर) आपने तीनों लोकों के दारुण अन्धकार रूपी रावण का भय दूर कर दिया ॥३॥

**आश्वास्य भरतं दीनं कौसल्यां च यशस्विनीम्।**
**कैकेयीं च सुमित्रां च दृष्ट्वा लक्ष्मणमातरम् ॥४॥**

अब तुम दुःखित भरत, यशस्विनी कौसल्या, कैकेयी तथा लक्ष्मण की माता सुमित्रा से जाकर मिलो और उनको समझा बुझा कर (शान्त करो) ॥४॥

**प्राप्य राज्यमयोध्यायां नन्दयित्वा सुहृज्जनम्।**
**इक्ष्वाकूणां कुले वंशं स्थापयित्वा महाबल ॥५॥**

---

१ पुष्कराक्ष—पुण्डरीकाक्ष। अनेन तस्य "यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी, पुरुषः पुण्डरीकाक्ष" इति श्रुतिस्मृतिभ्यामुदीरितस्य परब्रह्मासाधारणचिह्नस्य रामे रुद्रेण प्रतिपादनाद्रामत्वेनावतीर्णो विष्णुरेव वेदान्तवेद्यं परब्रह्मेत्युक्तं। (गो०)

हे महाबल ! अयोध्या के राजसिंहासन पर बैठ, सुहृदों को हर्षित करते हुए, इक्ष्वाकुकुल की परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रक्खो ॥५॥

इष्ट्वा तुरगमेधेन प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
ब्राह्मणेभ्यो धनं दत्त्वा त्रिदिवं गन्तुमर्हसि ॥६॥

फिर अश्वमेध यज्ञ करके और उत्तम यश प्राप्त कर तथा ब्राह्मणों को धन देकर तुम परमधाम को सिधारो ॥६॥

एष राजा विमानस्थः पिता दशरथस्तव ।
काकुत्स्थ मानुषे लोके गुरुस्तव महायशाः ॥७॥

देखो यह तुम्हारे पिता महाराज दशरथ विमान में बैठे हुए हैं। हे काकुत्स्थ ! ये मनुष्यलोक में तुम्हारे पूज्य थे ॥७॥

इन्द्रलोकं गतः श्रीमांस्त्वया पुत्रेण तारितः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा त्वमेनमभिवादय ॥८॥

पुत्ररूपी तुम्हारे द्वारा तारे जाकर और अत्यन्त शोभित हो इनको इन्द्रलोक प्राप्त हुआ है। सो अपने भाई लक्ष्मण सहित तुम इनको प्रणाम करो ॥८॥

महादेववचः श्रुत्वा काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।
विमानशिखरस्थस्य प्रणाममकरोत् पितुः ॥९॥

महादेव जी के ये वचन सुन, श्रीरामचन्द्र जी ने लक्ष्मण सहित, विमान के शिखर पर स्थित पिता को प्रणाम किया ॥९॥

दीप्यमानं स्वया लक्ष्म्या विरजोम्बरधारिणम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा ददर्श पितरं विभुः ॥१०॥

अपनी कान्ति से दीप्तिमान्, निर्मल वस्त्र पहिने हुए, अपने भाई लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी ने पिता के दर्शन किए ॥१०॥

हर्षेण महताऽऽविष्टो विमानस्थो महीपतिः ।
प्राणैः प्रियतरं दृष्ट्वा [1]पुत्रं दशरथस्तदा ॥११॥

विमान में बैठे हुए महाराज दशरथ प्राणों से भी अधिक प्यारे अपने पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को देख प्रसन्न हुए ॥११॥

आरोप्याङ्कं महाबाहुर्वरासनगतः प्रभुः ।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य ततो वाक्य समाददे ॥१२॥

उन्होंने श्रीरामचन्द्र को दोनों हाथों से पकड़ कर उठा लिया। फिर उन्हें गले से लगा और अपनी गोद में बिठा कर वे कहने लगे ॥१२॥

[ टिप्पणी—जैसे आज कल परलोक-विद्या द्वारा पर लोकगत आत्माओ का आगमन हुआ करता है उसी प्रकार रामायण काल में भी परलोकवासी आत्मा पृथिवी तल पर आया करते थे। दशरथ का आगमन और श्रीराम से उनका वार्तालाप इसका प्रमाण है। ]

न मे स्वर्गो बहुमतः सम्मानश्च सुरर्षिभिः ।
त्वया राम विहीनस्य सत्यं प्रतिशृणोमि ते ॥१३॥

हे राम ! मैं तुमसे सत्य सत्य कहता हूँ कि, तुम्हारे वियोग से युक्त मुझको स्वर्ग में रहना, जिसे देवर्षि बड़ी वस्तु समझते हैं, तुम्हारे सहवास के समान सुखदाई नहीं मालूम पड़ता ॥१३॥

कैकेय्या यानि चोक्तानि वाक्यानि वदतां वर ।
तव प्रव्राजनार्थानि स्थितानि हृदये मम ॥१४॥

हे बचन बोलने वालों में श्रेष्ठ ! तुमको वनवास देने के लिए कैकेयी ने जो जो बातें मुझसे कही थीं ; वे अभी तक मेरे मन में ज्यों की त्यों बनी हुई हैं ॥१४॥

---

१ पुत्रं—रामं । ( गो० )

त्वां तु दृष्ट्वा कुशलिनं परिष्वज्य सलक्ष्मणम् ।
अद्य दुःखाद्विमुक्तोऽस्मि नीहारादिव भास्करः ॥१५॥

तुमको और लक्ष्मण को सकुशल देख और अपने गले लगा कर आज मेरा दुःख उसी प्रकार दूर हो गया जैसे सूर्य कुहरे से छूट जाते हैं ॥१५॥

तारितोऽहं त्वया पुत्र सुपुत्रेण महात्मना ।
अष्टावक्रेण धर्मात्मा तारितो ब्राह्मणो यथा ॥१६॥

हे बेटा ! जैसे धर्मात्मा अष्टावक्र ने अपने पिता कहोल को तारा था, वैसे ही तुम महात्मा सुपुत्र ने मुझे तार दिआ ॥१६॥

इदानीं तु विजानामि यथा सौम्य सुरेश्वरैः ।
वधार्थं रावणस्येदं विहितं १पुरुषोत्तम ॥१७॥

हे सौम्य ! इस समय मैंने जाना है कि इन्द्र ने तुम्हारे अभिषेक में विघ्न क्यों डाला था । तुम पुराण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु हो और रावण के वध के लिए तुमने मनुष्य रूप धारण किया है ॥१७॥

२सिद्धार्था खलु कौसल्या या त्वां राम गृहं गतम् ।
वनान्निवृत्तं संहृष्टा द्रक्ष्यत्यरिनिषूदन ॥१८॥

हे शत्रुसूदन ! कौसल्या की भी साध पूरेगी । क्योंकि वन से लौटे हुए तुमको घर में आया हुआ देख, वह अत्यन्त हर्षित होगी ॥१८

सिद्धार्थाः खलु ते राम नरा ये त्वां पुरीं गतम् ।
जलार्द्रमभिषिक्तं च द्रक्ष्यन्ति वसुधाधिपम् ॥१९॥

---

२ पुरुषोत्तम—भवान् विष्णुरेव रावणवधार्थं मनुष्यत्वंगत इत्युच्यते ( गो० ) १ सिद्धार्था—कृतार्था । ( गो० )

हे राम ! सचमुच उन अयोध्यावासियों की अभिलाषा पूर्ण हो जायगी, जो देखेंगे कि, तुम बन से लौट कर नगर में आ गए हो और राजसिंहासन पर जल से अभिषिक्त किए जाकर राजा हो गए हो ॥१६॥

अनुरक्तेन बलिना शुचिना धर्मचारिणा ।
इच्छामि त्वामहं द्रष्टुं भरतेन समागतम् ॥२०॥

हे राम ! अनुरागी, बलवान्, पवित्र, धर्मात्मा भरत के साथ तुम्हारा समागम मैं देखना चाहता हूँ ॥२०॥

चतुर्दश समा सौम्य वने निर्यापितास्त्वया ।
वसता सीतया सार्धं लक्ष्मणेन च धीमता ॥२१॥

हे राम ! तुमने (मेरी प्रसन्नता के लिए) पूरे चौदह वर्ष बन में सीता और बुद्धिमान लक्ष्मण के साथ रह कर बिता दिए ॥२१॥

निवृत्तवनवासोऽपि प्रतिज्ञा सफला कृता ।
रावणं च रणे हत्वा देवास्ते परितोषिताः ॥२२॥

अब तुम्हारे बनवास की अवधि भी पूरी होने को हुई । तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर दिखलाई । इसके अतिरिक्त युद्ध में रावण को मार तुमने देवताओं को भी सन्तुष्ट किया ॥२२॥

कृतं कर्म यशः श्लाघ्यं प्राप्तं ते शत्रुसूदन ।
भ्रातृभिः सह राज्यस्थो दीर्घमायुरवाप्नुहि ॥२३॥

हे शत्रुसूदन ! तुमने बड़ा भारा प्रशंसा पाने योग्य यश प्राप्त किया है । अब तुम भाइयों सहित राज्यासन पर बैठ कर दीर्घ-जीवी हो ॥२३॥

इति ब्रुवाणं राजानं रामः प्राञ्जलिरब्रवीत् ।
कुरु प्रसादं धर्मज्ञ कैकेय्या भरतस्य च ॥२४॥

इस प्रकार कहते हुए महाराज दशरथ से श्रीरामचन्द्र जी ने हाथ जोड़कर कहा—हे धर्मज्ञ ! आप कैकेयी और भरत के ऊपर प्रसन्न हूजिए ॥२४॥

सपुत्रां त्वां त्यजामीति यदुक्ता केकयी त्वया ।
स शापः केकयीं घोरः सपुत्रां न स्पृशेत्प्रभो ॥२५॥

हे प्रभो ! आपने कैकेयी से जो यह कहा था कि "मैं पुत्र सहित तेरा त्याग करता हूँ" सो आपका यह शाप ( क्रोध में भर कर कहा हुआ वचन ) माता कैकेयी और भरत के लिए यथार्थ न हो। अर्थात् आपका और भरत-सहित कैकेयी का पूर्ववत् सम्बन्ध बना रहे ॥२५॥

स तथेति महाराजो राममुक्त्वा कृताञ्जलिम् ।
लक्ष्मणं च परिष्वज्य पुनर्वाक्यमुवाच ह ॥२६॥

हाथ जोड़े हुए श्रीरामचन्द्र जी से महाराज दशरथ ने कहा—"ऐसा ही होगा"। फिर लक्ष्मण को छाती से लगा, महाराज दशरथ कहने लगे ॥ २६ ॥

रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ।
कृता मम महाप्रीतिः प्राप्तं धर्मफलं च ते ॥२७॥

बेटा ! तुम राम की तथा वैदेही सीता की बड़ी भक्ति के सा सेवा सुश्रूषा किया करते हो। इससे मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रस हूँ और तुम्हें इससे ( अमित ) पुण्य भी प्राप्त हुआ है ॥२७॥

धर्मं प्राप्स्यसि धर्मज्ञ यशश्च विपुलं भुवि ।
रामे प्रसन्ने स्वर्गं च महिमानं तथैव च ॥२८॥

हे धर्मज्ञ ! श्रीरामचन्द्र को अपने ऊपर प्रसन्न रखने से, इस संसार में तुमको बड़ा पुण्य और यश प्राप्त होगा और अन्त में स्वर्ग की प्राप्ति होगी ॥२८॥

रामं शुश्रूष भद्रं ते सुमित्रानन्दवर्धन ।
रामः सर्वस्य लोकस्य शुभेष्वभिरतः सदा ॥२९॥

हे सुमित्रानन्दवर्धन ! श्रीरामचन्द्र समस्त लोकों का हित करने में सदा तत्पर रहते हैं। अतएव इनकी सेवा शुश्रूषा तुम सदा करते रहना। ऐसा करने से तुम्हारा कल्याण होगा ॥२९॥

[1]एते सेन्द्रास्त्रयो लोकाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अभिगम्य महात्मानमर्चन्ति पुरुषोत्तमम् ॥३०॥

देखो, ये इन्द्र सहित तीनों लोक, सिद्ध और महर्षि-सभी तो श्रीरामचन्द्र की बन्दना और सराहना करते हैं। क्योंकि यह पुरुषोत्तम हैं ॥३०॥

एतत्तदुक्तमव्यक्तमक्षरं ब्रह्मनिर्मितम् ।
देवानां हृदयं सौम्य गुह्यं रामः परन्तपः ॥३१॥

(वेद में) जिस अव्यक्त अक्षय ब्रह्म को देवताओं का अन्तर्यामी और गुह्यतत्व बतलाया गया, शत्रुविनाशी राम वही तो हैं ॥३१॥

अवाप्तं धर्मचरणं यशश्च विपुलं त्वया ।
रामं शुश्रूषता भक्त्या वैदेह्या सह सीतया ॥३२॥

---

१ एत—इति हस्तनिर्देशेन रुद्रोप्यन्तर्गतः । ( गो० )

वैदेही सहित इन श्रीरामचन्द्र की भक्तिपूर्वक सेवा करते हुए तुमने बड़ा पुण्य और बड़ा यश पाया है ॥३२॥

स तथोक्त्वा महाबाहुर्लक्ष्मणं प्राञ्जलिं स्थितम् ।
उवाच राजा धर्मात्मा वैदेहीं वचनं शुभम् ॥३३॥

इस प्रकार महाबाहु लक्ष्मण से कह कर धर्मात्मा महाराज दशरथ ने हाथ जोड़े खड़ी हुई सीता जी से ये सुन्दर वचन कहे ॥३३॥

कर्तव्यो न तु वैदेहि मन्युस्त्यागमिमं प्रति ।
रामेण त्वद्विशुद्ध्यर्थं कृतमेतद्धितैषिणा ॥३४॥

हे वैदेही! श्रीरामचन्द्र द्वारा इस प्रकार अपना त्याग किए जाने का, तुम बुरा मत मानना। क्योंकि श्रीरामचन्द्र ने तुम्हारा हित सोच कर ही, तुम्हें विशुद्ध सिद्ध करने के लिए यह किया था ॥३४॥

न त्वं सुभ्रु १समाधेया पतिशुश्रूषणं प्रति ।
अवश्यं तु मया वाच्यमेष ते दैवतं परम् ॥३५॥

हे सुभ्रु! तुम्हें पतिसेवा के लिए उपदेश देने की मुझे आवश्यकता नहीं है, किन्तु इतना मैं तुमसे अवश्य कहूँगा कि, यह (श्रीरामचन्द्र) तेरे लिए तेरे परम देवता (पूज्य एवं श्रद्धेय) हैं ॥३५॥

इति प्रतिसमादिश्य पुत्रौ सीतां तथा स्नुषाम्
इन्द्रलोकं विमानेन ययौ दशरथो नृपः* ॥३६॥

इति द्वाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

---

१ न समाधेया—नोपदेष्टव्या। (गो०) * पाठान्तरे—"ज्वलन्।"

इस प्रकार महाराज दशरथ अपने दोनों पुत्रों को तथा अपनी बहू सीता को उपदेश देकर बिदा हुए और विमान में बैठ, इन्द्र-लोक ( स्वर्ग ) को चले गए ॥३६॥

युद्धकाण्ड का एकसौ बाइसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

प्रतियाते तु काकुत्स्थे महेन्द्रःपाकशासनः ।
अब्रवीत् परमप्रीतो राघवं प्राञ्जलिं स्थितम् ॥१॥

महाराज दशरथ के चले जाने पर, देवराज इन्द्र परम प्रसन्न हो, श्रीरामचन्द्र जी से, जो हाथ जोड़े खड़े थे, बोले ॥१॥

अमोघं दर्शनं राम तवास्माकं परन्तप ।
प्रीतियुक्ताः स्म तेन त्वं [1]ब्रूहि यत् मनसेच्छसि ॥२॥

हे राम ! हम लोगों को, तुम्हारा दर्शन निष्फल नहीं होना चाहिये, हम लोग तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं । अतः तुम जो कुछ प्रत्युपकार रूप में चाहते हो सो कहो या बतलाओ ॥२॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ॥३॥

जब इन्द्र ने इस प्रकार कहा, तब भाई लक्ष्मण और पत्नी सीता सहित हाथ जोड़े खड़े हुए श्रीरामचन्द्र जी ने इन्द्र से कहा ॥३॥

---

१ ब्रूहि—आज्ञापय । ( शि० )

यदि प्रीतिः समुत्पन्ना मयि सर्वसुरेश्वर ।
वक्ष्यामि कुरु ते सत्यं वचनं वदतां वर ॥४॥

हे वाक्पटु ! हे सर्वसुरेश्वर ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हुए हो तो जो मैं कहता हूँ उसे सत्य अर्थात् पूरा करो ॥४॥

मम हेतोः पराक्रान्ता ये गता यमसादनम् ।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्तिष्ठन्तु वानराः ॥५॥

जो वानर मेरे लिए युद्ध करते हुए मारे गए हैं, वे सब वानर जीवित हो उठ खड़े हों ॥५॥

मत्कृते विप्रयुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च वानराः ।
मत् प्रियेष्वभियुक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति च ॥६॥

जो वानर अपने बाल-बच्चों और स्त्री कलत्रादि से बिछुड़ कर, मुझे प्रसन्न करने के लिए मृत्यु को कुछ भी न समझते हुए, जूझ मरे हैं ॥६॥

त्वत् प्रसादात् समेयुस्ते[1] वरमेतदहं वृणे ।
नीरुजो निर्व्रणांश्चैव सम्पन्नबलपौरुषान् ॥७॥

गोलाङ्गूलांस्तथैवर्क्षान्द्रष्टुमिच्छामि मानद ।
अकाले चापि मुख्यानि मूलानि च फलानि च ॥८॥

नद्यश्च विमलास्तत्र तिष्ठेयुर्यत्र वानराः ।
श्रुत्वा तु वचनं तस्य राघवस्य महात्मनः ॥९॥

१ समेयुः पुत्रादिभिः—सहसंगता भवेयुः । ( शि० )

वे तुम्हारे अनुग्रह से अपने बालबच्चों से जा मिलें। हे मानद मैं तुमसे यह वर माँगता हूँ कि मैं अपने वानरों और भालुओं को पीड़ा से रहित, घावशून्य एवं बलपौरुष से सम्पन्न देखूँ। इसके अतिरिक्त मैं यह भी चाहता हूँ कि, जहाँ ये वानर रहें, वहाँ दुर्भिक्ष में भी अथवा ऋतु न होने पर भी, खाने के लिए मुख्य मुख्य कन्द और फल इनको मिलें और वहाँ की नदियाँ भी विमल जल से परिपूर्ण रहें। महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन ॥७॥८॥९॥

महेन्द्रः प्रत्युवाचेदं वचनं प्रीतिलक्षणम्[१]।
महानयं वरस्तात त्वयोक्तो रघुनन्दन ॥१०॥

उत्तर में इन्द्र ने प्रसन्नतासूचक यह वचन कहा—हे रघुनन्दन! तुमने जो वर माँगा वह असाधारण तो है ॥१०॥

[२]द्विर्मया नोक्तपूर्वं हि तस्मादेतद्भविष्यति।
समुत्थास्यन्ति हरयो ये हता युधि राक्षसैः ॥११॥

किन्तु मैं कह कर मुकरता नहीं, अथवा मैं वर देने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, इससे तुम जैसा कहते हो वैसा ही होगा। युद्ध में राक्षसों द्वारा जो वानर मारे गए हैं, वे जीवित हो उठ खड़े होंगे ॥११॥

ऋक्षाश्च सहगोपुच्छा निकृत्ताननबाहवः।
नीरुजो निर्व्रणाश्चैव सम्पन्नबलपौरुषाः ॥१२॥

लड़ाई में जिन रीछों और वानरों की भुजाएं कट गई हैं या मुँह फट गया है; वे सब पीड़ा और घावों से रहित तथा बल एवं पुरुषार्थ से सम्पन्न हो जायँगे ॥१२॥

---

१ प्रीतिलक्षणम्—प्रीतिव्यञ्जकम्। (गो०) २ द्विः विरुद्ध वचनद्वयम्। (शि०)

समुत्थास्यन्ति हरयः सुप्ता निद्राक्षये यथा ।
सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव ज्ञातिभिः स्वजनैरपि ॥१३॥

सर्वं एव समेष्यन्ति संयुक्ताः परया मुदा ।
अकाले १पुष्पशबलाः फलवन्तश्च पादपाः ॥१४॥

और वे सब वानर सो कर जागे हुए मनुष्य की तरह उठ खड़े होंगे। वे सब अपने अपने सुहृदों, बन्धुबान्धवों, कुटुम्बियों और अपने घर वालों के साथ परम हर्षित हो अपने अपने घरों पर जाकर मिलेंगे। अकाल में भी वृत्त विविध प्रकार के रंग बिरंगे फूलों और फलों से लदे रहेंगे ॥१३॥१४॥

भविष्यन्ति महेष्वास नद्यश्च सलिलायुताः ।
सव्रणैः प्रथमं गात्रैः संवृत्तैर्निर्व्रणैः पुनः ॥१५॥

हे महेष्वास ! ( विशालधनुर्धारी ! ) (जहाँ कहीं भी ये वानर रहेंगे वहाँ की ) नदियों में सदैव ( विमल ) जल भरा रहेगा। इन्द्र के वरप्रदान के पूर्व जो वानर घायल हो पड़े थे, इन्द्रद्वारा वरप्रदान के बाद उन सब के शरीरों के घाव अच्छे हो गए ॥१५॥

ततः समुत्थिताः सर्वे सुप्त्वेव हरिपुङ्गवाः ।
बभूवुर्वानराः सर्वे किमेतदिति विस्मिताः ॥१६॥

और वे सब कपिश्रेष्ठ सोते हुए मनुष्य की तरह जाग कर उठ खड़े हुए। वहाँ जो वानर उपस्थित थे, उनको यह देख, बड़ा विस्मय हुआ और वे आपस में कहने लगे—यह क्या हुआ ! यह क्या हुआ ! ॥१६॥

---

१ पुष्पशबलाः—पुष्पैर्नानावर्णाः । ( गो० )

ते सर्वे वानरास्तस्मै राघवायाभ्यवादयन् ।
काकुत्स्थं परिपूर्णार्थं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ॥१७॥

उन सब वानरों ने श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम किया। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी की मनोकामना को पूर्ण हुई देख, समस्त देवता गण ॥१७॥

ऊचुस्ते प्रथमं स्तुत्वा स्तवार्हं सहलक्ष्मणम् ।
गच्छायोध्यामितो वीर विसर्जय च वानरान् ॥१८॥

स्तव करने योग्य श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण की प्रथम स्तुति कर पीछे उनसे बोले कि, हे वीर ! अब तुम इन समस्त वानरों को बिदा कर यहाँ से अयोध्या को जाओ ॥१८॥

मैथिलीं सान्त्वयस्वैनामनुरक्तां तपस्विनीम् ।
शत्रुघ्नं च महात्मानं मातॄः सर्वाः परन्तपः ॥१९॥

तपस्विनी महाकष्ट पाने वाली और तुममें अनुराग रखने वाली जानकी को धीरज बँधाओ तथा महात्मा शत्रुघ्न को, समस्त माताओं को ॥१९॥

भ्रातरं पश्य भरतं त्वच्छोकाद्व्रतधारिणम् ।
अभिषेचयचात्मानं पौरान् गत्वा प्रहर्षय ॥२०॥

तथा अपने भाई भरत को, जो तुम्हारे वियोग-जन्य शोक से व्रत धारण किए हुए हैं, जाकर देखो। फिर अपना राज्याभिषेक करा कर अयोध्यावासियों को आनन्दित करो ॥२०॥

एवमुक्त्वा तमामन्त्र्य रामं सौमित्रिणा सह ।
विमानैः सूर्यसङ्काशैर्हृष्टा जग्मुः सुरा दिवम् ॥२१॥

यह कह और श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण से विदा माँग, देवता लोग सूर्य के समान चमचमाते विमानों में बैठ कर, स्वर्ग को चले गए ॥२१॥

अभिवाद्य च काकुत्स्थः सर्वांस्तांस्त्रिदशोत्तमान् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वासमाज्ञापयत्तदा ॥२२॥

लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी ने उन समस्त देवताओं को हाथ जोड़े और सेना को टिकाने की आज्ञा दी ॥२२॥

ततस्तु सा लक्ष्मणरामपालिता
महाचमूर्हृष्टजना यशस्विनी ।
श्रिया ज्वलन्ती विरराज सर्वतो
निशा १ प्रणीतेव हि शीतरश्मिना ॥२३॥

इति त्रयोविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी द्वारा रक्षित वह यशस्विनी महती वानरी सेना अत्यन्त प्रसन्न हो ऐसी कान्तिमान जान पड़ी जैसे चन्द्रमा की ठंडी चांदनी से रात्रि कान्तिमती जान पड़ती है ॥ २३ ॥

युद्धकाण्ड का एकसौ तेईसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

—❀—

## चतुर्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—:o:—

तां रात्रिमुषितं राम सुखोत्थितमरिन्दमम् ।
अब्रवीत् प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥१॥

---

१ प्रणीता—प्रकाशिता । ( गा० )

जब वह रात बीत गई और सबेरा हुआ; तब शत्रुघाती श्रीरामचन्द्र जी सुखपूर्वक उठे। उस समय विभीषण हाथ जोड़ और "तुम्हारी जय हो" कह कर, बोले ॥१॥

स्नानानि चाङ्गरागाणि वस्त्राण्याभरणानि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि माल्यानि विविधानि च ॥२॥

तुम्हारे नहाने के लिये अच्छे अच्छे अंगराग (उबटनें) विविध प्रकार के वस्त्र, आभूषण, विविध प्रकार के दिव्य चन्दन तथा भाँति भाँति की पुष्पमालाएं आई हैं ॥२॥

अलङ्कारविदश्चेमा नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत् स्नापयिष्यन्ति राघव ॥३॥

हे राघव! शृङ्गार करने वाली कमलनयनी स्त्रियाँ भी उपस्थित हैं, जो तुमको विधिवत् स्नान करावेंगी ॥३॥

[टिप्पणी—जिस प्रकार आधुनिक मुसलमानी हम्मामो में पुरुषों को स्नान कराने को युवतिया रखी जाती हैं, उसी प्रकार इस वर्णनानुसार उस काल मे स्नान कराने का काम युवतियाँ किआ करती थी।]

प्रतिगृह्णीष्व तत्सर्वं मदनुग्रहकाम्यया ।
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ॥४॥

तुम मेरे ऊपर कृपा करके इन सब वस्तुओं को अङ्गीकार करो। जब विभीषण ने इस प्रकार कहा, तब श्रीरामचन्द्र जी विभीषण से यह बोले—॥४॥

हरीन् सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनाभि निमन्त्रय ।
स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ॥५॥
सुकुमारो महाबाहुः कुमारः सत्यसंश्रवः ।
तं विना कैकयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ॥६॥

तुम सुग्रीवादि प्रधान प्रधान वानरों को स्नान कराने के लिए बुलवाओ। हे मित्र! सुख पाने के योग्य, धर्मात्मा, सुकुमार महाबाहु, सत्यवक्ता राजकुमार (भरत), मेरे पीछे (श्रीअयोध्या में) कष्ट पा रहा है। मैं उस धर्मात्मा कैकेयीनन्दन भरत को देखे बिना ॥५॥६॥

न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च
*एतत् पश्य यथा क्षिप्रं प्रतिगच्छामि तां पुरीम् ॥७॥

स्नान करना, वस्त्र और अलङ्कार धारण करना मुझे अच्छा नहीं लगता। सो कोई ऐसा उपाय देख भाल कर, बतलाओ, जिससे मैं तुरन्त श्रीअयोध्यापुरी में पहुँच जाऊँ ॥७॥

अयोध्यामागतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः।
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ॥८॥

जिस रास्ते से हम लोग श्रीअयोध्या से यहाँ तक आए हैं वह रास्ता तो बड़ा दुर्गम है। श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार कहने पर बिभीषण ने उत्तर दिआ ॥८॥

अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज।
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् ॥९॥

हे राजकुमार! मैं तुमको एक दिन में अयोध्या पहुँचवा दूँगा। तुम्हारा मङ्गल हो। सूर्य के समान चमचमाते जिस पुष्पक नामक विमान को ॥९॥

---

* पाठान्तरे—"इ१ एव पथा"।

मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेनाहृतं बलात्।
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामग दिव्यमुत्तमम् ॥१०॥

मेरे भाई कुबेर को युद्ध में जीत, रावण बरजोरी छीन लाया था; वह विमान ऐसा है कि, जिधर चाहो उधर उसे ले जा सकते हो तथा वह दिव्य और उत्तम है ॥१०॥

त्वदर्थं पालितं चैतत्तिष्ठत्यतुलविक्रम।
तदिदं मेघसङ्काशं विमानमिह तिष्ठति ॥११॥

हे अतुलविक्रम! वह तुम्हारी सेवा के लिए तैयार है। सो तुम मेघ के समान उस विशाल विमान में बैठ जाना ॥११॥

तेन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः।
अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ॥१२॥

इस विमान में बैठ कर तुम विना किसी प्रकार के कष्ट के श्रीअयोध्या जी पहुँच जाओगे। यदि तुम्हारा मेरे ऊपर अनुग्रह हो और यदि मेरे भक्त्यादि गुण (उपकार) तुमको स्मरण हों ॥१२॥

[1]वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वैदेह्या चापि भार्यया ॥१३॥

और यदि तुम्हारा मेरे ऊपर सौहार्द हो तो; हे प्राज्ञ! तुम अपने भाई लक्ष्मण और भार्या सीता सहित यहाँ एक दिन तो वास करो ॥१३॥

अर्चितः [2]सर्वकामैस्त्वं ततो राम गमिष्यसि।
प्रीतियुक्तस्य मे राम ससैन्यः ससुहृद्गणः ॥१४॥

---

१ वस तावदिहेति एकदिवसमितिशेषः। (रा०) २ सर्वकामैः— भूषणादिभिः (गो०)

( मेरे द्वारा ) भूषणादि से समस्त सैन्य और सुहृदों सहित तुम सत्कारित हो और मुझ पर प्रसन्न हो। हे राम ! तुम श्रीअयोध्या जी को चले जाना ॥१४॥

सत् क्रियां विहितां तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम् ।
प्रणयाद्बहुमानाच्च सौहृदेन च राघव ॥१५॥

हे राघव ! मैं प्रीतिपूर्वक, बहुमान पुरस्सर एवं सौहार्द्रवश और विधिवत् तुम्हारा सत्कार करना चाहता हूँ। सो तुम उस सत्कार की एकत्र की हुई सामग्री को ग्रहण करो ॥१५॥

प्रसादयामि प्रेष्योऽहं न खल्वाज्ञापयामि ते ।
एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ॥१६॥

रक्षसां वानराणां च सर्वेषां चोपशृण्वताम् ।
पूजितोऽहं त्वया सौम्य साचिव्येन[१] परन्तप ॥१७॥

सर्वात्मना च [२]चेष्टाभिः सौहृदेनोत्तमेन च ।
न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ॥१८॥

मेरी तो यह प्रर्थाना है। क्योंकि मैं तो तुम्हारा दास हूँ। मैं निश्चय ही तुमको आज्ञा नहीं दे सकता। जब विभीषण ने इस प्रकार कहा; तब श्रीरामचन्द्र जी वहाँ उपस्थित वानरों और राक्षसों को सुनाते हुए बोले। हे सौम्य ! हे परन्तप ! तुम्हारी सहायता ही से मेरा ( यथेष्ट ) सत्कार हो चुका। इसके अतिरिक्त तुम्हारे पौरुष और उत्तम सौहार्द्रयुक्त व्यवहार से भी तुमने मेरा सब प्रकार से बड़ा सत्कार किया है। हे राक्षसेश्वर ! इस समय निश्चय ही मैं तुम्हारा कहना नहीं मान सकता ॥१६॥१७॥१८॥

---

१ साचिव्येन—साहाय्येन। ( गो० ) २ चेष्टाभिः—पौरुषैः। ( गो० )

तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ।
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ॥१६॥

क्योंकि भाई भरत से मिलने के लिए मेरा मन आतुर हो रहा है। यह मेरा भाई भरत मुझे लौटाने के लिए, चित्रकूट में आया था ॥१६॥

शिरसा याचितो यस्य वचनं न कृतं मया ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीन् ॥२०॥

गुरूंश्च सुहृदश्चैव पौरांश्च तनयैः[1] सह ।
उपस्थापय मे क्षिप्रं विमानं राक्षसेश्वर ॥२१॥

और चरणों में सीस रख मुझसे लौटने के लिए प्रार्थना की थी; किन्तु मैंने उसका कहना न माना। अतएव कौसल्या, सुमित्रा और यशस्विनी कैकेयी को वसिष्ठादि गुरुओं को तथा गुह आदि सुहृदों को तथा पुत्रवत् अपनी पुरी की प्रजा को, देखने के लिए मेरा मन आतुर हो रहा है। सो हे राक्षसेश्वर! अब तुम शीघ्र विमान को यहाँ मँगवा दो ॥२०॥२१॥

कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्विदिह सम्मतः ।
अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ॥२२॥

जब मैं यहाँ का सारा काम पूरा कर चुका हूँ अथवा जब मैं वनवास की अवधि पूरी कर चुका हूँ, तब मेरा यहाँ रहना क्योंकर सम्भव है। सो हे सौम्य! अब तुम मुझे जाने की आज्ञा दो! हे विभीषण मैं तुमसे सत्कारित हो चुका ॥२२॥

---

१ तनयैः—सहेत्यत्र पौरैरेव तनयशब्दोन्वेति। (गो०)

[1]मन्युर्न खलु कर्तव्यस्त्वरितं त्वानुमानये[2] ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥२३॥

मेरे इस प्रकार शीघ्रता करने (जल्दि याने) के लिए तुम दुःखी या क्रुद्ध मत हो और मुझे जाने की अनुमति दो। श्रीरामचन्द्र जी के इन वचनों को सुन विभीषण ॥२३॥

तं विमान समादाय तूर्णं प्रतिनिर्वतत ।
ततः काञ्चनचित्राङ्गं वैडूर्यमयवेदिकम् ॥२४॥

लङ्का में गये और तुरन्त विमान ले कर लौट आए। वह विमान सोने से चित्र विचित्र बना हुआ था और उसमें जो वेदियाँ (बैठने के लिये बैठकीं) थीं, उनमें पन्ने जड़े हुए थे ॥२४॥

[3]कूटागारैः [4]परिक्षिप्तं सर्वतो[5]रजतप्रभम् ।
पाण्डुराभिः पताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृतम् ॥२५॥

उसमें बड़े लंबे चौड़े अनेक मण्डप बने हुए थे और सफेद ध्वजा पताकाओं से वह सजा हुआ था ॥२५॥

शोभितं काञ्चनैर्हर्म्यैर्हेमपद्मविभूषितम् ।
प्रकीर्णं किङ्किणीजालैर्मुक्तामणिगवाक्षितम् ॥२६॥

उसमें सोने की अटारियाँ थीं जिनमें सोने के बने कमल शोभा के लिये लटक रहे थे। जगह जगह बहुत सी घंटियाँ लटक रही थीं और मोती और मणियों के झरोखे बने हुए थे ॥२६॥

---

१ मन्युः—दैन्यं कोपो वा। (गो०) २ अनुमानये—अनुमतिं कारये। (गो०) ३ कूटागारैः—मण्डपैः। (गो०) ४ परिक्षिप्त—व्याप्तं। (गो०) ५ रजतप्रभं—रजतशब्देनात्र विशदत्वमुच्यते। (गो०)

घण्टाजालैः परिक्षिप्तं सर्वतो मधुरस्वनम् ।
यत् मेरुशिखराकारं निर्मितं विश्वकर्मणा ॥२७॥

उसमें जा चारों ओर अनेक घंटे लटक रहे थे; उनसे बड़ी मधुर आवाज़ होती थी। यह विमान जो मेरुपर्वत की तरह विशाल था, विश्वकर्मा का बनाया हुआ था ॥२७॥

बहुभिर्भूषितं हर्म्यैर्मुक्ता रजतसन्निभैः[1] ।
तलैः [2]स्फाटिकचित्राङ्गैर्वैडूर्यैश्च वरासनैः ।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्नं [3]महाधनैः ॥२८॥

उसमें बहुत सी अटारियाँ थीं जो मोती और चाँदी की तरह स्वच्छ थीं। उनके जो फर्श थे उन पर स्फटिक के चित्र बने हुए थे और उसमें जो उत्ताम बैठकी थीं वे पन्नों की थीं। उसमें बहु मूल्य बिछौने बिछे हुए थे ॥२८॥

उपस्थितमनाधृष्यं तद्विमानं मनोजवम् ।
निवेदयित्वा रामाय तस्थौ तत्र विभीषणः ॥२९॥

उस विमान पर कोई आक्रमण नहीं कर सकता था और उसकी चाल मन के समान तेज़ थी। ऐसे विमान को वहाँ उपस्थित कर तथा उसे श्रीरामचन्द्र जी को सौंप, विभीषण वहाँ खड़े रहे ॥२९॥

युद्धकाण्ड का एकसौचौबीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

१ सन्निभैः—तद्वन्निर्मलैः। (गो०) २ स्फाटिकचित्रागैः—स्फटिकमय चित्रावयवैः। (गो०) ३ महाधनैः—महामूल्यैः। (गो०)

## पञ्चविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

उपस्थितं तु तं दृष्ट्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरस्थितो रामं प्रत्युवाच विभीषणः ॥१॥

पुष्पों से सजे हुए पुष्पक विमान को आया हुआ देख, पास ही खड़े विभीषण श्रीरामचन्द्र जी से बोले ॥१॥

स तु बद्धाञ्जलिः प्रह्वो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
अब्रवीत्त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥२॥

राक्षसेश्वर विभीषण ने हाथ जोड़ कर और विनीतभाव से बड़ी शीघ्रता से कहा—हे राघव ! आज्ञा दीजिए कि अब मैं और क्या करूँ ? ॥२॥

तमब्रवीत् महातेजा [१]लक्ष्मणस्योपशृण्वतः ।
विमृश्य राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥३॥

महातेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी कुछ सोच कर और लक्ष्मण जी के साथ परामर्श करके, स्नेहपूर्वक विभीषण से यह बोले ॥३॥

कृतप्रयत्नकर्माणो विभीषण वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविधैर्भूषणैश्चापि पूजय ॥४॥

हे विभीषण ! इन वानरों ने युद्ध में वीरता (बहादुरी) दिखलाई है; सो ( इसके बदले में) इनको पुरस्कार में रत्न, धन और विविध प्रकार के आभूषण देने चाहिए ॥४॥

---

१ लक्ष्मणस्योपशृण्वतः—लक्ष्मणसम्मति पूर्वकम् ( गो० )

सहैभिरजिता लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वर ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥५॥

हे राक्षसनाथ ! इन सब ने अपनी जानों को हथेलियों पर रख, हर्षित अन्तःकरण से युद्ध किया। (किसी के दबाव से नहीं) इन लोगों ने रण में कभी पीठ नहीं दिखलाई। इन्हीं लोगों की सहायता से मैं इस दुर्धर्ष अजेय लंका को जीत कर सका हूँ ॥५॥

त इमे कृतकर्माणः पूज्यन्तां सर्ववानराः ।
धनरत्नप्रदानेन कर्मैषां सफलं कुरु ॥६॥

अतएव इन कार्यसिद्ध करनेवाले समस्त वानरों और रीछों को धन और रत्न द्वारा पुरस्कृत कर, इनका परिश्रम सफल करना चाहिए ॥६॥

एवं सम्मानिताश्चैते मानार्हा मानद त्वया ।
भविष्यन्ति कृतज्ञेन [1]निर्वृता हरियूथपाः ॥७॥

हे मानद ! तुम कृतज्ञ हो, सो यदि पुरस्कृत करने योग्य इन वानरों और रीछों का इस प्रकार तुम सम्मान कर दोगे, तो ये समस्त वानर-यूथपति प्रसन्न हो जाँयगे ॥७॥

त्यागिनः [2]संग्रहीतारं सानुक्रोशं यशस्विनम् ।
सर्वे त्वामवगच्छन्ति ततः सम्बोधयाम्यहम् ॥८॥

ये सब तुमको दानी और धनदान द्वारा मित्रसंग्रहीता, दयालु और यशस्वी समझते हैं। इसीसे मैं तुमको स्मरण दिलाता हूँ ॥८॥

---

१ निर्वृताः—सुखिताः। गो०) २ संग्रहीतारं—धनप्रदानेन मित्र संग्रहकारिणमित्यर्थः। ( गो० )

हीनं रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
त्यजन्ति नृपतिं सैन्याः संविग्नास्तं नरेश्वरम् ॥६॥

हे विभीषण ! जो राजा सेना को दान मानादि से उत्साहित नहीं करता और सैनिकों को केवल युद्ध में कटवाना ही जानता है, ऐसे राजा का, उसकी सेना उदास हो, युद्ध में साथ नहीं देती ॥६॥

एवमुक्तस्तु रामेण वानरांस्तान् विभीषणः ।
रत्नार्थैः संविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥१०॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने विभीषण से इस प्रकार कहा—तब विभीषण ने उन समस्त वानरों और वानरयूथपतियों को उनकी पद मर्यादा के अनुसार हिस्सा लगा, रत्न और धन दे कर, सन्तुष्ट किया ॥१०॥

ततस्तान् पूजितान् दृष्ट्वा रत्नैरर्थैश्च यूथपान् ।
आरुरोह ततो रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥११॥

वानरयूथपतियों का रत्नों और धन से यथोचित सत्कार हुआ देख, श्रीरामचन्द्र जी उस श्रेष्ठ विमान पर सवार हुए ॥११॥

अङ्केनादाय वैदेहीं लज्जमानां यशस्विनीम् ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥१२॥

फिर लजीली एवं यशस्विनी सीता जी को गोद में उठा, भाई लक्ष्मण के सहित धनुषधारी एवं पराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी उस विमान में जा बैठे ॥१२॥

अब्रवीच्च विमानस्थः पूजयन् सर्ववानरान् ।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः सविभीषणम् ॥१३॥

विमान में बैठ चुकने के बाद श्रीरामचन्द्र जी आदरपूर्वक समस्त वानरों, महाबली सुग्रीव और राक्षसेश्वर विभीषण से बोले ॥१३॥

मित्रकार्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरोत्तमाः ।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥१४॥

हे वानरोत्तमो ! आप सब ने अपने मित्र का यह कार्य पूरा करके दिखला दिया । अब मैं आप सब को आज्ञा देता हूँ कि, जहाँ आप लोग चाहें वहाँ चले जाँय ॥१४॥

यत्तु कार्यं वयस्येन *स्निग्धेन च हितेन च ।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥१५॥

हे सुग्रीव ! एक स्नेही और हितैषी मित्र को जैसा बर्ताव करना उचित था वैसा ही आपने ( मित्र ) धर्म से डर कर, किआ ( अर्थात् एक मित्र का जो कर्त्तव्य था वह पूरा किआ ॥१५॥

किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभिसंवृतः ।
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ॥१६॥

अब आप अपनी सेना को अपने साथ ले यहाँ से शीघ्र किष्किन्धा को लौट जाइए । हे विभीषण ! आप भी मेरे दिए हुए लङ्का के राज्य में रहिए ॥१६॥

न त्वां धर्षयितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि दिवौकसः ।
अयोध्यां प्रतियास्यामि राजधानीं पितुर्मम ॥१७॥

इन्द्रसहित समस्त देवताओं की यह मजाल नहीं कि, वे आपको टेढ़ी दृष्टि से देखें । अब मैं अपनी पिता की राजधानी श्रीअयोध्यापुरी की ओर प्रस्थानित होता हूँ ॥१७॥

---

* पाठान्तरे—"सुहृदा वा परन्तप" ।

अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वांश्चामन्त्रयामि वः ।
एवमुक्तास्तु रामेण वानरास्ते महाबलाः ॥१८॥
ऊचुः प्राञ्जलयो रामं राक्षसश्च विभीषणः ।
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान् ॥१९॥

अब मैं आप सब लोगों से आज्ञा ले, यहाँ से बिदा होना चाहता हूँ। जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार कहा, तब उन समस्त महाबलवान् वानरों ने और राक्षसेश्वर विभीषण ने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्र जी से कहा कि, हम सब लोगों की इच्छा आपके साथ अयोध्या चलने की है। सो आप हम लोगों को भी अपने साथ लेते चलिए ॥१८॥१९॥

१उद्युक्ता विचरिष्यामो वनानि नगराणि च ।
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्द्रं कौसल्यामभिवाद्य च ॥२०॥

हम वहाँ किसी को सताए बिना बड़ी सावधानी से वनों और नगरों में घूमे फिरेंगे। फिर आपका राज्याभिषेक देख तथा माता कौसल्या को प्रणाम कर ॥२०॥

अचिरेणागमिष्यामः स्वान् गृहान् नृपतेः सुत ।
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः ॥२१॥
अब्रवीद्राघवः श्रीमान् ससुग्रीवविभीषणान् ।
प्रियात् प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ॥२२॥
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ।
क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं वानरैः सह ॥२३॥

हे राजकुमार ! हम तुरन्त अपने अपने घरों को लौट आवेंगे।

---

१ उद्युक्ताः—सावधानाः। जनपदपीडामकुर्वन्त इत्यर्थः। ( गो० )

( अतः आप हम सब को भी अपने साथ लेते चलिए। ) जब सब वानरों और विभीषण ने इस प्रकार कहा, तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव और विभीषण से कहा—यदि मैं तुम जैसे अपने सुहृदों के साथ अयोध्या में जा कर हर्षित हो सकूँ, तो मेरे लिए यह सब से बढ़ कर आनन्द की बात होगी। हे सुग्रीव ! अब आप अपनी वानरी सेना सहित तुरन्त इस विमान पर सवार हो जाइए ॥२१॥२२॥२३॥

त्वमध्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ।
ततस्तत् पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह सेनया ॥२४॥

हे राक्षसेन्द्र विभीषण ! तुम भी अपने अमात्यों को साथ ले, विमान में बैठ जाओ। इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी की अनुमति से वानरों सहित सुग्रीव ॥२४॥

*आरुरोह मुदायुक्तः सामात्यश्च विभीषणः ।
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरं [1]परमासनम् ॥२५॥

और अमात्यों सहित विभीषण हर्षित हो पुष्पक विमान में जा बैठे। उन सब के सवार हो जाने पर कुबेर का वह उत्तम वाहन ॥२५॥

राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ।
ययौ तेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ॥२६॥

प्रहृष्टश्च [2]प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ।
ते सर्वे वानरा हृष्टा राक्षसाश्च महाबलाः ।
यथासुखमसम्बाधं दिव्ये तस्मिन्नुपाविशन् ॥२७॥

इति पंचविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ।

---

१ आसनं—वाहनं। ( गो० ) २ प्रतीतश्च—श्लाघतश्च। ( गो० )

* पाठान्तरे—"अध्यारोहत्वरन्शीघ्रं"।

कैलासशिखराकारे त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥३॥

हे वैदेहि ! कैलास पर्वत की तरह ऊँचे त्रिकूट पर्वत पर, विश्वकर्मा द्वारा बनाई गई इस लङ्कापुरी को देखो ॥३॥

एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥४॥

देखो यह समरभूमि है जहाँ पर असंख्य राक्षसों और वानरों का वध हुआ है और जहाँ पर माँस और रक्त की कीचड़ हो रही है ॥४॥

अत्र दत्तवरः [1]शेते [2]प्रमाथी राक्षसेश्वरः ।
तव हेतोर्विशालाक्षि रावणो निहतो मया ॥५॥

हे विशालाक्षि ! यह देखो उस वरप्राप्त एवं हिंसक रावण की भस्म पड़ी है, जिसे मैंने तुम्हारे पीछे युद्ध में मारा था ॥५॥

कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ।
धूम्राक्षश्चात्र निहतो वानरेण हनूमता ॥६॥

देखो यहाँ पर कुम्भकर्ण और प्रहस्त मारे गए थे । धूम्राक्ष को हनुमान् ने यहीं मारा था ॥६॥

विद्युन्माली हतश्चात्र सुषेणेन महात्मना ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥७॥

यहीं पर महाबली सुषेण ने विद्युन्माली को मारा था और यहीं पर लक्ष्मण जी ने युद्ध में इन्द्रजीत का वध किया था ॥७॥

---

१ शेते—भस्मस्वरूपेणेत्यर्थः । (गो०) २ प्रमाथी—हिंसकः । (गो०)

हे विशालनयनी! तुम्हारे लिए ही यह बड़ा दुष्कर कर्म अर्थात् सेतु बाँधना, नल ने किया था। हे वैदेही! इस अक्षोभ्य वरुणालय समुद्र को देखो ॥१२॥

[1]अपारमभिगर्जन्तं शङ्खशुक्तिनिषेवितम्।
हिरण्यनाभं शैलेन्द्रं काञ्चनं पश्य मैथिलि ॥१३॥

देखो यह कैसा भयानक शब्द कर के गरज रहा है। इसके बीच में कोई द्वीप-टापू भी नहीं है। यह सीपियों और शङ्खों से भरा हुआ है। हे मैथिली! यह देखो काञ्चनमय हिरण्यनाभ नामक पर्वतराज खड़ा है ॥१३॥

विश्रमार्थं हनुमतो भित्त्वा सागरमुत्थितम्।
एतत् कुक्षौ[2] समुद्रस्य [3]स्कन्धावारनिवेशनम् ॥१४॥

हनुमान जी की प्रथम लङ्कायात्रा के समय, यह उनकी थकावट मिटाने के लिए समुद्र के जल को चीर कर, ऊपर निकला था। यह समुद्र के बीच में मानों सेना की छावनी का स्थान सा देख पड़ता है ॥१४॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः।
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येनाभिपूजितम् ॥१५॥

वह देखो यह समुद्र का (उत्तर तट का) घाट दिखलाई पड़ता है। यह सेतुबन्धु नाम से प्रसिद्ध है और तीनों लोकों से पूजित है ॥१५॥

---

१ अपारं—मध्ये द्वीपभूतपाररहितं। (गो०) २ कुक्षौ—मध्ये। ३ स्कन्धावारनिवेशनम्—स्कन्धावारनिवेशनरूप—स्थानं। स्कन्धावारः—शिविरं (गो०)

[ टिप्पणी—१०वें श्लोक में समुद्र के दक्षिणी तट का घाट बतलाया था। १५वें श्लोक में समुद्र के उत्तर तट का घाट दिखलाया गया है। ]

**एतत् पवित्रं परमं महापातकनाशनम्[१] ।**
**अत्र पूर्वं [२]महादेवः [३]प्रसादमकरोत् प्रभुः[४] * ॥१६॥**

**यह बड़ा पवित्र स्थान माना जायगा और इसका दर्शन और यहाँ का स्नान बड़े बड़े पापों का नाश करने वाला होगा। यहीं पर लङ्का जाने के समय मैंने क्रोध में भर समुद्र को सोखना चाहा था, तब समुद्रराज के जल के अधिष्ठाता देवता ने मुझे प्रसन्न किया था ॥१६॥**

**टिप्पणी**—आदिकाव्य के कई एक टीकाकारों ने "अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोत्प्रभुः" का अर्थ किया है "इसी स्थान में सेतु बाँधने के लिए महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न हुए थे।" अथवा यहीं पर पुल बाँधने के पहिले शिव ने मेरे ऊपर कृपा की थी। अब विचारने की बात है कि इन टीकाकारों का यह अर्थ कहाँ तक ठीक है। समुद्र से और महादेव जी से कुछ सम्बन्ध नहीं। फिर लंका जाते समय जो जो घटनाएँ हुई थीं—अथवा जो जो कार्य किए गए थे, उनके वर्णन के पूर्वप्रसंगों में भी "महादेव के प्रसन्न" होने की चर्चा न पाई जाने के कारण, प्रत्युत समुद्रजल के अधिष्ठाता देवता का प्रसन्न हो कर सेतु बाँधने की सलाह देने का वर्णन पाए जाने के कारण, भूषणटीकाकार का किया हुआ अर्थ जो उक्त श्लोक के नीचे दिया गया है युक्तियुक्त एवं प्रसंगानुकूल जान पड़ता है।

---

१ नाशनंभविष्यतीतिशेषः। ( गो० ) २ महादेव—इति समुद्रराज उच्यते। ( गो० ) ३ प्रसादमकरोत्—सागरं शोषयिष्यामीति कुपितस्यमे प्रसन्नत्वमकरोत्। (गो०) ४ प्रभुः समुद्रजलाधिष्ठाता देवता। ( गो० )

*दक्षिण के संस्करणों में "प्रभु" और उत्तर भारतीय संस्करणों में "विभुः" पाठ है।

क्योंकि, समुद्र पर पुल बाँधने के पूर्व शिव जी ने श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर क्या कृपा की थी, इसका कुछ भी उल्लेख युद्धकाण्ड में नहीं पाया जाता। एक बात और है। "महादेव" शब्द से केवल त्रिनेत्र अथवा त्रिपुरान्तक शिव का ही बोध नही होता। महादेव शब्द का प्रयोग श्रीविष्णु सहस्र नाम मे विष्णु के लिए भी हुआ है यथा आदि देवो महादेवो।

अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः।
एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ॥१७॥

यहीं पर राक्षसेश्वर विभीषण मुझसे आ कर मिले थे। हे सीते! वह देखो चित्र विचित्र उद्यानों से युक्त किष्किन्धापुरी है ॥१७॥

सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र वाली मया हतः।
अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां बालिपालिताम् ॥१८॥

यह रमणीकपुरी सुग्रीव की राजधानी है। यहीं पर मैंने वालि को मारा था। वालि की पालित किष्किन्धापुरी को देख, सीता जी ने ॥१८॥

अब्रवीत् प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा।
सुग्रीवप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ॥१९॥
अन्येषां वानरेन्द्राणां स्त्रीभिः परिवृता ह्यहम्।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यां राजधानीं त्वयाऽनघ ॥२०॥

विनीत भाव से प्रीति एवं आदर-पूर्वक श्रीरामचन्द्र जी से कहा। हे राजन्! हे अनघ! मेरी इच्छा है कि, सुग्रीव की प्यारी तारा आदि स्त्रियों के साथ तथा अन्य वानरश्रेष्ठों की स्त्रियों के साथ मैं तुम्हारी राजधानी श्रीअयोध्यापुरी में प्रवेश करूँ ॥१९॥२०॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राघवः प्रत्युवाच ताम् ।
एवमस्त्विति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राघवः ॥२१॥

जब जानकी जी ने यह कहा, तब श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे उत्तर में कहा "बहुत अच्छा"। और जब विमान किष्किन्धा में पहुँचा तब वहाँ उसे रोक दिया ॥२१॥

विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ।
ब्रूहि वानरशार्दूल सर्वान् वानरपुङ्गवान् ॥२२॥

विमान को ठहरा श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव की ओर देख, उ. से यह कहा—हे वानरराज! तुम समस्त वानरश्रेष्ठों से का दो ॥२२॥

स्वदारसहिताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ।
तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ॥२३॥

कि, वे सब अपनी अपनी स्त्रियों को साथ लेकर, अयोध्या चलें। क्योंकि, सीता की इच्छा है कि, वानरों की स्त्रियाँ भी उनके साथ अयोध्या चलें। हे महाबली! तुम भी अपनी समस्त स्त्रियों को साथ लेकर अयोध्या चलो ॥२३॥

अभित्वरस्व सुग्रीव गच्छामः प्लवगेश्वर ।
एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणामिततेजसा ॥२४॥

हे वानरराज सुग्रीव! इस कार्य को झटपट कर डालो—क्योंकि, अभी हमको (बहुत दूर) जाना है अथवा हमको अभी यहाँ से चल देना है। अमित तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी ने सुग्रीव से जब यह कहा ॥२४॥

वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सर्वैः समावृतः ।
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य भाषत ॥२५॥

तब वानरराज श्रीमान् सुग्रीव सब वानरों सहित अपने अन्तः पुर में गए और तारा को देख उससे बोले ॥२५॥

प्रिये त्वं सह नारीभिर्वानराणां महात्मनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञाता मैथिलीप्रियकाम्यया ॥२६॥

त्वर त्वमभिगच्छामो गृह्य वानरयोषितः ।
अयोध्यां दर्शयिष्यामः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥२७॥

हे प्रिये! श्रीरामचन्द्र जी को आज्ञा से और सीता जी की प्रसन्नता के लिए तुम अन्य वानरपत्नियों को साथ लेकर, हमारे साथ तुरन्त चलो। हम तुम्हें श्रीअयोध्यापुरी और महाराज दशरथ की समस्त रानियों को दिखला लावेंगे ॥२६॥२७॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा तारा सर्वाङ्गशोभना ।
आहूय चाब्रवीत् सर्वा वानराणां तु योषितः ॥२८॥

सर्वाङ्गसुन्दरी तारा ने सुग्रीव के इन बचनों को सुन, समस्त वानर स्त्रियों को बुला कर उसने कहा ॥२८॥

सुग्रीवेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वैश्च वानरैः ।
मम चापि प्रियं कार्यमयोध्यादर्शनेन च ॥२९॥

महाराज सुग्रीव की आज्ञा से यदि तुम सब मेरे साथ अयोध्या पुरी को देखने के लिए चलोगी, तो ऐसा करने से मानों तुम मेरा बड़ा प्रिय कार्य करोगी ॥२९॥

प्रवेशं चापि रामस्य पौरजानपदैः सह ।
विभूतिं चैव सर्वासां स्त्रीणां दशरथस्य च ॥३०॥

वहाँ सब पुरवासियों तथा जनपदवासियों के साथ श्रीरामचन्द्र जी की राजधानी में प्रवेश कर, हम सब महाराज दशरथ की रानियों का ऐश्वर्य देखेंगी ॥३०॥

तारया चाभ्यनुज्ञाता सर्वा वानरयोषितः ।
[1]नेपथ्यं विधिपूर्वेण कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥३१॥

तारा की आज्ञा पाकर वे सब वस्त्रालङ्कार से यथाविधि सज-धज कर आ गईं। फिर विमान की परिक्रमा कर ॥३१॥

अध्यारोहन् विमानं तत् सीतादर्शनकाङ्क्षया ।
ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः ॥३२॥

वे सीता के दर्शन की इच्छा से झटपट विमान पर चढ़ गईं। तब तारा आदि वानरस्त्रियों को लेकर, उस विमान को आकाश में उड़ता देख ॥३२॥

ऋष्यमूकसमीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ।
दृश्यतेऽसौ महान् सीते सविद्युदिव तोयदः ॥३३॥

और ऋष्यमूक पर्वत के समीप पहुँच, श्रीरामचन्द्र जी ने जानकी से फिर (मार्ग की जगहों को दिखा कर उनका ) वर्णन करना आरम्भ किया। हे सीते ! यह जो बिजली सहित एक बड़े मेघ की तरह बड़ा भारी पहाड़ देख पड़ता है ॥३३॥

ऋष्यमूको गिरिश्रेष्ठः काञ्चनैर्धातुभिर्वृतः ।
अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण सहागतः ॥३४॥

सो यही ऋष्यमूक पर्वत है। इसमें सुवर्ण आदि अनेक धातुएँ पाई जाती हैं। यहीं पर सुग्रीव के साथ मेरा समागम हुआ था ॥३४॥

---

१ नेपथ्यं—अलंकारं। ( गो० )

समयश्च[1] कृतः सीते वधार्थं वालिनो मया ।
एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना ॥३५॥

और यहीं मैंने बालि के मारने का संकेत किया था अर्थात् प्रतिज्ञा की थी । यह रंगबिरंगे फूलों से लदे वृक्षों से पूर्ण, वनों के बीच पम्पासरोवर देख पड़ती है ॥३५॥

त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ।
अस्यास्तीरे मया दृष्टा शबरी धर्मचारिणी ॥३६॥

यहीं पर मैंने तुम्हारे वियोग से अत्यन्त दुःखित हो, विलाप किया था और इसीके तट पर धर्मचारिणी शबरी से मेरी भेंट हुई थी ॥३६॥

अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ।
दृश्यते च जनस्थाने सीते[2]श्रीमान् वनस्पतिः ॥३७॥

यहाँ पर मैंने एक योजन लंबी भुजाओं वाले कबन्ध को मारा था । देखो यह जनस्थान देख पड़ता है । हे सीते ! यह देखो, यह वह शोभायमान वटवृक्ष है, जिस पर जटायु रहा करते थे ॥३७॥

यत्र युद्धं महद्वृत्तं तव हेतोर्विलासिनि ।
रावणस्य नृशंसस्य जटायोश्च महात्मनः ॥३८॥

यहीं पर तुम्हारे लिए महातेजस्वी जटायु के साथ निष्ठुर रावण का घोर युद्ध हुआ था ॥३८॥

---

१ समयः—संकेतः । ( गो० ) २ श्रीमान् वनस्पतिः जटायु-निवास भूतोवटः । तस्य श्रीमत्त्वं महात्मना जटायुषाधिष्ठितत्वात् । ( गो० )

खरश्च निहतो यत्र दूषणश्च निपातितः।
त्रिशिराश्च महावीर्यो मया बाणैरजिह्मगैः ॥३९॥

यह वही स्थान है, जहाँ पर मैंने अपने सीधे जाने वाले बाणों से खर का वध किया था, दूषण को मार गिराया था और महाबली त्रिशिरा को मारा था ॥३९॥

एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शना ॥४०॥

हे सुन्दरी! यह हम लोगों का वही आश्रम है और यह वही हम लोगों की पर्णकुटी है। हे शुभदर्शना! यह पर्णकुटी (अब भी पूर्ववत्) सुन्दर बनी हुई है ॥४०॥

यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात्।
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शिवा ॥४१॥

यहीं पर रावण ने बरजोरी तुमको हरा था। यह वही रमणीक, शुभ और निर्मल जल वाली गोदावरी नदी है ॥४१॥

अगस्त्यस्याश्रमो ह्येष दृश्यते पश्य मैथिलि।
दीप्तश्चैवाश्रमो ह्येष सुतीक्ष्णस्य महात्मनः ॥४२॥

हे मैथिली! यह अगस्त्य का आश्रम देख पड़ता है और यह चमचमाता महात्मा सुतीक्ष्ण का आश्रम है ॥४२॥

वैदेहि दृश्यते चात्र शरभङ्गाश्रमो महान्।
उपयातः सहस्राक्षो यत्र शक्रः पुरन्दरः ॥४३॥

हे वैदेहि! यहाँ पर शरभङ्ग का विशाल आश्रम देख पड़ता है। (जिस समय हम लोग यहाँ आए थे उस समय) सहस्राक्ष देवराज इन्द्र भी यहाँ आए हुए थे ॥४३॥

अस्मिन् देशे महाकायो विराधो निहतो मया ।
एते हि तापसावासा दृश्यन्ते तनुमध्यमे ॥४४॥

इस जगह मैंने विशाल शरीरधारी विराध नामक राक्षस को मारा था । हे तनुमध्यमे ! ( पतली कमरवाली ) ये तपस्वियों के आश्रम देख पड़ते हैं ॥४४॥

अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरप्रभः ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥४५॥

जहाँ सूर्य अथवा अग्नि के समान तेजस्वी कुलपति अत्रि रहते हैं हे सीते ! यहीं पर धर्मचारिणी और तपस्विनी अनुसूया जी से तुम्हारी भेंट हुई थी ॥४५॥

[ टिप्पणी—रामायणकाल में कुलपति वह अध्यापक कहलाता था, जो दससहस्र विद्यार्थियों का भरणपोषण करता हुआ, उनको शिक्षा देता था । ]

असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ।
यत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ॥४६॥

हे सुन्दर शरीर वाली ! देखो, यह पर्वतराज चित्रकूट शोभायमान हो रहे हैं, जहाँ पर मुझे मनाने के लिए कैकेयीपुत्र भरत जी आए थे ॥४६॥

एषा सा यमुना दूराद्दृश्यते चित्रकानना ।
भरद्वाजाश्रमो यत्र श्रीमानेष प्रकाशते ॥४७॥

रंगबिरंगे फूलों से युक्त वृक्षों से भरे वनों के बीच बहती हुई दूर से यमुना नदी देख पड़ती है । इसके समीप ही भरद्वाज जी का शोभायमान आश्रम भी देख पड़ता है ॥४७॥

एषा त्रिपथगा गङ्गा दृश्यते वरवर्णिनि ।
नानाद्विजगणाकीर्णा सम्प्रपुष्पितकानना ॥४८॥

हे वरवर्णिनी ! यह त्रिपथगामिनी गङ्गा हैं ; जिनके उभय-तट पर विविध प्रकार के पक्षियों से युक्त और पुष्पित वृक्षों से परिपूर्ण वन शोभायमान हो रहे हैं ॥४८॥

शृङ्गिबेरपुरं चैतद्गुहो यत्र समागतः ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूर्यूपमालिनी[1] ॥४९॥

आगे देखो वह शृङ्गवेरपुर है यहीं पर गुह से मेरा समागम हुआ था । हे सीते ! यह देखो यह सरयू नदी है ; जिसके तट पर इक्ष्वाकुकुलोद्भव राजाओं के किए हुए यज्ञों के स्मारकस्वरूप पत्थर के खंभों की पाँति की पाँति खड़ी है ॥४९॥

नानातरुशताकीर्णा सम्प्रपुष्पितकानना ।
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या राजधानी पितुर्मम ॥५०॥

विविध प्रकार के सैकड़ों पुष्पित वृक्षों से युक्त उद्यानों से शोभित, यह मेरे पिता की राजधानी श्रीअयोध्यापुरी देख पड़ती है ॥५०॥

अयोध्यां कुरु वैदेहि प्रणामं पुनरागता ।
ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः ।
उत्पत्योत्पत्य ददृशुस्तां पुरीं शुभदर्शनाम् ॥५१॥

तुम यहाँ लौटकर आई हो, सो तुम इसे प्रणाम करो । श्रीराम चन्द्र जी के मुख से श्रीअयोध्यापुरी का नाम सुनते ही समस्त

---

१ यूपमालिनी—इक्ष्वाकुभिस्तीरेयागानन्तरं कीर्त्यर्थं शिलाभिः कृतयूपवतीत्यर्थः । ( गो० )

वानर और विभीषण उचक उचक कर, उस सुन्दर श्रीअयोध्यापुरी को देखने लगे ॥५१॥

ततस्तु तां पाण्डुरहर्म्यमालिनीं
विशालकक्ष्यां गजवाजिसङ्कुलाम् ।
पुरीमयोध्यां ददृशुः प्लवङ्गमाः
पुरीं महेन्द्रस्य यथाऽमरावतीम् ॥५२॥

इति षड्विंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

इन्द्र की अमरावतीपुरी के तुल्य, सफेद अटा-अटारियों-वाली, चौड़ी चौड़ी सड़कों वाली और हाथी घोड़ों से भरी पूरी श्रीअयोध्यापुरी को वानर लोग देखने लगे ॥५२॥

[ टिप्पणी—श्रीरामचन्द्र जी अभी श्रीअयोध्या में नहीं पहुँचे; किन्तु आकाश में बड़ी ऊँचाई पर उड़ते हुए विमान में बैठ कर उन्होंने बहुत दूर से श्रीअयोध्यापुरी को देखा था। दूर होने के कारण ही वानरों का अयोध्यापुरी को उचक उचक कर "उत्पत्योत्पत्य" देखना १५वे श्लोक मे लिखा है। ]

युद्धकाण्ड का एकसौ छब्बीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥१॥

---

१ विशालकक्ष्या—विशाल रथ्या। (रा० )

वनवास के चौदहवर्ष पूरे हो जाने पर, पञ्चमी के दिन, श्रीरामचन्द्र जी भरद्वाजमुनि के आश्रम में पहुँचे, उनको यथाविधि प्रणाम किया ॥१॥

सोऽपृच्छदभिवाद्यैनं भरद्वाजं तपोधनम् ।
शृणोषि कच्चिद्भगवन् सुभिक्षानामयं पुरे ॥२॥

श्रीरामचन्द्र जी ने तपोधन भरद्वाज मुनि को प्रणाम कर पूँछा कि—हे भगवन्! श्रीअयोध्यापुरी में सब कुशल-पूर्वक तो है! दुर्भिक्षादि से वहाँ किसी को कष्ट तो नहीं मिला ॥२॥

कच्चिच्च युक्तो भरतो जीवन्त्यपि च मातरः ।
एवमुक्तस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ॥३॥
प्रत्युवाच रघुश्रेष्ठं स्मितपूर्वं प्रहृष्टवत् ।
पङ्कदिग्धस्तु भरतो जटिलस्त्वां प्रतीक्षते ॥४॥
पादुके ते पुरस्कृत्य सर्वं च कुशलं गृहे ।
त्वां पुरा चीरवसनं प्रविशन्तं महावनम् ॥५॥
स्त्रीतृतीयं च्युतं राज्याद्धर्मकामं च केवलम् ।
पदातिं त्यक्तसर्वस्वं पितुर्वचनकारिणम् ॥६॥

भरत, प्रजा का पालन तो भली भाँति करते हैं? मेरी सब माताएँ तो जीवित हैं? श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार पूँछने पर महामुनि भरद्वाज उनसे अत्यन्त प्रसन्न हो मुसक्याते हुए बोले, यथाविधि स्नान न करने के कारण शरीर में मैल लपेटे, जटा रखाए और तुम्हारी खड़ाउओं को अपने आगे रखे हुए, भरत तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। तुम्हारे घर में सब कुशल-पूर्वक है। हे रघुनन्दन! जब तुम महावन को जा रहे थे; तब

मैंने देखा था कि, तुम पुराने चीर वसन पहिने हुए हो, स्त्री तुम्हारे साथ है, राज्य से पृथक हो चुके हो—केवल धर्म में मन लगाए हुए हो। पैदल चल रहे हो, सर्वस्व त्याग कर, पिता की आज्ञा पालन में निरत हो ॥३॥४॥५॥६॥

[ टिप्पणी—"स्मितपूर्व" शब्द के प्रयोग में रहस्य है। महर्षिभरद्वाज त्रिकालदर्शी ऋषि थे। अतः वे जानते थे कि श्रीरामचन्द्र साक्षात् जगदीश्वर का अवतार हैं। अतः सब जानते हुए भी उनका अयोध्यापुरी के कुशल समाचार पूँछने का उपक्रम ऋषि के मन में गुदगुदी उत्पन्न करने वाला था। अतः वे मुस्क्याए थे। ]

सर्वभोगैः परित्यक्तं स्वर्गच्युतमिवामरम् ।
दृष्ट्वा तु करुणा पूर्वं ममासीत् समितिञ्जय ॥७॥
कैकेयीवचने युक्तं वन्यमूलफलाशिनम् ।
साम्प्रतं सुसमृद्धार्थं समित्रगणबान्धवम् ॥८॥
समीक्ष्य विजितारिं त्वां मम प्रीतिरनुत्तमा।
सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ॥९॥
यत्त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थानवधादिकम् ।
१ ब्राह्मणार्थे नियुक्तस्य १ रक्षितुः सर्वतापसान् ॥१०॥

सब भोग्य पदार्थों को त्यागे हुए हो और स्वर्गच्युत देवता की तरह जान पड़ते हो। कैकेयी के कथनानुसार तुम फलफूल खाने का सङ्कल्प कर चुके हो। हे समरविजयी! तुम्हारी उस समय की दशा देख मेरा मन बड़ा दुःखी हुआ था। किन्तु इस समय तुमको सब प्रकार से भरा पूरा और इष्टमित्रों और स्वजनों के

---

१ ब्रह्मणार्थे ऋषिजनरक्षणार्थे। ( गो० ) २ नियुक्तस्य—तैर्याचितस्य ( गो० )

साथ शत्रु को जीत कर लौटा हुआ देख, मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। हे राघव! जनस्थान में रह कर जो तुमने बहुत से सुख दुःख भोगे, तपस्वियों के प्रार्थना करने पर, ऋषियों की रक्षा के लिए, जनस्थान-वासी राक्षसों का वध कर, तुमने सब तपस्वियों की रक्षा की—ये सब बातें मुझे मालूम हैं ॥७॥८॥९॥१०॥

रावणेन हृता[१] भार्या बभूवेमनिन्दिता ।
मारीचदर्शनं चैव सीतोन्मथनमेव च ॥११॥

जैसे रावण ने तुम्हारी अनिन्दित भार्या सीता को हरना चाहा था तथा पीछे उसे हरा था और जिस प्रकार मारीच कपटी हिरन का रूप धर कर सामने आया था। सो भी मुझे विदित है ॥११॥

कबन्धदर्शनं चैव पम्पाभिगमनं तथा ।
सुग्रीवेण च ते सख्यं यच्च वाली हतस्त्वया ॥१२॥

फिर कबन्ध का मिलना और उसका वध तथा पम्पा की ओर तुम्हारा जाना और वहाँ तुम्हारे साथ सुग्रीव की मैत्री का होना और तुम्हारे हाथ से बालि का मारा जाना भी मुझे मालूम है ॥१२॥

मार्गणं चैव वैदेह्याः कर्म वातात्मजस्य च ।
विदितायां च वैदेह्यां नलसेतुर्यथा कृतः ॥१३॥

तदनन्तर सीता जी की खोज करवाना, हनुमान जी द्वारा सीता का पता लगाया जाना। नल द्वारा समुद्र पर पुल का बाँधा जाना भी मुझे मालूम है ॥१३॥

यथा वा दीपिता लङ्का प्रहृष्टैर्हरियूथपैः ।
सपुत्रबान्धवामात्यः सबलः सहवाहनः ॥१४॥

---

१ हृता—हर्तुमीप्सिता। ( गो० )

यथा विनिहतः संख्ये रावणो देवकण्टकः ।

समागमश्च त्रिदशैर्यथा दत्तश्च ते वरः ॥१५॥

फिर वानरयूथपतियों द्वारा लङ्का का फूँका जाना तथा पुत्र, भाई बन्धु, मंत्री, दीवान, फौज फाटा, हाथियों, घोड़ों और रथों सहित देवकण्टक रावण का लड़ाई में मारा जाना, तदनन्तर देवताओं का तुम्हारे सामने आना और उनसे तुमको वरदान का मिलना भी मुझे मालूम है ॥१४॥१५॥

सर्वं ममैतद्विदितं तपसा धर्मवत्सल ।

अहमप्यत्र ते दद्मि वरं शस्त्रभृतां वर ॥१६॥

हे धर्मवत्सल ! ये सब बातें मुझे अपने तपोबल से समय समय पर मालूम होती रही हैं । हे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ ! मैं भी तुमको वर देता हूँ ॥१६॥

१अर्घ्यमद्य गृहाणेदमयोध्यां श्वो गमिष्यसि ।

तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपात्मजः ॥१७॥

आज मेरा आतिथ्य स्वीकार कर, कल तुम श्रीअयोध्यापुरी को चले जाना । राजनन्दन रघुनन्दन ने भरद्वाज जी की आज्ञा को शिरोधार्य कर ॥१७॥

बाढमित्येव संहृष्टो धीमान् वरमयाचत ।

अकाले फलिनो वृक्षाः सर्वे चापि मधुस्रवाः ॥१८॥

फलान्यमृतकल्पानि बहूनि विविधानि च ।

भवन्तु मार्गे भगवन्नयोध्यां प्रति गच्छतः ॥१९॥

और अत्यन्त आनन्दित हो कहा बहुत अच्छा । तदनन्तर बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी ने यह वर माँगा कि, हे मुनि ! आपके वरदान

१ अर्घ्य—पूजा । ( गो० )

से मैं यह चाहता हूँ कि, यहाँ से लेकर अयोध्यापुरी तक, फलने की फसल न होने पर भी समस्त वृक्षों में फल लगें और उनमें मधु टपका करे। उनमें लगे हुए फल अमृत के समान मीठे, बहुत और विविध प्रकार के हों ॥१८॥१९॥

[ टिप्पणी—भरत जी के राजसी आतिथ्य की बात श्रीरामचंद्र जी को विदित हो गई थी अतः भरद्वाज जी के तपोबल की थाह श्रीरामचंद्र जी पा चुके थे। इसीसे उन्होने ऋषि प्रवर से यह वरदान माँगा। ]

तथेति च प्रतिज्ञाते वचनात्समनन्तरम् ।
अभवन् पादपास्तत्र स्वर्गपादपसन्निभाः ॥२०॥

जब श्रीरामचन्द्र जी ने यह वर माँगा, तब भरद्वाज ने कहा "तथास्तु"—ऐसा ही होगा। तदनुसार प्रयाग और अयोध्या के बीच लगे हुए वृक्ष स्वग में लगे हुए वृक्षों के समान (फलवान) हो गये ॥२०॥

निष्फलाः फलिनश्चासन् विपुष्पाः पुष्पशालिनः ।
शुष्काः समग्रपत्रास्ते नगाश्चैव मधुस्रवाः
सर्वतो योजना त्रीणि गच्छतामभवस्तदा ॥२१॥

जो वृक्ष पहिले कभी फलते और फूलते न थे, वे भी फलने और फूलने लगे। जो सूख गए थे, उनमें हरे हरे पत्ते निकल आए। वृक्षों से मधु टपकने लगा। प्रयाग से लेकर अयोध्यापुरी तक के मार्ग के दोनों ओर बारह बारह कोस के समस्त वृक्ष, इस प्रकार के हो गए ॥२१॥

ततः प्रहृष्टाः प्लवगर्षभास्ते
बहूनि दिव्यानि फलानि चैव ।

कामादुपाश्नन्ति सहस्रशस्ते
मुदान्विताः [1]स्वर्गजितो यथैव ॥२२॥

इति सप्तविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

हजारों वानरश्रेष्ठ, अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बहुत से फलों को भर पेट खा खा कर, इस प्रकार हर्षित हो घूमने लगे, जिस प्रकार स्वर्गीयजन (स्वर्ग में रहने वाले) हर्षित हो, घूमा करते हैं ॥२२॥

युद्धकाण्ड का एकसौ सत्ताइसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः

—❀—

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः।
चिन्तयित्वा हनूमन्तमुवाच प्लवगोत्तमम् ॥१॥

अब श्रीअयोध्यापुरी जाने की चिन्ता करते हुए श्रीरामचन्द्र जी ने कुछ (मन ही मन) विचार कर, कपिश्रेष्ठ हनुमान जी से कहा ॥१॥

जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे।
शृङ्गिबेरपुरं प्राप्य गुहं गहनगोचरम् ॥२॥

तुम शीघ्र श्रीअयोध्यापुरी में जाकर देख आओ कि, राजमन्दिर में सब कुशलपूर्वक तो हैं। जाते हुए जब तुम शृंगबेरपुर में पहुँचो, तब वनवासी गुह से, ॥२॥

निषादाधिपतिं ब्रूहि कुशलं वचनान् मम।
श्रुत्वा तु मां कुशलिनमरोगं विगतज्वरम् ॥३॥

जो निषादों का राजा है, मेरी ओर से, कुशलसंवाद कहना।

---

१ स्वर्गजितो—स्वर्गिणइव। ( गो० )

जब वह मेरा कुशलसंवाद सुनेगा और जानेगा कि, मैं आरोग्य हूँ और मेरी चिन्ता दूर हो गई है ॥३॥

भविष्यति गुहः प्रीतः स [१]ममात्मसमः सखा ।
अयोध्यायाश्च ते मार्गं [२]प्रवृत्तिं भरतस्य च ॥४॥
निवेदयिष्यति प्रीतो निषादाधिपतिर्गुहः ।
भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान् मम ॥५॥

तब गुह प्रसन्न होगा। क्योंकि वह मेरा मित्र है और हीन-जाति का होने पर भी मैं उसे अपने समान ही समझता हूँ। निषादाधिपति गुह तुमको श्रीअयोध्या का मार्ग और भरत का समस्त वृत्तान्त हर्षित मन से बतला देगा। मेरी ओर से तुम भरत जी से मेरे कुशल समाचार कहना ॥४॥५॥

[३]सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ।
हरणं चापि वैदेह्या रावणेन बलीयसा ॥६॥
सुग्रीवेण च संसर्गं वालिनश्च वधं रणे ।
मैथिल्यन्वेषणं चैव यथा चाधिगता त्वया ॥७॥
लङ्घयित्वा महातोयमापगापतिमव्ययम् ।
उपायानं समुद्रस्य सागरस्य च दर्शनम् ॥८॥

और कहना कि मैं पिता की आज्ञा का पालन कर सीता और लक्ष्मण सहित आता हूँ। सीता का बलवान रावण द्वारा हरा जाना, सुग्रीव के साथ मैत्री का होना, युद्ध में मेरे हाथ से वालि

१ आत्मसमः हीनजातिमनवेक्ष्य प्रेमातिशयेन गुहमिक्ष्वाकुकुलीनममन्यत। ( गो० ) २ प्रवृत्तिं— वृत्तान्तं। ( गो० ) ३ सिद्धार्थं— निर्व्यूढपितृवचनपरिपालनरूपप्रयोजनं। ( गो० )

का मारा जाना, सीता का खोजा जाना और तुम्हारे द्वारा सीता का पता लगना, अपार समुद्र लाँघ कर तुम्हारा उसके पार जाना, लंका में तुम्हारा सीता का पता पाना, समुद्र के तीर वानरों का पहुँचना, समुद्र का दर्शन ॥६॥७॥८॥

यथा च कारितः सेतू रावणश्च यथा हतः ।
वरदानं महेन्द्रेण ब्रह्मणा वरुणेन च ॥९॥

समुद्र पर सेतु का बाँना जाना, मेरे हाथ से रावण का वध, इन्द्र ब्रह्मा और वरुण का वरदान ॥९॥

महादेवप्रसादाच्च पित्रा मम समागमम् ।
उपयान्तं च मां सौम्यं[1] भरतस्य निवेदय ॥१०॥
सह राक्षसराजेन हरीणां प्रवरेण च ।
एतच्छ्रुत्वा यमाकारं[2] भजते भरतस्तदा ॥११॥

महादेव जी के अनुग्रह से महाराज दशरथ के आत्मा के साथ मेरी भेंट और फिर कपिराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण सहित मेरा ( लौट कर ) श्रीअयोध्यापुरी के समीप आना आदि समस्त वृत्तान्त धीरे धीरे तुम भरत जी से कहना। इन सब बातों को सुन भरत के चेहरे का रंग कैसा होता है अर्थात् उनके मुख की आकृति से ( हर्ष या शोक ) क्या प्रकट होता है ॥१०॥११॥

स च ते वेदितव्यः स्यात् सर्वं यच्चापि मां प्रति ।
जित्वा शत्रुगणान् रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ॥१२॥
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ।
ज्ञेयाश्च सर्वे वृत्तान्ता भरतस्येङ्गितानि च ॥१३॥

---

१ सौम्येंत्यनेन मन्दं मन्दं कथय। अन्यथा हठान्मदागमनश्रवणे हर्षोऽस्य उन्मत्तको भवेदिति भावः। ( गो० ) २ आकारं—मुखप्रसादादिकं। (गो०)

अथवा उनकी मेरे प्रति कैसी भावना है—ये सब बातें तुम जान लेना। भरत से यह भी कह देना कि, श्रीरामचन्द्र समस्त शत्रुओं को जीत कर सर्वोत्तम यश पा और पिता की आज्ञा का पालन कर, पूर्णमनोरथ हो महाबलवान् मित्रों सहित अयोध्यापुरी के निकट आ पहुँचे हैं। मेरे विषय की जो जो बातें हों, उन सबको जान लेना और भरत की चेष्टाओं पर विशेष ध्यान देना ॥१२॥१३॥

तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्ट्या व्याभाषणेन च।
सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसङ्कुलम् ॥१४॥

इस प्रकार मेरे आने का समाचार सुन, भरत के मुख की रंगत और निगाह कैसी हुई और उन्होंने क्या कहा—इन बातों की यथार्थ जानकारी प्राप्त करना। क्योंकि इष्ट पदार्थों से परिपूर्ण और हाथी, घोड़ों और रथों से भरा पूरा ॥१४॥

पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः।
सङ्गत्या भरतः श्रीमान्राज्यार्थी चेत्स्वयं भवेत् ॥१५॥

प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नामखिलां रघुनन्दनः।
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ॥१६॥

यावन्न दूरं याताः स्म क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।
इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ॥१७॥

बापदादों का राज्य पाकर किसका मन नहीं बदल जाता, बहुत दिनों तक राज्य करने से यदि श्रीमान् भरत जी अब स्वयं ही राज्य करने के अभिलाषी हों; तो वे ही समस्त पृथिवी का पालन करें। हे हनुमन्! जब तक मैं यहाँ से बहुत दूर (श्रीअयोध्यापुरी की ओर) पहुँचू ही पहुँचू, उसके पूर्व ही भरत के मान-

सिक विचारों का भेद लेकर ( और यदि उनके विचार मेरे विरुद्ध हों तो, ) तुम तुरन्त लौट आना। पवननन्दन हनुमान जी को जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्र जी ने आज्ञा दी ॥१५॥१६॥१७॥

[ टिप्पणी—भरत जी के शील स्वभाव से रघुनन्दनराम भली भाँति परिचित थे, तथापि मानव स्वभाव-सुलभ चाञ्चल्य पर भी उनका पूरा ध्यान था। ]

मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ।
अथोत्पपात वेगेन हनुमान् मारुतात्मजः ॥१८॥

तब वे मनुष्य का रूप धर कर तुरन्त श्रीअयोध्या की ओर रवाना होने को तैयार हो गए। पवननन्दन हनुमान् जी उछल कर आकाश में पहुँचे ॥१८॥

गरुत्मानिव वेगेन जिघृक्षन् भुजगोत्तमम्।
लङ्घयित्वा पितृपथं विहगेन्द्रालयं शुभम् ॥१९॥

और जैसे गरुड़ बड़े वेग से किसी महासर्प के ऊपर झपटते हैं, वैसे ही वे बड़े वेग से चले। वे वायुमार्ग को नाँघ कर, बड़े पक्षियों के उड़ने के मार्ग से ( उड़ते हुये चले जाते थे ) ॥१९॥

गङ्गायमुनयोर्मध्यं सन्निपातमतीत्य च।
शृङ्गबेरपुरं प्राप्य गुहमासाद्य वीर्यवान् ॥२०॥

गङ्गा यमुना के सङ्गम को नाँघ बलवान हनुमान शृङ्गबेरपुर में गुह के पास जा पहुँचे ॥२०॥

स वाचा शुभया हृष्टो हनुमानिदमब्रवीत्।
सखा तु तव काकुत्स्थो रामः सत्यपराक्रमः ॥२१॥
सहसीतः ससौमित्रिः स त्वां कुशलमब्रवीत्।
पञ्चमीमद्य रजनीमुषित्वा वचनान् मुनेः ॥२२॥

भरद्वाजाभ्यनुज्ञातं द्रक्ष्यस्यद्यैव राघवम् ।
एवमुक्त्वा महातेजाः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥२३॥

उत्पात महावेगो वेगवानविचारयन्[१] ।
सोपश्यद्रामतीर्थं च नदीं वालुकिनीं तथा ॥२४॥

वहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक गुह से यह शुभ वचन कहे—हे गुह ! तुम्हारे सत्यपराक्रमी मित्र श्रीरामचन्द्र जी ने अपना तथा सीता और लक्ष्मण का कुशलसंवाद तुमसे कहलाया है । आज पञ्चमी की रात को, वे भरद्वाज जी के कहने से उन्हीं के आश्रम में रहकर बितावेंगे । फिर उनकी आज्ञा से वे कल वहाँ से रवाना होंगे और यहीं उनसे तुम्हारी भेंट होगी । यह कह महातेजस्वी एवं वेगवान् हनुमान जी रोयें फुला और मार्ग चलने की थकावट को कुछ भी न समझ अथवा रास्ते के नदी, वन और पहाड़ों की मनोरम शोभा की ओर ध्यान न दे, आगे बढ़ते ही गए । उन्होंने मार्ग में परशुरामतीर्थ, ( अर्थात् परशुरामघाट ) और वालुकिनी नदी को देखा ।२१॥२२॥२३॥२४॥

गोमतीं तां च सोऽपश्यद्भीमं सालवनं तथा ।
प्रजाश्च बहुसाहस्राः स्फीताञ्जनपदानपि ॥२५॥

स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुञ्जरः ।
आससाद द्रुमान फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपगान् ॥२६॥

गोमती नदी तथा भयानक सालवन, सहस्रों लोगों से भरी पूरी बस्तियों और बड़े बड़े समृद्धशाली नगरों को देखते हुए बहुत दूर चल कर, कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी बड़ी तेजी से नन्दिग्राम के निकट

---

१ अविचारयन्—अध्वश्रममगणयन् । ( शि० )

विविध प्रकार के पुष्पित वृक्षों से भरे पूरे एक उपवन में पहुँचे ॥२५॥२६॥

[ टिप्पणी—पाश्चात्य पण्डितों की भ्रान्त धारणा है कि रामायण काल में भारतवर्ष में नगरों की संख्या अल्प थी किन्तु २५ वें श्लोक के अन्तिम पाद से इस भ्रांत धारणा का निराकरण हो जाता है । ]

स्त्रीभिः सपुत्रैर्वृद्धैश्च रममाणैरलङ्कृतान् ।
सुराधिपस्योपवने यथा चैत्ररथे द्रुमान् ॥२७॥

उन्होंने वहाँ जा कर देखा कि, वहाँ के बूढ़े बड़े लोग और अलङ्कृत स्त्रियाँ, अपने पुत्रों और पौत्रों के साथ आनन्द में मग्न हों, वैसे ही शोभायमान जान पड़ती हैं ; जैसे चैत्ररथवन अथवा नन्दनवन में लगे हुए वृक्ष शोभायमान होते हैं ॥२७॥

क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥२८॥

तदनन्तर अयोध्या से एक कोस के फासले पर ( नन्दिग्राम में ) चीर और काले मृगचर्म को पहिने हुए, शरीर से कृश, उदास मन किए आश्रमवासी भरत को हनुमान जी ने देखा ॥२८॥

जटिलं मलदिग्धाङ्गं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ।
फलमूलाशिनं [1]दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥२९॥

हनुमान जी ने देखा कि, भरत जी के सिर पर जटाजूट है, सारे शरीर में मैल चिपटा हुआ है और श्रीरामचन्द्र के वियोग-जन्य दुःख से वे दुःखी हो रहे हैं। वे फल मूल खाते हैं, इन्द्रियों को अपने वश में कर तप में रत रह कर, धर्माचरण में संलग्न हैं ॥२९॥

---

१ दान्तं—बहिरिन्द्रियनिग्रहशालिनं । ( गो० )

समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ।
१नियतं २भावितात्मानं ब्रह्मर्षिसमतेजसम् ॥३०॥

उनके सिर के ऊपर बालों की लंबी जटाएँ बढ़ गई हैं। उन जटाओं के भार को वे अपने सिर पर रखे हुए हैं अथवा बालों का जूड़ा बाँधे हुए हैं। वे वल्कलवस्त्र और काले हिरन की चाम के वस्त्र पहिने हुए हैं। वे अपनी वाणी तथा अपने मन को अपने वश में किए हुए हैं और ब्रह्मर्षि के समान तेजस्वी हैं ॥३०॥

पादुके ते पुरस्कृत्य शासन्तं वै वसुन्धराम् ।
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥३१॥

श्रीरामचन्द्र जी की खड़ाउओं को अपने आगे रख, वे पृथिवी का शासन कर रहे हैं और चारों वर्णमयी प्रजा की, समस्त भयों से रक्षा कर रहे हैं ॥३१॥

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥३२॥

उनके समीप काषायवस्त्रधारी एवं ईमान्दार मंत्री, सेनाध्यक्ष और पुरोहित बैठे हुए हैं ॥३२॥

न हि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा३ वै धर्मवत्सलम् ॥३३॥

जब धर्मवत्सल भरत जी ने काषायवस्त्र और काले मृग का चर्म धारण कर रखा था, तब उनके पार्श्ववर्ती जनों ने भी (मुनि वेषधारी राजा की सेवा में रह कर) अन्य प्रकार के वस्त्र पहिन

---

१ नियतं नियतवाचं। (गो०) २ भावितात्मानं—ध्यातात्मानमिति मनोनियमोक्तिः। (गो०) ३ पौराः—परि परितो वर्तमाना अपि पौराः। (गो०)

कर उनके पास रहना उचित नहीं समझा। अतः वे भी काषायवस्त्र पहिने हुए थे ॥३३॥

तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहवन्तमिवापरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान् मारुतात्मजः ॥३४॥

धर्म की मूर्तिमान दूसरी मूर्ति, धर्म के जानने वाले भरत जी से पवननन्दन हनुमान् जी ने हाथ जोड़ कर कहा ॥३४॥

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थं स त्वां कुशलमब्रवीत् ॥३५॥

हे देव ! तुम रात दिन जिन दण्डकारण्यवासी और चीर जटाधारी की चिन्ता में डूबे रहते हो, उन श्रीरामचन्द्र जी ने तुम्हारे लिए अपना कुशलसंवाद भेजा है ॥३५॥

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ।
अस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सह सङ्गतः ॥३६॥

हे देव ! मैं तुमको यह प्रियसंवाद सुनाने को आया हूँ— अब तुम इस अत्यन्त दारुण शोक को त्याग दो। थोड़ी ही देर में तुमसे तुम्हारे भाई की भेंट हो जायगी ॥३६॥

निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥३७॥

श्रीरामचन्द्र जी रावण को मार, सीता को प्राप्त कर, वनवास की अवधि पूरी कर, महाबलवान् मित्रों के साथ लिए हुए आ रहे हैं ॥३७॥

लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता [1]समग्रा रामेण महेन्द्रेण यथा शची ॥३८॥

उनके साथ महातेजस्वी लक्ष्मण और यशस्विनी जानकी जी भी

---

१ समग्रा—सम्पूर्ण मनोरथा। ( गो० )

है। इन्द्राणी शची सहित इन्द्र की तरह श्रीरामचन्द्र जी परिपूर्ण मनोरथा सीता को साथ लिए हुए आकर, तुमसे शीघ्र मिलने ही वाले हैं ॥३८॥

एवमुक्तो हनुमता भरतो भ्रातृवत्सलः ।

पपात सहसा हृष्टो हर्षात् मोहं जगाम ह ॥३९॥

हनुमान् जी के मुख से श्रीरामचन्द्र के आने की बात निकलते ही भातृवत्सल भरत जी एक साथ आनन्द के आवेश में भर, मूर्छित हो, भूमि पर गिर पड़े ॥३९॥

ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।

हनुमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥४०॥

फिर कुछ देर बाद सावधान हो, भरत जी उठ बैठे और ऊँची स्वाँस लेते हुए, प्रियवादी हनुमान् जी से यह बोले ॥४०॥

अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिङ्ग्य सम्भ्रमात् ।

सिषेच भरतः श्रीमान् विपुलैरस्रबिन्दुभिः ॥४१॥

प्रीति में भर आदरपूर्वक श्रीमान् भरत जी ने हनुमान् जी को अपने गले लगा आनन्द से उत्पन्न बड़े बड़े आनन्दाश्रुओं से उनके शरीर को तर कर दिया। ( तदनन्तर बोले ) ॥४१॥

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।

प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम् ॥४२॥

गवां शतसहस्रं च ग्रामाणां च शतं परम् ।

सकुण्डलाः शुभाचारा भार्याः कन्याश्च षोडश ॥४३॥

हेमवर्णाः सुनासोरूः शशिसौम्याननाः स्त्रियः ।

सर्वाभरणसम्पन्नाः सम्पन्नाः कुलजातिभिः ॥४४॥

---

१ विपुलैः—गुरुभिः । ( गो० )

तुम चाहे मनुष्य हो चाहे देवता। तुमने बड़ी कृपा की जो यहाँ आए। हे सौम्य! इस हर्षसमाचार को सुनाने के पुरस्कार में मैं तुमको १ लाख गौएँ और १०० गाँव और स्त्रियाँ बनाने के लिये १६ क्वारी युवतियाँ देता हूँ। ये युवतियाँ कुण्डलों से भूषित, सुन्दर नासिकाएँ वाली, चन्द्रमा जैसे मुख वाली, अच्छे आचरण वाली, समस्त आभूषणों से सजी हुई और अच्छे कुल में उत्पन्न हुई हैं। अर्थात् कुलीन घरों की हैं और उनके शरीर का रंग सुवर्ण जैसा है ॥४२॥४३॥४४॥

निशम्य रामागमनं नृपात्मजः
कपिप्रवीरस्य तदद्भुतोपमम्।
प्रहर्षितो रामदिदृक्षयाभवत्
पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद्वचः ॥४५॥

इति अष्टाविंशत्युत्तरशततमः सर्गः ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी के आने का अद्भुत समाचार पा, राजकुमार भरत जी। श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करने की इच्छा से अत्यन्त हर्षित हुए और हर्षित अन्तःकरण से पुनः यह बोले ॥४५॥

युद्धकाण्ड का एकसौ अट्ठाईसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—❀—

## एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः

—:०:—

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम्।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥१॥

यथा दूतैस्त्वमानीतस्तूर्णं राजगृहात् प्रभो ।
त्वयाऽयोध्यां प्रविष्टेन यथा राज्यं न चेप्सितम् ॥६॥

फिर किस तरह तुमको दूत ननिहाल से शीघ्रतापूर्वक श्रीअयोध्यापुरी में लिवा लाए । फिर किस प्रकार तुमने श्रीअयोध्यापुरी में आकर राज्य करना न चाहा ॥६॥

चित्रकूटं गिरिं गत्वा राज्येनामित्रकर्शन ।
निमन्त्रितस्त्वया भ्राता धर्ममाचरता सताम् ॥७॥
स्थितेन राज्ञो वचने यथा राज्यं विसर्जितम् ।
आर्यस्य पादुके गृह्य यथाऽसि पुनरागतः ॥८॥

परम्परागत नियमानुसार राज्य सौंपने के लिए तुम भाई के पास चित्रकूट गये, परन्तु पिता के वचन पर अटल रहने के कारण श्रीरामचन्द्र जी ने राज्य लेना स्वीकार न किया । और जिस प्रकार तुम अपने बड़े भाई की खड़ाऊँ लेकर फिर अयोध्या में लौट आए ॥७॥८॥

सर्वमेतन् महाबाहो यथावद्विदितं तव ।
त्वयि प्रतिप्रयाते तु यद्वृत्तं तन्निबोध मे ॥९॥

हे महाबाहो ! यह सब तो तुमको यथावत् मालूम ही है। तुम्हारे लौट आने के बाद जो जो घटनाएँ हुई उनको मैं कहता हूँ, तुम सुनो ॥९॥

अपयाते त्वयि तदा समुद्भ्रान्तमृगद्विजम् ।
१परिद्यूनमिवात्यर्थं तद्वनं समपद्यत ॥१०॥

जब तुम श्रीअयोध्यापुरी को लौट आए, तब उस वन के समस्त पशुपक्षी विकल से दिखाई देने लगे ॥१०॥

---

१ परिद्यूनं—परितप्तं । (गो०)

तद्धस्तिमृदितं घोरं सिंहव्याघ्रमृगायुतम् ।
प्रविवेशाथ विजनं सुमहद्दण्डकावनम् ॥११॥

तब श्रीरामचन्द्र जी हाथियों से खूँदे हुए और सिंहों व्याघ्रों तथा मृगों से परिपूर्ण उस वियावान् दण्डकवन में घुसे ॥११॥

तेषां पुरस्ताद्बलवान् गच्छताम् गहने वने ।
निनदन् सुमहानाद विराधः प्रत्यदृश्यत ॥१२॥

उस गहन वन में जाते जाते उन्होंने देखा कि, विराध नाम का एक राक्षस बड़े जोर से सिंह की तरह दहाड़ता हुआ, सामने चला आता है ॥१२॥

तमुत्क्षिप्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ।
निखाते प्रक्षिपन्ति स्म नदन्तमिव कुञ्जरम् ॥१३॥

हाथी की तरह चिंघारते हुए कबन्ध को (दोनों भाइयों ने) पकड़ कर उठा लिया और उसकी दोनों भुजाएँ ऊपर कर तथा मुँह नीचे कर गड्ढे में डाल कर गाड़ दिया ॥१३॥

तत्कृत्वा दुष्करं कर्म भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
सायाह्ने शरभङ्गस्य रम्यमाश्रममीयतुः ॥१४॥

इस दुष्कर काम को कर दोनों भाई श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण शाम होते होते शरभङ्ग के रमणीक आश्रम में पहुँचे ॥१४॥

शरभङ्गे दिवं प्राप्ते रामः सत्यपराक्रमः ।
अभिवाद्य मुनीन् सर्वाञ्जनस्थानमुपागमत् ॥१५॥

जब शरभङ्ग जी स्वर्गवासी हो गए, तब सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी वहाँ के रहने वाले समस्त मुनियों को प्रणाम कर, जनस्थान में पहुँचे ॥१५॥

ततः पश्चाच्छूर्पणखा रामपार्श्वमुपागता ।
ततो रामेण सन्दिष्टो लक्ष्मणः सहसोत्थितः ॥१६॥

प्रगृह्य खड्गं चिच्छेद कर्णनासं महाबलः ।
चतुर्दश सहस्राणि रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥१७॥

हतानि वसता तत्र राघवेण महात्मना ।
एकेन सह संगम्य रणे रामेण सङ्गताः ॥१८॥

इसके बाद सूपनखा श्रीरामचन्द्र जी के पास आई। तब श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा से महाबली लक्ष्मण ने लपक कर और तलवार निकाल कर, उससे उसके नाक और कान काट डाले। तत्पश्चात् १४,००० भयङ्कर कर्म करने वाले राक्षसों को जनस्थान में रहते समय महात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने मार डाला। उस समय चौदह हज़ार राक्षसों ने एकसाथ आक्रमण किया था, किन्तु अकेले श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में ॥१६॥१७॥१८॥

अह्नश्चतुर्थभागेन[1] निःशेषा राक्षसाः कृताः ।
महाबला महावीर्यास्तपसो विघ्नकारिणः ॥१९॥

उन सब राक्षसों को लगभग सवा तीन घंटे में निःशेष कर डाला। वे सब राक्षस बड़े बलवान्, बड़े पराक्रमी थे और तपस्वियों की तपस्या में विघ्न डाला करते थे ॥१९॥

निहता राघवेणाजौ दण्डकारण्यवासिनः ।
राक्षसाश्च विनिष्पिष्टाः खरश्च निहतो रणे ॥२०॥

---

१ अह्नश्चतुर्थभागेन—अह्नश्चतुर्थोयामः। (गो०)

तथा दण्डकवन में रहा करते थे। उन सब को श्रीरामचन्द्र जी ने मार डाला। राक्षसों को मार श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में खर को मारा ॥२०॥

ततस्तेनार्दिता बाला रावणं समुपागता।
रावणानुचरो घोरो मारीचो नाम राक्षसः ॥२१॥

सूपनखा रावण के पास गई और वहाँ रोई धोई। रावण का एक अनुचर था, जिसका नाम मारीच था और वह बड़ा भयङ्कर था ॥२१॥

लोभयामास वैदेहीं भूत्वा रत्नमयो मृगः।
अथैनमब्रवीद्रामं वैदेही गृह्यतामिति ॥२२॥
अहो मनोहरः कान्त आश्रमो नो भविष्यति।
ततो रामो धनुष्पाणिर्धावन्तमनुधावति ॥२३॥

उसने रत्नमय मृग का रूप धारण कर सीता को लुभाया। तब जानकी जी ने श्रीरामचन्द्र जी से कहा कि, इस हिरन को पकड़ लाइए। वाह! यह कैसी मनोहर कान्ति वाला मृग है। इससे तो हमारे आश्रम की अपूर्व शोभा होगी। तब श्रीरामचन्द्र जी ने उस दौड़ते हुए मृग का पीछा किआ ॥२२॥२३॥

स तं जघान धावन्तं शरेणानतपर्वणा।
अथ सौम्य दशग्रीवो मृगं याते तु राघवे ॥२४॥
लक्ष्मणे चापि निष्क्रान्ते प्रविवेशाश्रमं तदा।
जग्राह तरसा सीतां ग्रहः खे रोहिणीमिव ॥२५॥

उस दौड़ते हुए मृग को श्रीरामचन्द्र जी ने एक बाणविशेष से मार डाला। हे सौम्य! श्रीरामचन्द्र जी के उस मृग के पीछे

जाने पर तथा लक्ष्मण जी के भी आश्रम छोड़ बाहिर चले जाने पर, दशग्रीव रावण आश्रम में घुसा और बलात् (जबरदस्ती) सीता को पकड़ कर भागा, मानों आकाश में मङ्गलग्रह रोहिणी को हरता हो ॥२४॥२५॥

त्रातुकामं ततो युद्धे हत्वा गृध्रं जटायुषम् ।
प्रगृह्य सीतां सहसा जगामाशु स रावणः ॥२६॥

जटायु ने सीता की रक्षा करनी चाही; किन्तु रावण उसको मार कर और सीता को पकड़ कर, तुरन्त वहाँ से चला गया ॥२६॥

ततस्त्वद्भुतसङ्काशाः स्थिताः पर्वतमूर्धनि ।
सीतां गृहीत्वा गच्छन्तं वानराः पर्वतोपमाः ॥२७॥
ददृशुर्विस्मितास्तत्र रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रविवेश ततो लङ्कां रावणो लोकरावणः ॥२८॥

उस समय पवत के समान अद्भुताकार वानर, जो पर्वत के शिखर पर बैठे थे, सीता को ले जाते हुए राक्षसराज रावण को देख, विस्मित हुए और लोकों को रुलाने वाला रावण लंका में जा पहुँचा ॥२७॥२८॥

तां सुवर्णपरिक्रान्ते शुभे महति वेश्मनि ।
प्रवेश्य मैथिलीं वाक्यैः सान्त्वयामास रावणः ॥२९॥

सोने की चहारदीवारी अर्थात् परकोटे से युक्त बड़े लंबे चौड़े रमणीक एक घर या महल में रख, रावण सीता को समझाने और लुभाने लगा ॥२९॥

तृणवद्भाषितं तस्य तं च नैर्ऋतपुङ्गवम् ।
अचिन्तयन्ती वैदेही अशोकवनिकां गता ॥३०॥

किन्तु सीता जी ने उसके समस्त वचनों को और उस राक्षस-श्रेष्ठ को तिनके के बराबर भी परवाह न की। तदनन्तर रावण ने सीता को अशोकवाटिका में ले जा कर रखा ॥३०॥

न्यवर्तत ततो रामो मृगं हत्वा महावने ।
निवर्तमानः काकुत्स्थोऽदृष्ट्वा गृध्रं प्रविव्यथे ॥३१॥

उधर दण्डकवन में मृग को मार श्रीरामचन्द्र जी ने अपनी कुटी की ओर लौटते समय जटायु को देखा और वे उसे देख बड़े दुःखी हुए ॥३१॥

गृध्रं हतं ततो दग्ध्वा रामः प्रियसखं पितुः ।
मार्गमाणस्तु वैदेहीं राघवः सहलक्ष्मणः ॥३२॥

अपने पिता के प्यारे मित्र उस मरे हुए गीध को जला कर, लक्ष्मण सहित श्रीरामचन्द्र जी सीता को ढूँढ़ने लगे ॥३२॥

गोदावरीमन्यचरद्वनोद्देशांश्च पुष्पितान् ।
आसेदतुर्महारण्ये कबन्धं नाम राक्षसम् ॥३३॥

गोदावरी नदी के किनारे फूले हुए वनों में ढूँढ़ते हुए उस दण्डकवन में उनको कबन्ध नामक राक्षस मिला ॥३३॥

ततः कबन्धवचनाद्रामः सत्यपराक्रमः ।
ऋष्यमूकं गिरिं गत्वा सुग्रीवेण समागतः ॥३४॥

कबन्ध के कहने से सत्यपराक्रमी श्रीरामचन्द्र जी ऋष्यमूक पर्वत पर गए और वहाँ सुग्रीव से मिले ॥३४॥

तयोः समागमः पूर्वं प्रीत्या हार्दो व्यजायत ।
भ्रात्रा निरस्तः क्रुद्धेन सुग्रीवो वालिना पुरा ॥३५॥

उन दोनों का समागम होने पर दोनों में प्रगाढ़ मैत्री हो गई। बालि ने सुग्रीव को क्रोध में भर राजधानी से निकाल दिया था ॥३५॥

इतरेतरसंवादात् प्रगाढ़ः प्रणयस्तयोः ।
रामस्य बाहुवीर्येण स्वराज्यं प्रत्यपादयत् ॥३६॥

बातचीत में एक दूसरे का वृत्तान्त जानने पर, उन दोनों में गाढ़ी मैत्री हो गई। तब श्रीरामचन्द्र जी के बाहुबल से, सुग्रीव को उनका राज्य मिल गया ॥३६॥

वालिनं समरे हत्वा महाकायं महाबलम् ।
सुग्रीवः स्थापितो राज्ये सहितः सर्ववानरैः ॥३७॥

महाकाय एवं महाबली बालि को युद्ध में मार, श्रीरामचन्द्र जी ने समस्त वानरों सहित सुग्रीव को राज्यसिंहासन पर बैठाया ॥३७॥

रामाय प्रतिजानीते राजपुत्र्याश्च मार्गणम् ।
आदिष्टा वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण महात्मना ॥३८॥

दश कोट्यः प्लवङ्गानां सर्वाः प्रस्थापिता दिशः ।
तेषां नो विप्रकृष्टानां विन्ध्ये पर्वतसत्तमे ॥३९॥

तब सुग्रीव ने राजनन्दिनी जानकी का पता लगाने की प्रतिज्ञा की और वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से दसकरोड़ वानर दसों दिशाओं में भेजे गए। उनमें से हम लोग विन्ध्याचल पर्वत पर ढूँढ़ने के लिए गए ॥३८॥३९॥

भृशं शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत ।
भ्राता तु गृध्रराजस्य सम्पातिर्नाम वीर्यवान् ॥४०॥

समाख्याति स्म वसतिं सीताया रावणालये ।
सोऽहं शोकपरीतानां दुःखं तज्ज्ञातिनां नुदन् ॥४१॥

ढूँढ़ते ढूँढ़ते जब बहुत समय बीत गया और सीता का कहीं भी पता न चला ; तब हम सब लोग अत्यन्त दुःखी हुए । तब गृध्रराज जटायु के वीर भाई सम्पाति ने बतलाया कि, सीता रावण के घर में हैं । तब मैंने अपने दुःखी भाइयों का दुख मिटाने के लिए, ॥४०॥४१॥

आत्मवीर्यं समास्थाय योजनानां शतं प्लुतः ।
तत्राहमेकामद्राक्षमशोकवनिकां गताम् ॥४२॥

अपने बलवीर्य के सहारे सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ और लंका में पहुँच, अशोकवाटिका में सीता को देखा ॥४२॥

कौशेयवस्त्रां मलिनां निरानन्दां दृढव्रताम् ।
तया समेत्य विधिवत् पृष्ट्वा सर्वमनिन्दिताम् ॥४३॥

केवल एक मैली रेशमी साड़ी पहिने हुए शोकपीड़ित पातिव्रत को दृढ़तापूर्वक पालन करती हुई, अनिन्दिता सीता के पास मैं गया और सब हाल ठीक ठीक पूँछा ॥४३॥

अभिज्ञानं च मे दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ।
अभिज्ञानं मणिं लब्ध्वा चरितार्थोऽहमागतः ॥४४॥

और पहिचान के लिए मैंने श्रीरामचन्द्र की दुई अँगूठी उनको दी । फिर उनसे चमचमाती चूड़ामणि ले और अपना काम पूरा कर ॥४४॥

**मया च पुनरागम्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।**
**अभिज्ञानं मया दत्तमर्चिष्मान् स महामणिः ॥४५॥**

मैं अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के पास लौट आया और सीता जी की दी हुई चिन्हानी वह चमचमाती महाचूड़ामणि श्रीरामचन्द्र जी को दी ॥४५॥

**श्रुत्वा तु मैथिलीं हृष्टस्त्वाशशंसे च जीवितम् ।**
**जीवितान्तमनुप्राप्तः पीत्वाऽमृतमिवातुरः ॥४६॥**

मरण अवस्था को प्राप्त यदि किसी रोगी मनुष्य को अमृत पीने को मिल जाय, तो उस समय उसको जैसे जीने की आशा बँधती है, वैसी ही श्रीरामचन्द्र जी को सीता का समाचार पाकर, अपने जीवन की आशा बँध गयी ॥४६॥

**उद्योजयिष्यन्नुद्योगं दध्रे कामं वधे मनः ।**
**जिघांसुरिव लोकान्ते सर्वाँल्लोकान् विभावसुः ॥४७॥**

फिर श्रीरामचन्द्र जी ने लंका का नाश करने के लिए वैसा उद्योग किया ; जैसा कि, प्रलयकालीन अग्निदेव प्रलयकाल में सब का नाश करने का उद्योग करते हैं । अथवा उद्योग करने में उद्यत हो, श्रीरामचन्द्र जी ने लंका का विध्वंस करने की इच्छा से प्रलय समय में सब लोगों का नाश करने वाले अग्नि की तरह रोष किया ॥४७॥

**ततः समुद्रमासाद्य नलं सेतुमकारयत् ।**
**अतरत् कपिवीराणां वाहिनी तेन सेतुना ॥४८॥**

फिर समुद्र तट पर पहुँच, श्रीरामचन्द्र जी ने नल के हाथ से समुद्र के ऊपर पुल बँधवाया और, उस पुल पर हो कर समस्त वानरी सेना समुद्र के पार हुई ॥४८॥

प्रहस्तमवधीन्नीलः कुम्भकर्णं तु राघवः ।
लक्ष्मणो रावणसुतं स्वयं रामस्तु रावणम् ॥४६॥

लंका में पहुँच नील ने ( रावण के प्रधान अमात्य ) प्रहस्त को, श्रीरामचन्द्र जी ने कुम्भकर्ण को, लक्ष्मण जी ने रावण के पुत्र इन्द्रजीत को तथा स्वयं श्रीरामचन्द्र जी ने रावण का वध किया ॥४६॥

स शक्रेण समागम्य यमेन वरुणेन च ।
महेश्वरस्वयंभूभ्यां तथा दशरथेन च ॥५०॥

तदनन्तर इन्द्र, यम, वरुण, महादेव, ब्रह्मा तथा महाराज दशरथ आ कर श्रीरामचन्द्र जी से मिले ॥५०॥

तैश्च दत्तवरः श्रीमानृषिभिश्च समागतः ।
सुरर्षिभिश्च काकुत्स्थो वराँल्लेभे परन्तपः ॥५१॥

इन देवताओं ने श्रीरामचन्द्र जी को वर दिए । फिर ऋषि लोग आकर श्रीरामचन्द्र जी से मिले । देवर्षियों से भी परन्तप श्रीरामचन्द्र जी को वरदान प्राप्त हुआ ॥५१॥

स तु दत्तवरः प्रीत्या वानरैश्च समागतः ।
पुष्पकेण विमानेन किष्किन्धामभ्युपागमत् ॥५२॥

इस प्रकार वरदान पा कर और पुष्पक विमान में बैठ वानरों सहित श्रीरामचन्द्र जी किष्किन्धापुरी में आए ॥५२॥

तं गङ्गां पुनरासाद्य वसन्तं मुनिसन्निधौ ।
अविघ्नं पुष्ययोगेन श्वो रामं द्रष्टुमर्हसि ॥५३॥

फिर वहाँ से रवाना हो श्रीरामचन्द्र जी गङ्गा के तट पर भरद्वाज मुनि के आश्रम में आ गए। अब कल पुष्य नक्षत्र में आप से और श्रीरामचन्द्र जी से भेंट होगा ॥५३॥

ततस्तु सत्यं हनुमद्वचो मह-
न्निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः।
उवाच वाणीं मनसः प्रहर्षिणीं
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥५४॥

इति एकोनत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥

हनुमान् जी के मुख से मधुरवाणी में समस्त सत्य सत्य वृत्तान्त सुन, भरत जी हर्षित हो गए और मन से (बनावटी नहीं) हर्षित करने वाले यह वचन हाथ जोड़ कर बोले कि, आज बहुत दिनों की मेरी साध पूरी हुई ॥५४॥

[ टिप्पणी—हनुमान जी लौट कर श्रीराम जी के पास न गए प्रत्युत नंदिग्राम ही में ठहरे रहे क्योंकि श्रीरामचन्द्र जी ने उनसे कहा था "यस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर। यावन्न दूरं यातास्म क्षिप्रमागन्तुमर्हसि।" १२८ श्लोक १६। १७ हनुमान जी ने जब भरत के मन की स्वच्छता को भाँप लिया तब वे नन्दिग्राम ही में रुक गए—लौट कर नहीं गए। ]

युद्धकाण्ड का एकसौ उनतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—*—

## त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः

—*—

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रमः।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥१॥

श्रीरामचन्द्र जी के आगमन का यह परमानन्ददायी संवाद सुन, सत्यपराक्रमी भरत ने हर्षित हो, शत्रुघाती शत्रुघ्न को आज्ञा दी ॥१॥

[1]दैवतानि च सर्वाणि चैत्यानि[2] नगरस्य च।
सुगन्धमाल्यैर्वादित्रैरर्चन्तु शुचयो नराः ॥२॥

नगर के सब कुलदेवताओं के मन्दिरों तथा साधारण देवमन्दिरों में गन्धमाल्यादि ले, गाजे बाजे के साथ जा कर और पवित्र हो लोग पूजा करें ॥२॥

सूताः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैतालिकास्तथा।
सर्वे वादित्रकुशला गणिकाश्चापि सङ्घशः ॥३॥

पुराणज्ञ और विरुदावली जानने वाले समस्त सूत तथा समस्त बंदीजन तथा बाजों के बजाने में कुशल बजतरी लोग और नाचने गाने वाली वेश्याओं के झुण्ड के झुण्ड ॥३॥

अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम्।
भरतस्य वचः श्रुत्वा शत्रुघ्नः परवीरहा ॥४॥
विष्टीरनेकसाहस्रीश्चोदयामास वीर्यवान्।
समीकुरुत निम्नानि विषमाणि समानि च ॥५॥
स्थलानि च निरस्यन्तां नन्दिग्रामादितः परम्।
सिञ्चन्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतेन वारिणा ॥६॥

श्रीरामचन्द्र जी के चन्द्रसमान मुख का दर्शन करने के लिए चलें। भरत के ये वचन सुन, शत्रुघाता शत्रुघ्न ने कई सहस्र कुली कबाड़ियों और कारीगरों को आज्ञा दी कि, नन्दिग्राम से अयोध्या

---

१ दैवतानि—कुलदैवतानि। (रा०) २ चैत्यानि—साधारणदेवतायतनानि। (रा०)

के बीच की सड़क ठीक करें। जहाँ कहीं रास्ता ऊबड़ खाबड़ हो अर्थात् नीचा ऊँचा हो वहाँ उसे मट्टी से भर कर और छील कर बराबर एकसा कर दें। फिर बर्फ के समान शीतल जल से सड़क पर छिड़काव करें ॥४॥५॥६॥

ततोऽभ्यवकिरन् त्वन्ये लाजैः पुष्पैश्च सर्वशः।
समुच्छ्रितपताकास्तु रथ्याः पुरवरोत्तमे ॥७॥

फिर सड़कों के ऊपर फूल और लाजा बिखेर दें। पुरियों में उत्तम अयोध्यापुरी की सब सड़कों पर झंडियाँ लगा दी जाँय ॥७॥

शोभयन्तु च वेश्मानि सूर्यस्योदयनं प्रति।
स्रग्दामभिर्मुक्तपुष्पैः सुगन्धैः [1]पञ्चवर्णकैः ॥८॥

सूर्य के निकलने के पूर्व ही नगरी के समस्त भवन फूल-मालाओं और मोती के गुच्छों तथा सुगन्धित पाँच रंग के पदार्थों के चूर्ण से सजा दिए जाँय ॥८॥

राजमार्गमसम्बाधं किरन्तु शतशो नराः।
राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनागणाङ्गणाः ॥९॥

ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः।
धृष्टिर्जयन्तो विजयः सिद्धार्थो ह्यर्थसाधकः ॥१०॥

अशोको मन्त्रपालश्च सुमन्त्रश्चापि निर्ययुः।
मत्तैर्नागसहस्रैश्च शातकुम्भविभूषितैः ॥११॥

---

१ पंचवर्णकैः—पंचविधवर्णद्रव्यचूर्णैः। ( गो० )

राजमार्ग पर ( जगह जगह ) रंगबिरंगे चौक पूरे जाँय और राजमार्ग पर सैकड़ों मनुष्य पंक्तिबद्ध खड़े हों। ( ये सब तैयारी हो जाने पर ) रानियाँ, अमात्य, सैनिक, सैनिकों की स्त्रियाँ, ब्राह्मण राजमाताएँ, प्रधान वैश्य और नगर के महाजन और धृष्ट, जयन्त, विजय, सिद्धार्थ, अर्थसाधक, अशोक मंत्रपाल और सुमंत्र ये आठों मंत्री सोने के गहनों से अलकृत सहस्रों मदमाते हाथियों को साथ ले निकलें ॥९॥१०॥११॥

अपरे हेमकक्ष्याभिः सगजाभिः करेणुभिः ।
निर्ययुस्तुरगाक्रान्तै रथैश्च सुमहारथाः ॥१२॥

इनके अतिरिक्त अन्य लोग भी सोने के हौदों में हथिनियों पर तथा साधारण हाथियों पर बैठ कर चले। बहुत से लोग घोड़ों पर चढ़ कर और बहुत से बड़े बड़े महारथी रथों में बैठ कर चले ॥१२॥

शक्त्युष्टिप्रासहस्तानां सध्वजानां पताकिनाम् ।
तुरगाणां सहस्रैश्च मुख्यैर्मुख्यनरान्वितैः ॥१३॥

पदातीनां सहस्रैश्च वीराः परिवृता ययुः ।
ततो यानान्युपारूढाः सर्वा दशरथस्त्रियः ॥१४॥

कौसल्यां प्रमुखे कृत्वा सुमित्रां चापि निर्ययुः ।
कैकेय्या सहिताः सर्वा नन्दिग्राममुपागमन् ॥१५॥

बहुत से लोग शक्ति, यष्टि, प्रास, ध्वजा पताकादि ले कर चले। सहस्रों वीर पैदल भी थे। महाराज दशरथ की सब रानियाँ कौसल्या और सुमित्रा को आगे कर, कैकेयी सहित सवारियों में बैठ बैठ कर, नन्दिग्राम में पहुँचीं ॥१३॥१४॥१५॥

कृत्स्नं च नगरं तत्तु नन्दिग्राममुपागमत् ।
अश्वानां खुरशब्देन रथनेमिस्वनेन च ॥१६॥

शङ्खदुन्दुभिनादेन सञ्चचालेव मेदिनी ।
द्विजातिमुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणीमुख्यैः सनैगमैः ॥१७॥

माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ।
शङ्खभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिवन्दितः ॥१८॥

ये ही क्यों बल्कि श्रीअयोध्यापुरी के समस्त निवासी ही नन्दिग्राम में जमा हो गये। घोड़ों का टापों और रथों के पहियों की घर-घराहट से तथा शङ्खों और दुन्दुभियों के बजने से, ऐसा होहल्ला मचा कि, जान पड़ा मानों पृथिवी काँप उठी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के मुखियों, सेठों, महाजनों, मंत्रियों को साथ ले तथा हाथों में पुष्प मालाएँ और लडडू ( भेंट के लिए ) लिये हुए, महात्मा भरत आश्रम ( नन्दिग्राम ) से आगे चले। साथ में शङ्ख और दुन्दुभी बज रही थीं और बंदीजन स्तुतिपाठ करते जाते थे ॥१६॥१७॥१८॥

आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ।
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ॥१९॥

शुक्ले च वालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ।
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ॥२०॥

धर्मकोविद भरत अपने सीस पर श्रीरामचन्द्र जी की पादुकाएँ रखे हुए थे। सफेद पुष्पमालाओं से शोभित सफेद छाता और राजाओं के योग्य सोने की डंडी का सफेद चँवर वे लिये

हुए थे। उपवास करते करते भरत जी का शरीर कृश हो गया था। वे दीन हो रहे थे तथा गेरुआ वस्त्र और काले हिरन का चर्म पहिने हुए थे ॥१६॥२०॥

भ्रातुरागमनं श्रुत्वा तत्पूर्वं हर्षमागतः।
प्रत्युद्ययौ ततो रामं महात्मा सचिवैः सह ॥२१॥
समीक्ष्य भरतो वाक्यमुवाच पवनात्मजम्।
कच्चिन्न खलु कापेयी सेव्यते चलचित्तता ॥२२॥

भाई का आगमन सुन महात्मा भरत बहुत प्रसन्न हुए और मंत्रियों को साथ लिए हुए वे श्रीरामचन्द्र जी की अगवानी को पैदल ही चले। फिर हनुमान जी की ओर देख भरत जी ने उनसे कहा—वानर स्वभाव ही से चञ्चल हुआ करते हैं। तुम कहीं अपनी स्वाभाविक चञ्चलतावश तो श्रीरामचन्द्र के आगमन का संवाद सुनाने मुझे नहीं आए हो ॥२१॥२२॥

[टिप्पणी—"कापेयी चलचित्तता" हनुमान जी के प्रति व्यंग्य वाक्य था। हनुमान जी तो ब्राह्मण का रूप धारण कर भरत जी के पास गए थे। हनुमान जी वानर हैं भरत जी को यह बात क्यों कर विदित हुई!]

न हि पश्यामि काकुत्स्थं राममार्यं परन्तपम्।
कच्चिन्न खलु दृश्यन्ते वानराः कामरूपिणः ॥२३॥

क्योंकि न तो श्रेष्ठ एवं परन्तप श्रीरामचन्द्र जी ही आते हुए देख पड़ते हैं और न कामरूपी वानर ॥२३॥

अथैवमुक्ते वचने हनुमानिदमब्रवीत्।
अर्थं विज्ञापयन्नेव भरतं सत्यविक्रमम् ॥२४॥

जब भरत जी ने इस प्रकार कहा, तब हनुमान जी अपने कथन की सत्यता जतलाने के लिए सत्यविक्रमी भरत जी से बोले ॥२४॥

सदाफलान् कुसुमितान् वृक्षान् प्राप्य मधुस्रवान् ।
भरद्वाजप्रसादेन मत्तभ्रमरनादितान् ॥२५॥

भरद्वाजमुनि की कृपा से रास्ते के सब वृक्ष सदा फल देने वाले, मधुर रस बहाने वाले और मस्त भौंरों से गुञ्जायमान हो रहे हैं ॥२५॥

तस्य चैष वरो दत्तो वासवेन परन्तप ।
ससैन्यस्य तथाऽऽतिथ्यं कृतं सर्वगुणान्वितम् ॥२६॥

मुनि भरद्वाज को यह सामर्थ्य इंद्र के वरदान से प्राप्त हुई है। सब गुण आगर भरद्वाज जो ने सेना-सहित श्रीरामचन्द्र जी की पहुनाई की है। ( आप चिन्ता न करें ) जान पड़ता है वहीं खाने पीने में बिलंब हो गया है ॥२६॥

निस्वनः श्रूयते भीमः प्रहृष्टानां वनौकसाम् ।
मन्ये वानरसेना सा नदीं तरति गोमतीम् ॥२७॥

सुनिए, हर्षित वानरों का किलकिला शब्द सुनाई देने लगा। मुझे जान पड़ता है कि, वानरी सेना गोमती नदी को पार कर रही है ॥२७॥

रजोवर्षं समुद्भूतं पश्य बालुकिनीं प्रति ।
मन्ये सालवनं रम्यं लोलयन्ति प्लवङ्गमाः ॥२८॥

बालुकिनी नदी की ओर देखिए कैसी धूल चढ़ रही है। इसके देखने से मालूम पड़ता है कि, सालवन में वानर लोग वृक्षों की डालियों को हिला डुला रहे हैं ॥२८॥

तदेतद्दृश्यते दूराद्विमलं चन्द्रसन्निभम् ।
विमानं पुष्पकं दिव्यं मनसा ब्रह्मनिर्मितम् ॥२६॥

वह देखिए आकाश में दूर ही से चन्द्रमा की तरह विमल दिव्य पुष्पक विमान, जिसे ब्रह्मा जी ने अपने मन से बनाया है, देख पड़ता है ॥२६॥

रावणं बान्धवैः सार्धं हत्वा लब्धं महात्मना ।
तरुणादित्यसङ्काशं विमानं रामवाहनम् ॥३०॥

यह मध्याह्नकालीन सूर्य की तरह चमचमा रहा है। इसी पर श्रीरामचन्द्र सवार हैं। बन्धु बान्धव सहित रावण को मार कर, श्रीरामचन्द्र जी को यह मिला है ॥३०॥

धनदस्य प्रसादेन दिव्यमेतत् मनोजवत् ।
एतस्मिन् भ्रातरौ वीरौ वैदेह्या सह राघवौ ॥३१॥
सुग्रीवश्च महातेजा राक्षसश्च विभीषणः ।
ततो हर्षसमुद्भूतो निस्वनो दिवमस्पृशत् ॥३२॥
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ।
रथकुञ्जरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महीं गताः ॥३३॥

कुबेर की कृपा से यह दिव्य विमान मन के समान शीघ्रतापूर्वक उड़ने वाला है। इसीमें सीतासहित श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण, महातेजस्वी सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण सवार हैं। हनुमान जी के मुख से श्रीरामचन्द्र जी का नाम सुनते ही स्त्री, बालक, युवा और वृद्ध लोगों का आकाशव्यापी "श्रीरामचन्द्र जी आ गए" का बड़ा भारी शब्द हुआ। तब सब लोग हाथियों घोड़े; और रथों पर से नीचे उतर पृथ्वी पर खड़े हो गए ॥३१॥३२॥३३॥

दद्दशुस्तं विमानस्थं नराः सोममिवाम्बरे ।
प्राञ्जलिर्भरतो भूत्वा प्रहृष्टो राघवोन्मुखः ॥३४॥

और आकाश में बैठे श्रीरामचन्द्र जी की ओर वैसे ही देखने लगे, जैसे आकाशस्थित चन्द्रमा का लोग देखते हैं। भरत जी विमान की ओर मुख कर; हाथ जोड़ कर परम हर्षित हुए ॥३४॥

स्वागतेन यथार्थेन[1] ततो राममपूजयत्[2] ।
मनसा ब्रह्मणा सृष्टे विमाने भरताग्रजः ॥३५॥
रराज पृथुदीर्घाक्षो वज्रपाणिरिवापरः ।
ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदा ॥३६॥

ठीक चौदहवाँ वर्ष पूरा कर अपनी प्रतिज्ञानुसार लौट आने के लिए भरत जी ने श्रीरामचन्द्र जी को सराहना की। ब्रह्मा जी द्वारा मन से निर्मित पुष्पकविमान में विशाल नेत्र श्रीरामचन्द्र जी ऐसे शोभायमान हो रहे थे; जैसे विमानस्थ देवराज इन्द्र हों। उस समय भरत ने विमान में बैठे हुए अपने बड़े भाई ॥३५॥३६॥

ववन्दे प्रयतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ।
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ॥३७॥

श्रीरामचन्द्र जी को बड़ी नम्रता से वैसे ही प्रणाम किया, जैसे कोई मेरु पर्वत पर स्थित सूर्य को प्रणाम करता हो। तब श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पा, वह श्रेष्ठ विमान जो, ३७॥

---

१ यथार्थेन—स्वागतेन चतुर्दशे वर्षे पूर्णे अवश्यमागमिष्यामीति प्रतिज्ञानुसारिणा स्वागमनेनेत्यर्थः। (गो०) २ अपूजयत्—अश्लाघयत्। (गो०)

हंसयुक्तं महावेगं निष्पपात महीतले ।
आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः ॥३८॥

हंसों से युक्त था ( अथवा हंस के आकार का बना हुआ था ) और बड़ी तेज़ चाल ( रफ्तार ) वाला था, पृथिवी पर उतरा। सत्यविक्रमी भरत जी को श्रीरामचन्द्र जी ने विमान पर बैठा लिया ॥३८॥

राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ।
तं समुत्थाप्य काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथ गतम् ॥३९॥
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ।
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परन्तपः ॥४०॥
*अथाभ्यवादयत् प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ।
सुग्रीवं कैकयीपुत्रो जाम्बवन्तं तथाऽङ्गदम् ॥४१॥

श्रीरामचन्द्र जी को देख, भरत जी हर्षित हुए और उन्होंने पुनः प्रणाम किया। बहुत दिनों बाद भरतजी को देखने पर श्रीरामचन्द्र जी ने उठा कर अपनी गोद में बिठा लिया और परम हर्षित हो उनको हृदय लगाया। तदनन्तर भरत जी ने अपना नाम उच्चारण करते हुए लक्ष्मण और सीता जी को प्रणाम किया। तदनन्तर कैकेयी पुत्र भरत जी; सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद ॥३९॥४०॥४१॥

मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं परिषस्वजे ।
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ॥४२॥
शरभं पनसं चैव भरतः परिषस्वजे ।
ते कृत्वा मानुषं रूपं वानराः कामरूपिणः ॥४३॥

---

* पाठान्तरे—"अभिवाद्य ततःप्रीतो ।"

कुशलं पर्यपृच्छंस्ते प्रहृष्टा भरतं तदा।
अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ॥४४॥
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः।
त्वमस्माकं चतुर्णां तु भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ॥४५॥

मैन्द, द्विविद, नील, ऋषभ. सुषेण, नल, गवाक्ष, शरभ और पनस से मिले भेंटे। उन कामरूपी वानरों ने मनुष्यों का रूप धर और हर्षित हो कर, भरतजी से कुशल पूँछा। तब धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महातेजस्वी राजकुमार भरत जी ने, वानरराज सुग्रीव को गले लगा कर कहा—हे सुग्रीव! हम तो चार भाई थे ही, तुम हमारे पाँचवें भाई हुए ॥४२॥४३॥४४॥४५॥

सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम्।
विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ॥४६॥

क्योंकि सौहार्द्र करना मित्र का और अपकार करना शत्रु का लक्षण (पहिचान) है। फिर भरत जी ने विभीषण को समझाते बुझाते हुए उनसे कहा ॥४६॥

दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम्।
शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ॥४७॥

हे विभीषण! यह बड़े सौभाग्य की बात है कि, तुम्हारी सहायता से श्रीरामचन्द्रजी ने यह दुष्कर कर्म कर डाला। तदनन्तर शत्रुघ्न ने श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मण जी को प्रणाम किया ॥४७॥

सीतायाश्चरणौ पश्चाद्विनयादभ्यवादयत्।
रामो मातरमासाद्य विषण्णां शोककर्शिताम् ॥४८॥

फिर शत्रुघ्न ने विनययुक्त हो सीता जी के पाँव छुए। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी दुःखिनी और शोक से विकल अपनी माता के समीप गए और प्रणाम कर, माता के चरणों में माथा टेका और माता के मन को हर्षित किआ। तदनन्तर यशस्विनी सुमित्रा जी तथा कैकेयी को प्रणाम कर ॥४८॥

जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रसादयन्।
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ॥४९॥
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागतम्।
स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ॥५०॥
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन्।
तान्यञ्जलिसहस्राणि प्रगृहीतानि नागरैः ॥५१॥
व्याकोशानीव पद्मानि ददर्श भरताग्रजः।
पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ॥५२॥

श्रीरामचन्द्र जी ने अन्य समस्त माताओं का प्रणाम कर उनके मन को हर्षित किआ और वे वसिष्ठ जी के पास प्रणाम करने गए। समस्त नगरवासी हाथ जोड़ कर, श्रीराम जी का स्वागत करते हुए बोले—"हे कौसल्यानन्दवर्धन! हे महाबाहो! तुम्हारा आना यहाँ मङ्गलकारी हो।" नगरवासियों की असंख्य अंजलियाँ खिले हुए फूलों के समान श्रीरामचन्द्र जी ने देखीं। जब नगरवासियों के अभिवादन को श्रीरामचन्द्र जी ग्रहण कर चुके; तब भरत जी ने स्वयं अपने हाथों में दोनों खड़ाऊँ लीं ॥४९॥५०॥ ॥५१॥५२॥

चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित्।
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ॥५३॥

और उन धर्मज्ञ भरत जी ने उन खड़ाउओं को महाराज श्रीरामचन्द्र जी के दोनों चरणों में पहिना दिआ। तदनन्तर भरत जी ने हाथ जोड़कर श्रीरामचन्द्र जी से कहा—॥५३॥

एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया।
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ॥५४॥

हे राजन्! इस अपने समूचे राज्य को, जो मेरे पास इतने दिनों से धरोहर की तरह था, अब तुम ग्रहण कर, इसे सम्हालो। आज मेरा जन्म सफल हुआ और मेरा मनोरथ भी पूरा हुआ ॥५४॥

यस्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम्।
अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं पुरं बलम् ॥५५॥

क्योंकि आज मैं अयोध्यानाथ को अयोध्या में लौट कर आया हुआ देखता हूँ। अब आप अपने खजाने, धान्यशाला, पुर और सैन्यबल को भी देखिए ॥५५॥

भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया।
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ॥५६॥
मुमुचुर्वानरा बाष्पं राक्षसश्च विभीषणः।
ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः ॥५७॥

आपके प्रताप से मैंने पहिले से सब दसगुने अधिक बढ़ा दिए हैं। इस प्रकार कहते हुए भ्रातृवत्सल भरत को देख, राक्षसराज विभीषण तथा वानरों की आँख से आँसू निकल पड़े। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने अत्यन्त हर्षित हो भरत जी को अपनी गोदी में बिठा लिया ॥५६॥५७॥

यथौ तेन विमानेन ससैन्यो भरताश्रमम् ।
भरताश्रममासाद्य ससैन्यो राघवस्तदा ॥५८॥

और अपनी सेना को लिये हुए विमान में बैठ भरत जी के आश्रम की ओर चले और ससैन्य भरताश्रम में पहुँच ॥५८॥

अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ।
अब्रवीच्च तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥५९॥

श्रीरामचन्द्र तथा अन्य समस्त लोग विमान से भूमि पर उतर पड़े। तदनन्तर श्रीरामचन्द्र जी ने उस श्रेष्ठ पुष्पकविमान के अधिष्ठाता ( पाइल २ ) को सम्बोधन कर कहा ॥५९॥

वह वैश्रवणं देवमनुजानामि गम्यताम् ।
ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ।
उत्तरां दिशमागम्य जगाम धनदालयम् ॥६०॥

मैं आज्ञा देता हूँ कि, तुम कुबेर के पास चले जाओ और उन्हीं की सवारी में रहो। जब श्रीरामचन्द्र जी ने इस प्रकार आज्ञा दी; तब वह श्रेष्ठ विमान उत्तर दिशा की ओर कुबेर की राजधानी को चला गया ॥६०॥

पुरोहितस्यात्मसमस्य१ राघवो
बृहस्पतेः शक्र इवामराधिपः ।
निपीड्य पादौ पृथगासने शुभे
सहैव तेनोपविवेश राघवः ॥६१॥

इति त्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ॥

---

१ आत्मसमस्य—"स्वानुरूपस्य ।" ( गो० ) ( ख )—वसिष्ठत्येस्यर्थं इति तीर्थः ।

जैसे इन्द्र बृहस्पति के चरणों को छूते हैं, वैसे ही श्रीरामचन्द्र जी ब्रह्मज्ञानी या अपने अनुरूप या अपने पुरोहित वशिष्ठ जी के चरण ग्रहण कर उनके निकट बिछे हुए एक उत्तम आसन पर बैठ गए ॥६१॥

युद्धकाण्ड का एकसौ तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ।

—:❀:—

## एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः

—:❀:—

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेय्यानन्दवर्धनः।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१॥

कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाले भरत जी हाथ जोड़ कर सत्यपराक्रमी अपने ज्येष्ठ भ्राता श्रीरामचन्द्र जी से बोले ॥१॥

पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम ॥२॥

हे महाराज! पहिले तुमने मेरी माता को सन्तुष्ट करने के लिए जो राज्य मुझको दिया था, अब वही राज्य मैं फिर तुमको वैसे ही सौंपता हूँ जैसे तुमने मुझे सौंपा था (अर्थात् जैसे बिना किसी शर्त के तुमने मुझे यह राज्य दिआ था—वैसे ही मैं बिना किसी शर्त के तुमको देता हूँ; लौटाता नहीं ॥२॥

धुरमेकाकिना न्यस्तामृषभेण बलीयसा।
किशोरीव गुरुं भारं न वोढुमहमुत्सहे ॥३॥

जैसे अकेले ढोने में समर्थ बलवान बैल का बोझा, एक घोड़ी नहीं ढो सकती; वैसे ही मैं इस राज्यभार को उठाने में असमर्थ हूँ ॥३॥

वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिव क्षरन् ।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥४॥

जिस प्रकार जल के वेग से टूटे हुए बाँध का बाँधना कठिन है; उसी प्रकार चारों ओर से खुले हुए राज्य के छिद्रों को मूँदना मेरे लिए सम्भव नहीं ॥४॥

गतिं खर इवाश्वस्य हंसस्येव च वायसः ।
नान्वेतुमुत्सहे राम तव मार्गमरिन्दम ॥५॥

हे शत्रुदमनकारी राम! जैसे घोड़े की चाल गधा नहीं चल सकता अथवा हंस की चाल जैसे कौआ नहीं चल सकता, वैसे ही मैं भी तुम्हारी चाल नहीं चल सकता अथवा तुम्हारे गुणों का अनुकरण नहीं कर सकता। ५॥

यथा चारोपितो वृक्षो जातश्चान्तर्निवेशने ।
महांश्च सुदुरारोहो महास्कन्धप्रशाखवान् ॥६॥
शीर्येत पुष्पितो भूत्वा न फलानि प्रदर्शयन् ।
तस्य नानुभवेदर्थं यस्य हेतोः स रोप्यते ॥७॥

जैसे किसी ने अपने घर (के नज़रबाग़ में) की फुलबगिया में एक वृक्ष लगाया और वह समय पा कर बढ़ा तथा डालियों और गुद्दों से भर उठा, उसमें पत्ते भी बहुत लगे और वह फूला भी बहुत; परन्तु फल आने के पहिले ही फूल झड़ पड़े और उसमें फल न लगे। अतः जिस काम के लिए वह लगाया गया था, वह काम उससे न निकल पाया ॥६॥७॥

एषोपमा महाबाहो त्वदर्थं वेत्तुमर्हसि ।
यद्यस्मान् मनुजेन्द्र त्वं भक्तान् भृत्यान्न शाधि हि ॥८॥

हे महाबाहो ! हे मनुजेन्द्र ! तुम इस उपमा का अर्थ समझ सकते हो। यदि तुम अपने भक्तों और भृत्यों का शासन न करोगे तो यह उपमा तुम्हारे ऊपर घटेगी ॥८॥

जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु सर्वतः ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥९॥

हे श्रीरामचन्द्र ! मैं चाहता हूँ कि, मध्याह्न के सूर्य की तरह तपते हुए और राजसिंहासन पर अभिषिक्त तुमको, सब संसार देखे ॥९॥

तूर्यसंङ्घातनिर्घोषैः काञ्चीनूपुरनिस्वनैः ।
मधुरैर्गीतशब्दैश्च प्रतिबुध्यस्व राघव ॥१०॥

हे राघव ! अतः करधनी और बिछुओं की झनकार सुनते हुए तुम सोया करो और मधुर गान एवं नौबत बजने का शब्द सुनते हुए जागा करो। अर्थात् नाच गान देखते सुनते तुम सोवो और नाच गान देखते सुनते जागो ॥१०॥

यावदावर्तते चक्रं[१] यावती च वसुन्धरा ।
तावत्त्वमिह सर्वस्य स्वामित्वमनुवर्त्तय ॥११॥

जब तक ज्योतिश्चक्र घूमता रहे और जब तक यह भूमि स्थिर रहे, तब तक तुम इस समस्त पृथिवी के राजा हो कर सब का पालन करो ॥११॥

भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः ।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥१२॥

---

१ चक्र—ज्योतिः चक्रमितियावत् । ( गो० )

शत्रुपुरविजयकारी श्रीरामचन्द्र जी भरत जी के वचन सुन और तथास्तु कह कर अर्थात् भरत का वचन मान कर, एक सुन्दर आसन पर बैठ गए ॥१२॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः [1]श्मश्रुवर्धकाः ।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्युपासत ॥१३॥

तब शत्रुघ्न की आज्ञा से फुर्तीले, निपुण और हलके हाथ से क्षौर कर्म करने वाले ( हजामत बनाने वाले ) नाई श्रीरामचन्द्र जी का क्षौरकर्म करने को उनके समीप उपस्थित हुए ॥१३॥

पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥१४॥

प्रथम भरत जी ने फिर महाबली लक्ष्मण जी ने तदनन्तर वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण ने स्नान किए ॥१४॥

विशोधितजटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
महार्हवसनो रामस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥१५॥

सब से पीछे श्रीरामचन्द्र जी ने बाल कटवा बाल बनवाए और उबटन लगवा, स्नान किए। स्नानानन्तर रंगबिरंगे पुष्पों की माला पहिनी और मूल्यवान् वस्त्र धारण कर, अपने शरीर की कान्ति से वे दमकने लगे ॥१५॥

प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥१६॥

---

१ श्मश्रुवर्धकाः—श्मश्रुकर्तकाः "वर्धनच्छेदनेथ द्वे आनन्दनसभाजने" इत्यमरः। ( गो० )

बलवान, कान्तिमान्, इक्ष्वाकुकुलवर्द्धन शत्रुघ्न जी ने श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण जी को हार आदि आभूषण पहिनाए ॥१६॥

[1]प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
[2]आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥१७॥

महाराज दशरथ की मनस्विनी स्त्रियों ( रानियों ) ने अपने हाथ से सीता जी के सब अंगों में सुन्दर सुन्दर गहने पहिनाए अथवा मनोहर शृङ्गार किआ ॥१७॥

ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ।
चकार यत्नात् कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रलालसा ॥१८॥

फिर हर्षित हो पुत्रवत्सला कौसल्या जी ने हर्षित हो और पुत्र की प्रसन्नता के लिए समस्त वानर स्त्रियों का शृङ्गार स्वयं किआ ॥१८॥

ततः शत्रुघ्नवचनात् सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
योजयित्वाऽभिचक्राम रथं सर्वाङ्गशोभनम् ॥१९॥

तदनन्तर शत्रुघ्न जी की आज्ञा से सुमंत्र नामक सारथी एक सुन्दर रथ सजा कर और जोत कर ले आया ॥१९॥

[ टिप्पणी—यह सुमंत्र दीवान न थे, बल्कि सुमंत्र नाम का कोई सारथी था। क्योंकि दीवान सुमंत्र का नाम आगे २४ वें श्लोक में मंत्रिमण्डल में आया है। ]

अर्कमण्डलसङ्काशं दिव्यं दृष्ट्वा रथोत्तमम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः सत्यपराक्रमः ॥२०॥

---

१ प्रतिकर्म—हाराद्यालंकरणं । (गो०) २ आत्मनैव—स्वयमेव । (गो०) ३ शोभनम्—प्रतिकर्मेत्यर्थः । (गो०)

सूर्यमण्डल के समान चमचमाते दिव्य और श्रेष्ठ रथ को उपस्थित देख, सत्यपराक्रमी महाबाहु श्रीरामचन्द्र जी उस पर सवार हुए ॥२०॥

सुग्रीवो हनुमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती ।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौ ॥२१॥

इन्द्र के समान कान्तिमान् सुग्रीव और हनुमान् नहा धो कर, अच्छे वस्त्र धारण किए हुए, कुण्डलों से भूषित हो, श्रीराम जी के साथ साथ चले ॥२१॥

वराभरणसम्पन्ना ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।
सुग्रीवपत्न्यः सीता च द्रष्टुं नागरमुत्सुकाः ॥२२॥

समस्त आभूषणों से भूषित, सुन्दर कुण्डल पहिने हुए जानकी जी और सुग्रीव की तारा आदि रानियाँ नगर देखने की उत्कण्ठा से उनके पीछे होलीं ॥२२॥

[ टिप्पणी—इससे जान पड़ता है कि राजसी जलूस में भी तत्कालीन प्रथा के अनुसार स्त्रियाँ पुरुषों के पीछे ही चलती थीं। आधुनिक प्रथा के अनुसार उनके आगे नहीं। ]

अयोध्यायां तु सचिवा राज्ञो दशरथस्य ये ।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥२३॥

श्री अयोध्या में महाराज दशरथ के समय के जो सचिव दीवान थे, राजपुरोहित वसिष्ठ जी की प्रधानता में ( एकत्र हो ) तत्कालीन आवश्यक कृत्यों के विषय में परामर्श करने लगे ॥२३॥

[ टिप्पणी—इससे जान पड़ता है—ये लोग अयोध्या में इन बातों का प्रबंध करने को नंदिग्राम से लौट आए थे। ]

अशोको विजयश्चैव सुमन्त्रश्च समागताः ।
मन्त्रयन् रामवृद्धयर्थमृद्धयर्थं नगरस्य च ॥२४॥

अशोक, विजय, सुमन्त्र ने श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक की सामग्री एकत्र करने के विषय में और नगर की सजावट के विषय में सलाह की ॥२४॥

सर्वमेवाभिषेकार्थं जयार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यत् मङ्गलपूर्वकम् ॥२५॥

सब ने यही निश्चय किया कि, मङ्गलपूर्वक अभिषेक सुसम्पन्न करने के लिए अभिषेक की सब सामग्री तुरन्त एकत्र की जाय ॥२५॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वे सन्दिश्य तु पुरोहितम् ।
नगरान्निर्ययुस्तूर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥२६॥

पुरोहित वसिष्ठ जी और मंत्री, अन्य कर्मचारियों को तदनुसार आज्ञा दे, श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन करने की लालसा से शीघ्रतापूर्वक नगर से निकले ॥२६॥

हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥२७॥

उधर पापरहित श्रीरामचन्द्र जी भी इन्द्र के समान श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त रथ में बैठ कर, नगर की ओर रवाना हुए ॥२७॥

जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संम्पर्यवीजयत् ॥२८॥

उस समय भरत जी ने घोड़ों की रास अपने हाथ में पकड़ी, शत्रुघ्न ने श्रीरामचन्द्र जी के ऊपर छत्र ताना और लक्ष्मण जी उनके सिर के ऊपर चँवर डुलाने लगे ॥२८॥

[ टिप्पणी—इस समय सुमंत्र नाम का सारथी रथ पर नहीं रहा । ]

श्वेतं च बालव्यजनं जग्राह पुरतः स्थितः ।

अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥२९॥

एक सफेद चमर लिये लक्ष्मण जी श्रीरामचन्द्र जी के सामने एक ओर बैठ कर, चँवर डुला रहे थे और दूसरी ओर दूसरा, चन्द्रमा की तरह सफेद चँवर ले, राक्षसेन्द्र विभीषण दूसरा चँवर डुला रहे थें ॥२९॥

ऋषिसङ्घैस्तदाऽऽकाशे देवैश्च समरुद्गणैः ।

स्तूयमानस्य रामस्य शुश्रुवे मधुरध्वनिः ॥३०॥

उस समय आकाशस्थित देवर्षि और देवगण श्रीरामचन्द्र जी की जो स्तुति कर रहे थे, उसकी मधुरध्वनि लोगों को सुन पड़ती थी ॥३०॥

[ टिप्पणी—उस काल में समस्त सर्वसाधारण जन भी अपने लोक से भिन्न लोकवासियों का शब्द सुन सकते थे । स्प्रिचुएलिज्म में अब भी किसी किसी मीडियम को अन्यलोकवासियों का शब्द सुन पड़ता है । ]

ततः शत्रुञ्जयं नाम कुञ्जरं पर्वतोपमम् ।

आरुरोह महातेजाः सुग्रीवः प्लवगर्षभः ॥३१॥

वानरराज महातेजस्वी सुग्रीव, पर्वताकार शत्रुञ्जय नामक हाथी पर सवार हो कर ( उस जलूस में ) चल रहे थे ॥३१॥

नवनागसहस्राणि ययुरास्थाय वानराः ।

मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिताः ॥३२॥

मनुष्य का रूप धारण कर और समस्त आभूषणों से भूषित हो, अन्य समस्त वानर जो सहस्रों हाथियों पर सवार हो चले जाते थे ॥३२॥

शङ्खशब्दप्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्यमालिनीम् ॥३३॥

अटारियों की पंक्ति से शोभित उस अयोध्यापुरी में महाराज श्रीरामचन्द्र जी ने जब प्रवेश किया, तब उनके आगे शङ्ख भेरी बज रही थीं ॥३३॥

ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥३४॥

इस जलूस को देखने की इच्छा रखने वाले नगरनिवासियों ने अपनी कान्ति से कान्तिमान्, रथ पर सवार अतिरथ अर्थात् शूरवीर श्रीरामचन्द्र जी को देखा ॥३४॥

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥३५॥

और श्रीरामचन्द्र जी का जयजयकार मनाया । जब भाइयों सहित श्रीरामचन्द्र जी का रथ नगर की ओर चला, तब वे (दर्शक) भी उसके पीछे पीछे हो लिए ॥३५॥

अमात्यैर्ब्राह्मणैश्चैव तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥३६॥

अमात्यों, ब्राह्मणों और प्रजाजनों के बीच श्रीरामचन्द्र जी ऐसे शोभायमान हुए, जैसे नक्षत्रों के बीच चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३६॥

स पुरोगामिभिस्तूर्यैस्तालस्वस्तिक१पाणिभिः ।
प्रव्याहरद्भिर्मुदितैर्मङ्गलानि वृतो ययुः ॥३७॥

महाराज के आगे आगे नगाड़े, करताल, झाँझ स्वस्तिक आदि बाजे, बाजे बजाने वाले बजाते हुए चल रहे थे। इनके अतिरिक्त हर्षित हो सुन्दर मङ्गलसूचक गान गाते हुए ( अर्थात् मङ्गलाचार करते हुए ) गवैए भी चल रहे थे अथवा मङ्गलपाठ करने वाले भी चल रहे थे ॥३७॥

अक्षतं जातरूपं च गावः कन्यास्तथा द्विजाः ।
नरा मोदकहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥३८॥

तण्डुल, सुवर्ण, गौ और कन्याओं को साथ लिये ब्राह्मण और हाथों में लड्डू लिये अन्य लोग भी श्रीरामचन्द्र जी के आगे आगे जा रहे थे ॥३८॥

[ टिप्पणी—श्रीरामचन्द्र जी के नगरप्रवेश वाली सवारी का वर्णन कर आदिकवि ने इसके आगे श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सुग्रीवादि का परिचय अयोध्या राज्य के सचिवादि को दिलवाया है। ]

सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥३९॥
विभीषणस्य संयोगमाचचक्षे च मन्त्रिणाम् ।
श्रुत्वा तु विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ॥४०॥

( जब मन्त्रिवर्ग ने रास्ते में आ श्रीरामचन्द्र जी का अभिनन्दन किया, तब श्रीरामचन्द्र जी अपने साथ आए हुए सुग्रीवादि क

१ स्वस्तिका—वाद्यविशेषः । ( गो० )

परिचय देते हुए बोले ) श्रीरामचन्द्र जी ने मंत्रियों के सामने सुग्रीव की मैत्री, हनुमान् जी का प्रभाव, वानरों के अद्भुत अद्भुत कर्म और राक्षसों का बल तथा विभीषण के समागम का वृत्तान्त वर्णन किया। उस वृत्तान्त को सुन, अयोध्यावासियों को बड़ा आश्चर्य हुआ ॥३९॥४०॥

[ टिप्पणी—इससे जान पड़ता है कि, श्रीरामचन्द्र जी मंत्रियों को सम्बोधन करते थे और उनके आसपास खड़े लोग सब बातें सुन रहे थे । ]

द्युतिमानेतदाख्याय रामो वानरसंवृतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश ह ॥४१॥

कान्तिमान् श्रीरामचन्द्र जी ने यह कह कर, वानरों सहित हर्षित और सन्तुष्ट जनों से परिपूर्ण अयोध्यापुरी में प्रवेश किया ॥४१॥

ततो ह्यभ्युच्छ्रयन् पौराः पताकाश्च गृहे गृहे ।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥४२॥

नगरी के घर पताकाओं से सजे हुए थे। नगर में होते हुए श्रीरामचन्द्र जी अपने पूर्वजों के रमणीक महल के निकट पहुँचे ॥४२॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रो भरतं धर्मिणां वरम् ।
अर्थोपहितया वाचा मधुरं रघुनन्दनः ॥४३॥

उस समय धर्मात्माओं में श्रेष्ठ राजकुमार भरत जी से श्रीरामचन्द्र ने अर्थयुक्त मधुर वाणी से कुछ बातचीत की ॥४३॥

पितुर्भवनमासाद्य प्रविश्य च महात्मनः ।
कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीमभिवादयत् ॥४४॥

फिर पिता के महल के निकट पहुँच और उसमें प्रवेश कर श्रीरामचन्द्र जी ने कौसल्या, सुमित्रा और कैकेयी को प्रणाम किया ॥४४॥

यच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत् ।
मुक्तावैडूर्यसङ्कीर्णं सुग्रीवाय निवेदय ॥४५॥

(तदनन्तर भरत जी से कहा कि,) अशोकवाटिका वाले मेरे विशाल एवं सर्वोत्तम भवन में, जिसमें मोती, पन्ने आदि मणियाँ जड़ी हैं, ले जाकर सुग्रीव को ठहराओ ॥४५॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
पाणौ गृहीत्वा सुग्रीवं प्रविवेश तमालयम् ॥४६॥

श्रीरामचन्द्र जी के ऐसा कहने पर सत्यपराक्रमी भरत जी, सुग्रीव का हाथ पकड़ कर, उन्हें उस भवन में लिवा ले गए ॥४६॥

ततस्तैलप्रदीपांश्च पर्यङ्कास्तरणानि च ।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रचोदिताः ॥४७॥

फिर शत्रुघ्न जी की आज्ञा से नौकर चाकर तेल के दीपक, पलंग और बिस्तरे लेकर पहुँचे ॥४७॥

उवाच च महातेजाः सुग्रीवं राघवानुजः ।
अभिषेकाय रामस्य दूतानाज्ञापय प्रभो ॥४८॥

महातेजस्वी भरत जी ने सुग्रीव से कहा—हे प्रभो! श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेक के लिए समुद्रों के जल लाने के लिये अपने वानरों को आज्ञा दीजिये ॥४८॥

सौवर्णान् वानरेन्द्राणां चतुर्णां चतुरो घटान् ।
ददौ क्षिप्रं स सुग्रीवः सर्वरत्नविभूषितान् ॥४९॥

तब सुग्रीव ने तुरन्त चार श्रेष्ठ वानरों को बुला कर, चार सोने के कलसों में दिए। इन कलसों में समस्त प्रकार के रत्न जड़े हुए थे ॥४९॥

यथा प्रत्यूषसमये चतुर्णां सागराम्भसाम् ।
पूर्णैर्घटैः प्रतीक्षध्वं तथा कुरुत वानराः ॥५०॥

और कहा कि, हे वानरो! ऐसा प्रयत्न करो, जिससे कल प्रातः काल होते ही चारों समुद्रों के जल से चारों भरे हुए कलसे लेकर तुम लोग यहाँ आ जाओ ॥५०॥

एवमुक्ता महात्मानो वानरा वारणोपमाः ।
उत्पेतुर्गगनं शीघ्रं गरुडानिलशीघ्रगाः ॥५१॥

सुग्रीव के यह कहते ही हाथियों के समान विशाल शरीरधारी एवं गरुड़ अथवा पवन के समान शीघ्रगामी चार वानर कलसे ले लेकर आकाश मार्ग से उड़े ॥५१॥

जाम्बवांश्च सुषेणश्च वेगदर्शी च वानरः ।
ऋषभश्चैव कलशाञ्जलपूर्णानथानयन् ॥५२॥

जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी और ऋषभ वानर गए और झटपट समुद्रजल से भरे कलसे ले आए ॥५२॥

नदीशतानां पञ्चानां जलं कुम्भेषु* चाहरन् ।
पूर्वात् समुद्रात् कलशं जलपूर्णमथानयत् ॥५३॥
सुषेणः सत्त्वसम्पन्नः सर्वरत्नविभूषितम् ।
ऋषभो दक्षिणात्तूर्णं समुद्राज्जलमाहरत् ॥५४॥
रक्तचन्दनकर्पूरैः† संवृतं काञ्चनं घटम् ।
गवयः पश्चिमात्तोयमाजहार महार्णवात् ॥५५॥

---

* पाठान्तरे—"कुम्भैरुपाहरन्" । † पाठान्तरे—"चन्दनशाखाभिः ।"

रत्नकुम्भेन महता शीतं मारुतविक्रमः ।
उत्तराच्च जलं शीघ्रं गरुडानिलविक्रमः ॥५६॥
आजहार स धर्मात्मा नलः सर्वगुणान्वितः ।
ततस्तैर्वानरश्रेष्ठैरानीतं प्रेक्ष्य तज्जलम् ॥५७॥

ये लोग पाँच सौ नदियों का जल कलसों में भर भर कर ले आए। सर्वरत्नविभूषित कलस में पूर्वसमुद्र का जल भर कर बलवान सुषेण लाए। सोने के कलसे में लाल चन्दन और कपूर-मिश्रित दक्षिण-समुद्र का जल ऋषभ जाकर तुरन्त ले लाए। पश्चिम दिशा के महासागर का शीतल जल, रत्नजटित एक बड़े कलसे में भर, पवनतुल्य पराक्रमी गवय ने लाकर रख दिया। गरुड़ अथवा पवन के समान विक्रमसम्पन्न, धर्मात्मा एवं सर्वगुण-सम्पन्न नल ने उत्तर सागर का जल तुरन्त ला कर उपस्थित कर दिया। इन कपिश्रेष्ठों के लाए हुए जल को देख ॥५३॥५४॥५५॥५६॥५७॥

अभिषेकाय रामस्य शत्रुघ्नः सचिवैः सह ।
पुरोहिताय श्रेष्ठाय सुहृद्भ्यश्च न्यवेदयत् ॥५८॥

सचिवों सहित शत्रुघ्न ने अपने श्रेष्ठ पुरोहित अर्थात् वसिष्ठ जी से तथा सुहृदों से श्रीरामचन्द्र जी का अभिषेक करने के लिए निवेदन किया ॥५८॥

ततः स [1]प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।
रामं रत्नमये पीठे सहसीतं न्यवेशयत् ॥५९॥

---

१ प्रयतः—प्रयत्नवान । ( गो० )

तब कर्मठ एवं वृद्ध वसिष्ठ जी ने अन्य ब्राह्मणों को (सहायता के लिए) अपने साथ लेकर, सीता सहित श्रीरामचन्द्र जी को रत्नजटित चौकी पर बिठाया ॥५९॥

**वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिरथ काश्यपः ।**
**कात्यायनः सुयज्ञश्च गौतमो विजयस्तथा ॥६०॥**
**अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।**
**सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥६१॥**

जिस प्रकार आठ वसुओं ने जल से इन्द्र का अभिषेक किआ था, उसी प्रकार उस समय वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय ने अच्छे सुगन्धित जल से श्रीरामचन्द्र जी का अभिषेक किआ ॥६०॥६१॥

**ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिर्मन्त्रिभिस्तथा ।**
**योधैश्चैवाभ्यषिञ्चंस्ते सम्प्रहृष्टाः सनैगमैः ॥६२॥**

पहिले ऋत्विक ब्राह्मणों ने, फिर सोलह कन्याओं ने, फिर मंत्रियों ने, फिर सैनिकों ने और सब से पीछे महाजनों ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक श्रीरामचन्द्र जी का अभिषेक किआ ॥६२॥

**सर्वौषधिरसैर्दिव्यैर्दैवतैर्नभसि स्थितैः ।**
**चतुर्भिर्लोकपालैश्च सर्वैर्देवैश्च सङ्गतैः ॥६३॥**

तदनन्तर समस्त दिव्य ओषधियों के रसों से, आकाशस्थित देवताओं ने, फिर चारों लोकपालों ने तदनन्तर समस्त देवताओं ने एकत्र हो, श्रीरामचन्द्र जी का अभिषेक किआ ॥६३॥

**किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना ।**
**ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥६४॥**

इसके बाद महात्मा वसिष्ठ जी ने राजमुकुट श्रीरामचन्द्र जी को पहिनाया। फिर ऋत्विजों ने महाराज को विविध प्रकार के भूषण धारण करवाए ॥६४॥

छत्रं तस्य च *जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम्।
श्वेतं च बालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥६५॥

उस समय एक सफेद छत्र शत्रुघ्न जी ताने हुए थे और वानरराज सुग्रीव सफेद चँवर डुला रहे थे ॥६५॥

अपरं चन्द्रसङ्काशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः।
मालां ज्वलन्तीं वपुषा काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥६६॥
राघवाय ददौ वायुर्वासवेन प्रचोदितः।
सर्वरत्नसमायुक्तं मणिभिश्च विभूषितम् ॥६७॥
मुक्ताहारं नरेन्द्राय ददौ शक्रप्रचोदितः।
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥६८॥

दूसरा चन्द्रमा के समान सफेद चँवर राक्षसराज विभीषण डुला रहे थे। इन्द्र की आज्ञा से वायुदेव ने शरीर को भूषित करने वाली सोने की चमचमाती एक माला, जिसमें सौ कमलाकार मनियाँ थे, श्रीरामचन्द्र जी के अर्पण की। इस माला के अतिरिक्त इन्द्र की आज्ञा से पवनदेव ने श्रीरामचन्द्र जी को, सर्वरत्नजटित और मणियों से विभूषित एक मुक्ताहार भी दिया। उस आनन्दोत्सव में देवता और गन्धर्व गा रहे थे और आ अप्सराएँ नाच रही थीं ॥६६॥६७॥६८॥

* किसी किसी संस्करण में यह शब्द "व" अक्षर से आरम्भ होता है

अभिषेके १तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ।
भूमिः शस्यवती चैव फलवन्तश्च पादपाः ॥६९॥

देवताओं गन्धर्वों अप्सराओं के सम्मिलित होने योग्य बुद्धिमान श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेकोत्सव के समय पृथिवी अन्न से परिपूर्ण हो गई और वृक्ष फलों से लद गए ॥६९॥

गन्धवन्ति च पुष्पाणि बभूवू राघवोत्सवे ।
सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ॥७०॥
ददौ शतं वृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ।
त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ॥७१॥

श्रीरामचन्द्र जी के अभिषेकोत्सव के समय पुष्प गन्धयुक्त हो गए। सब से पहिले तो एक लाख घोड़े, एक लाख ओसर गौएं, तथा अन्य गौएं और सौ बैल महाराज ने ब्राह्मणों को दिए। फिर तीस करोड़ अशर्फियाँ ब्राह्मणों को दान में दीं ॥७०॥७१॥

नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ।
अर्करश्मिप्रतीकाशां काञ्चनीं मणिविग्रहाम् ॥७२॥
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन् मनुजर्षभः ।
वैडूर्यमणिचित्रे च *चन्द्ररश्मिविभूषिते ॥७३॥
वालिपुत्राय धृतिमानङ्गदायाङ्गदे ददौ ।
मणिप्रवरजुष्टं च मुक्ताहारमनुत्तमम् ॥७४॥

तदनन्तर उन्होंने बड़े बड़े मूल्य के विविध वस्त्राभूषण, सूर्य की किरणों के समान चमचमाती मणियों से जड़े सोने के दिव्य

१ तदर्हस्य—देवादिगानयोग्यस्य। (शि०) * पाठान्तरे—"वज्ररत्न"।

हार सुग्रीव को दिया। चन्द्रमा के समान प्रभावान् पन्नों के जड़ाऊ बाजूबन्द धृतिमान् वालिपुत्र अङ्गद को दिए गए। श्रेष्ठ मणियोंवाला मोतियों का एक उत्तम हार ॥७२॥७३॥७४॥

सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम्।
[1]अरजे वाससी दिव्ये शुभान्याभरणानि च ॥७५॥
अवेक्षमाणा वैदेही प्रददौ वायुसूनवे।
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ॥७६॥

जो चन्द्रकिरणों की तरह प्रभावान् था श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी के हाथ में दिया। सीता जी ने दो निर्मल दिव्य वस्त्र (जो कभी मैले न हों) तथा बढ़िया सुन्दर आभूषण हनुमान् जी के उपकारों को स्मरण कर, हनुमान जी को दिए। तदनन्तर जनकनन्दिनी ने अपने गले से हार उतार कर, ॥७५॥७६॥

अवैक्षत हरीन् सर्वान् भर्तारं च मुहुर्मुहुः।
तामिङ्गितज्ञः सम्प्रेक्ष्य बभाषे जनकात्मजाम् ॥७७॥

सब वानरों की ओर देखा तथा वे श्रीरामचन्द्र जी की ओर बारंबार देखने लगीं। सीता जी के मन का अभिप्राय ताड़ कर, श्रीरामचन्द्र जी ने सीता जी से कहा ॥७७॥

प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि।
पौरुषं विक्रमो बुद्धिर्यस्मिन्नेतानि सर्वशः ॥७८॥
ददौ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा।
हनुमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ॥७९॥

---

१ अरजे—निर्मले। (गो०)

हे भामिनि ! हे सुभगे ! तुम जिस पर प्रसन्न हो, उसे यह हार दे दो। तब सीता जी ने पुरुषार्थ, विक्रम, बुद्धि आदि समस्त गुणों से युक्त श्री हनुमान जी को वह हार दे दिआ। उस हार को पहिन कर हनुमान् जी वैसे ही सुशोभित हुए ॥७८॥७६॥

चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाऽचलः ।
ततो द्विविदमैन्दाभ्यां नीलाय च परन्तपः ॥८०॥
सर्वान् कामगुणान् वीक्ष्य प्रददौ वसुधाधिपः ।
सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरेश्वराः ॥८१॥

जैसे चन्द्रमा की किरणों से चमचमाते हुए सफेद मेघों के द्वारा पर्वत शोभित होते हैं। तदनन्तर पृथिवीश्वर श्रीरामचन्द्र जी ने द्विविद, मयन्द और नील को उनके मनोरथों के अनुसार और उनके गुणों को विचार, पुरस्कार दिए। इनके अतिरिक्त अन्य और जो बूढ़े और मुखिया वानर थे ॥८०॥८१॥

वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ।
विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनुमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥८२॥
सर्ववानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्कलैः ॥८३॥

उन सब का वस्त्रों और आभूषणों से यथोचित सत्कार किआ। तदनन्तर विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, तथा अन्य समस्त वानरयूथपतियों को श्रीरामचन्द्र जी ने उनके मनोरथों के अनुसार, बहुत से रत्नादि देकर उनका यथोचित सत्कार किया ॥८२॥८३॥

प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ।
नत्वा सर्वे महात्मानः ततस्ते प्लवगर्षभाः ॥८४॥

इस प्रकार हर्षित अन्तःकरण से वे सब वानर श्रीरामचन्द्र जी को प्रणाम कर अपने अपने घरों को लौट कर चले गए ॥८४॥

विसृष्टाः पार्थिवेन्द्रेण किष्किन्धामभ्युपागमन् ।
सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ॥८५॥
[ पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत् पुरीम् । ]
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सह तैर्नैर्ऋतर्षभैः ॥८६॥

श्रीरामचन्द्र जी से बिदा हो वे सब वानर किष्किन्धापुरी को चले गए। वानरश्रेष्ठ सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी का राज्याभिषेक देख कर और श्रीरामचन्द्र जी द्वारा सत्कार प्राप्त कर, अपनी किष्किन्धापुरी को चले गए। अपने मंत्रियों के साथ धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ यशस्वी विभीषण भी ॥८५॥८६॥

लब्ध्वा [1]कुलधनं राजा लङ्कां प्रायात् महायशाः ।
स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ॥८७॥

श्रीरामचन्द्र जी की ओर से रघुकुल का धन ( अर्थात्सर्वस्व) श्रीरंगविमान पाकर लङ्का को लौट गए । इधर महायशस्वी, श्रीरामचन्द्र जी शत्रुओं को जीत कर, समस्त राज्य का शासन करने लगे ॥८७॥

राघवः परमोदारः शशास परया मुदा ।
उवाच लक्ष्मणं रामो धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥८८॥

परमोदार एवं धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्र जी परम प्रसन्न हो शासन करते हुए लक्ष्मण जी से बोले ॥८८॥

---

१ कुलधनं—इक्ष्वाकुकुलधनं; श्रीरंगविमानमिति सम्प्रदायः । (गो०)

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गां पूर्वराजाध्युषितां बलेन ।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्यो धुरमुद्वहस्व ॥८९॥

हे धर्मज्ञ ! जिस पृथिवी का राज्य मन्वादि हमारे पूर्वज कर चुके हैं, उस पृथिवी का आओ हमारे साथ तुम शासन करो। जैसे हमारे पिता पितामहादि ने अपने बड़ों की उपस्थिति में यौवराज्य स्वीकार किआ था, वैसे ही तुम भी युवराज बन कर राजकाज में मेरी सहायता करो ॥८९॥

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम् ।
नियुज्यमानोऽपि च यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥९०॥

किन्तु इस प्रकार कहने पर भी जब सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी ने युवराज होना स्वीकार न किआ, तब धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने भरत जी को युवराज बनाया ॥९०॥

पौण्डरीकाश्वमेधाभ्यां वाजपेयेन चासकृत् ।
अन्यैश्च विविधैर्यज्ञैरयजत् पार्थिवात्मजः ॥९१॥

नृपतिनन्दन श्रीरामचन्द्र जी ने पौण्डरीक, अश्वमेध, वाजपेय तथा अन्य विविध प्रकार के यज्ञ, एक ही बार नहीं, अनेक बार किए ॥९१॥

राज्यं दश सहस्राणि प्राप्य वर्षाणि राघवः ।
शताश्वमेधानाजह्रे सदश्वान् भूरिदक्षिणान् ॥९२॥

अपने दस हज़ार वर्ष के शासनकाल में श्रीरामचन्द्र जी ने सौ अश्वमेध यज्ञ किए, जिनमें अच्छे अच्छे घोड़े और बहुत सी दक्षिणा दी ॥९२॥

आजानुलम्बबाहुः स महावक्षाः प्रतापवान् ।
लक्ष्मणानुचरो रामः पृथिवीमन्वपालयत् ॥९३॥

घुटनों तक लंबी बाँहोंवाले, चौड़ी छातीवाले, प्रतापी श्रीरामचन्द्र जी, लक्ष्मण जी के साथ, पृथिवी का शासन करने लगे ॥९३॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुहृज्ज्ञातिबान्धवः ॥९४॥

धर्मात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने राजसिंहासन पर बैठ कर, अपने सुहृदों तथा भाई बन्धुओं के साथ साथ अथवा उनकी सहायता से विविध प्रकार के यज्ञ किए ॥९४॥

न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥९५॥

जब तक श्रीरामचन्द्र जी ने राज्य किया, तब तक उनके राज्य-काल में न तो कोई स्त्री विधवा हुई, न किसी को रोग ने सताया और न किसी को साँप ने काटा ॥९५॥

**सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धर्मपरोऽभवत् ।**
**१राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥९७॥**

श्रीरामराज्य में सब अपने अपने वर्णानुसार धर्मकृत्यों में तत्पर रहते थे, इसीलिए सब लोग सदा हर्षित रहते थे। श्रीरामचन्द्र जी उदास होंगे, इस विचार से आपस में लोग किसी का जी (तक) न दुखाते थे अथवा ॥९७॥

**आसन् वर्षसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।**
**निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥९८॥**

श्रीरामराज्य में सहस्र वर्षों से कम की उम्र किसी को नहीं होती थी और (किसी किसी के) एक सहस्र पुत्र भी होते थे और वे सब रोग एवं शोकरहित देख पड़ते थे ॥९८॥

**रामो रामो राम इति प्रजानामभवन् कथाः ।**
**रामभूतं जगदभूद्रामे राज्यं प्रशासति ॥९९॥**

श्रीरामराज्य में प्रजाजनों में (अष्टप्रहर) श्रीरामचन्द्र ही की चर्चा रहा करती थी और सब लोग राम राम राम ही रटा करते थे। सारा जगत् राममय हो गया था ॥९९॥

**नित्यपुष्पा नित्यफलास्तरवः स्कन्धविस्तृताः ।**
**काले वर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥१००॥**

श्रीरामराज्य में वृक्षों में सदा फूल लगे रहते थे, वे सदा फला करते थे और उनके गुद्दे और डालियाँ विस्तृत हुआ करती थीं। यथासमय वर्षा होती थी और सुखस्पर्शी हवा चला करती थी ॥१००॥

---

१ राममेवानुपश्यन्तो—अन्योन्य निर्मूलनवैरे सत्यपि राममुखं म्लानं भविष्यतीति मत्वा परस्परं नाभ्यहिंसन् (गो०)

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा लोभविवर्जिताः ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ॥१०१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कोई भी लोभी लालची न था। सब लोग अपना अपना काम करते हुए अपने कार्यों से सन्तुष्ट रहा करते थे ॥१०१॥

आसन् प्रजा धर्मरता रामे शासति नानृताः ।
सर्वे लक्षणसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥१०२॥

श्रीरामराज्य में सारी प्रजा धर्मरत और झूठ से दूर रहती थी। सब लोग शुभलक्षणों से युक्त पाए जाते थे और सब लोग धर्म-परायण होते थे ॥१०२॥

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥१०३॥

इस प्रकार श्रीमान् श्रीरामचन्द्र जी ने भाइयों सहित दस सहस्र वर्षों तक राज्य किया ॥१०३॥

धन्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं त्वार्षं पुरा[1] वाल्मीकिना कृतम् ॥१०४॥

यह आदिकाव्य भगवान् वाल्मीकि का बनाया हुआ है। अतः यह आर्ष अर्थात् ऋषिप्रणीत ग्रन्थ है और यह सब कवियों की काव्य रचना होने के पूर्व बनाया गया था। इसके पढ़ने से पढ़ने वाले को यह कृतकृत्यता, यश और आयु का देने वाला है और राजाओं को विजयप्रद है ॥१०४॥

---

१ पुरा—सर्वकविभ्यः पूर्वं। ( गो० )

यः पठेच्छृणुयाल्लोके नरः पापाद्विमुच्यते ।
पुत्रकामस्तु पुत्रान् वै धनकामो धनानि च ॥१०५॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥१०६॥

इस संसार में जो मनुष्य इसको पढ़ता या सुनता है वह पापों से छूट जाता है। श्रीरामचन्द्र के राज्याभिषेक के वृत्तान्त को सुनने से जिस मनुष्य को पुत्रप्राप्ति की इच्छा होती है उसे पुत्र की, और धनप्राप्ति की इच्छा रखने वाले को धन की प्राप्ति होती है। श्रीरामराज्याभिषेक सुनने से राजा भूमण्डल को जीतता है और अपने शत्रुओं पर प्रभुत्व प्राप्त करता है ॥१०५॥१०६॥

राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥१०७॥

जिस प्रकार श्रीराम से कौसल्या, लक्ष्मण से सुमित्रा और भरत से कैकेयी पुत्रवती थीं; उसी प्रकार इस काव्य के सुनने से स्त्रियाँ पुत्रवती होती हैं ॥१०७॥

[ भविष्यन्ति सदानन्दाः पुत्रपौत्रसमन्विताः । ]
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥१०८॥

जो लोग इस कथा को सुनेंगे, वे पुत्रपौत्र से भरे पूरे हो, सदा प्रसन्न रहेंगे। इस रामायण को सुनने से सुनने वाला दीर्घायु होता है ॥१०८॥

रामस्य विजयं चैव सर्वमक्लिष्टकर्मणः ।
शृणोति य इदं काव्यमार्षं वाल्मीकिना कृतम् ॥१०९॥

श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ।
समागमं प्रवासान्ते लभते चापि बान्धवैः ॥११०॥

महर्षि वाल्मीकि रचित इस आर्षकाव्य में वर्णित अक्लिष्टकर्मा श्रीरामचन्द्र जी के विजय की कथा जो लोग श्रद्धापूर्वक और क्रोधरहित हो सुनते हैं, वे बड़ी बड़ी कठिनाइयों के पार हो जाते हैं। यदि कोई विदेश में गया हो, तो वह लौट कर अपने भाई बन्दों से मिलता है ॥१०६॥११०॥

प्रार्थितांश्च वरान् सर्वान् प्राप्नुयादिह राघवात् ।
श्रवणेन सुराः सर्वे प्रीयन्ते संप्रशृण्वताम् ॥१११॥

श्रीरामचन्द्रजी की कृपा से इसके सुनने वालों को मनोवाञ्छित वरों की प्राप्ति होती है। इस आदिकाव्य के सुनाने से समस्त देवता प्रसन्न होते हैं ॥१११॥

[1]विनायकाश्च शाम्यन्ति गृहे तिष्ठन्ति यस्य वै ।
विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान् व्रजेत् ॥११२॥

जिनके घर में विघ्न करने वाले ग्रह होते हैं, वे शान्त हो जाते हैं। राजा इसके सुनने से विजयी होता है और प्रवासी का इसके सुनने से कल्याण होता है ॥११२॥

[2]स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ।
पूजयंश्च पठंश्चेममितिहासं पुरातनम् ॥११३॥

---

१ विनायकाः—विघ्नकरा ग्रहाः । ( गो० ) २ स्त्रियो रजस्वलाः—शुद्धिस्नानानन्तरंषोडशदिनावधि । ( तीर्थी० )

यदि स्त्री रजोधर्म के बाद शुद्ध होकर ( सोलह दिवस तक ) इस रामायण को सुने, तो उसकी कोख से उत्तम पुत्र उत्पन्न हो। इस प्राचीन इतिहास का पूजन करने व पाठ करने से ॥ ११३ ॥

सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ॥११४॥

वे समस्त पापों से छूट कर दीर्घायु होते हैं। प्रणाम करके क्षत्रियों को यह कथा ब्राह्मण के मुख से सुननी उचित है ॥११४॥

ऐश्वर्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ।
रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ।
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥११५॥
आदिदेवो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ।
[साक्षाद्रामो रघुश्रेष्ठः शेषो लक्ष्मण उच्यते] ॥११६॥

जो इसको सुनेंगे उन्हें ऐश्वर्य और पुत्र की प्राप्ति निश्चय ही होगी—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। जो इस रामायण को आदि से अन्त तक सदा पढ़ता या सुनता रहता है, उसके ऊपर श्रीरामचन्द्र जी, जो सनातन विष्णु ( का अंशावतार हैं ) सदा सन्तुष्ट रहते हैं। जो आदिदेव, महाबाहु, हरि और सब के प्रभु साक्षात् नारायण हैं, वे ही रघुवंशियों में श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्र के रूप में और शेष जी लक्ष्मण जी के रूप में अवतीर्ण हुए ॥११५॥११६॥

कुटुम्बवृद्धिं धनधान्यवृद्धिं
स्त्रियश्च मुख्याः सुखमुत्तमं च ।
श्रुत्वाशुभं काव्यमिदं महार्थं
प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम् ॥११७॥

इस मङ्गलमय सुखजनक महाअर्थयुक्त आदिकाव्य श्रीमद्रामायण का पाठ करने से अथवा इसकी कथा सुनने से कुटुम्ब की और धनधान्य की वृद्धि तथा उत्कृष्ट स्त्री और उत्तम सुखों की प्राप्ति होती है। इस संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं, जो इसके सुनने वाले अथवा पाठ करने वाले को प्राप्त न हो ॥ ११७ ॥

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं
सौभ्रातृकं बुद्धिकरं शुभं च ।
श्रोतव्यमेतन्नियमेन सद्भिः
आख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥११८॥

यह काव्य आयु, आरोग्यता और यश का बढ़ाने वाला है। भाइयों में प्रेम उत्पन्न करने वाला, सुबुद्धि देने वाला और शुभप्रद है। अतः सज्जनों को उचित है कि वे इस तेजवर्द्धक और अभीष्ट-प्रद आख्यान को नियमपूर्वक सुनें ॥ ११८ ॥

१एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥११९॥

विष्णु का बल बढ़े इस प्रकार की प्रार्थना करके प्राचीनकाल में उन्नतिशील देवता इसका पाठ किया करते थे। अथवा इस प्राचीन इतिहास को भली भाँति श्रद्धापूर्वक पढ़ो जिससे तुम्हारा कल्याण हो और विष्णु का बल बढ़े ॥ ११९ ॥

देवाश्च सर्वे तुष्यन्ति ग्रहणाच्छ्रवणात्तथा ।
रामायणस्य श्रवणात्तुष्यन्ति पितरस्तथा ॥१२०॥

---

१ एवमेतत्—विष्णोर्बलं प्रवर्द्धतां स्तुत्यादिना प्रवर्द्धयतांदेवानां मध्ये एतदाख्यानं पुरावृत्तं देवैः पठितमित्यर्थः। ( शि० )

इसका पाठ करने और इसके सुनने से समस्त देवता प्रसन्न और पितर सन्तुष्ट होते हैं ॥ १२० ॥

**भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृताम् ।**
**लेखयन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥१२१॥**

इति एकत्रिंशदुत्तरशततमः सर्गः ।

वाल्मीकि ऋषिनिर्मित इस श्रीरामसंहिता को जो लोग भक्ति पूर्वक लिखते हैं, उनको यह संसार त्यागने पर स्वर्ग में स्थान मिलता है ॥ १२१ ॥

युद्धकाण्ड का एकसौ इक्तीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकाव्ये
चतुर्विंशतिसाहस्त्रिकायां संहितायां

**युद्धकाण्डः समाप्तः ॥**

—:※:—

॥ श्री ॥

# श्रीमद्रामायणपारायणसमापनक्रमः

## श्रीवैष्णवसम्प्रदायः

—*—

एवमेतत्पुरावृत्तमाख्यानं भद्रमस्तु वः ।
प्रव्याहरत विस्रब्धं बलं विष्णोः प्रवर्धताम् ॥ १ ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥ २ ॥

काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥ ३ ॥

कावेरी वर्धतां काले-काले वर्षतु वासवः ।
श्रीरङ्गनाथो जयतु श्रीरङ्गश्रीश्च वर्धताम् ॥ ४ ॥

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥ ५ ॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥ ६ ॥

वेदवेदान्तवेद्याय मेघश्यामलमूर्तये ।
पुंसां मोहनरूपाय पुण्यश्लोकाय मङ्गलम् ॥ ७ ॥

विश्वामित्रान्तरङ्गाय मिथिलानगरीपतेः ।
भाग्यानां परिपाकाय भव्यरूपाय मङ्गलम् ॥८॥

पितृभक्ताय सततं भ्रातृभिः सह सीतया ।
नन्दिताखिललोकाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥९॥

त्यक्तसाकेतवासाय चित्रकूटविहारिणे ।
सेव्याय सर्वयमिनां धीरोदाराय मङ्गलम् ॥१०॥

सौमित्रिणा च जानक्या चापबाणासिधारिणे ।
संसेव्याय सदा भक्त्या स्वामिने मम मङ्गलम् ॥११॥

दण्डकारण्यवासाय खण्डितामरशत्रवे ।
गृध्रराजाय भक्ताय मुक्तिदायास्तु मङ्गलम् ॥१२॥

सादरं शबरीदत्तफलमूलाभिलाषिणे ।
सौलभ्यपरिपूर्णाय सत्वोद्रिक्ताय मङ्गलम् ॥१३॥

हनुमत्समवेताय हरीशाभीष्टदायिने ।
वालिप्रमथनायास्तु महाधीराय मङ्गलम् ॥१४॥

श्रीमते रघुवीराय सेतूल्लङ्घितसिन्धवे ।
जितराक्षसराजाय रणधीराय मङ्गलम् ॥१५॥

आसाद्य नगरीं दिव्यामभिषिक्ताय सीतया ।
राजाधिराजराजाय रामभद्राय मङ्गलम् ॥१६॥

मङ्गलाशासनपरैर्मदाचार्यपुरोगमैः ।
सर्वैश्च पूर्वैराचार्यैः सत्कृतायास्तु मङ्गलम् ॥१७॥

## माध्वसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥१॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥२
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः ।
येषामिन्दीवरश्यामो हृदये सुप्रतिष्ठितः ॥३॥
मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणाब्धये ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥४॥
कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥५॥

—:०:—

## स्मार्तसम्प्रदायः

स्वस्ति प्रजाभ्यः परिपालयन्तां
न्याय्येन मार्गेण महीं महीशाः ।
गोब्राह्मणेभ्यः शुभमस्तु नित्यं
लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु ॥१॥
काले वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशोऽयं क्षोभरहितो ब्राह्मणाः सन्तु निर्भयाः ॥२॥
अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः ।
अधनाः सधनाः सन्तु जीवन्तु शरदां शतम् ॥३॥

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम् ।
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम् ॥४॥

शृण्वन् रामायणं भक्त्या यः पादं पदमेव वा ।
स याति ब्रह्मणः स्थानं ब्रह्मणा पूज्यते सदा ॥५॥

रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे ।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ॥६॥

यन् मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥७॥

मङ्गलं कोसलेन्द्राय महनीयगुणात्मने ।
चक्रवर्तितनूजाय सार्वभौमाय मङ्गलम् ॥८॥

यन् मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥९॥

अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गल प्रादात्तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥१०॥

त्रीन् विक्रमान् प्रकमतो विष्णोरमिततेजसः ।
यदासीन् मङ्गलं राम तत्ते भवतु मङ्गलम् ॥११॥

ऋतवः सागरा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु तव सर्वदा ॥१२॥

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतेः स्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥१३॥